बी.ए. समाजशास्त्र / B.A. Sociology

अन्तिम वर्ष

सामाजिक अनुसंधान पद्धति

(द्वितीय-प्रश्नपत्र)

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

पाठ्यक्रम अभिकल्प एवं विकास समिति

संरक्षक

कुलपति

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

पाठ्यक्रम सम्पादन

श्री संजीव कुमार लवानियाँ

अध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक

समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग

पण्डित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़

बिलासपुर (छ.ग.)

प्रकाशक

कुलसचिव, पण्डित सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर, 495009

ISBN NO : **978-93-88311-09-0**

वर्ष : **2018**

पुर्नमुद्रण : **2019**

मुद्रक :

पी.स्क्वायर सॉल्यूशन

मथुरा उ.प्र.

अनुक्रमणिका

खण्ड (1)

खण्ड (2)

खण्ड (3)

खण्ड (4)

NOTES

1 सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं उपयोगिता

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- सामाजिक अनुसंधान की विशेषताएँ
- सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य
- सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति
- सामाजिक अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रकृति
- सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया
- सामाजिक अनुसंधान के प्रेरक तत्व
- सामाजिक अनुसंधान की उपयोगिता एवं महत्व
- सामाजिक अनुसंधान की कठिनाइयाँ
- प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के परिणाम
- सामाजिक अनुसंधान के प्रकार
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- सामाजिक अनुसंधान की विशेषताएँ
- सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य
- सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति
- सामाजिक अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रकृति
- सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया
- सामाजिक अनुसंधान के प्रेरक तत्व
- सामाजिक अनुसंधान की उपयोगिता एवं महत्व
- सामाजिक अनुसंधान की कठिनाइयाँ
- प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के परिणाम
- सामाजिक अनुसंधान के प्रकार

NOTES

प्राक्कथन

भूमिका— अनुसंधान को मानवीय सभ्यता के उत्कृष्ट विकास का प्रमुख आधार माना गया है। अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग द्वारा क्या, क्यों, कैसे, कब आदि प्रश्नों के उत्तरों को खोजा है। आज के औद्योगिक समाजों में वैज्ञानिक अनुसन्धान का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। वैज्ञानिक अनुसंधान यदि निश्चित वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर किया जाए तो इसका प्रयोग मानव ज्ञान के प्रत्येक पक्ष में किया जा सकता है।

अव्यक्त के प्रति मनुष्य सदैव से ही जिज्ञासु रहा है। अनुसंधान का अभिप्राय अव्यक्त को तथ्यपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करना हैं इस कार्य में मनुष्य के अर्जित ज्ञान का जितना अधिक उपयोग होगा, परिणामस्वरूप पायी गयी अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक स्पष्ट व विश्वसनीय होगी। वैज्ञानिक पद्धति अनुसंधान का अपरिहार्य अंग हैं विज्ञान व अनुसंधान दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। अनुसंधान ने मानव सभ्यता व संस्कृति के उत्कर्ष को गतिशील बनाया है तो विज्ञानजनित अनुभवों ने उन्हें व्यवस्थित विकास करने में योगदान दिया हैं। समस्या की प्रकृति तथा विज्ञान प्रदत्त ज्ञान के द्वारा अनुसंधान के विविध स्वरूप एवं विस्तार का निर्धारण होता है अर्थात् वर्तमान के अनुसन्धान का स्वरूप भूतकाल में किये गये अनुसन्धानों के अनुभवों पर आधारित होता है। इस दृष्टि से विज्ञान ज्ञान का केवल क्रमबद्ध स्वरूप ही नहीं है, बल्कि विविध क्रिया-कलापों की एक व्यवस्थित विधि भी है। दूसरे शब्दों में, विज्ञान परीक्षणात्मक जगत तक पहुँचने की एक पद्धति है अर्थात् वह जगत जो मनुष्य के अनुभव द्वारा प्राप्य है।

अनुसन्धान जब सामाजिक सतह में अवगुंठित सत्य की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है तो वह सामाजिक अनुसंधान का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान का कार्य सामाजिक घटनाओं एवं व्यवहारों के मूल में निहित नियमों को निरूपित करना, व्यवहारों एवं विभिन्न प्रक्रियाओं से सम्बन्धित अवधारणाओं को विकसित करना तथा सही अध्ययन करने में सहायक प्रविधियों का विकास करना भी है।

सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषायें

'सामाजिक अनुसंधान' का अभिप्राय सामाजिक विषयों के वैज्ञानिक अध्ययन से है। जब कोई भी अनुसंधान सामाजिक जीवन सामाजिक घटनाओं अथवा सामाजिक जटिलताओं से सम्बन्धित होता है, तब उसे सामाजिक अनुसंधान कहते हैं।

सामाजिक अनुसंधान की अवधारणा को समझाने के लिए भिन्न-भिन्न सामाजिक अनुसंधानकर्त्ताओं ने अपने व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित भिन्न-भिन्न परिभाषाए दी हैं। उनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं।

(1) **श्रीमती पी. वी. यंग के अनुसार-** ''सामाजिक अनुसंधान की एक वैज्ञानिक योजना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों की खोज अथवा पुराने तथ्यों के सत्यापन, उनकी क्रमबद्धताओं व अन्तर्सम्बन्धों, कार्य-कारण की व्याख्या तथा उन्हें नियंत्रित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।''

(2) **मोजर के अनुसार** – ''सामाजिक प्रघटनाओं तथा समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए की गयी व्यवस्थित छानबीन को हम सामाजिक अनुसंधान कहते हैं।''

(3) **व्हिटने (Whitney) के अनुसार** – ''समाजशास्त्रीय अनुसंधान के अन्तर्गत मानव समूह के सम्बन्ध का अध्ययन होता है।''

(4) **फिशर के अनुसार** – ''किसी समस्या को हल करने या किसी परिकल्पना की जाँच करने अथवा नये घटनाक्रम तथा उसमें पाये जाने वाले नये सम्बन्धों की खोज करने हेतु उपयुक्त पद्धतियों का किसी सामाजिक स्थिति में जो प्रयोग किया जाता है उसे ही सामाजिक अनुसंधान कहते हैं।''

(5) **बोगार्ड्स के अनुसार** – ''एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अन्तर्निहित प्रक्रियाओं की खोज ही सामाजिक अनुसंधान है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान सामाजिक जीवन व घटनाओं के कारणों, अन्त: सम्बन्धों, प्रक्रियाओं आदि का वैज्ञानिक अध्ययन है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान एक वैज्ञानिक पद्धति है जिसका उद्देश्य सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के बारे में क्रमबद्ध व तार्किक पद्धतियों के द्वारा शुद्ध रूप से ज्ञान प्राप्त करना है और इस ज्ञान के आधार पर सामाजिक घटनाओं में पाए जाने वाले स्वाभाविक नियमों का पता लगाना है। इसमें सामाजिक यथार्थता को समझने के लिए निरीक्षण, परीक्षण, तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण द्वारा घटना के कारणों की जानकारी की जाती है और वस्तुस्थिति का सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में तार्किक विवेचन किया जाता है।

सामाजिक अनुसंधान की विशेषताएँ

सामाजिक अनुसंधान हमारे सामान्य सामाजिक जीवन से ही सम्बन्धित होने के कारण, नये तथ्यों की खोज तथा इन तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्टीकरण करता है। इस खोज के माध्यम से ही सामाजिक प्रघटनाओं को नियंत्रित किया जा सकता हैं सामाजिक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित हैं–

(1) सामाजिक अनुसंधान का सम्बन्ध सामाजिक घटना से है– सामाजिक अनुसंधान का सम्बन्ध सामाजिक घटनाओं के साथ रहा है। इसके माध्यम से मनुष्यों के व्यवहारों को समाज के सदस्यों के रूप में अध्ययन किया जाता है तथा मानवीय भावनाओं, प्रवृत्तियों इत्यादि का भिन्न–भिन्न परिवेशों के आधार पर खोजबीन करने के प्रयास किये जाते हैं। किन–किन परिवेशों के लोग किस तरह के बन जाते हैं और उनके क्या–क्या परिणाम निकलते हैं, इत्यादि के बारे में खोजबीन करना सामाजिक अनुसंधान का प्रमुख विषय है।

(2) नये तथ्यों की खोज तथा पुराने तथ्यों का सत्यापन करना– प्रत्येक विज्ञान का उद्देश्य नये तथ्यों, नये सम्बन्धों तथा घटना को संचालित करने वाले किसी नये नियम की खोज करना होता है, परन्तु एक बार किसी नियम के बन जाने के बाद भी बराबर उसकी खोज करना आवश्यक होता है, विशेषकर उन विज्ञानों में जो प्रगतिशील हैं। सत्यपान की आवश्यकता दो

कारणों से पड़ती है। प्रथम, जब अनुसंधान की प्रणाली में सुधार हो गया हो तथा नवीन विधियों के अनुसार पुराने सिद्धान्तों की जाँच आवश्यक हो गयी हो। द्वितीय, घटना की परिस्थितियों में परिवर्तन हो चुका हो और पुराने सिद्धान्त की सत्यता को नयी परिस्थितियों में प्रमाणित करना आवश्यक हो। दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुसंधान किये जाते हैं।

(3) घटनाओं को संचालित करने वाले तथ्यों की खोज करना- सामाजिक अनुसंधान विभिन्न सामाजिक घटनाओं के होने वाले कारणों का पता लगाकर विश्लेषण करता है। जैसे विभिन्न समाजिक घटनाएँ स्वत: स्वतन्त्र हैं अथवा किसी नियम के द्वारा संचालित हैं। इसी प्रकार सामाजिक विघटन तथा सामाजिक विकास एक आकस्मिक घटना है अथवा यह किसी नियम द्वारा संचालित होता है, इत्यादि। अनुसंधान ने अब सिद्ध कर दिया है कि भौतिक घटनाओं की भाँति सामाजिक घटना भी निश्चित, सुदृढ़ नियमों द्वारा संचालित होती है तथा उन नियमों का पता लगा लेने पर हम उसका पहले ही अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकार इसके द्वारा सामाजिक विघटन को रोका जा सकता है तथा सामाजिक उन्नति की गति तीव्र की जा सकती है।

(4) विभिन्न तथ्यों के बीच सम्बन्धों की स्थापना करना- सामाजिक अनुसन्धान विभिन्न तथ्यों के बीच सम्बन्धों की खोज करता है। विभिन्न सामाजिक घटनाएँ प्राय: स्वतन्त्र न होकर एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध होता है। सामाजिक अनुसंधान द्वारा घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाना होता है। उदाहरणार्थ, गरीब और अपराधी, गन्दी बस्तियाँ तथा मृत्यु दर में परस्पर किस प्रकार का कार्य-कारण सम्बन्ध हो सकता है? इनकी जानकारी से हम विभिन्न सामाजिक व्याधियों, सामाजक समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं। वर्तमानकाल में समस्याओं का अध्ययन करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अध्ययन के साथ-साथ अनुसन्धान का कार्य व उनके होने वाले प्रभावों के बारे में भी अध्ययन करना आवश्यक है। इस तरह से हम अनुसन्धान का कार्य व उनके होने वाले प्रभावों के बारे में भी अध्ययन करना आवश्यक है। इस तरह से हम अनुसन्धान के माध्यम से सामाजिक घटनाओं का यथार्थ रूप में अध्ययन कर सकते हैं।

इस प्रकार सामाजिक अनुसन्धान की उपर्युक्त विशेषताएँ इसे वैज्ञानिक प्रस्थिति प्रदान करती हैं।

सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य

सामाजिक अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य नवीन ज्ञान व सिद्धान्तों की खोज तथा पुराने सिद्धान्तों का पुन: परीक्षण है। गुड्डे तथा हाट्ट ने सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया है।

(I) सैद्धान्तिक उद्देश्य। (II) व्यावहारिक उद्देश्य।

I. सैद्धान्तिक उद्देश्य- सैद्धान्तिक उद्देश्य को विवेचन की सुविधा के लिए निम्न बिन्दुओं में विभाजित किया गया है-

(1) **सामाजिक जीवन व घटनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना**-सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ स्थायी नहीं हैं। उनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसलिए विभिन्न

NOTES

सामाजिक तथ्यों के सम्बन्ध में हमारा जो ज्ञान है, वह आगे चलकर सही नहीं उतरता, ऐसी स्थिति में आवश्यकता है कि हमारे द्वारा नवीन तथ्यों के सम्बन्ध में पता लगाया जाए, ताकि हमारा ज्ञान उपयुक्त हो सके। सामाजिक अनुसन्धान के माध्यम से सामाजिक जीवन एवं भिन्न-भिन्न तरह की सामाजिक घटनाओं, सांस्कृतिक घटनाओं के बारे में सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में अध्ययन करना होता है तथा उन तथ्यों के आधार पर प्राप्त ज्ञान को प्रकट करना होता है। इस प्रकार के ज्ञान को समाजशास्त्र में सैद्धान्तिक ज्ञान कहा जाता है।

(2) **प्रकार्यात्मक सम्बन्धों का ज्ञान** - विभिन्न समााजिक घटनाओं या तथ्यों में अपने-अपने कार्यों के आधार पर प्रकार्यात्मक सम्बन्ध पाये जाते हैं और इन प्रकार्यात्मक सम्बन्धों के आधार पर ही सामाजिक जीवन में निरन्तरता बनी रहती हैं सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य इन प्रकार्यात्मक सम्बन्धों का भी ज्ञान प्राप्त करना है। उदाहरणार्थ, बाल अपराध की घटना को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक कि बाल अपराध व परिवार, बाल अपराध व निर्धनता, बाल अपराध व स्कूल आदि में पाये जाने वाले कार्य-कारण सम्बन्धों को भली भाँति न समझ लिया जाए।

(3) **नियमों की खोज** - सामाजिक घटनायें भी प्राकृतिक घटनाओं की भाँति कुछ स्वाभाविक नियमों द्वारा संचालित व नियमित होती हैं इन नियमों को व्यवस्थित पद्धतियों द्वारा पता लगाना भी सामाजिक अनुसन्धान का सैद्धान्तिक उद्देश्य है। कई बार व्यक्ति किसी कार्य को करना न चाहते हुए भी प्रेम एवं मानवोचित भावोद्रेक में उस कार्य को करने लगता है, स्वयं का हित न होने पर भी वह अपनी प्रकृति के अनुसार दूसरों के हितों में लगता है। सामाजिक सर्वोक्षणकर्त्ता को इस प्रकार की घटनाओं से कोई सरोकार नहीं होता है, लेकिन सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता इन्हें अपने अध्ययन का लक्ष्य मानता है।

(4) **वैज्ञानिक अवधारणाओं का निर्माण**- सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य परिभाषित शब्दों व अवधारणाओं का प्रमापीकरण करना भी है। जब भिन्न-भिन्न समाजशास्त्रीय ज्ञान की अवधारणाओं को व्यवस्थित रूप मिलता रहेगा, तभी समाज प्रगति कर सकेगा। प्रत्येक ज्ञान की शाखा से भिन्न-भिन्न अवधारणायें होती हैं जिनके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न तकनीकी, विचारधाराओं एवं शब्दावलियों की व्यवस्थायें दी हुई रहती हैं। उसी के आधार पर भिन्न-भिन्न विषयों में खोज सम्भव हो पाती है।

II. व्यावहारिक उद्देश्य— सामाजिक अनुसन्धान के मूल लक्ष्यों में व्यावहारिक उद्‌देश्य का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं व्यावहारिक लक्ष्य को निम्नलिखित भागों में बाँटा गया है-

(1) **सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान करना**-सामाजिक अनुसन्धान द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर आधुनिक समाज की जटिल समस्याओं का निदान खोजा जा सकता है। उस ज्ञान की सहायता से नेता, समाज सुधारक, शासक व प्रशासक आदि समस्याओं का निदान सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

विशेषकर भारतीय समाज पर जब से औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रियाओं का प्रभाव पड़ा है, तब से पश्चिमी संस्कृति के प्रति आस्था बढ़ी है और धर्म के प्रति आस्था

कम हुई हैं जबसे हिन्दू संस्कृति के प्रति विकर्षण और पाश्चात्य भौतिक संस्कृति से लगाव बढ़ा है, तभी से भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक समस्यायें बढ़ी हैं। इसी प्रकार भौतिकवाद ने स्थान-स्थान पर आपराधिक प्रवृत्तियों को बढ़ाने में भी योगदान दिया हैं इस प्रकार की भिन्न-भिन्न समस्याओं के समाधान में सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ताओं का लक्ष्य सदैव समाज की सहायता करने का रहा है।

(2) **सामाजिक संघर्ष की स्थितियों को दूर करने में सहायक**-सामाजिक अनुसन्धान से प्राप्त ज्ञान के आधार पर पाये जाने वाले विभिन्न सामाजिक संघर्ष का उचित निदान खोजा जा सकता है। उदाहरण के लिए आज भी भारत में भाषावाद की जटिल समस्या है; जिसमें लोग हिन्दी भाषाको महत्व मिलने पर भी अपनी प्रान्तीय भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में है; जिसमें लोग हिन्दी भाषा को महत्व मिलने पर भी अपनी प्रान्तीय भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में हैं; आज भी कुछ लोग सम्प्रदायवादी हैं, जो कट्टर धार्मिक एवं संकीर्ण विचारों के आधार पर परस्पर संघर्ष कर रहे हैं एवं कुछ लोग हिंसात्मक एवं आतंककारी हथकण्डों को अपनाकर व्यवस्था और शान्ति को भंग करने का प्रयास कर रहे हैं। इसी तरह कुछ लोग प्रगतिशील सिद्धान्तों को स्वीकार करने पर भी जातिवाद का परित्याग नहीं कर पा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे न केवल अपने मताधिकारों का दुरुपयोग कर रहे हैं बल्कि इसके साथ-साथ जीवन में जातिवाद के संकीर्ण विचारों को बढ़ावा देकर राष्ट्रीयता के विकास के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर रहे हैं। इन सभी तरह के परिवेशों से जो संघर्षमयी स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उन्हें सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन का विषय तो बनाते ही जा रहे हैं, मगर इसके साथ-साथ वे इनके निराकरण हेतु सुझाव भी प्रदान कर रहे हैं। यदि हिन्दू संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था में सुधार करने हों तो यह आवश्यक है कि सामाजिक-सांस्कृतिक अनुसन्धानों को अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया जाए।

(3) **सामाजिक योजनाओं को बनाने में सहायक**-सामाजिक अनुसन्धान से प्राप्त ज्ञान के द्वारा सामाजिक पुनर्निर्माण की योजनाओं को बनाने में सहायता मिलती है। योजनाओं की उपयोगिता सामाजिक अनुसन्धान द्वारा उपलब्ध वैज्ञानिक व यथार्थ ज्ञान पर ही आधारित रहती हैं यही कारण है कि सभी प्रगतिशील देश योजना की सफलता की दृष्टि से सामाजिक अनुसन्धान के महत्व को स्वीकार करते हैं।

(4) **सामाजिक नियन्त्रण में सहायक**- सामाजिक अनुसन्धान से प्राप्त ज्ञान का उपयोग सामाजिक नियन्त्रण में भी सहायक होता है। उदाहरणार्थ मजदूर वर्ग में अर्न्निहित प्रक्रियाओं, उनके विचारों, मनोवृत्तियों, आवश्यकताओं, महत्वाकांक्षाओं एवं उनकी समस्याओं से सम्बन्धित बातों के बारे में जितना अधिक ज्ञान होगा, उनके समाधान हेतु उतनी ही व्यावहारिक योजनाएँ सम्भव हो सकेंगी। अपने सामाजिक अनुसन्धान द्वारा न केवल मजदूरों की मनोवृत्तियों, आदतों एवं विभिन्न समस्याओं का समाधान हो सकता है; बल्कि मजदूरों एवं धनिकों या मिल मालिकों के मध्य होने वाले संघर्षों एवं तनावों को भी नियंत्रित किया जा सकता है। आज इसी के आधार पर प्रो. एल्टन मेयो ने इस बात को प्रमाणित

किया है कि जब तक मजदूरों के काम के घण्टों को निर्धारित नहीं किया जायेगा; उन्हें वास्तविक मजदूरी प्रदान नहीं की जाएगी; तब तक उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि नहीं हो सकेगी और उनके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव ही पड़ेंगे। इसी अनुसन्धानिक ज्ञान का ही परिणाम है कि सरकार ने संघर्ष एवं तनाव की स्थितियों को नियंत्रित करने हेतु विभिन्न प्रकार के श्रम-कल्याण सम्बन्धी कानूनों का निर्माण किया हैं इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसन्धानिक ज्ञान से वर्ग-संघर्ष को नियन्त्रित किया गया है, औद्योगिक विवादों को कम किया गया है और आर्थिक क्षेत्र में शांति लाई जा सकी है। अत: सामाजिक अनुसन्धान को सामाजिक-नियन्त्रण का एक शक्तिशाली साधन कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

(5) **विकल्पों की खोज—** सामाजिक अनुसंधान के द्वारा किसी कार्य को करने या सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए, विभिन्न प्रकार के तत्व एवं पहले से बेहतर विकल्पों की खोज की जाती है जिसमें समय, श्रम एवं धन की कम से कम आवश्यकता पड़े तथा जो अधिक कुशलता से समस्याओं का समाधान कर सकें।

निष्कर्ष - उपुर्यक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसन्धान के व्यावहारिक उद्देश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। श्रीमती पी. वी. यंग के के अनुसार 'सामाजिक अनुसन्धान का मूलभूत लक्ष्य सामाजिक जीवन को समझकर मनुष्य के सामाजिक व्यवहार के ऊपर अधिक नियन्त्रण प्राप्त करना है।' लेकिन सामाजिक अनुसन्धान का एकमात्र उद्देश्य सामाजिक बुराइयों का इलाज ढूँढ़ना ही नहीं है। इस सम्बन्ध में भी श्रीमती पी. वी. यंग ने लिखा है कि "सामाजिक अनुसंधान सामाजिक व्याधि की समस्याओं से उस सीमा तक सम्बन्धित है, जहाँ तक वे समाज की मौलिक प्रक्रियाओं, मानवीय व्यवहार तथा व्यक्तिगत के विकास एवं विघटन पर प्रकाश डालती हैं।"

अत: स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसन्धान का मूल उद्देश्य विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति है और उसका गौण उद्देश्य उपचारात्मक या सामाजिक व्यवहार का नियन्त्रण है।

सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति

सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन अग्रलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है-

(1) अनुसंधान एक उद्देश्यपूर्ण व्यवस्थित बौद्धिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा किसी सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक समस्या के समाधान का प्रयास किया जाता है।

(2) अनुसन्धान के द्वारा या तो किसी नये तथ्य, सिद्धान्त, विधि या वस्तु की खोज की जाती है अथवा प्राचीन तथ्य, सिद्धान्त, विधि या वस्तु में परिवर्तन किया जाता है।

(3) अनुसंधान एक तर्कपूर्ण तथा वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया है। इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वास्तविक आंकड़ों पर आधारित एवं तर्कपूर्ण होते हैं तथा व्यक्तिगत पक्षपात से मुक्त होते हैं।

(4) अनुसन्धान चिन्तन की एक सुव्यवस्थित एवं परिष्कृत विधि है, जिसके अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान के लिए विशिष्ट उपकरणों एवं प्रक्रियाओं का प्रयोग होता है।

(5) अनुसंधान की प्रक्रिया में प्राथमिक एवं माध्यमिक स्रोत से प्राप्त आँकड़ों के द्वारा नये ज्ञान को प्राप्त किया जाता है।

(6) इसके अन्तर्गत जटिल घटनाक्रम को समझाने के लिए विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विश्लेषण के लिए परिकल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण किया जाता है।

(7) अनुसन्धान की प्रक्रिया में आँकड़ों के विश्लेषण में परिमाणात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ तक सम्भव हो, आँकड़ों के विश्लेषण में सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता हैं

(8) अनुसन्धान द्वारा प्राप्त ज्ञान सत्यापित किया जा सकता है क्योंकि इसके अन्तर्गत किया गया निरीक्षण नियन्त्रित एवं वस्तुनिष्ठ होता है।

(9) अनुसन्धान कार्य के लिए वैज्ञानिक अभिकल्पों का प्रयोग किया जाता है।

(10) आँकड़ों को प्राप्त करने के लिए विश्वसनीय एवं वैध उपकरणों का प्रयोग किया जाता हैं

(11) सभी अनुसन्धानों में अभिलेखन एवं प्रतिवेदन सावधानी से किया जाता है।

सामाजिक अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रकृति

सामाजिक अनुसंधान की विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति वैज्ञानिक है। इसका विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है-

(1) **सामाजिक समस्या के कारणों का पता लगाना**- सामाजिक अनुसंधान में सामाजिक जीवन को समझने का प्रयत्न किया जाता है। सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्ति इसका मुख्य लक्षण है। ज्ञान की प्राप्ति, ज्ञान की वृद्धि एवं ज्ञान की पुन: परीक्षा सामाजिक अनुसंधान के तहत की जाती रहती हैं। सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति समस्या का निदान ढूँढ़ निकालने की नहीं है, वह तो सामाजिक समस्या की व्यापकता का पता लगाता है तथा उसके पीछे छिपे कारणों को खोज निकालता है, नियमों का पता लगाता है।

(2) **वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग**- सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति इस दृष्टि से भी वैज्ञानिक है क्योंकि उसमें निरीक्षण, तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण हेतु व्यवस्थित विधि का प्रयोग किया जाता है जिसे वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। वैज्ञानिक पद्धति में वस्तुनिष्ठता, सत्यापनशीलता, तटस्थता, व्यवस्थितता तथा भविष्यवाणी पर बल दिया जाता है।

(3) **सामाजिक घटनाओं के बीच कार्य**- कारण सम्बन्धों का पता लगाना-सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति इस दृष्टि से भी वैज्ञानिक है क्योंकि यह सामाजिक तथ्यों या घटनाओं के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों को खोज निकालने पर बल देती है। सामाजिक जीवन में अन्त: सम्बद्धता तथा अन्तर्निभरता पाई जाती है। सामाजिक जीवन के सभी पक्ष परस्पर जुड़े हुए हैं, इसलिए इनको समझने के लिए इनके कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाना आवश्यक है और यह कार्य सामाजिक अनुसंधान के द्वारा किया जाता है।

(4) सामाजिक जीवन एवं घटनाओं पर नियन्त्रण पाने का प्रयास- सामाजिक अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रकृति इस दृष्टि से भी है कि इसकी सहायता से सामाजिक जीवन व घटनाओं पर नियन्त्रण किया जाता है। शोधकर्त्ता अपने शोध कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का प्रयोग करने हेतु कुछ सामाजिक घटनाओं को नियन्त्रित करके उन्हीं के समान अन्य सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखता है। इससे सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में उसके ज्ञान में वृद्धि हो जाती है, उन पर उसका नियन्त्रण बढ़ जाता है तथा उसकी भविष्यवाणी की क्षमता बढ़ जाती है।

(5) व्यापक अध्ययन क्षेत्र- सामाजिक अनुसंधान का अध्ययन क्षेत्र व्यापक हैं। इसके अध्ययन-क्षेत्र में सम्पूर्ण सामाजिक जीवन और उससे सम्बद्ध सामाजिक प्रक्रियाएँ आ जाती हैं। इसका लक्ष्य नवीन तथ्यों की खोज के साथ-साथ पुराने तथ्यों की पुन: परीक्षा भी है जो कि किसी भी वैज्ञानिक-प्रकृति वाले शास्त्र की विशेषता होती है। यही कारण है कि वर्तमान में सामाजिक शोध कार्यों ने सामाजिक जीवन से सम्बन्धित अनेक भ्रान्त धारणाओं को दूर किया है।

(6) मानवीय सामाजिक-व्यवहार का अध्ययन- सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति इस दृष्टि से भी वैज्ञानिक है क्योंकि इसमें मानव के सामाजिक व्यवहार, उसकी सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक-संरचना का व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाने के लिए सामाजिक समस्याओं का भी अध्ययन करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति वैज्ञानिक है।

सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया

सामाजिक अनुसंधान की एक लम्बी प्रक्रिया है, इसकी अनेक अवस्थाएँ हैं, जिन्हें चरण के नाम से जाना जाता है। सामाजिक अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रकृति है। यह किसी भी समस्या या घटना का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही करता है। इसीलिए सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया के चरण भी बिल्कुल वही हैं जो कि वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण हैं। ये प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं-

(1) विषय का चुनाव - सामाजिक अनुसंधान का पहला चरण विषय के चुनाव से प्रारम्भ होता है। विषय का चुनाव करते समय उसे इन प्रश्नों पर आवश्यक रूप से विचार कर लेना चाहिए।

(i) शोध कार्य की दृष्टि से वह विषय व्यावहारिक है या नहीं अर्थात् जिस विषय का हम चुनाव कर रहे हैं, उसके सम्बन्ध में उपलब्ध वैज्ञानिक विधियों की सहायता से अध्ययन करना संभव है या नहीं।

(ii) जिस क्षेत्र का चुनाव किया गया है, क्या उस सम्पूर्ण क्षेत्र का अध्ययन किया जा सकता है या नहीं। नये शोधकर्ता प्राय: यही गलती कर बैठते हैं कि वह एक विस्तृत क्षेत्र वाले विषय को चुनकर 'महान अन्वेषक' होने और अमर हो जाने के लोभ को संभाल नहीं

NOTES

पाते हैं, पर आगे चलकर वे एक ऐसे अथाह समुद्र में जा गिरते हैं जिससे वे फिर उबर नहीं पाते और उनकी स्थिति हास्यपद बन जाती है। ऐसी स्थिति में अनुसंधान की परिशुद्धता समाप्त हो जाती है तथा हमें वास्तविक तथ्यों की जानकारी भी नहीं मिल पाती है।

श्री नार्थरोप ने विषय के चुनाव के सम्बन्ध में लिखा है कि ''अपने अनुसंधान के बाद के स्तरों पर शोध कर्ता सर्वाधिक कठिन पद्धतियों का प्रयोग कर सकता है, पर यदि शोध-कार्य का आरम्भ गलत या आडम्बरपूर्ण ढंग से किया गया है तो आगे चलकर केवल कठिन पद्धतियाँ ही परिस्थिति को कदापि सुधार नहीं पायेंगी। अनुसंधान कार्य उस जहाज की तरह है जो एक दूर के गन्तव्य स्थल की ओर जाने के लिए बन्दरगाह से चलता है, परन्तु यदि आरम्भ में ही दिशा निर्धारण के सम्बन्ध में छोटी-सी भूल हो जाये, तो उसके भटक जाने की अधिक संभावना रहती है, चाहे उस जहाज का निर्माण कितनी ही कुशलता से क्यों न किया गया हो और उसका कप्तान कितना ही योग्य क्यों न हो।'' इस सम्बन्ध में ऑगबर्न ने कहा है कि ''शोधकार्य के लिए ऐसा विषय कदापि नहीं चुनना चाहिए जिसके सम्बन्ध में प्रमाण सिद्ध तथ्य उपलब्ध न हों और जो कि पद्धतिशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त कठिन हो।

श्रीमती पी. वी. यंग ने अनुसंधान के विषय के चुनाव में सुझाव देते हुए लिखा है कि ''अध्ययन को अनुसंधानकर्ता के लक्ष्यों और रुचियों, अनुसंधान के लिए आवश्यक उपलब्ध सामग्री की मात्रा, अध्ययन के विषय में निर्मित सैद्धान्तिक मान्यताओं की जटिलता तथा अध्ययन के विषय में सम्बद्ध पिछले शोध कार्य के आधार पर सीमित किया जा सकता है।

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसंधान के विभिन्न चरणों में विषय के चुनाव का पहला चरण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है, जिस पर अनुसंधान का अन्तिम चरण आधारित होता है।

(2) **अनुसंधान साहित्य का अध्ययन** – सामाजिक अनुसंधान का द्वितीय चरण अनुसंधान साहित्य के अध्ययन से प्रारम्भ होता है। विषय का चुनाव कर लेने के पश्चात् यह आवश्यक है कि हम उस विषय से सम्बद्ध अन्य शोध पुस्तकों का अध्ययन करें और अपने को उस विषय पर अन्य शोधकर्ताओं के विचारों, निष्कर्षों तथा पद्धतियों से परिचित कर लें। इससे अनुसंधान की प्रारम्भिक जटिलता और अस्पष्टता समाप्त हो जाती है। इसके साथ ही शोध कर्ता को इस बात की जानकारी हो जाती है कि वह आवश्यक तथ्यों तथा सामग्री का विश्वसनीय संकलन किन स्रोतों से कर सकता है। इस सम्बन्ध में श्रीमती यंग ने कहा है कि ''(अ) अध्ययन विषय के सम्बन्ध में एक अन्तर्दृष्टि तथा सामान्य ज्ञान प्राप्त करने; (ब) अनुसंधान कार्य में उपयोगी सिद्ध होने वाली पद्धतियों के प्रयोग के सम्बन्ध में; (स) उपकल्पना के निर्माण में तथा (द) एक ही अनुसंधान कार्य को फिर से दुहराने की गलती से बचने तथा विषय से सम्बद्ध उन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर, जिन पर कि दूसरे अनुसंधानकर्ताओं ने ध्यान नहीं दिया है, ध्यान देने की हमें सहायता मिल सकती है।''

NOTES

(3) अनुसंधान इकाइयों की परिभाषा— सामाजिक अनुसंधान प्रक्रिया का तीसरा चरण अनुसंधान से सम्बद्ध विभिन्न इकाइयों को परिभाषित करने से प्रारम्भ होता है। यदि अनुसंधानकर्ता प्रारम्भ से इन इकाइयों की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता है, तो आगे शोधकार्य में उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। उदाहरण के लिए मकान, बेरोजगारी, तनाव, सांस्कृतिक गतिशीलता, श्रमिक आदि शब्दों का उपयोग अनुसंधान में होता हैं सामान्य बोलचाल में ये शब्द काफी सरल प्रतीत होते हैं, किन्तु यदि आरम्भ से ही उनके अर्थ को स्पष्ट न किया गया, तो आगे चलकर यह देखने में आयेगा कि भिन्न-भिन्न सूचनादाता इन शब्दों का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाकर अपने-अपने ढंग से सूचनाएँ प्राप्त करेंगे। इस प्रकार की सूचनाएँ आगे चलकर शोधकार्य में सहायक होने के स्थान पर अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न करेंगी। इससे अनुसंधान का अर्थ ही अस्पष्ट हो सकता है।

(4) प्राक्कल्पना का निर्माण- सामाजिक अनुसंधान प्रक्रिया का चौथा प्रमुख चरण प्राक्कल्पना का निर्माण है। अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान विषय के प्रारम्भिक ज्ञान और अनुभव के आधार पर एक कार्यकारी उपकल्पना का निर्माण कर लेता है। अपने अनुसंधान-विषय के सम्बन्ध में प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् अनुसंधानकर्ता अपने विचार से एक ऐसा सिद्धान्त या निष्कर्ष बना लेता है जिसके सम्बन्ध में वह यह कल्पना करता है कि वह सिद्धान्त सम्भवत: उसके अध्ययन का आधार सिद्ध हो सकता है। पर वह उस निष्कर्ष या सिद्धान्त को तब तक सच नहीं मान लेता है, जब तक कि उसका पुष्टिकरण वास्तविक तथ्यों द्वारा न हो जाये। इसी को उपकल्पना या प्राक्कल्पना कहा जाता है।

श्री डुनहम ने लिखा है कि प्राक्कल्पना शोधकर्ता के कार्यों को दिशा प्रदान करती है और उसे यह बताती है कि क्या ग्रहण करना है और क्या त्यागना है। प्राक्कल्पना के बन जाने पर शोधकार्य का क्षेत्र निश्चित हो जाता है और शोधकर्ता को अपने अध्ययन कार्य में आगे बढ़ने में सहायता मिलती है, लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि प्राक्कल्पना केवल एक आकस्मिक निष्कर्ष होता है, न कि अन्तिम। प्राक्कल्पना सच प्रमाणित हो या झूठ, दोनों ही अवस्थाओं में यह शोधकार्य के ज्ञान की वृद्धि में सहायक होती है।

(5) कठिनाइयों का ज्ञान - प्राक्कल्पना का निर्माण कर लेने के पश्चात् शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह भविष्यगत कठिनाइयों की जानकारी प्राप्त कर ले। शोधकर्ता को इस तथ्य से पूर्णत: परिचित होना आवश्यक है कि उसे शोधकार्य की प्रक्रिया में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उसे क्षेत्र-कार्य और साक्षात्कार सम्बन्धी कठिनाइयों का बोध होना चाहिए।

(6) पद्धतियों का चुनाव तथा समंक स्रोतों का अनुमान - अनुसंधान प्रक्रिया का एक अन्य महत्वपूर्ण चरण अनुसंधान की पद्धतियों एवं प्रविधियों का चुनाव करना है। इस सन्दर्भ में निम्न बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है-

(i) विषय की प्रकृति के अनुसार ही अध्ययन की विधियों का चुनाव करना चाहिए।

(ii) तथ्यों के संकलन के लिए विश्वसनीय सूचना स्रोतों का निर्धारण करना चाहिए तथा वे स्रोत उसकी पहुँच के भीतर होने चाहिए।

(iii) पद्धतियों का परीक्षण करके उनकी उपयोगिता के अनुसार ही उनका चुनाव करना चाहिए।

NOTES

(7) **पूर्व-अध्ययन और पूर्व-परीक्षण**-पद्धतियों के चुनाव के पश्चात् अनुसंधनकर्ता को निम्नलिखित दो कार्यों को सम्पादित करना चाहिए-

(i) प्रयोग योजना के तौर पर पूर्व-अध्ययन करना, तथा

(ii) अपने अध्ययन का पूर्व-परीक्षण करना।

पूर्व-अध्ययन से उसे अनुसंधान की दिशा मिलेगी तथा पूर्व-परीक्षण से अध्ययन में होने वाली गलतियों को सुधारा जा सकेगा।

(8) **समय और व्यय का अनुमान** - प्रथमतः, अनुसंधानकर्ता को इस बात का भी अनुमान लगा लेना चाहिए कि जो अध्ययन-कार्य किया जा रहा है, उसमें कितना समय लगेगा तथा धन की मात्रा कितनी खर्च होगी। ऐसा न करने से यह संभव है कि इन दोनों के अभाव में अनुसंधान कार्य बीच में ही अवरूद्ध जाये।

दूसरे अनुसंधान की विभिन्न इकाईयों पर समय और धन का उचित वितरण पहले से ही कर लेना चाहिए। ऐसा न करने से कुछ मदों पर अधिक धन तथा समय खर्च कर दिया जाता है; जबकि अन्य मदों के लिए काफी धन और समय बचता है। इससे अनुसंधान की विभिन्न इकाइयों में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

पार्टेन ने लिखा है कि व्यय को मोटे रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- (i) अनुसंधान की योजना बनाने, अनुसूची, प्रश्नावली और निर्देशों इत्यादि प्रपत्रों का मुद्रण (ii) अध्ययन क्षेत्र की जाँच, आंकड़ों का संकलन तथा अनुसूचियों का सम्पादन, तथा (iii) वर्गीकरण, सारणीयन, सामग्री विश्लेषण तथा प्रतिवेदन तैयार करना। इन मदों पर सामान्यतः बराबर खर्च होना चाहिए।

(9) **कार्यकर्ताओं का चुनाव और प्रशिक्षण** - अनुसंधान कार्य में अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती हैं इस हेतु हमें ऐसे व्यक्तियों का चुनाव करना चाहिए, जो योग्य, अनुभवी और लग्नशील हों। इन व्यक्तियों को अनुसंधान कार्यों के सम्बन्ध में उचित प्रशिक्षण देना चाहिए।

(10) **तथ्यों का निरीक्षण व संकलन** - पद्धतियों व प्रविधियों का चुनाव हो जाने, समय और काम का उचित अनुमान लगा लेने तथा कार्यकर्ताओं के चुनाव व प्रशिक्षण के पश्चात् वास्तविक अनुसंधान कार्य तथ्यों के निरीक्षण व संकलन करने के कार्य से प्रारम्भ होता है। तथ्यों को संकलित करते समय तटस्थता का होना अनिवार्य है। तथ्यों के निरीक्षण के साथ-साथ उनका आलेखन भी चलता रहता है जिससे कि तथ्यों की प्रकृति अपरिवर्तित रहे।

(11) **तथ्यों का वर्गीकरण** - तथ्यों को संकलित करने के पश्चात् उन्हें शोधकार्य के लिए उपयोगी बनाने के लिए निश्चित क्रमों तथा श्रेणियों में विभाजित करना आवश्यक है। वर्गीकरण विषय से सम्बद्ध अनेक अस्पष्ट पक्षों को स्पष्ट करता है। तथ्यों का पारस्परिक सम्बन्ध भी वर्गीकरण के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है।

(12) **सामान्यीकरण** – वर्गीकृत तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण की सहायता से सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। इससे उपकल्पना की परीक्षा होती है। यह सामाजिक अनुसंधान प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। सामान्यीकरण को ही प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

सामाजिक अनुसन्धान के प्रेरक तत्व

सामाजिक अनुसन्धान के लिए प्रेरणा कहाँ से प्राप्त होती है, इस हेतु भिन्न-भिन्न सामाजिक अनुसन्धानकर्ताओं ने भिन्न-भिन्न तरह के विचार प्रस्तुत किए हैं, वे निम्नलिखित हैं-

(1) **अज्ञात के प्रति जिज्ञासा** – जिज्ञासा सामाजिक अनुसंधान का महत्वपूर्ण कारक है। समस्त ज्ञान जिज्ञासा के कारण ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति जब सामाजिक जीवन में विभिन्न घटनाओं व व्यवहारों को देखता है तो उसके हृदय में आश्चर्य का भाव उत्पन्न है। यही भाव हमें सामाजिक जीवन की घटनाओं को निर्देशित करने वाले कारकों को जानने की प्रेरणा प्रदान करता है। यही जिज्ञासा, सामाजिक अनुसंधान में प्रेरणा का साधन है। इस प्रकार, जिज्ञासा वह शक्तिशाली प्रवृत्ति है जो कि शोधकर्त्ता को अज्ञात की ओर ढकेलती है और तब तक चैन नहीं लेने देती जब तक उस अज्ञात को वह ज्ञात की श्रेणी में नहीं ला पाता है। श्रीमती पी. वी. यंग के अनुसार- ''जिज्ञासा मानव मस्तिष्क को आन्तरिक लक्ष्य एवं मनुष्य के वातावरण की खोज में प्रबल प्रेरक तत्व है।''

एक छोटे बालक को अपने आसपास की अपरिचित वस्तुओं को जानने की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है और वह प्रत्येक प्रकार से हर नयी चीज को समझने का प्रयास करता है। यही गुण वैज्ञानिक को अज्ञात तथ्यों का पता लगाने के लिए प्रेरित करता है। जब वह अपने चारों ओर विभिन्न तथा जटिल क्रियाओं और व्यवहारों को देखता है, तो उसका मन आश्चर्य से भर जाता है और वह जानने का प्रयत्न करता है कि इन क्रियाओं के पीछे संगठित नियम क्या है और क्या नहीं है? दूसरे शब्दों में प्रत्येक सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का होना बहुत जरूरी है, तभी वह अधिकाधिक सामाजिक तथ्यों का संकलन कर सकेगा तथा समाज के यथार्थ को प्रकट करता हुआ सुझाव भी प्रस्तुत कर सकेगा।

(2) **कारण एवं प्रभाव जानने की इच्छा** – हम विभिन्न सामाजिक समस्याओं से घिरे रहते हैं। हमारे मन में इसके समाधान की चिन्ता रहती है। इसलिए मानव मन में प्रत्येक घटना के विषय में अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं- जैसे घटनायें क्यों होती हैं? कब होती हैं? कैसे होती हैं? किन परिस्थितियों में होती हैं? आदि प्रश्न समस्या को जन्म देने वाले कारणों को जानने की तीव्र इच्छा उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति समस्या की गहराई से खोज करना चाहता है।

(3) **नवीन तथा अप्रत्याशित स्थिति का प्रकट होना**- नवीन परिवर्तनों के कारण कई बार समाज में ऐसी परिस्थितियाँ प्रकट होती हैं, जिनके बारे में पहले से कोई आशा अनुमान नहीं होता है। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक नवीन अथवा अप्रत्याशित घटना समाज वैज्ञानिक के मस्तिष्क को जाग्रत तथा सक्रिय कर देती है। इस प्रकार नवीन तथा अप्रत्याशित परस्थितियाँ सामाजिक अनुसंधान को प्रेरित करने वाली एक अन्य महत्वपूर्ण शक्ति है।

(4) **नयी प्रणालियों की खोज व पुरानी प्रणालियों की परीक्षा**– प्रत्येक विज्ञान में शुद्ध तथा उपयोगी अध्ययन प्रणालियों की खोज अत्यन्त आवश्यक है। जहाँ कुछ वैज्ञानिक सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए उत्सुक रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर अनेक सहयोगी अध्ययन को सम्भव शुद्ध, वास्तविक तथा सरल बनाने के लिए नई-नई वैज्ञानिक प्रणालियों की खोज में प्रयत्नशील रहते हैं। शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से ऐसा होना आवश्यक है। इतना ही नहीं, पुरानी अध्ययन प्रणालियाँ नवीन परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उपयोग में लायी जा सकती हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करना भी अत्यन्त आवश्यक है। अत: पुरानी प्रणालियों के परीक्षण की दृष्टि से भी सामाजिक अनुसन्धान की प्रेरणा मिलती है।

सामाजिक अनुसंधान की उपयोगिता/महत्व

सामाजिक जीवन की वास्तविकता को समझने के लिए सामाजिक अनुसंधान का अध्ययन अति आवश्यक है। सामाजिक अनुसंधान की उपयोगिता या महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया गया है–

(1) **अज्ञानता की समाप्ति** – सामाजिक अनुसंधान किसी भी सामाजिक घटना, विषय या समस्या के बारे में समस्त अन्धकार को दूर कर देता है और वास्तविक तथ्यों को प्रकाश में लाता है। आज भारत में अज्ञानता के कारण जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद आदि के संघर्ष अधिक भयंकर व सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देने वाले सिद्ध होते चले जा रहे हैं। इनके उचित समाधान के लिए अज्ञानता को दूर करना आवश्यक है। सामाजिक अनुसंधान समाज में व्याप्त अज्ञानता को दूर करता है ओर अपनी ज्ञानरश्मियों को समाज में फैलाकर उसमें व्याप्त अज्ञानमयी बुराइयों को समाप्त कर देता है जिससे वे बुराइयाँ स्वयमेव दूर होने लगती हैं।

(2) **नवीन विचारों का उदय** – सामाजिक अनुसंधान अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने का प्रयास करता है। प्रकाश या ज्ञान के इस मार्ग के दौरान अनेक नवीन तथ्यों का पता लग सकता है, जो चिन्तन व मनन की नवीन प्रणालियों को विकसित करने को प्रेरित करता है। इतना ही नहीं, चिन्तन व मनन की ये नवीन प्रणालियाँ सामाजिक पुनर्निर्माण के नीवन आधारों को प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक अल्प-विकसित देश में सामाजिक अनुसन्धान की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

(3) **अन्धविश्वास की समाप्ति** – भारत में रूढ़िवादिता तथा अन्धविश्वास प्रमुख रूप से विद्यमान है। सामाजिक अनुसन्धान विवेक, प्रमाण तथा वास्तविकता को प्रोत्साहन देता है जो रूढ़िवादिता व अन्धविश्वास के प्रतिकूल है। अत: अधिक से अधिक सामाजिक क्षेत्रों में सामाजिक अनुसंधान, रूढ़िवादिता धारणाओं और परम्पराओं को नष्ट करने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकता है। भारत में रूढ़िवादिता एवं धार्मिक अन्धविश्वासों को समाप्त करने में सामाजिक अनुसन्धान अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(4) **वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण**– सामाजिक समस्याओं का समाधान उनके सही अध्ययन पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, भारत राष्ट्र में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा आदि की जो

भीषण सामाजिक समस्यायें हैं, उनका अध्ययन अब तक एकांकी दृष्टिकोण से होता रहा है, सभी ने अपने-अपने ढंग से अध्ययन करके समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि कोई भी समस्या समूल रूप से नष्ट नहीं हो सकी है।

NOTES

दूसरी ओर सामाजिक अनुसंधान सत्य का अन्वेषण करता है। इसके अध्ययन का स्वरूप समष्टिगत होता हैं यह वास्तविकताओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग से खोज-बीन करता है और फिर उन समस्याओं के समाधान हेतु उपाय भी प्रस्तुत करता है। इस तरह से विश्वसनीय तथ्यों के आधार पर गम्भीरतम समस्याओं का समाधान आसानी से किया जा सकता है।

(5) **सामाजिक नियन्त्रण में सहायक** – प्रत्येक समाज गतिशील होता है। परिवर्तित परिस्थितियों में समाज के व्यवस्थित सम्बन्धों में असन्तुलन पैदा होना स्वाभाविक ही है। अनुसंधान के द्वारा शोध कार्य न होने पर, मानव समाज में ऐसी असन्तुलन की परिस्थिति में विघटनकारी प्रवृत्तियों को विकसित होने के अवसर मिलते हैं। सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा ही विभिन्न सामाजिक दशाओं में सामाजिक क्रियाओं तथा उनके परिणाम का ज्ञान हो सकता है और इस ज्ञान की सहायता से किसी देश में विघटनकारी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।

(6) **सामाजिक प्रगति में सहायक** – ज्ञान समाज की प्रगति का प्रथम लक्ष्य है। सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा विकसित तथा अविकसित अवस्थाओं, उनके कारणों तथा प्रभाव एवं तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन करने से इच्छित विकास तथा प्रगति की दिशा निश्चित की जा सकती हैं इस दिशा के प्रभाव में विकास क्रम भी निश्चित किये जा सकते हैं। अत: सामुदायिक प्रगति की दृष्टि से सामदायिक जीवन से सम्बन्धित तथ्यों का सही ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है और वह ज्ञान सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि सामाजिक अनुसन्धान ही प्रगति पथ पर ले जाने में समर्थ है।

(7) **समाज कल्याण में सहायक** – सामाजिक अनुसन्धान के माध्यम से समाज कल्याण कार्य को वैज्ञानिक स्तर पर आयोजित किया जा सकता है। भारत में व्याप्त साम्प्रदायिक, आर्थिक, जातिगत तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों व कठिनाइयों का अध्ययन करने के उपरान्त ही कल्याण की दिशा में सफलतापूर्वक बढ़ा जा सकता है। नई समाज व्यवस्था में भारतीय प्रशासन में नीचे से नियोजन को इसलिए महत्व दिया जा रहा है क्योंकि देश की मौलिक इकाइयों अर्थात् ग्रामीण बस्तियों की सामाजिक दशाओं का अध्ययन करके वैज्ञानिक आधार पर एक कल्याणकारी नियोजन का निर्माण हो सके।

(8) **व्यावहारिक उपयोगिता** – सभ्यता के साधनों का उपयोग सामाजिक अनुसन्धान के आधार पर विकसित सामाजिक सम्बन्धों में ही निहित है। व्यापारी, व्यवसायी, राजनीतिक दल, किसान, मजदूर, डॉक्टर, इन्जीनियर आदि सामाजिक व्यवहार और दशाओं का सही ज्ञान प्राप्त करके ही भौतिक साधनों को सामूहिक हित में प्रयोग कर सकते हैं। विज्ञान के द्वारा बड़े-बड़े प्रलयकारी शस्त्रास्त्र तथा अन्य भीमकाय मशीनें जब तक मनुष्य के विवेकपूर्ण नियन्त्रण में हैं, तभी तक इनसे इच्छित या सामाजिक लाभ उठाया जा सकता है। यदि मानव सम्बन्धों को तिरस्कृत करके, मानव व्यवहार और सामाजिक दशाओं की उपेक्षा करके इन भौतिक साधनों

का उपयोग किया जायेगा, तो मानव समाज त्राहि-त्राहि कर उठेगा। दूसरी तरफ इनके अनेक व्यावहारिक लाभ भी हैं। उदाहरण के लिए, सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन करके हम रेडियो, पत्र, प्रेस इत्यादि प्रचार के साधनों का सही उपयोग कर सकते हैं। व्यापारी तथा व्यावसायी अपनी ओर आकर्षित करने के लिए इन्हीं साधनों का उपयोग करते हैं। इन समस्त दशाओं में यदि मानवीय व्यवहार की प्रवृत्तियों का सही-सही ज्ञान हो, तो इन्हीं शक्तिशाली साधनों का समाज कल्याण में अधिकाधिक मात्रा में उपयोग बढ़ सकता है।

(9) **विज्ञान की उन्नति में सहायता सम्भव** - सामाजिक अनुसंधान का एक अन्य लाभ यह भी है कि यह अनुसन्धान को विभिन्न विधियों के द्वारा अधिक उपयोगी तथा विश्वसनीय बनाता है। अनुसंधान प्रणालियाँ प्राय: सभी विज्ञानों में समान होती हैं। अनुसंधान द्वारा किसी विज्ञान के विकास में सहायता मिलती है तो दूसरे विज्ञानों में भी इस ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है।

(10) **विश्वसनीय ज्ञान की प्राप्ति सम्भव** - सामाजिक अनुसंधान के द्वारा किये गये अध्ययन में विवाद समाप्त होकर सत्य एवं विश्वसनीय तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं। सामाजिक अनुसंधान द्वारा प्राप्त ज्ञान में विवादग्रस्तता नहीं होती तथा वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है। सामाजिक अनुसंधान ने घृणित एवं अस्पष्ट विवादों को समाप्त कर स्पष्ट, सही तथा विश्वसनीय ज्ञान प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया है।

अत: स्पष्ट है कि औद्योगीकरण, नगरीकरण, सामुदायिक विकास नियोजन तथा सामाजिक सम्पर्क में वृद्धि के कारण भारत में जो नये-नये परिवर्तन व उनके फलस्वरूप नयी-नयी सामाजिक समस्याएँ और परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं उनके सफल व उचित समाधान के लिए सामाजिक अनुसंधान अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस सन्दर्भ में डॉ. डी. एन. मजूमदार का यह कथन है कि, ''समाज वैज्ञानिक, सामाजिक अभियन्ता के रूप में सामाजिक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है।''

सामाजिक अनुसंधान की कठिनाइयाँ/सीमायें

प्रत्येक सामाजिक विज्ञान की अनुसंधान सम्बन्धी अपनी-अपनी कुछ विशिष्ट कठिनाइयाँ होती हैं। इन कठिनाइयों को निम्न प्रमुख बिन्दुओं में विभाजित किया गया है-

(1) **अस्थायित्व व अनवरत परिवर्तन**-सामाजिक जीवन में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिए समस्या को जन्म देने वाले कारकों से अवगत होने के बाद भी उनके सापेक्षक महत्व को निर्धारित करना बड़ा कठिन है। सामाजिक जीवन में होने वाले निरन्तर परिवर्तनों के परिणामस्वरूप किसी निश्चित नियम अथवा सिद्धान्त की प्रतिस्थापना में अवरोध उत्पन्न होता है। जिस प्रकार सामाजिक जीवन उलझा हुआ है, उसी प्रकार सामाजिक समस्याओं की प्रकृति भी उलझी हुई है, इसमें जटिलता है; अस्थायी तत्वों की प्रचुरता है। यही सामाजिक विज्ञान की एक विशेष विचारणीय समस्या है।

लुण्डबर्ग के अनुसार ''मानव के सामूहिक व्यवहार के एक सच्चे विज्ञान को सदैव प्रभावित करने वाला अवरोध इसकी विषय-वस्तु की उलझन है।''

NOTES

(2) **सामाजिक समस्याओं में एकरूपता का अभाव** – सामाजिक जीवन से सम्बन्धित एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सामाजिक समस्याओं का स्वरूप विभिन्न कालक्रमों के अन्तर्गत अलग-अलग होता है। किसी काल विशेष की समस्या का स्वरूप अपनी परिवर्तित समस्याओं से पृथक होता है। इसमें एकरूपता का अभाव होता हैं जबकि प्रकृति विज्ञान के अन्तर्गत घटनाओं की प्रकृति एवं गुण सदैव समान रहते हैं, विभिन्न काल एवं स्थानों में इनका स्वरूप एक ही रहता है, लेकिन सामाजिक स्तर पर सामाजिक घटनाओं के गुण व स्वरूप विभिन्न समय व भौगोलिक स्थितियों में अलग-अलग होते हैं; क्योंकि मनुष्य चेतन है, सजीव है, उसकी सभ्यता व संस्कृति का विकास सदैव समय और स्थिति के अनुरूप होता आया है। अत: सामाजिक घटनाओं में एकरूपता का अभाव होता है।

(3) **प्रतीकात्मक आधार** – समाज विज्ञान घटनाओं को समझने एवं परखने का आधार प्रतीकात्मक है। सामाजिक प्रथाएँ, परम्पराएँ व प्रक्रियाएँ इत्यादि मानवीय भावनाओं के ऊपर अवलम्बित हैं। मानव का अन्तर्जगत ही इनका केन्द्रीय आधार है। प्राकृतिक विज्ञानों के भीतर जहाँ घटनाओं का उदय अपने पूर्व प्रक्रम के अनुसार होता है और ये मूर्त रूप में होती हैं वहाँ सामाजिक घटनाएँ अमूर्त होती हैं। इस कारण सामाजिक अनुसंधान में घटना के कारणों का प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट अवलोकन असम्भव है।

(4) **अनुसन्धानकर्त्ता के प्रभावित होने की आशंका** – प्रकृति विज्ञान में अनुसन्धानकर्त्ता का सम्बन्ध ऐसे पदार्थ के साथ है जो जड़ है, अचेतन है लेकिन सामाजिक अनुसन्धान में अनुसंधानकर्त्ता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनुष्य के साथ होता है, जिसमें विविध भाव-विभाव आदि का अनवरत प्रक्रम मौजूद रहता है। ऐसी स्थिति में स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता के प्रभावित होने की आशंका बनी रहती है। फलस्वरूप अनुसंधान के परिणामों के प्रति तटस्थता नहीं निभायी जा सकती है, क्योंकि अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं भी उस समाज की एक इकाई है, जिसका वह अध्ययन करता है। अत: अनुसन्धानकर्त्ता के अन्दर भी मानव स्वभाव की कमियों का होना स्वाभाविक है। उसका धैर्य, धारणायें, विचार, भावना, संस्कार इत्यादि सदैव समस्या के द्वारा प्रभावित होते रहते हैं। अत: स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसंधान में अनुसंधानकर्त्ता भी सामाजिक समस्या के प्रभाव से अछूता नहीं रहता है।

(5) **विषय-वस्तु का गुणात्मक स्वरूप** – सामाजिक अनुसन्धान में अध्ययन की जाने वाली विषय-वस्तु का स्वरूप सदैव गुणात्मक होता है। गुणात्मक स्वरूप का तात्पर्य अमूर्त से है, जिसे केवल अनुभव कर सकते हैं, देख नहीं सकते। सामाजिक विश्वास, मान्यताओं, धारणाओं इत्यादि का स्वरूप गुणात्मक होता है। अत: प्राकृतिक विज्ञान की भाँति निर्धारित मापदण्डों का उपयोग समाज विज्ञान में सम्भव नहीं है।

(6) **सार्वकालिक भविष्यवाणी का अभाव** – सार्वकालिक भविष्यवाणी का अभिप्राय उन पूर्व वचनों को प्रस्तुत करने से है, जो प्रत्येक काल में लागू हो सकें। सामाजिक अनुसन्धान में विषय-वस्तु की परिवर्तनशील प्रकृति के कारण इस प्रकार की भविष्यवाणी करना अत्यन्त कठिन है। समाज विज्ञान में किसी अवधि विशेष के सन्दर्भ में ही भविष्यवाणी सम्भव है

NOTES

जिसमें सार्वकालिक व सार्वदेशीय स्तर पर लागू होने वाले तत्वों का अभाव रहता है। प्रत्येक क्षेत्र की सामाजिक पृष्ठभूमि दूसरे क्षेत्र की सामाजिक पृष्ठभूमि से अलग होती है। अत: किसी एक क्षेत्र के आधार पर प्रतिस्थापित भविष्यवाणी दूसरे क्षेत्र में लागू नहीं की जा सकती।

प्राकृतिक विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के परिणाम

सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में पायी जाने वाली उपर्युक्त कठिनाइयों से यह स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसन्धान के परिणाम प्राकृतिक विज्ञान के परिणामों की भाँति निश्चित नहीं होते। सामाजिक अनुसन्धान के परिणामों की प्रतिस्थापना किसी सामाजिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में की जाती है, जिसमें सार्वकालिक सत्य का अभाव होता है। प्राकृतिक विज्ञान की भाँति सामाजिक विज्ञानों के परिणामों के निश्चित न होने के मूल रूप से दो कारण हैं। प्रथम, सामाजिक अनुसन्धान की उलझी हुई विषय-वस्तु और द्वितीय, सामाजिक अनुसन्धान की पद्धति। इसी के फलस्वरूप हम समाजशास्त्र में एक वैचारिक संकट पाते हैं, जिसका अभिप्राय सामाजिक अनुसन्धान के पूर्व प्रचलित नियम तथा प्रणालियों की उपयोगिता के ऊपर सन्देह से है। यद्यपि सामाजिक अनुसन्धान सामाजिक जीवन के वैज्ञानिक अध्ययन के उद्देश्य से किया जाता है तथापि सामाजिक विचारकों के मध्य सामाजिक अनुसंधान के सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं। कुछ विद्वान प्राकृतिक विज्ञान की प्रणालियों को समाज विज्ञान में अपनाये जाने के समर्थक हैं, कुछ इसके विरोधी हैं। इन समर्थकों तथा विरोधियों ने समाज विज्ञान की प्रणालियों को अलग करना चाहा है। प्रकृतिवादियों के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान की प्रणालियों को समाज विज्ञान में भी अपनाया जाए। कौफमेन ने कहा है कि ''प्राकृतिवादी स्थापना के अनुसार सामाजिक विज्ञानों में अन्वेषण केवल तभी वैज्ञानिक कहा जा सकता है जब उसे प्रकृति विज्ञान की प्रणालियों के अनुसार किया गया हो, विशेषकर भौतिक शास्त्र के।''

यद्यपि सामाजिक अनुसन्धानों द्वारा निश्चित परिणामों को नहीं बताया जा सकता, लेकिन इसके परिणाम पूर्णतया व्यर्थ या अविश्वसनीय भी नहीं होते हैं। जो कुछ भी कमियां समाज विज्ञान की प्रणालियों में पायी जाती हैं, उनका मूल कारण समाज विज्ञान के विकास की अल्प-अवधि का होना है। इसके वैज्ञानिक कोष में प्राकृतिक विज्ञान की भाँति निर्मित नियमों की विरासत नहीं है। इस कारण सामाजिक अनुसंधान में नियम प्राकृतिक विज्ञान अनुसंधानों की भाँति स्पष्ट नहीं हैं। अत: प्राकृतिक विज्ञान की प्रणाली को समाज विज्ञान द्वारा अपनाये जाने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं।

इसके विपरीत दूसरे विद्वानों के अनुसार समाज विज्ञान के नियम अपने आप में पूर्ण हैं। जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान में भविष्यवाणी में सार्वकालिक सत्यता होती है, उसी प्रकार समाज विज्ञान के परिणामों में भी किसी विशेष ऐतिहासिक अथवा अवधि विशेष के सन्दर्भ में सत्यता होती है। प्रकृति विज्ञान के परिणाम अधिक प्रामाणिक होते हैं क्योंकि उसमें अंकशास्त्र का उपयोग होता है। यद्यपि अधिकांश सामाजिक विचारक इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते हैं कि प्राकृतिक विज्ञान, समाज विज्ञान से अधिक स्पष्ट है तथापि प्राकृति विज्ञान के अनुसंधानों के परिणाम समाज विज्ञान के परिणामों की अपेक्षा अधिक निश्चित एवं विश्वसनीय होते हैं।

सामाजिक अनुसंधान के प्रकार

सामाजिक अनुसंधान के प्रकार निम्नलिखित हैं–

(i) अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक शोध

(ii) वर्णनात्मक शोध

(iii) परीक्षणात्मक शोध

(iv) आधारभूत या विशुद्ध शोध

(v) व्यावहारिक शोध

(vi) क्रियात्मक शोध

(vii) मूल्यांकनात्मक शोध

(viii) ऐतिहासिक शोध

(ix) आनुभविक शोध

NOTES

I. अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अनुसंधान

(अ) अर्थ एवं उद्देश्य – जब अनुसंधानकर्ता किसी सामाजिक घटना के पीछे कारणों को खोजना चाहता है, तो अध्ययन के लिये जिस शोध का सहारा लिया जाता है, उसे अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक शोध कहते हैं। हंसराज के अनुसार, ''अन्वेषणात्मक शोध किसी भी विषेष अध्ययन के लिए प्राक्कलपना का निर्माण करने तथा उससे सम्बन्धित अनुभव प्राप्त करने के लिये अनिवार्य है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्वेषणात्मक अनुसन्धान का उद्देश्य किसी समस्या के सम्बन्ध में प्राथमिक जानकारी प्राप्त करके प्राक्कलपना का निर्माण करना और अध्ययन की रूपरेखा तैयार करना है, ताकि समस्या का कार्य–कारण सम्बन्ध ज्ञात किया जा सके।

जहोदा तथा कुक ने इस प्रकार के अनुसंधान के कुछ अन्य उद्देश्य बताए हैं। जो निम्नलिखित है–

(1) कोई अनुसंधानकर्ता जब किसी घटना या समस्या को फिर से या दुबारा से अधिक उच्च स्तर पर अध्ययन करना चाहता है तो वह उस समस्या से बड़े घनिष्ठ रूप से परिचित भी होना चाहता है या उस पृष्ठभूमि को भली प्रकार जानना चाहता है जिसमें वह अनुसंधान आयोजित करने का इच्छुक है।

(2) जब कोई अनुसन्धानकर्ता विभिन्न अवधारणाओं को अधिक सूक्ष्मता के साथ स्पष्ट करना चाहता है।

(3) जब वह आगामी अनुसंधान के लिए प्राथमिकताओं का निर्धारण करना चाहता है।

(4) जब वह वास्तविक जीवन के पर्यावरणों या पृष्ठभूमियों में अनुसन्धान करने के लिए उपलब्ध व्यावहारिक संभावनाओं के बारे में जानकारी या सूचनाएँ प्राप्त करना चाहता है।

(5) जब सामाजिक सम्बन्धों के एक दिये हुए क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को जिन समस्याओं की शीघ्र आवश्यकता होती है, उन्हें अनेक प्रकार की समस्याओं से परिचित कराना चाहता है।

(ब) शोध की सफलता के लिए अनिवार्य दशाएँ या कार्य-पद्धतियाँ – इस प्रकार के शोध की सफलता के लिए निम्नलिखित अनिवार्य दशाओं या कार्य–पद्धतियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

1. **सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन** – सर्वप्रथम इस विषय से सम्बद्ध प्रकाशित तथा अप्रकाशित, आवश्यक साहित्य का अध्ययन, उसकी समालोचना तथा पुनर्समीक्षा की जानी चाहिए। ऐसा करके ही हम विषय को ठीक प्रकार से समझ सकेंगे तथा प्राक्कल्पना का भी ठीक प्रकार से निर्माण कर सकेंगे।

2. **अनुभव सर्वेक्षण** – जिन व्यक्तियों ने उक्त अध्ययन समस्या के बारे में या उससे सम्बन्धित कोई व्यावहारिक या क्रियात्मक अनुभव प्राप्त कर रखे हैं; उनके अनुभवों से लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि शोध में उनका सर्वेक्षण किया जाए। यह जानकारी शोधकर्त्ता के लिए पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करेगी।

3. **सही सूचनादाताओं का चुनाव** – अध्ययन से सम्बन्धित सही सूचनादाताओं का चुनाव किया जाना चाहिए ताकि उनसे उसे अन्तर्दष्टि-प्रेरक जानकारी मिले। अध्ययनकर्त्ता को इन 'अन्तर्दष्टि-प्रेरक' घटनाओं या उदाहरणों या सूचनाओं का भली प्रकार विश्लेषण करना चाहिए ताकि वह उन घटनाओं की गहराई को देख-समझ सके।

4. **उपयुक्त प्रश्न पूछना** – ऐसे शोध कार्य की सफलता के लिए अन्य प्रमुख कार्य यह है कि वह सूचना प्राप्त हेतु प्रश्न अत्यन्त सावधानी से निर्मित करे ताकि विषय से सम्बन्धित उचित जानकारी मिल सके।

5. **अन्तदृष्टि प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण** – शोधकर्त्ता को अपने सीमित ज्ञान की कमी को दूर करने के लिए सभी पहलुओं का गहनता के साथ अध्ययन एवं विश्लेषण करना चाहिए तथा घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन व अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने से विषय के सम्बन्ध में एक ऐसी अन्तर्दष्टि प्राप्त होगी जो शोध कार्य की सफलात के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(स) अन्वेषणात्मक शोध के प्रकार्य या महत्व – अन्वेषणात्मक शोध के प्रकार्य या उसके महत्व को निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है। यथा-

(i) अन्वेषणात्मक शोध कार्य पूर्व निर्धारित प्राक्कल्पनाओं का तात्कालिक दशाओं के संदर्भ में परीक्षण करता है।

(ii) यह महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं की ओर शोधकर्ता का ध्यान आकर्षित करता है।

(iii) यह शोधकार्य, अनुसन्धान हेतु नवीन प्राक्कल्पनाओं को विकसित करता है।

(iv) यह शोधकार्य के विश्वसनीय रूप में प्रारंभ करने हेतु उसकी आधारशिला तैयार करता है।

(v) यह अध्ययन के महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान केन्द्रित करता है।

(vi) यह शोध कार्य क्षेत्र को निश्चितता प्रदान करता है।

(vii) यह विज्ञान के क्षेत्र का विस्तार करता है।

(viii) यह अन्तर्दष्टि-प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण करता है।

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अन्वेषणात्मक अनुसंधान शोध प्रक्रिया का प्रारंभिक चरण हैं यह शोध की प्राक्कल्पना का निर्माण करता है और शोध के विषय को निश्चित स्वरूप प्रदान करता है।

II. वर्णनात्मक शोध

(अ) अर्थ– वर्णनात्मक शोध एक ऐसा शोध कार्य है जिसका उद्देश्य समस्या या विषय से सम्बन्धित वास्तविक तथ्यों को एकत्रित कर उनके आभार पर एक विवरण प्रस्तुत करना है। यहाँ तथ्यों के एकत्रीकरण में यह बल दिया जाता है कि वे वास्तविक तथा सही हों, अन्यथा विवरण गलत हो जाएगा। तथ्यों के एकत्रीकरण हेतु अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली या किसी अन्य प्रविधि का प्रयोग किया जा सकता है।

(ब) विशेषताएँ– इस प्रकार के शोध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) इसमें समस्या के विभिन्न पक्षों पर सविस्तार वर्णन किया गया है।

(ii) प्राय: इसका प्रयोग उस समस्या के शोध के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है जिससे सम्बन्धित कोई अध्ययन पहले नहीं किया गया हो।

(iii) इस अध्ययन में किसी प्राक्कल्पना का निर्माण नहीं किया जाता है।

(iv) इसमें विषय का चुनाव सावधानीपूर्वक किया जाता है।

(v) इसमें शोधकर्त्ता एक निष्पक्ष अवलोकनकर्त्ता के रूप में कार्य करता है।

(स) शोध-कार्य के सफलतापूर्वक संचालन के प्रमुख चरण - वर्णनात्मक शोध कार्य के सफलतापूर्वक संचालन के लिए निम्नलिखित चरणों से गुजरना पड़ता है–

(i) शोध के उद्देश्यों का प्रतिपादन - इस शोध कार्य में सबसे पहले शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट परिभाषित किया जाता है तथा शोध से सम्बन्धित मूल-प्रश्नों को स्पष्ट किया जाता है ताकि अनावश्यक क्षेत्र में धन एवं श्रम खर्च न हो।

(ii) तथ्य संकलन की प्रविधियों का चुनाव– इस शोध कार्य में सबसे पहले शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट परिभाषित किया जाता है तथा शोध से सम्बन्धित मूल-प्रश्नों को स्पष्ट किया जाता है ताकि अनावश्यक क्षेत्र में धन एवं श्रम खर्च न हो।

(iii) निदर्शन का चुनाव - साधन की सीमितता को दृष्टि में रखते हुए शोधकर्त्ता निदर्शन की किसी उपयुक्त विधि की सहायता से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चुनाव करता है। इन इकाइयों का अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे सम्पूर्ण जन समुदाय पर लागू होते हैं और विश्वसनीय समझे जाते हैं।

(iv) आंकड़ों का संकलन एवं जाँच - अध्ययन की इकाइयों के चुनाव के बाद वैज्ञानिक प्रविधियों की सहायता से आवश्यक तथ्य एकत्रित किये जाते हैं और फिर इन तथ्यों की जाँच की जाती हैं

(v) तथ्यों का विश्लेषण - एकत्रित तथ्यों का फिर वर्गीकरण, सारणीयन तथा सांख्यिकीय विवेचन किया जाता है।

(vi) रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण– तथ्यों के सांख्यिकी विवेचन के बाद सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते है। जिन्हें एक रिपोर्ट द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्णनात्मक शोध किसी नवीन समस्या के विश्लेषण में प्रयुक्त किया जाता है, जिसे अनेक चरणों से होकर गुजरना पड़ता है।

III. परीक्षणात्मक/प्रयोगात्मक शोध

(अ) अर्थ– परीक्षाणात्मक शोध को व्याख्यात्मक या प्रयोगात्मक भी कहा जाता हैं चेपिन के अनुसार ''समाजशास्त्रीय शोध में परीक्षणात्मक शोध की अवधारणा नियन्त्रण की दशाओं के अन्तर्गत अवलोकन द्वारा मानवीय सम्बन्धों के अध्ययन की ओर संकेत करती है।'' इस प्रकार के शोध में सामाजिक घटनाओं के कुछ पक्षों या चरों को नियन्त्रित कर लिया जाता है और शेष चरों पर नवीन परिस्थितियों के प्रभाव का पता लगाया जाता है। यह पता लगाया जाता है कि किसी समूह, समुदाय या सामाजिक घटना पर किसी नवीन परिस्थिति का कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार यह प्रयोग चेपिन के अनुसार, ''नियंत्रित दशाओं में किया जाने वाला अवलोकन मात्र है। जब केवल अवलोकन किसी समस्या को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाने में असफल रहता है, तब वैज्ञानिक के लिए परीक्षण का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।''

अत: स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक परीक्षण साामजिक विज्ञानों की प्रयोगशाला है।

(ब) परीक्षणात्मक शोध के प्रकार– परीक्षणात्मक शोध तीन प्रकार के होते हैं–

(i) पश्चात् परीक्षण, (ii) पूर्व–पश्चात् परीक्षण और (iii) कार्यान्तर (ऐतिहासिक) तथ्य परीक्षण। यथा–

1. **पश्चात् परीक्षण** – इसमें समान विशेषताओं तथा समान प्रकृति वाले दो समूहों को चुन लिया जाता है। इनमें से एक को नियंत्रित समूह तथा दूसरे को परीक्षणात्मक समूह कहा जाता है। नियंत्रित समूह में किसी नवीन परिस्थिति या चर द्वारा परिवर्तन लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता है, लेकिन परीक्षणात्मक समूह में किसी एक नवीन कारक की सहायता से परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है। कुछ समय पश्चात् इस प्रभाव को मापा जाता है। यदि दोनों समूहों में समान परिवर्तन होते हैं तो इसका अभिप्राय होगा कि इस नवीन चर का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। यदि दोनों समूहों में कुछ अन्तर परिलक्षित होता है, तो जितना अन्तर होगा, उतना ही उस चर का प्रभाव मापा जायेगा।

2. **पूर्व-पश्चात् परीक्षण** – इस विधि में केवल एक समूह का ही चुनाव किया जाता है लेकिन इसका अध्ययन दो विभिन्न अवधियों में किया जाता है। पहले और बाद के अन्तर को ज्ञात कर लिया जाता है। इस अन्तर को ही नवीन परिस्थिति या कारक का प्रभाव माना जाता है। उदाहरण के लिए एक गांव में परिवार कल्याण प्रचार कार्य के प्रभाव को मापने के लिए पहले, उस गांव में प्रचार से पूर्व प्रश्नावली द्वारा उसके बारे में गांव वालों से सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। इसके बाद परिवार कल्याण कार्यक्रम का उस गांव में प्रचार किया जाता है। प्रचार कार्य के बाद पुन: उस प्रश्नावली से सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। प्रश्नावली की सूचनाओं तथा तथ्यों के अन्तर के आधार पर उस प्रचार कार्य के प्रभाव को मापा जाता है।

3. **कार्यान्तर (ऐतिहासिक) तथा परीक्षण** – ऐतिहासिक घटना के अध्ययन हेतु इस विधि का प्रयोग किया जाता हैं। इसमें प्राचीन अभिलेखों के भिन्न–भिन्न पक्षों का

तुलनात्मक अध्ययन करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस विधि में सामान्यत: दो ऐसे समूह चुने जाते हैं जिनमें से एक समूह में ऐसी ऐतिहासिक घटना घटित हो चुकी है, जिसका कि अध्ययन किया जाना है और दूसरे समूह में ऐसी कोई ऐतिहासिक घटना घटित नहीं हुई हैं इन दोनों समूहों की पुरानी परिस्थितियों के तुलनात्मक ज्ञान के आधार पर उस घटना के प्रभाव का पता लगाया जाता है।

IV. आधारभूत या विशुद्ध-शोध

गुडे एवं हॉट ने सामाजिक अनुसंधान के दो प्रकार बताये हैं- (1) आधारभूत या विशुद्ध अनुसंधान और (2) व्यावहारिक अनुसंधान।

आधारभूत शोध का अर्थ- जब किसी घटना की खोज वैज्ञानिक तटस्थता तथा वस्तुनिष्ठता रखते हुए ज्ञान प्राप्ति हेतु की जाए तो उसे विशुद्ध (आधारभूत) शोध कहते हैं। इस प्रकार विशुद्ध शोध का लक्ष्य ज्ञान की प्राप्ति, मौजूद ज्ञान भण्डार में वृद्धि और पुराने ज्ञान का शुद्धिकरण है। इस प्रकार के शोध कार्य द्वारा सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में मौलिक सिद्धान्तों एवं नियमों की खोज की जाती है।

कार्टर वी· गुड के अनुसार, ''विशुद्ध अनुसंधान के अन्तर्गत वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि के लिए वास्तविक छानबीन को सम्मिलित किया जा सकता है। इसमें एक अध्ययनकर्ता ऐसी किसी भी समस्या का किसी भी स्थान पर अध्ययन प्रारंभ कर सकता है जो उसे अधिक प्रिय लगती है, चाहे उसके निष्कर्षों में व्यावहारिक प्रयोग से कोई सम्बन्ध हो अथवा नहीं।''

हैरिंग के अनुसार, ''आधारभूत शोध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ज्ञान के विद्यमान भण्डार में वृद्धि करना है। इसके साथ ही इसका कार्य हमारे मस्तिष्क में विद्यमान शंकाओं और व्यावहारिक सिद्धान्तों का निराकरण तथा परिष्करण करना है।''

आधारभूत शोध में वैज्ञानिक तटस्थता (वस्तुपरकता) का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसीलिए इसको मौलिक शोध, आधारभूत अनुसंधान या विशुद्ध अनुसंधान के नाम से पुकारा जाता है। इस अनुसंधान का परिप्रेक्ष्य वैज्ञानिक होता है, इसीलिए इसका सीधा सम्बन्ध सामाजिक समस्याओं, कल्याणकारी योजनाओं, नीति-निर्माण तथा व्यावहारिक उपयोगिता से नहीं होता है।

आधारभूत अनुसंधान के उद्देश्य

आधारभूत अनुसंन्धान के उद्देश्य

(1) **विषय की दिशा का निर्धारण** - गुडे तथा हॉट का कहना है कि सामाजिक आधारभूत शोध का प्रमुख उद्देश्य विषय के अध्ययन क्षेत्र, परिप्रेक्ष्य, विषय-सामग्री आदि को निश्चित करना हैं यह निश्चित करता है कि किस प्रकार के तथ्य विषय से संबंध्ति कारक हैं और कौन-कौन से तथ्य विषय से संबंधित नहीं हैं।

(2) **संक्षिप्तीकरण**- इसका दूसरा प्रमुख उद्देश्य उस सामग्री का संक्षिप्तीकरण करना है जो किसी अध्ययन की वस्तु के सम्बन्ध में उपलब्ध है।

(3) **तथ्यों की भविष्यवाणी**- इसका तीसरा उद्देश्य विज्ञान के क्षेत्र के तथ्यों की भविष्यवाणी करना है। आलोच्य अनुसंधान वैज्ञानिक को निर्देश देता है कि उसे कौन-कौन से तथ्यों का अध्ययन करना है तथा उन्हें एकत्र करना है।

(4) **ज्ञान की कमी को बताना** – इसका एक अन्य उद्देश्य ज्ञान की कमी को बताना हैं

(5) **तथ्यों का वर्गीकरण** – इसका एक अन्य उद्देश्य विज्ञान में उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों, सामग्री आदि का वर्गीकरण तथा सारणीयन करने में मार्ग निर्देशन का कार्य करता है।

(6) **ज्ञान पिपासा की तुष्टि**– इसका एक अन्य उद्देश्य मानव की आधारभूत ज्ञानार्जन की इच्छा को तृप्त करना है क्योंकि यह मौलिक तथा आधारभूत नियमों की खोज करता है जो ज्ञान के विकास में सहायता करते हैं तथा अध्ययन को नई दिशा प्रदान करते हैं।

V. व्यावहारिक शोध

अर्थ तथा उद्देश्य – कार्टर वी. गुड के अनुसार, ''व्यावहारिक अनुसन्धान ऐसा शोध कार्य है जिसमें वैज्ञानिक ज्ञान को व्यावहारिक क्षेत्र में लागू किये जाने का निर्देशन किया गया हो, अध्ययन–समस्या को व्यावहारिक दृष्टि से केन्द्रित कर दिया गया हो और उसके परिणामों को व्यावहारिक पक्ष के सुधार के लिए अपनाया गया हो।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यावहारिक शोध का सम्बन्ध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से है। इसका प्रयोग सामाजिक समस्याओं के यथार्थ को समझने के साथ–साथ सामाजिक नियोजन, समाज–कल्याण, स्वास्थ्य–रक्षा, समाज–सुधार, धर्म, शिक्षा, सामाजिक–अधिनियम, मनोरंजन आदि के सम्बन्ध में यथार्थ जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। व्यावहारिक शोधकर्ता सामाजिक समस्याओं, व्याधिकीय परिस्थितियों तथा सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थ चित्रण भर करता है, इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं करता।

श्रीमती यंग अनुसार, ''ज्ञान की खोज का निश्चित सम्बन्ध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा कल्याण से होता है। विज्ञान की मान्यता यह है कि समस्त ज्ञान सारभूत रूप से इस अर्थ में उपयोगी है कि वह एक सिद्धान्त और व्यवहार आगे चलकर बहुधा एक–दूसरे से मिल जाते हैं।'' होर्टन एवं हंट ने कहा है, ''जब वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग ऐसे ज्ञान की खोज के लिए किया जाता है जो व्यावहारिक व समस्याओं के समाधान में उपयोगी हो तो इसे व्यावहारिक अनुसंधान कहते हैं।''

व्यावहारिक अनुसंधान के उद्देश्य

गुडे तथा हॉट ने व्यावहारिक अनुसंधान के निम्नलिखित चार उद्द्देश्य बताये हैं–

(1) **ज्ञान का विकास** – व्यावहारिक अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक घटनाओं, सामाजिक व्यवस्थाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में ज्ञान का विकास करना है। यह विशुद्ध शोध द्वारा प्रतिपादित नियमों तथा सिद्धान्तों का आनुभाविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करता है तथा उनकी सत्यता, प्रमाणिकता तथा विश्वसनीयता की जाँच करता है।

(2) **तथ्यों का प्रकार्यात्मक अध्ययन** – व्यावहारिक अनुसंधान का दूसरा प्रमुख उद्देश्य तथ्यों के पारस्परिक कारण–प्रभाव सम्बन्धों का पता लगाना है।

(3) **सिद्धान्तों की खोज** – व्यावहारिक अनुसंधान का एक अन्य उद्देश्य नए–नए सिद्धान्तों की खोज करना है। इसमें आनुभविक तथ्यों को एकत्र कर नए–नए तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों की खोज की जाती है। व्यावहारिक शोध सिद्धान्तों की खोज करके सामाजिक संगठन की व्याख्या करता है।

(4) **अवधारणाओं का विकास**– व्यावहारिक शोध का एक अन्य उद्देश्य अवधारणाओं की व्याख्या, स्पष्टीकरण, संशोधन, संक्षिप्तीकरण आदि के द्वारा अवधारणाओं का विकास करना है।

(1) **विश्वसनीय प्रमाणों का प्रस्तुतीकरण** - कौन से सामाजिक तथ्य किस प्रकार समाज के लिए उपयोगी हैं, इस बारे में व्यावहारिक अनुसंधान विश्वसनीय प्रमाण प्रस्तुत करता है।

(2) **प्रविधियों का विकास** - व्यावहारिक अनुसंधान ऐसी प्रविधियों का उपयोग एवं उनका विकास करता है जो कि विशुद्ध शोध के लिए उपयोगी प्रमाणित हों।

(3) **सामान्यीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता** - व्यावहारिक अनुसंधान ऐसे तथ्यों व विचारों को प्रस्तुत करता है जो सामान्यीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर सकते हैं।

(4) **सामाजिक समस्याओं का अध्ययन** - व्यावहारिक शोध द्वारा सामाजिक समस्याओं का अध्ययन कर उनके समाधान के सुझाव दिये जाते हैं।

(5) **वास्तविक समस्याओं का अध्ययन** - यह समाज की वास्तविक समस्याओं का अध्ययन करता है।

VI. क्रियात्मक-अनुसंधान

(अ) अर्थ— क्रियात्मक-अनुसंधान का विकास वर्तमान शताब्दी के मध्य में हुआ है। गुडे तथा हाट्ट ने इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ''क्रियात्मक अनुसंधान उस कार्यक्रम का भाग होता है, जिसका उद्देश्य समाज में विद्यमान परिस्थितियों में परिवर्तन लाना है, चाहे वे गन्दी बस्तियों की दशाएँ हों या प्रजातीय तनाव तथा पक्षपात हों या एक संगठन की प्रभावशीलता हो।''

मैक्ग्रेथ तथा उनके सहयोगियों के अनुसार, क्रिया-अनुसंधान एक संगठित तथा खोजपूर्ण क्रिया है जिसका लक्ष्य व्यक्तियों या समूह से सम्बन्धित परिवर्तन या सुधार लाने हेतु उनका अध्ययन करना और साथ ही मौलिक परिवर्तन लाना है।

उपर्युक्त परिभाषाओं व कथनों से स्पष्ट होता है कि क्रिया-अनुसंधान में किसी सामाजिक समस्या या घटना के क्रिया पक्ष पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है तथा शोध के निष्कर्षों का उपयोग किन्हीं सामाजिक अवस्था में परिवर्तन लाने की योजना के एक अंग के रूप में किया जाता है और जब शोध-अध्ययन के निष्कर्षों को मूर्तरूप देने की किसी योजना से संबंधित हो तो उसे क्रिया-अनुसंधान नाम दिया जाता है।

(ब) लक्ष्य- क्रिया-अनुसंधान के प्रमुख लक्ष्य हैं- परिवर्तन को नियोजित करना, व्याधिकीय या विघटनात्मक परिस्थितियों को नियन्त्रित करना तथा सुधार व कल्याण को आगे बढ़ाना।

(स) विशेषताएँ - क्रिया-अनुसंधान की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(i) **आवश्यकता-आधारित अनुसंधान**-यह अनुसंधान किसी अत्यन्त आवश्यक व्यावहारिक आवश्यकता के परिणामस्वरूप प्रारंभ होता है।

(ii) **सामूहिक नियोजन, संचालन तथा मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ**-इसमें लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सामूहिक नियोजन, संचालन तथा मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ अपनायी जाती हैं।

(iii) **विशिष्ट विषयों का अध्ययन**- इसमें किन्हीं विशिष्ट विषयों का अध्ययन किया जाता है, न कि सम्पूर्ण रूप से सैद्धांतिक समग्र का।

(iv) **एक अनुसंधान स्वरूप** – इसमें एक विकसित किया जा सकने वाला अनुसंधान स्वरूप काम में लिया जाता है।

(v) **गत्यात्मकता का प्रशिक्षण** – इसमें समूह की गत्यात्मकता से संबंधित अवधारणाओं में प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है जो समस्याओं के सामूहिक अध्ययन की पृष्ठभूमि का कार्य करता है।

(vi) **मानव अन्त:क्रिया** – इसमें प्रमुख निर्देशक सिद्धान्त मानव अन्त:क्रिया का होता है।

क्रिया अनुसन्धान में जो व्यक्ति अनुसन्धान कार्य में संलग्न होते हैं उनकी उन कार्यों में सहभागिता होती है। इसलिए क्रिया अनुसंधान में कार्यशील संगठन की पृष्ठभूमि तथा अनुसन्धानकर्ताओं की परस्पर सहभागिता होती है। यह कार्य अधिकतर एक कारखाने, एक कार्यालय, भवन निर्माण परियोजना या सामुदायिक केन्द्र द्वारा किया जाता है। इसलिए ऐसे संगठन और अध्ययनकर्त्ता में परस्पर सहभागिता होनी आवश्यक है।

VII. मूल्यांकनात्मक शोध

(अ) अर्थ तथा प्रकृति – मूल्यांकनात्मक शोध में समाज में व्याप्त गुणात्मक प्रकृति के तथ्यों तथा प्रवृत्तियों के अध्ययन और उनके विश्लेषण के साथ ही साथ उनकी उपयोगिता को भी मूल्यांकित किया जाता है।

यह शोध स्वाभाविक सामाजिक परिवर्तनों तथा नियोजित सामाजिक परिवर्तनों दोनों के ही स्वरूप को समझने के लिए उपयोगी है।

वर्तमान काल में सरकार अपने विभिन्न संगठनों के द्वारा अनेक तरह की परियोजनाएँ या कार्यक्रम लागू करती है। इसमें बड़ी मात्रा में धनराशि व्यय की जाती है। ये कार्यक्रम प्राय: शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, परिवहन तथा सामाजिक कुरीतियों के निवारण से संबंधित होते हैं। ऐसे कार्यक्रमों की सफलता तथा प्रगति को जानने की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति मूल्यांकनात्मक शोध द्वारा की जाती है।

(ब) मूल्यांकनात्मक प्रविधियाँ– मूल्यांकन शोध हेतु व्यक्तिगत स्तर पर गुणात्मक तथ्यों का मूल्यांकन करने के लिए अनुमापन की अनेक मापन प्रविधियाँ निर्धारित की गई हैं जो प्रमुख रूप से अदृश्य सामाजिक तथ्यों को समाजमितीय क्षेत्र में मूल्यांकित करती हैं। सरकार द्वारा सामाजिक परिवर्तनों तथा सुधारात्मक कार्यक्रमों की सफलता का मापन करने के लिए बड़े स्तर पर अनुसन्धान चलाये जाते हैं। इसमें मूल्यांकन की निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है–

(i) **निर्देशन का चयन** – कुछ निश्चित क्षेत्रों में समग्र के आकार को ध्यान में रखते हुए, निर्देशन का चयन किया जाता है।

(ii) **साक्षात्कार, निरीक्षण तथा अवलोकन**– निर्देशन के चयन के बाद सम्बन्धित इकाइयों से सम्पर्क कर साक्षात्कार, निरीक्षण तथा अवलोकन का कार्य किया जाता है।

(iii) **अनुसूचियों का प्रयोग**– इसमें मूल्यांकन अनुसूचियों का भी प्रयोग किया जाता है। श्रीमती यंग ने इस संदर्भ में अमरीका के जन–स्वास्थ्य संगठन की मूल्यांकनात्मक अनुसूची का उल्लेख किया है।

(स) अनुमाप-मूल्यों का प्रयोग-अनुमापन प्रक्रिया में किन्हीं मनोवृत्तियों को समझने के लिए माप मूल्यों की आवश्यकता होती है। इसीलिए मूल्यांकनात्मक अनुसंधान में माप-मूल्यों का निर्धारण करके ही मूल्यांकन कार्य किया जाता है। इन माप-मूल्यों के अन्दर अत्यधिक धनात्मक प्रवृत्तियों से लेकर अत्यधिक ऋणात्मक प्रवृत्तियों तक के प्रश्न रखे जाते हैं। कथनों के चयन में तथ्यों की अपेक्षा मूल्यों पर अधिक बल दिया जाता है।

VIII. ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति में सामाजिक तथ्यों की प्रामाणिकता और सत्यता को ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर विश्लेषित किया जाता है। इसमें केवल 'क्या था' का ही अध्ययन नहीं किया जाता बल्कि 'क्यों और कैसे घटित हुआ ?' का भी व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है क्योंकि कोई भी घटना यकायक नहीं होती बल्कि उसका कोई इतिहास होता है। उस अतीत का अध्ययन किए बिना किसी घटना का विश्लेषण करना अनुचित है।

थियोडोरसन एवं थियोडोरसन के अनुसार, "ऐतिहासिक अध्ययन में सूचना के स्रोत कानून, सार्वजनिक प्रलेख, प्रतिवेदन पत्र, जीवनियाँ, समाचार-पत्र, व्यापारी-आलेख, यात्रियों के संस्मरण, सभी प्रकार का साहित्य तथा भौतिक अवशेष जैसे सभी प्रकार के भवन तथा वस्तुएँ होती हैं, इससे भी ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।"

टी. वी. बोटोमोर के अनुसर, "यह पद्धति सामाजिक संस्थाओं, समाजों और सभ्यताओं की उत्पत्ति, विकास और रूपान्तरण की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करती है। यह मानव इतिहास के सम्पूर्ण विस्तार और समाज की समस्त प्रधान संस्थाओं से सम्बद्ध है, अथवा एक विशेष सामाजिक संस्था के सम्पूर्ण विकास से संबंधित है।"

रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, "ऐतिहासिक पद्धति वह विधि है जिसमें वर्तमान में घटित होने वाली घटनाओं की अतीत में घटित घटनाओं के क्रमिक विकास की कड़ी के रूप में मानकर अध्ययन किया जाता है।"

अतः स्पष्ट है कि ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति सामाजिक संस्थाओं, समाजों और सभ्यताओं की उत्पत्ति, विकास और रूपान्तरण का क्रमिक अध्ययन करती है।

ऐतिहासिक शोध पद्धति के स्रोत- ऐतिहासिक शोध पद्धति के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं- (1) लेखपत्र अथवा ऐतिहासिक साधन (2) सांस्कृतिक एवं विश्लेषणात्मक इतिहास, जैसे-डायरियाँ, पत्र, संस्मरण, जीवन-इतिहास, धार्मिक-ग्रंथ, आत्म-कथा, व्यापारिक समझौते आदि (3) साक्षियां और विवेचनाएँ (4) अप्रकाशित दुर्लभ हस्तलेख, शोध रिपोर्ट, लोकसाहित्य, शिलालेख तथा सरकारी प्रलेख आदि।

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के चरण

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के प्रयोग के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं-

(1) **समस्या का चयन** - इसका पहला चरण समस्या का चयन करना है। शोध करते समय ऐसी समस्या का होना आवश्यक है जिसका अध्ययन ऐतिहासिक विधि द्वारा किया जाना संभव हो।

NOTES

(2) **सूचना के स्रोत का चयन**– इसका दूसरा चरण सूचना के स्रोतों का निर्धारण करना है अर्थात् शोधकर्ता को यह जानकारी पूर्व में ही होनी चाहिए कि उसे शोध–सामग्री किन पुस्तकालयों, पुस्तकों अथवा अन्य स्थानों से प्राप्त हो सकती है।

(3) **तथ्य संकलन**– सूचना के स्रोतों के निर्धारण के बाद यह आवश्यक है कि शोधकर्ता को यह जानकारी हो कि उसे किन तथ्यों का संकलन करता है। शोधकर्ता को तथ्य संकलन करते समय अपनी समय व धन की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए अपनी योग्यता और अनुभव के आधार पर विश्वसनीय और प्रमाणित और प्राथमिक स्रोत से ही सामग्री का संकलन बनाना चाहिए।

(4) **ऐतिहासिक आलोचना**– तथ्य संकलन के पश्चात् यह देखना आवश्यक है कि संकलित सामग्री की वैधता और विश्वसनीयता किस सीमा तक है, क्योंकि यदि तथ्य वास्तविक और दोषपूर्ण होंगे तो उनसे प्राप्त निष्कर्ष भी दोषपूर्ण हो सकते हैं।

(5) **तथ्यों का वर्गीकरण व संगठन**– ऐतिहासिक पद्धति का अलग चरण तथ्यों का वर्गीकरण व संगठन करना है। उद्देश्यों के आधार पर तथ्यों को विभिन्न शीर्षकों में विभाजित कर उनको गुणात्मक एवं संख्यात्मक रूप से संगठित करना ही तथ्यों का वर्गीकरण व संगठन है।

(6) **विश्लेषण एवं व्याख्या** – तथ्य–वर्गीकरण के अनन्तर उनका विश्लेषण और व्याख्या की जाती है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(7) **प्रतिवेदन का निर्माण** – इस पद्धति का अंतिम चरण प्रतिवेदन का निर्माण करना है। प्रतिवेदन लिखते समय स्पष्ट, बोधगम्य, सरल, रुचिकर भाषाशैली का प्रयोग करना आवश्यक है। इसमें अध्ययन–विषय से संबंधित विभिन्न तथ्यों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का महत्व

ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति इस प्रकार है–

(1) **विशेष घटनाओं का अध्ययन** – इस पद्धति के द्वारा अतीत में घटित घटनाओं की उत्पत्ति, विकास और उन्हें जन्म देने वाली परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस रूप में अतीत के माध्यम से वर्तमान को समझा जा सकता है।

(2) **अतीत के प्रभाव का मूल्यांकन** – अतीत के प्रभाव से कोई भी समाज विमुक्त नहीं हो सकता। उस अतीत के प्रभाव का मूल्यांकन ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के द्वारा ही किया जा सकता है।

(3) **सामाजिक शक्तियों का अध्ययन**– वर्तमान सामाजिक अवस्था का निर्माण करने वाली सामाजिक शक्तियों के प्रभाव व विकास का अध्ययन ऐतिहासिक पद्धति द्वारा ही किया जा सकता है क्योंकि अतीत के अध्ययन के आधार पर ही वर्तमान को समझा जा सकता है।

(4) **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की व्यापकता**– ऐतिहासिक शोध पद्धति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को व्यापक बनाती है क्योंकि सामाजिक घटनाओं का समग्रता से अध्ययन किया जाता है।

(5) **सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन**–इस विधि का प्रयोग समाजों, संस्थाओं व सभ्यताओं आदि की उत्पत्ति, विकास और उनमें होने वाले परिवर्तनों के अध्ययनों के लिए

किया जाता है क्योंकि इनकी विकास यात्रा को जाने बिना इनके वर्तमान स्वरूप को जानना संभव नहीं है।

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति की आलोचना

अनेक विद्वानों ने ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति की निम्नलिखित आलोचनाएँ की हैं-

(1) रेडक्लिफ-ब्राउन और मैलिनोवस्की के अनुसार ऐतिहासिक पद्धति पूर्ण रूप से प्रामाणिक और विश्वसनीय नहीं है।

(2) ऐतिहासिक पद्धति में अनुमान और अटकल पर आधारित तथ्यों की सहायता से निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिनका परीक्षण करना संभव नहीं होता है।

(3) यह पद्धति उन समाजों के अध्ययन के लिए बिल्कुल अनुपयोगी है जिनका न तो लिखित इतिहास उपलब्ध है ओर न ही संस्कृति के ठोस अवशेष।

(4) इस पद्धति में एकत्र तथ्यों की प्रयोग-सिद्ध जाँच करना संभव नहीं है, न ही तथ्यों का पारस्परिक कारण-प्रभाव सम्बन्ध की प्रामाणिकता की जाँच ही संभव है।

IX. आनुभविक अनुसंधान पद्धति

ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति की कमियों को दूर करने के लिए समाजशास्त्रियों का ध्यान आनुभविक पद्धति के विकास की ओर गया। अनुभवमूलक समर्थकों ने आनुभविक शोध पद्धति का विकास किया क्योंकि ये इन्द्रियजन्य अनुभव तथा घटना के अवलोकन-परीक्षण का महत्व देता हैं। इस प्रकार आनुभविक शोध पद्धति का मौलिक आधार इन्द्रियों की सहायता से तथ्य एकत्रित करना है।

आनुभविक अनुसंधान पद्धति का अर्थ तथा परिभाषाएँ-

आनुभविक अनुसंधान पद्धति वह पद्धति है जो समाजशास्त्रीय अध्ययनों में इन्द्रियजन्य प्रयोग-सिद्ध अनुभवों पर विशेष जोर देती है।

एफ. कॉफमेन के अनुसार, ''आनुभविक शोध पद्धति वह है जिसमें वास्तविक का ज्ञान व्यवस्थित अवलोकन एवं निर्वचन के सैद्धान्तिक नियमों के आधार पर प्राप्त किया जाता है। इसमें इस तथ्य पर जोर दिया जाता है कि ज्ञान प्राप्ति का आधार इन्द्रियजन्य अनुभव है।''

समाजशास्त्रीय अनुसंधान एवं सर्वेक्षण में आनुभविक शोध पद्धति उसे कहते हैं जिसमें ज्ञान का विकास एवं निष्कर्ष अवलोकन, परीक्षण, निरीक्षण आदि पर आधारित होता है।

आनुभविक शोध पद्धति की मान्यताएँ-

इस पद्धति की मान्यताओं को दो भागों-सकारात्मक और नकारात्मक- में विभाजित किया जा सकता है। यथा-

(1) **सकारात्मक मान्यताएँ** - आनुभविक शोध पद्धति की सकारात्म्क मान्यताएँ निम्नलिखित हैं-

(i) इस पद्धति में वे ही सामाजिक घटनाएँ अध्ययन क्षेत्रों में आती हैं जिनका ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अध्ययन संभव है।

(ii) इस पद्धति में अवलोकन, निरीक्षण तथा परीक्षण पर जोर दिया जाता है।

(iii) इसमें विश्वासों को उसी अवस्था में स्वीकार किया जा सकता है जब वे वास्तविक अनुभव द्वारा पुष्ट होते हैं।

(iv) यह पद्धति निगमनात्मक तर्क पर जोर देती है।

(v) इसमें सांख्यिकीय एवं गणितीय व्याख्या पर जोर दिया जाता है।

(2) नकारात्मक मान्यताएँ – इस पद्धति की प्रमुख नकारात्मक मान्यतायें निम्नलिखित हैं–

(i) यह पद्धति विशुद्ध सैद्धान्तिक मान्यताओं को अस्वीकार करती है।

(ii) यह तर्कवाद और बौद्धिकवाद को स्वीकार नहीं करती है।

(iii) यह अनुमान, अन्त:प्रज्ञा, बुद्धिवादी तर्क तथा अमूर्तता को स्वीकार नहीं करती है।

(iv) वे तथ्य इसके लिए निरर्थक है। जिनकी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पुष्टि नहीं की जा सकती है।

आनुभविक अनुसंधान पद्धति का महत्व–

आनुभविक अनुसंधान पद्धति का महत्व निम्नलिखित है–

(1) **यथार्थ एवं विश्वसनीय अध्ययन**– इस पद्धति के द्वारा जो अध्ययन किये जाते हैं वे वास्तविक, यथार्थ तथा विश्वसनीय होते हैं।

(2) **सत्यापनशीलता** – यह पद्धति सत्यापनशीलता पर विशेष बल देती है। इसमें इस कथन को मान्यता दी जाती है जिसकी आनुभविकता के आधार पर जाँच संभव होती है।

(3) **वास्तविकता का अध्ययन** – इस पद्धति के द्वारा मानव के वास्तविक व्यवहारों के अध्ययन करने पर विशेष आग्रह किया जाता है।

(4) **गुणात्मक अध्ययन संभव** – इस पद्धति के द्वारा गुणात्मक तथ्यों का अवलोकन, परीक्षण एवं संग्रहण किया जाता है।

(5) **क्रियात्मकता**– इस पद्धति के द्वारा क्रियात्मक परिभाषाओं का निर्माण किया जाता है।

आनुभविक अनुसंधान पद्धति की सीमाएँ–

इस पद्धति की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

(1) **वस्तुनिष्ठ का अभाव**– अनुभवजन्य ज्ञान में प्राय: व्यक्तिनिष्ठता का तत्व समाविष्ट होकर अध्ययन को पक्षपातपूर्ण तथा व्यक्तिनिष्ठ बना देता है। अत: इसमें वस्तुनिष्ठता का अभाव पाया जाता है।

(2) **सीमित अध्ययन** – ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से केवल छोटे क्षेत्र एवं सीमित घटनाओं का ही अध्ययन करना संभव होता है।

(3) **अनुभव की सीमितता** – इन्द्रियजनय अनुभव के द्वारा सीमित ज्ञान करना ही संभव हो पाता है। सम्पूर्ण वास्तविकता का ज्ञान अनुभव पर आधारित विधि से प्राप्त करना असंभव है।

(4) **तार्किकवाद की विरोधी** – यह विधि तार्किकवाद और बुद्धिवाद की विरोधी है। यह विरोध इस विधि की सीमा है।

(5) **दक्ष शोधकर्ताओं का अभाव** – इस पद्धति में प्रशिक्षित एवं अनुभवी अवलोकनकर्ताओं की आवश्यकता पड़ती है जिसका विज्ञान जगत में अभाव है।

NOTES

विशुद्ध एवं व्यावहारिक अनुसंधान में अन्तर

यद्यपि विशुद्ध एवं व्यावहारिक अनुसंधान एक–दूसरे के पूरक हैं तथा परस्पर घनिष्ठता सम्बन्धित हैं। इनके उद्देश्य भी एक–दूसरे से गुंफित हैं तथापि इन दोनों में कुछ अन्तर है। इसका विवेचन अग्र बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है–

(1) **उद्देश्य के आधार पर अन्तर** – विशुद्ध अनुसंधान ज्ञान का विस्तार तथा सिद्धान्तों के निर्माण के लिये किया जाता है। इसके द्वारा अवधारणाओं का स्पष्टीकरण, स्थापना तथा परिष्करण किया जाता है। विशुद्ध अनुसंधान लक्ष्यों तथा विद्यमान ज्ञान के भण्डार की वृद्धि करने के लिये किया जाता है।

जबकि व्यावहारिक अनुसंधान का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं, सामाजिक व्यवस्थाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में ज्ञान का विकास करना हैं यह विशुद्ध शोध द्वारा प्रतिपादित नियमों तथा सिद्धान्तों का आनुभविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करता है तथा उनकी सत्यता, प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता की जाँच करता है। संचयी ज्ञान के आधार पर आगे परीक्षण करता है, नवीन तथ्यों की खोज करता है।

(2) **तथ्यों के आधार पर अन्तर** – विशुद्ध अनुसंधान का उद्देश्य विज्ञान के क्षेत्र के तथ्यों की भविष्यवाणी करना है। इस अनुसंधान का मुख्य कार्य यह स्पष्ट करना है कि कौन–कौन से तथ्यों के घटने तथा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है।

जबकि व्यावहारिक अनुसंधान सामाजिक व्यवस्था, संरचना सम्बन्धों, संगठन आदि के विभिन्न तत्वों, लक्षणों, कारकों का अध्ययन करके उनके गुण–दोषों की व्याख्या करता है।

(3) **ज्ञान के आधार पर अन्तर** – विशुद्ध अनुसंधान का कार्य ज्ञान की कमी को बताना है अर्थात् विशुद्ध अनुसंधान मौलिक तथा आधारभूत नियमों की खोज करता है जो ज्ञान के विकास में सहायता करते हैं तथा अध्ययन को नई दिशा प्रदान करते हैं।

(4) **अनुसंधान की प्रक्रिया का अन्तर** – विशुद्ध अनुसंधान विषय के परिप्रेक्ष्य को निर्धारित करने के साथ–साथ तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करता है।

व्यावहारिक अनुसंधान का उद्देश्य पुरानी अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करना, स्पष्टीकरण करना, सुनिश्चित करना, परिष्कृत करना तथा नवीन अवधारणाओं का निर्माण करना है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. सामाजिक अनुसन्धान से आप क्या समझते है? इसके उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
2. सामाजिक अनुसन्धान की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।
3. सामाजिक अनुसन्धान के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
4. सामाजिक अनुसंधान की उपयोगिता तथा कठिनाइयों का वर्णन कीजिए।

NOTES

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सामाजिक अनुसंन्धान की विशेषताएँ बताइए।
2. सामाजिक अनुसंन्धान की प्रकृति का वर्णन कीजिए।
3. सामाजिक अनुसंन्धान के प्रेरक तत्वों की विवेचना कीजिए।
4. व्यवहारिक शोध से आप क्या समझते है?
5. ऐतिहासिक अनुसंधान के चरण बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ''एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशीलता अन्तर्निहित प्रक्रियाओं की खोज ही सामाजिक अनुसंधान है।'' यह कथन है–

   (अ) बोगार्ड्स (ब) फिशर
   (स) मोजर (द) इनमें से कोई नहीं

2. हाट्ट ने सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को भागों में बाँटा है–

   (अ) चार (ब) पाँच
   (स) दो (द) छः

3. सामाजिक अनुसंधान के प्रकार है–

   (अ) वर्णनात्मक शोध (ब) परीक्षणात्मक शोध
   (स) व्यावहारिक शोध (द) ये सभी।

4. परीक्षणात्मक शोध प्रकार के होते हैं –

   (अ) तीन (ब) पाँच
   (स) चार (द) छः

5. ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के चरण हैं–

   (अ) समस्या का चयन (ब) तथ्य संकलन
   (स) प्रतिवेदन का निर्माण (द) ये सभी।

उत्तर – 1. (अ), 2. (स), 3. (द), 4. (अ), 5. (द)।

2 प्राक्कल्पना

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- प्राक्कल्पना का अर्थ तथा परिभाषाएँ
- उपयोगी प्राक्कल्पना की विशेषताएँ
- प्राक्कल्पना के स्त्रोत
- प्राक्कल्पना के प्रकार
- प्राक्कल्पना का महत्व
- प्राक्कल्पना की सीमाएँ
- प्राक्कल्पना के निर्माण में कठिनाइयाँ
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्‌देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- प्राक्कल्पना का अर्थ तथा परिभाषाएँ
- उपयोगी प्राक्कल्पना की विशेषताएँ
- प्राक्कल्पना के स्त्रोत
- प्राक्कल्पना के प्रकार
- प्राक्कल्पना का महत्व
- प्राक्कल्पना की सीमाएँ
- प्राक्कल्पना के निर्माण में कठिनाइयाँ

प्राक्कथन

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उसका लक्ष्य निश्चित किया जाता है। सामाजिक अनुसन्धान में यही लक्ष्य प्राक्कल्पना के रूप में निश्चित किया जाता है। वैज्ञानिक अनुसन्धान के कार्य में लक्ष्य को प्राक्कल्पना के रूप में निर्माण करके निश्चित करता है। वैज्ञानिक प्राक्कल्पना के निर्माण के द्वारा सामाजिक अनुसन्धान का लक्ष्य, अध्ययन का क्षेत्र, अध्ययन से सम्बन्धित तथ्यों आदि को निश्चित करता है। इतना ही नहीं, अनुसन्धान में जिन कारकों का वैज्ञानिक कार्य-कारण सम्बन्धों का परीक्षण करना चाहता है उन्हें भी प्राक्कल्पना के रूप में स्पष्ट कर देता है। इस प्रकार से प्राक्कल्पना का विशेष महत्व वैज्ञानिक पद्धति, सामाजिक अनुसन्धान और सामाजिक सर्वेक्षण में हैं। गुडे एवं हॉट ने तो यहाँ तक लिखा है कि अगर सामाजिक अनुसन्धान में एक अच्छी प्राक्कल्पना का निर्माण हो जाता है तो इसका अर्थ है- अनुसन्धान के लगभग आधे कार्य का पूर्ण हो जानां आपने एक स्थान पर लिखा है, ''प्राक्कल्पना सिद्धान्त और अनुसन्धान के बीच की एक आवश्यक कड़ी है जो अतिरिक्त ज्ञान की खोज में सहायक होती है।'' अनेक अनुसन्धानकर्ताओं तथा वैज्ञानिकों का कहना है कि सामाजिक अनुसन्धान में बिना प्राक्कल्पना के एक कदम भी आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। लुण्डबर्ग के अनुसार बिना प्राक्कल्पना के अनुसन्धान करना एक प्रकार से अन्धेरे में छलांग लगाना हैं प्राक्कल्पना वैज्ञानिक पद्धति तथा सामाजिक अनुसन्धान में अध्ययन को निर्देशित, नियंत्रित और संचालित करती है। संक्षेप में, अभी इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि वैज्ञानिक अध्ययनों में चाहे वो सर्वेक्षण हो अथवा अनुसन्धान; प्राक्कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं। इसलिए प्राक्कल्पना का अर्थ, परिभाषा, विशेषताएँ, स्रोत, प्रकार, महत्व तथा सीमाओं का ज्ञान होना आवश्यक है।

प्राक्कल्पना का अर्थ तथा परिभाषाएँ

''प्राक्कल्पना'' अंग्रेजी के शब्द हाइपोथिसिस (Hypothesis) का हिन्दी अनुवाद है जो ग्रीक के दो शब्दों से मिलकर बना है- Hypo अर्थात Below का अर्थ है नीचे तथा thesis अर्थात् theory का अर्थ है विचार या सिद्धान्त। हाइपोथिसिस का पूर्ण अर्थ हुआ बिलो थ्योरी या सिद्धान्त से नीचे अर्थात् सिद्धान्त का पूर्व-कथन। इसका हिन्दी रूपान्तर 'प्राक्कल्पना' का भी यही अर्थ है। प्राक् का अर्थ है- पूर्व; तथा कल्पना से यहाँ पर अभिप्राय है विचार अथवा सिद्धान्त। प्राक्कल्पना का पूर्ण अर्थ हुआ पूर्व-विचार अथवा पूर्व सिद्धान्त। प्राक्कल्पना का शाब्दिक अर्थ हुआ- एक ऐसा विचार अथवा सिद्धान्त जिसे अनुसन्धानकर्ता अध्ययन के लक्ष्य के रूप में रखता है तथा उसकी जाँच करता है; तथा अध्ययन के निष्कर्ष में प्राक्कल्पना को सत्य सिद्ध होने पर एक सिद्धान्त के रूप में स्थापित करता है। असत्य सिद्ध होने पर त्याग देता है। इस प्रकार से प्राक्कल्पना एक कच्चा सिद्धान्त है जिसे अनुसन्धान में परीक्षण के लिए रखा जाता है।

वैज्ञानिकों ने प्राक्कल्पना को एक अस्थाई अनुमान, परीक्षण के लिए प्रस्तुत की गई एक प्रस्थापना, काम-चलाऊ सामान्यीकरण, कल्पनात्मक विचार, पूर्वानुमान, दो या अधिक परिवर्त्यों के बीच सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाला, अनुमानात्मक कथन बताया है। विद्वानों की निम्न परिभाषाओं से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है-

1. **पी. एच. मान** ने बहुत ही सूक्ष्म परिभाषा दी है, ''प्राक्कल्पना एक अस्थाई अनुमान है।''

2. **बोगार्डस** के अनुसार, ''प्राक्कल्पना परीक्षण के लिए प्रस्तुत की गई एक प्रस्थापना है।''
3. **गुडे एवं हॉट** के अनुसार, ''प्राक्कल्पना एक ऐसी प्रस्थापना है जिसकी सत्यता को सिद्ध करने के लिए उसकी परीक्षा की जा सकती है।''
4. **डब्लू. एम. डोब्रिनर** का कहना है, ''प्राक्कल्पनाएँ ऐसे अनुमान हैं जो यह बताते हैं कि विभिन्न तत्व अथवा परिवर्त्य किस प्रकार अर्न्तसम्बन्धित हैं।''
5. **एस. जिनर** का कथन है, ''एक प्राक्कल्पना घटनाओं के मध्य कारणात्मक अथवा अन्तर्सम्बन्धों के विषय में एक अनुमान है। यह एक ऐसा अस्थाई कथन है जिसकी सत्यता अथवा मिथ्या सत्यता को सिद्ध नहीं किया गया है।''
6. **के. पी. बैली** के अनुसार, ''एक प्राक्कल्पना एक ऐसी प्रस्थापना है जिसे परीक्षण के रूप में रखा जाता है तथा जो दो या अधिक परिवर्त्यों के विशिष्ट सम्बन्धों के विषय में भविष्यवाणी करती है।''
7. **एफ. एन. कलिंगर** के अनुसार, ''एक प्राक्कल्पना दो या दो से अध्कि परिवर्त्यों के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाला एक अनुमानात्मक कथन है।'' आपकी परिभाषा में यह बात स्पष्ट की गई है कि प्राक्कल्पना दो या दो से अधिक चरों या कारकों का परस्पर कारणीय सम्बन्ध स्पष्ट करता है जिसकी जाँच या परीक्षण करना बाकी है कि उनमें परस्पर सम्बन्ध कितना सत्य या असत्य है। इसी बात को बैली तथा डोब्रिनर ने भी कहा है।
8. **जी. ए. लुण्डबर्ग** के अनुसार, ''प्राक्कल्पना एक काम-चलाऊ सामान्यीकरण है जिसकी सत्यता की परीक्षा अभी बाकी है।'' आपने प्राक्कल्पना की और स्पष्ट व्याख्या निम्न शब्दों में की है जिसमें प्राक्कल्पना के कार्य तथा महत्व पर भी प्रकाश डाला हैं आपने लिखा है, ''अपने बिल्कुल प्रारम्भिक स्तरों पर प्राक्कल्पना एक अनुमान, कल्पनात्मक विचार अथवा पूर्वानुमान आदि कुछ भी हो सकती है जो बाद में किसी भी क्रिया अथवा अनुसन्धान का आधार बन जाती है।''
9. **पी. वी. यंग** के अनुसार, ''एक अस्थाई लेकिन केन्द्रीय महत्व का विचार जो उपयोगी अनुसंधान का आधार बन जाता है, उसे हम एक कार्यकारी प्राक्कल्पना कहते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राक्कल्पना कारण प्रभाव के रूप में तथ्यों से सम्बन्धित एक प्रस्थापना, विचार अथवा कच्चा सिद्धान्त है जिसकी परीक्षण द्वारा जाँच करना बाकी है। यह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनुसन्धान का आधार है। प्राक्कल्पना दो या दो से अधिक चरों या परिवर्त्यों का विशिष्ट सम्बन्ध बताता है जिसे परीक्षण या अनुसन्धान के लिए रखा जाता है। वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अध्ययन करके इसकी सत्यता की जाँच की जाती है। सत्य सिद्ध होने पर यह सिद्धान्त बन जाता है। प्राक्कल्पना एक अप्रमाणित सिद्धान्त है जिसे अनुसन्धान में परीक्षण के लिए एक समस्या के रूप में रखा जाता है। प्राक्कल्पना व्यावहारिक अथवा उपयोगी होनी चाहिए जिसकी अनुसन्धान के द्वारा जाँच करते हैं।

NOTES

उपयोगी प्राक्कल्पना की विशेषताएँ

अध्ययन एवं अनुसन्धान में प्राक्कल्पना का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक होता है इसके बिना अनुसन्धान का कार्य आगे नहीं बढ़ सकता । प्राक्कल्पना एक विचार या सामान्यीकरण है जिसे अध्ययन में परीक्षण के लिए रखा जाता है। हर प्रकार का विचार या प्रस्थापना प्राक्कल्पना नहीं होती हैं। गुडे एवं हॉट ने सामाजिक अनुसन्धान मे ंउपयोगी प्राक्कल्पना की पाँच विशेषताओं की विवेचना की है। इनमें से किसी एक विशेषता के अभाव में प्राक्कल्पना अनुसन्धान में काम में नहीं लाई जा सकती है। आपने उपयोगी प्राक्कल्पना की निम्नलिखित पाँच विशेषताएँ बताई हैं–

(1) **स्पष्टता** – गुडे एवं हॉट लिखते हैं कि प्राक्कल्पनाएँ अवधारणाओं के दृष्टिकोण से स्पष्ट होनी चाहिए। इसमें दो बातों का ध्यान रखना होगा– (i) अवधारणा या वैज्ञानिक शब्दावली ाजो प्राक्कल्पना में काम में ली जाती है उनकी स्पष्ट परिभाषा देनी चाहिए तथा अगर हो सके तो अवधारणा को प्रक्रिया का वर्णन करके स्पष्ट करना चाहिए; (ii) उनकी परिभाषाएँ वे होनी चाहिए जो विषय में सामान्यतया मान्य हों तथा विचारों का संचार करने वाली हों। अवधारणाएँ व्यक्तिगत रूप में बनाई हुई नहीं हों। ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जो सभी के समझ में आ जाए तथा सभी समान अर्थ लगाएँ। अगर भाषा तथा अवधारणाएँ अस्पष्ट और भ्रामक होंगी तो विज्ञान जगत में अन्य लोगों के समझ में नहीं आ पाएगा कि प्राक्कल्पना क्या है?

(2) **आनुभविक सन्दर्भ** – अध्ययन में प्राक्कल्पना ऐसी होनी चाहिए जिसकी तथ्यों द्वारा जाँच की जा सके। प्राक्कल्पना आदर्शों को स्पष्ट करने वाली होगी तो उसकी सत्यता की परीक्षा करना सम्भव नहीं होगा। प्राक्कल्पना ऐसे तथ्यों, कारकों तथा चरों से सम्बन्धित होनी चाहिए जो समाज अथवा अध्ययन के क्षेत्र में जाकर एकत्र किए जा सकें तथा उनकी प्रमाणिकता तथा विश्वसनीयता की जाँच की जा सके। इसी को गुडे एवं हॉट ने कहा है कि अगर प्राक्कल्पना का आनुभविक सन्दर्भ होगा तो वह उपयोगी प्राक्कल्पना होगी, वह वैज्ञानिक अध्ययन अथवा अनुसन्धान में सहायक होगी अन्यथा नहीं। गुडे एवं हॉट ने आदर्शात्मक प्राक्कल्पनाओं के उदाहरण दिए हैं, जैसे– ''पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं।'', ''सभी अधिकारी भ्रष्ट होते हैं।'' गुडे एवं हॉट के अनुसार ऐसी प्राक्कल्पनाओं की आनुभविक तथ्यों द्वारा जाँच नहीं की जा सकती है, क्योंकि इनका आनुभविक सन्दर्भ नहीं हैं ऐसी प्राक्कल्पनाएँ उपयोगी अथवा व्यावहारिक नहीं होती है।। उपयोगी अथवा व्यावहारिक प्राक्कल्पनाओं में आनुभविक सन्दर्भ होना अति आवश्यक है।

(3) **विशिष्टता** – गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि उपयोगी प्राक्कल्पना विशिष्ट होनी चाहिए। जो भी क्रियाएँ और पूर्वानुमान वह इंगित करती है वे स्पष्ट रूप से वर्णित होने चाहिए। प्राक्कल्पना बहुत वृहत् तथा विस्तृत नहीं होनी चाहिए। अगर प्राक्कल्पना अपने में सामान्य होगी तथा अनेक कारकों तथा चरों से सम्बन्धित होगी तो वैज्ञानिक ठीक से अध्ययन नहीं कर पाएगा। वह अनेक कारकों तथा कारकों के परस्पर सम्बन्धों की जाँच नहीं कर पाएगा और वह अध्ययन क्षेत्र में भटक जाएगा उसे बड़ी प्राक्कल्पना के निर्माण में सतर्क रहना चाहिए क्योंकि वह प्राक्कल्पना न होकर अध्ययन का क्षेत्र बन जाती है। उपयोगी प्राक्कल्पना सीमित,

विशिष्ट तथा निश्चित पक्ष से सम्बन्धित होनी चाहिए। वह अध्ययन क्षेत्र से सम्बन्धित न होकर उसके किसी निश्चित पक्ष से सम्बन्धित होनी चाहिए। ऐसा होने पर वैज्ञानिक सरलतापूर्वक सम्बन्धित तथ्यों को एकत्र करके प्राक्कल्पना की जाँच कर सकता है।

NOTES

(4) **उपलब्ध प्रविधियों से सम्बद्ध** - प्राक्कल्पना एक प्रस्थापना होती है जो तथ्यों का परस्पर कारण-प्रभाव सम्बन्ध बताती है जिसकी जाँच करना बाकी है। यह जाँच वैज्ञानिक अध्ययन प्रविधियों के द्वारा की जाती है। सभी सामाजिक विज्ञानों में अनेक ऐसी जानकारियाँ तथा तथ्य हैं जिनको एकत्र करने तथा अध्ययन करने की प्रविधियाँ उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में प्राक्कल्पना का निर्माण तो कर लिया जाता है परन्तु तथ्य-संकलन की प्रविधि के अभाव में उसकी जाँच सम्भव नहीं हो पाती है। ऐसी प्राक्कल्पना उस दिन व्यवहारिक हो पाती है जिस दिन उसकी जाँच से सम्बन्धित तथ्य एकत्र करने की प्रविधि का निर्माण हो जाता है। इस असुविधा से बचने के लिए गुडे एवं हॉट का कहना है कि अध्ययनकर्ता को प्राक्कल्पना का निर्माण करते समय अध्ययन के क्षेत्र में उपलब्ध पद्धतियों का ध्यान रखना चाहिए। वह ऐसी प्राक्कल्पना का निर्माण करे जिसकी जाँच के लिए तथ्य-संकलन की प्रविधियाँ विज्ञान में उपलब्ध हों तभी वह उपयोगी प्राक्कल्पना कहलाएगी।

(5) **सिद्धान्त से सम्बन्धित** - गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि प्राक्कल्पना सिद्धान्त के समूह से सम्बन्धित होनी चाहिए। उपयोगी प्राक्कल्पना की इस विशेषता पर प्राय: नए विद्यार्थी ध्यान नहीं देते है।। वे लोग प्राक्कल्पना के चुनाव के स्थान पर रूचि की विषय-सामग्री चुन लेते हैं और इस बात का पता नहीं लगाते हैं कि वह अनुसन्धान वास्तव में सामाजिक सम्बन्धों से सम्बन्धित विद्यमान सिद्धान्तों की जाँच करने, समर्थन करने अथवा संशोधन करने में सहायता करेंगे अथवा नहीं। अगर सभी अनुसन्धानकर्ता अलग-अलग होकर अध्ययन करेंगे तो फिर विज्ञान में ज्ञान की वृद्धि कैसे होगी? विज्ञान के ज्ञान का संचय तो तभी सम्भव होता है जब विद्यमान तथ्य और सिद्धान्त के ज्ञान से सम्बन्धित अध्ययन किए जाएँ। इसलिए व्यावहारिक अथवा उपयोगी प्राक्कल्पना वही होगी जो उपलब्ध तथ्य और सिद्धान्त के ज्ञान से सम्बन्धित होगी। गुडे एवं हॉट का कहना है कि जब अनुसन्धान व्यवस्थित रूप से उपलब्ध सिद्धान्त के ज्ञान पर आधारित होता है तो विज्ञानक ज्ञान की वृद्धि होती है।

(6) **सरलता** - पी. वी. यंग ने प्राक्कल्पना की एक विशेषता- सरलता- पर प्रकाश डाला है। उनका सुझाव है कि व्यावहारिक एवं उत्तम प्राक्कल्पना में सीमित कारकों का अध्ययन करना चाहिए। अनावश्यक रूप से अधिक कारकों को अनुसन्धान में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से प्राक्कल्पना में जटिलता पैदा हो जाती है तथा परीक्षण करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आपका यह भी कहना है कि प्राक्कल्पना अत्यधिक सरल भी नहीं होनी चाहिए। बहुत अधिक सरल प्राक्कल्पना अनुपयोगी और व्यावहारिक भी हो सकती है। इस सत्य को यंग ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है, ''सरलता एक तेज धार वाला यंत्र है जो व्यर्थ की प्राक्कल्पनाओं एवं विवेचनाओं को काट भी सकता है। अत: इसे विलियम ओकम का उस्तरा कहा गया है।''

प्राक्कल्पना के स्रोत

गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि प्राक्कल्पना के अभाव में तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण, संगठन तथा निष्कर्ष निकालना कठिन हो जाता है। प्राक्कल्पना अनुसन्धान के प्रत्येक चरण को दिशा-निर्देश देती है। इसलिए प्राक्कल्पना के विभिन्न पक्षों का गहराई से अध्ययन करना आवश्यक हैं। प्राक्कल्पना के स्रोत भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसका विवेचन करना आवश्यक है। प्राक्कल्पना के स्रोत मुख्यत: दो है।- (1) व्यक्तिगत स्रोत, तथा (2) बाह्य स्रोत। वैज्ञानिक अथवा अनुसन्धानकर्ता स्वयं प्राक्कल्पना का सबसे बड़ा व्यक्तिगत स्रोत रहा है। अनुसन्धानकर्ता का ज्ञान, अनुभव, जिज्ञासा, विचारधारा, कल्पना, दृष्टिकोण, प्रतिभा, अन्तर्दृष्टि आदि उपयोगी प्राक्कल्पनाओं के निर्माण में सहायक रहे हैं। न्यूटन, फेरेडे आदि इस प्रकार के स्रोत के उदाहरण हैं। जब अनुसन्धानकर्ता प्राक्कल्पना के निर्माण में पुस्तकालय, विद्वानों के विचार, वैज्ञानिक अध्ययन एवं सिद्धान्त आदि की सहायता लेता है तो ये प्राक्कल्पना के निर्माण के बाह्य स्रोत कहलाते हैं। गुडे एवं हॉट ने प्राक्कल्पना के चार प्रमुख स्रोतों का वर्णन किया है। ये निम्नलिखित हैं- (1) सामान्य संस्कृति, (2) विज्ञान स्वयं, (3) सादृश्यता, और (4) व्यक्तिगत अनुभव। आपने सामान्य संस्कृति के स्रोत के पुन: तीन उप-स्रोतों का उल्लेख किया है- (i) सांस्कृतिक मूल्य, (ii) लोक-विश्वास, एवं (iii) सामाजिक परिवर्तन। ये अग्रानुसार प्राक्कल्पना के निर्माण में सहायक हैं-

1.1 **सांस्कृतिक मूल्य** - प्रत्येक समाज की विशिष्ट संस्कृति होती है। संस्कृति के अनुसार समाज में विकास होता है। उसी प्रकार से नवीन विषय समाजशास्त्र का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी और फ्रांस में हुआ है। अधिकतर जिन प्राक्कल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण हुआ है वे इन्हीं समाजों की विशिष्ट सांस्कृतिक जटिलता से सम्बन्धित रही हैं। पश्चिमी यूरोप की संस्कृति के अमेरिकावासी व्यक्तिगत सुख, गतिशीलता और प्रतिस्पर्धा पर विशेष बल देते है। इसीलिए अमेरिका के समाजशास्त्रियों ने अपनी संस्कृति के मूल्यों के आधार पर जिन अनेक प्राक्कल्पनाओं का निर्माण किया वे व्यक्ति के सुख से सम्बन्धित थीं। अमेरिका में ''कैसे सुखी हों।'' "How to be happy ?" से सम्बधित पुस्तकें खूब बिकी। इसी प्रकार से ''वैवाहिक सुख'' से सम्बन्धित अनेक कारकों का अध्ययन किया गया। सुख को किसी-न-किसी प्रकार से, शिक्षा, व्यवसाय, प्रजाति, सामाजिक वर्ग और पैतृक सुख के साथ सम्बन्धित किया गया। वे कारक, जो लैंगिक सम्बन्धों, व्यवसाय में वैवाहिक सम्बन्धों में और अन्य अनेक सामाजिक समूहों में व्यवस्था करने में योगदान करते हैं, का सविस्तार विश्लेषण किया गया है। ये उदाहरण स्पष्ट कर देते हैं कि संस्कृति का जोर सुख पर अधिक होने के कारण अमेरिका के सामाजिक विज्ञानों में इससे सम्बन्धित असीमित प्राक्कल्पनाओं का निर्माण हुआ है।

भारतीय की संस्कृति के मूल्य एवं पृष्ठभूमि पश्चिम के समाजों से भिन्न है। यहाँ के समाजशास्त्रीय अध्ययनों की प्राक्कल्पनाओं, सिद्धान्तों एवं विज्ञान के विकास का सिंहावलोकन करें तो पाएँगे कि यहाँ की संस्कृति का विशेष प्रभाव रहा है। भारतीय संस्कृति भौतिकवादी नहीं है। यहाँ पर अध्यात्मवाद, जाति-व्यवस्था, नातेदारी, परम्परागत संयुक्त परिवार प्रणाली आदि का महत्व रहा है। भारतीय समाजशास्त्र में प्राक्कल्पनाओं का आधार यहाँ की संस्कृति के मूल्य एवं पृष्ठभूमि रही है। इसी कारण जाति-व्यवस्था, संयुक्त परिवार, पंचायती राज, पर्दा-प्रथा, जजमानी-प्रथा, धर्म आदि से सम्बन्धित अनेक अनुसन्धान कार्य हुए हैं।

1.2 **लोक-विश्वास** – प्रमुख सांस्कृतिक मूल्यों के अतिरिक्त लोक-विश्वास भी प्राक्कल्पना के उपयोगी स्रोत होते हैं। पश्चिम के समाजों में यह मान्यता थी कि मानव-व्यवहार का प्रमुख निर्णायक प्रजाति है। यह धारणा संयुक्त राज्य अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका में अधिक विद्यमान थी। इन क्षेत्रों के समाजशास्त्रियों ने इस प्रकार के लोक-विश्वास को तथ्य के रूप में मान्यता नहीं दी तथा इसको अनुसन्धान द्वारा परीक्षण करना उचित समझा। इसको प्राक्कल्पना के द्वारा परीक्षण करके देखा तो यह लोक-विश्वास गलत साबित हुआ। समाजशास्त्रियों ने पाया कि व्यक्ति के व्यवहारों का उनकी प्रजाति से कोई गुण-सम्बन्ध नहीं है। गुडे एवं हॉट ने उपयुक्त उदाहरण देकर स्पष्ट किया कि समाज में असंख्य लोक-विश्वास, धारणाएँ, जन-साधारण के विचार आदि व्यावहारिक प्राक्कल्पना के अच्छे स्रोत होते हैं। अनुसन्धानकर्ता अपने समाज में प्रचलित लोक-विश्वास, धारणाएँ, कहावतें, लोकोक्तियाँ, आदि को प्राक्कल्पना के रूप में अध्ययन करके उनकी सत्यता, प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता की जाँच कर सकते हैं और उसके द्वारा ज्ञान के विकास में सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

1.3 **सामाजिक परिवर्तन** – समाज परिवर्तनशील है। यह निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। इसके कारण समाज में नई-नई समस्याएँ एवं कारक आ जाते हैं। पुराने सिद्धान्त एवं पूर्वानुमान नई परिस्थितियों में प्रासंगिक नहीं रहते हैं। पुराने सिद्धान्त, निष्कर्ष, अवधारणाएँ, कथन, साहित्य आदि पुराने, अप्रचलित एवं गतावधिक हो जाते है।। इन नई परिस्थितियों के सन्दर्भ में अनुसन्धानकर्ता नई-नई समकालीन प्राक्कल्पनाओं का निर्माण कर सकते हैं एवं ज्ञान का विस्तार कर सकते हैं। भारतवर्ष में आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, औद्योगिकीकरण के कारण परिवार, जाति, ग्राम आदि बदल रहे हैं। इनसे सम्बन्धित पुराने सिद्धान्तों के पुन: परीक्षण के लिए नई प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करके नए सिद्धान्तों, अवधारणाओं आदि का निर्माण किया जा सकता है। अनुसन्धानकर्ता पर उसकी संस्कृति का प्रभाव होता है। जब वह प्राक्कल्पना का निर्माण करता है तब उसमें उसकी संस्कृति के मूल्यों, पृष्ठभूमि, लोक-विश्वास आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। गुडे एवं हॉट का कहना है, ''अधिकांश सांस्कृतिक मूल्य न केवल अनुसन्धान के प्रति रुचि को बढ़ाने में सहायता करते है। बल्कि लोक-प्रज्ञा प्राक्कल्पनाओं के निर्माण में एक स्रोत के रूप में भी सहायक होते हैं।''

संस्कृति अनेक प्रकार से प्राक्कल्पना के स्रोत का कार्य करती है। वैज्ञानिक का समाजीकरण उसकी संस्कृति में होता है। वह अपनी संस्कृति की अनेक विशेषताओं से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित रहता है।

2. **वैज्ञानिक सिद्धान्त** – गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि विज्ञान स्वयं प्राक्कल्पनाओं का अच्छा स्रोत है। विज्ञान में ही अनेक प्राक्कल्पनाओं की उत्पत्ति होती रहती है। आपके मत में तथ्य और सिद्धान्त तथा विज्ञान और मूल्य आदि प्राक्कल्पनाओं के स्रोत निम्न प्रकार से रहे हैं। सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि क्या-क्या जानकारियाँ ज्ञात हैं और क्या-क्या अध्ययन हो चुके हैं। इस प्रकार सिद्धान्त अनुसन्धान को दिशा प्रदान करता है। इसके द्वारा तार्किक निष्कर्ष नई समस्याओं और प्राक्कल्पनाओं को जन्म देते हैं। अनेक बार सिद्धान्त सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप गलत दिखाई देने लगते हैं। वैज्ञानिक पुराने सिद्धान्त को ही प्राक्कल्पना बना कर उसकी जाँच करता है। इस प्रकार

नए तथ्य पुराने सिद्धान्त की जाँच करने में सहायता करते हैं और नए सिद्धान्तों का निर्माण करवाते हैं अथवा उनमें संशोधन करते हैं। विज्ञान में इस प्रकार सिद्धान्त से प्राक्कल्पना ओर प्राक्कल्पना से सिद्धान्त की प्रक्रिया चलती रहती है तथा ज्ञान का विकास होता रहता है। समाजशास्त्र में द्विकासीय सिद्धांत से प्रसारवाद, प्रसारवाद से प्रकार्यवाद तथा अन्य सिद्धान्तों का निर्माण इसके प्रमाण हैं। बाद में प्रत्येक वैज्ञानिक ने अपने से पूर्व के वैज्ञानिक के सिद्धान्त की आलोचना की है। उसी के आधार पर नई प्राक्कल्पना बनाकर अध्ययन किए हैं। दुर्खीम के आत्महत्या का सिद्धान्त, श्रम के विभाजन का सिद्धान्त तथा धर्म के स्वरूप इसी प्रकार के स्रोतों के आधार पर प्रतिपादित किए गए प्राक्कल्पनाओं और सिद्धान्त के निर्माण के उदाहरण हैं।

3. **सादृश्यताएँ** – जूलियन हक्सले ने स्पष्ट किया है कि प्रकृति का सामान्य अवलोकन अथवा दूसरे विज्ञान की सन्दर्भ परिधि प्राक्कल्पना का अच्छा स्रोत हो सकती है। दूसरे विज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग वैज्ञानिक प्राक्कल्पनाओं के निर्माण में करते रहे हैं। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक विज्ञानों–अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, सामाजिक मानवशास्त्र आदि में चार्ल्स डार्विन का उद्विकासीय सिद्धान्त का प्रयोग प्राक्कल्पना के स्रोत के रूप में विस्तार से किया गया। यह इसी प्रकार के स्रोत का उदाहरण है। समाजशास्त्र में सामाजिक परिवर्तन, समाज, संस्कृति, धर्म, परिवार, विवाह, कला, सभ्यता आदि के विकासीय सिद्धान्त अन्य विज्ञानों के सिद्धान्तों को सादृश्यता के रूप में काम लेकर अनेक प्राक्कल्पनाएँ बनाई गईं और उनसे अनेक उद्विकासीय सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए। डार्विन ने जीवों का विकास सरल से जटिल, निश्चित चरणों और सीधी रेखा में बताया। उसी प्रकार सामाजिक वैज्ञानिकों ने समाज तथा उसकी अनेक संस्थाओं का विकास उसी प्रकार बताया। गुडे एवं हॉट का कहना है कि सादृश्यताएँ प्राक्कल्पनाओं की अच्छे स्रोत हैं फिर भी इसमें अनेक खतरे हैं, उनसे सावधान रहना चाहिए। सादृश्यताओं का उपयोग करते समय उनकी अच्छी तरह से परीक्षण और निरीक्षण कर लेना चाहिए। उनकी अवधारणाओं का सतर्कतापूर्वक निरीक्षण करके उपयोग करना चाहिए।

4. **व्यक्तिगत अनुभव** – प्राक्कल्पनाएँ विलक्षण स्वभाव या प्रकृति के व्यक्तियों के अनुभव की परिणाम भी होती हैं। न केवल संस्कृति, विज्ञान और सादृश्यताएँ ही प्राक्कल्पनाओं के निर्माण को प्रभावित करती हैं बल्कि विलक्षण स्वभाव का व्यक्ति जब इन कारणों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तब उसका भी प्राक्कल्पना के निर्माण पर प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक का व्यक्तिगत अनुभव भी प्रश्नों के प्रकार और उनके पूछने के स्वरूप में अपना योगदान देता है जो आगे चलकर प्राक्कल्पनाओं के स्रोत बन जाते हैं और उपयुक्त व्यक्ति सही घटना और सही समय का वैज्ञानिक दृष्टि से अवलोकन करता है तो अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर प्राक्कल्पना और फिर वैज्ञानिक सिद्धान्त बना देता है। न्यूटन प्राक्कल्पना और फिर सिद्धान्त बनाने में स्वयं के अनुभव के परिणाम स्वरूप सफल हुए थे। पेड़ से सेब तो हमेशा गिरते रहे हैं और गिरते रहेंगे। उस ओर ध्यान केवल न्यूटन का गया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि व्यक्तिगत अनुभव की प्राक्कल्पनाओं के अच्छे स्रोत हैं।

5. **अनुसन्धान एवं साहित्य** – लुण्डबर्ग ने सुझाव दिया है कि प्राक्कल्पनाओं के निर्माण के अच्छे स्रोत कविता, साहित्य, दर्शन, समाजशास्त्र, नृजाति विज्ञान एवं वर्णनात्मक साहित्य तथा कलाकारों

और चिन्तकों के मानव के सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित सिद्धान्तों के आधार भी हैं। विभिन्न लोगों के द्वारा किए गए अनुसन्धान, सर्वेक्षण, निष्कर्षों एवं लेखों के आधार पर भी व्यावहारिक प्राक्कल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता हैं ये भी उपयोगी प्राक्कल्पनाओं के अच्छे एवं उपयुक्त स्रोत हैं।

NOTES

प्राक्कल्पना के प्रकार

सभी विज्ञानों की तरह समाजशास्त्र में भी अनेक प्राक्कल्पनाएँ हैं तथा उनके वर्गीकरण के भी अनेक तरीके हैं। गुडे एवं हॉट ने सामाजिक अनुसन्धान को ध्यान में रखते हुए प्राक्कल्पनाओं का वर्गीकरण अमूर्तकरण के स्तर के आधार पर किया है। अमूर्तकरण की मात्रा न्यून से अधिकतम के क्रम में इन्होंने प्राक्कल्पना के निम्न तीन प्रकार बताए हैं-

(1) आनुभविक एकरूपता से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाएँ,

(2) आदर्श प्रारूपों से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाएँ, और

(3) विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाएँ।

इन्हें सुविधा के लिए चित्र 2.3 के अनुसार प्रदर्शित करके व्याख्या की गई है।
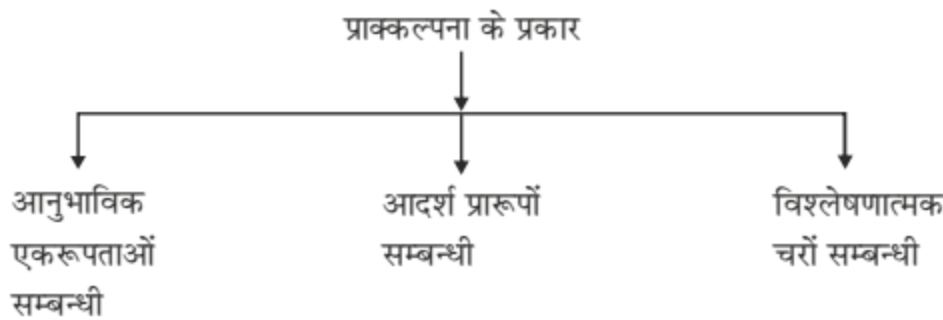
स्रोत : गुडे एवं हॉट : मैथड्स इन सोशियल रिसर्च, पृ. 59-61।

(1) **आनुभविक एकरूपताओं सम्बन्धी** - समाज और संस्कृति में अनेक कहावतें, मुहावरे, किंवदन्तियाँ, लोकोक्तियाँ आदि होती हैं। जीवन से सम्बन्धित विचारधाराएँ होती हैं जिनको उनसे सम्बन्धित सभी लोग जानते हैं तथा सत्य मानते हैं। सामाजिक अनुसन्धानकर्ता उन्हीं को प्राक्कल्पना बनाकर अवलोकनों, आनुभविक तथ्यों तथा आँकड़ों को एकत्र करके उनकी जाँच करते हैं। उनकी सत्यता, प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता की जाँच प्रयोग सिद्ध तथा प्रमाणित तथ्यों द्वारा की जाती है और निष्कर्ष के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की प्राक्कल्पनाएँ सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों का आनुभविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करती हैं। इसके बारे में कुछ आपत्तियाँ भी उठाई गई हैं इस प्रकार के अध्ययन प्राक्कल्पना की जाँच नहीं करते हैं, वे केवल और तथ्यों को जोड़ देते हैं। इनके बारे में यह भी आपत्ति है कि ये उपयोगी प्राक्कल्पनाएँ नहीं है। क्योंकि इनकी जानकारी सभी को है। गुडे एवं हॉट का कहना है कि यह आपत्ति ठीक नहीं है क्योंकि जो कुछ सब लोग जानते हैं उसको आनुभविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करके स्पष्ट, सुनिश्चित तथा क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह भी हो सकता है कि जो सब लोग जानते हैं वह मिथ्या हो। सामान्य विचारों तथा जानकारियों को

परीक्षण द्वारा जाँच करना विज्ञान का महत्वपूर्ण कार्य है। समाजशास्त्र में ऐसे विचारों तथा सूचनाओं के वैज्ञानिक का कार्य अधिक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक इसलिए है क्योंकि ये सामाजिक व्यवस्था और संगठन से सम्बन्धित भी होते हैं।

NOTES

(2) **आदर्श प्रारूपों सम्बन्धी** – कुछ प्राक्कल्पनाएँ जटिल आदर्श प्रारूपों से सम्बन्धित होती हैं। इन प्राक्कल्पनाओं का उद्देश्य आनुभविक समरूपताओं के बीच तार्किक आधार पर निकाले गए सम्बन्धों का परीक्षण करना है। इन प्राक्कल्पनाओं का उद्देश्य तथा उपकरणों तथा समस्याओं का निर्माण करना है। इसमें आगे जटिल क्षेत्रों में अनुसन्धान करने के लिए सहायता मिलती है। गुडे एवं हॉट ने लिखा है, ''वास्तव में अधिक जटिल अनुसन्धान के क्षेत्रों में पुन: अनुसन्धान करने के लिए उपकरणों और समस्याओं का निर्माण करना इस प्रकार की प्राक्कल्पना का महत्वपूर्ण कार्य हैं।'' आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाओं की जाँच तथ्य एकत्र करके की जाती है। पहले तथ्य एकत्र किए जाते हैं, उन्हें तर्कपूर्ण रूप से क्रमबद्ध किया जाता है और उसके बाद निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(3) **विश्लेषणात्मक चरों सम्बन्धी** – अन्य प्रकार की प्राक्कल्पनाएँ तो तथ्यों के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन और परीक्षण करती हैं। यह प्राक्कल्पना चरों के तार्किक विश्लेषण के अतिरिक्त विभिन्न चरों में परस्पर क्या गुण सम्बन्ध है, उसका भी विशेष रूप से विश्लेषण करती है। विभिन्न चर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों का तार्किक आधार ढूँढ़ना इन प्राक्कल्पनाओं का उद्देश्य है। विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाएँ बहुत अधिक अमूर्त प्रकृति की होती हैं। एक चर का अन्य चरों पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा चरों का परस्पर क्या कार्य-कारण प्रभाव है इसका गहनता से अध्ययन किया जाता है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान में इन प्राक्कल्पनाओं का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। समाज में अनेक ऐसी प्राक्कल्पनाएँ हैं जिनका किसी एक विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। समाज में अनेक ऐसी प्राक्कल्पनाएँ हैं जिनका किसी एक विषय के द्वारा परीक्षण करना सम्भव नहीं होता है तथा अन्तर-विषयक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। गामीण विकास कार्यक्रम, जाति-व्यवस्था, निर्धनता आदि ऐसी समस्याएँ हैं जिनका अध्ययन अनेक चरों से सम्बन्धित है। ऐसे क्षेत्रों में विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाओं के निर्माण एवं परीक्षण की उपयोगिता है।

प्राक्कल्पना का महत्व

वैज्ञानिक अध्ययन, अनुसन्धान, सामाजिक सर्वेक्षण आदि में प्राक्कल्पनाएँ अनेक प्रकार से महत्वपूर्ण है। प्राक्कल्पना वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किए गए अनुसन्धान आदि को निर्देशित, नियंत्रित और संचालित करती है। इसके बिना अध्ययन कार्य एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता है। प्राक्कल्पना अनुसन्धान के प्रत्येक चरण की समस्या की व्याख्या से लेकर निष्कर्ष तक को क्रमबद्ध और व्यवस्थित करती है। जहोदा, कुक एवं अन्य ने प्राक्कल्पना के महत्व को निम्न शब्दों में स्पष्ट किया है, ''प्राक्कल्पनाओं का निर्माण तथा सत्यापन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है।'' यंग, लुण्डबर्ग, गुडे तथा हॉट आदि अनेक विद्वानों ने प्राक्कल्पना के महत्व पर प्रकाश डाला है। गुडे एवं हॉट ने लिखा है, ''अच्छे अनुसन्धान में प्राक्कल्पना का निर्माण करना प्रमुख चरण हैं।'' अनुसन्धान के विभिन्न चरणों तथा क्षेत्रों में प्राक्कल्पना का महत्व निम्न रूप में देखा जा सकता है।

NOTES

(1) **समस्या की व्याख्या में सहायक** – सामाजिक अनुसन्धान का प्रथम चरण समस्या की व्याख्या करना होता है। अनुसन्धान में समस्या की व्याख्या कारण–प्रभाव के रूप में की जाती है। इस कार्य को करने में प्राक्कल्पना विशेष सहायता करती है। अनुसन्धान में समस्या की व्याख्या प्राक्कल्पना के रूप में की जाती है। प्राक्कल्पना के द्वारा अध्ययन की समस्या को स्पष्ट किया जाता है कि किन–किन कारणों का परस्पर गुण–सम्बन्ध या कारण–प्रभाव के रूप में अध्ययन किया जाएगा। वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा अध्ययन प्राक्कल्पना से प्रारम्भ होता है। प्राक्कल्पना एक प्रस्थापना होती है जिसकी सत्यता की जाँच अनुसन्धान के द्वारा की जाती है। अनुसन्धान में यंग, गुडे, हॉट आदि ने लिखा है कि व्यावहारिक प्राक्कल्पना वैज्ञानिक अनुसन्धान की समस्या को स्पष्ट, सुनिश्चित रूप में प्रस्तुत करने में सहायता करती है।

(2) **अध्ययन की दिशा में सहायक** – वैज्ञानिक अध्ययन की दिशा का निश्चित होना अत्यन्त आवश्यक है। अध्ययन की दिशा से अभिप्राय है कि वैज्ञानिक किन तथ्यों, जानकारियों तथा आँकड़ों को एकत्र करे तथा किन्हें नहीं। उसके निर्धारण में प्राक्कल्पना वैज्ञानिक की प्रतिपल सहायता करती है, जिससे वह अध्ययन के क्षेत्र में इधर–उधर भटकने से बच जाता है। पी. वी. यंग ने यही बात निम्न शब्दों में व्यक्त की है, ''प्राक्कल्पना से अनुसन्धानकर्ता ऐसे तथ्यों को एकत्र करने से बच जाता है जो बाद में अध्ययन विषय के लिए व्यर्थ सिद्ध होते हैं।'' प्राक्कल्पना के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक को किन तथ्यों का अध्ययन करना है तथा कौन–कौन से परीक्षण करने हैं। इस प्रकार से प्राक्कल्पना वैज्ञानिक को अध्ययन की दिशा तथा दशा प्रदान करके उसका समय, धन तथा श्रम बचाने में सहायक सिद्ध होती है।

(3) **अध्ययन-क्षेत्र की सीमितता व चयन में सहायक** – वैज्ञानिक अनुसन्धान में प्राक्कल्पना के निर्माण के बाद अध्ययन क्षेत्र का चुनाव किया जाता है। प्राक्कल्पना निश्चित तथ्यों का परस्पर कारण–प्रभाव क्रम में वर्णन करती है जिसकी जाँच के लिए अनुसन्धानकर्ता को अध्ययन का ऐसा क्षेत्र चुनना होता है जहाँ पर प्राक्कल्पना की जाँच की जा सके। अध्ययन के क्षेत्र तथा विषय को प्राक्कलन सीमित तथा स्पष्ट कर देती है । इससे अनुसन्धानकर्ता सरलतापूर्वक अपना ध्यान उस क्षेत्र के चुनाव करने में लगाता है जहाँ उसे आवश्यक तथ्य उपलब्ध होते है।। अनुसन्धानकर्ता क्षेत्र का चुनाव करने के बाद उसे सीमित भी कर लेता है। समस्या के अनेक पहलू होते हैं। अध्ययन का चुना हुआ क्षेत्र भी व्यापक होता है। प्राक्कलन उस क्षेत्र को और भी सीमित करने में सहायक सिद्ध होती है अन्यथा वैज्ञानिक अध्ययन–क्षेत्र में भटक सकता है।

(4) **उपयोगी तथ्य-संकलन में सहायक** – वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक है कि वह व्यवस्थित और क्रमबद्ध हो। इसके लिए आवश्यक है कि अनुसन्धानकर्त्ता केवल उन्हीं तथ्यों को एकत्र करें जो अध्ययन की समस्या से सम्बन्धित एवं उपयोगी हों। जब अध्ययन की समस्या स्पष्ट, सुनिश्चित तथा कारण–प्रभाव के क्रम में नहीं होती है तो वैज्ञानिक के लिए उपयोगी–अनुपयोगी, तथा सम्बन्धित–असम्बन्धित तथ्यों में अन्तर करना कठिन हो जाता है। वह महत्वपूर्ण तथ्यों को छोड़ देता है तथा असम्बन्धित और व्यर्थ के तथ्यों को एकत्र कर लेता है। लेकिन जब उसके सामने प्राक्कलन एक अध्ययन की समस्या के रूप में होती है तो वह

आत्मविश्वास के साथ केवल सम्बन्धित तथा उपयोगी तथ्यों को एकत्र कर लेता है। प्राक्कल्पना में जिन कारकों के कारण-प्रभाव सम्बन्ध प्रस्थापन के रूप में होते हैं केवल उनकी जाँच करने में सम्बन्धित तथ्यों को अध्ययनकर्त्ता एकत्र करता है। इस प्रकार प्राक्कल्पना अध्ययनकर्त्ता को प्रतिक्षण सम्बन्धित तथा उपयोगी तथ्यों को एकत्र करने में सहायता ही नहीं करती बल्कि उस पर नियंत्रण भी रखती है।

(5) **तर्कसंगत निष्कर्षों में सहायक** – जो भी वैज्ञानिक अध्ययन प्राक्कल्पना के निर्माण से प्रारम्भ होता है उसमें अध्ययन के अन्त में निष्कर्ष निकालने में प्राक्कल्पना बहुत सहायक सिद्ध होती है क्योंकि तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण और सारणीयन प्राक्कल्पना को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसके बाद जब निष्कर्ष निकाले जाते हैं तो उसमें देखा जाता है कि प्राक्कल्पना सत्य है अथवा असत्य। प्राक्कल्पना में जिन तथ्यों को परस्पर गुण-सम्बन्ध दिया होता है उन्हीं की सत्यता की जाँच करके अध्ययनकर्त्ता निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करता है। अध्ययनकर्त्ता को निष्कर्ष निकालते समय प्राक्कल्पना विशेष सहायता प्रदान करती है। इसे निष्कर्ष में तर्कपूर्ण आधार प्रस्तुत करके यह सिद्ध करना होता है कि अध्ययन के प्रारम्भ में जो प्राक्कल्पना बनाई थी वह सत्य है अथवा असत्य।

(6) **सिद्धान्त-निर्माण में सहायक** – वास्तविकता तो यह है कि प्राक्कल्पना का सबसे महत्वपूर्ण योगदान विज्ञान में सिद्धान्तों के निर्माण करने में सहायता करना है। अनेक वैज्ञानिकों ने लिखा है कि वही प्राक्कल्पना व्यावहारिक तथा उपयोगी हाती है जो मुख्य विज्ञान तथा सिद्धान्त से सम्बन्धित होती है। अनुसन्धान का अन्तिम चरण प्राक्कल्पना की तथ्यों के आधार पर जाँच करना है। अध्ययनकर्त्ता प्राक्कल्पना की जाँच करता है। सत्य सिद्ध होने पर उसे सिद्धान्त के रूप में पुन: प्रस्तुत करता है। असत्य सिद्ध होने पर उसे त्याग कर नए सिद्धान्त की स्थापना कर देता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि थोड़ा-सा संशोधन मात्र करना पड़ता है तो अध्ययनकर्त्ता प्राप्त तथ्यों के आधार पर तर्कपूर्ण विश्लेषण करके प्राक्कल्पना को संशोधित कर सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करता है। कई बार सिद्धान्त नई परिस्थितियों में असत्य लगने लगते हैं तो उन्हें अनुसन्धानकर्त्ता प्राक्कल्पना के रूप में रखकर अनुसन्धान करता है तथा पुन: सत्य सिद्ध होने पर सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करता है। अत: प्राक्कल्पना सिद्धान्तों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती रहती है।

उपर्युक्त प्राक्कल्पना के कार्य उसके महत्व को स्पष्ट कर देते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धान प्राक्कल्पना से प्रारम्भ होता है तथा अन्त में प्राक्कल्पना पर आकार ही समाप्त हो जाता है। अनुसन्धान के प्रत्येक चरण में प्राक्कल्पना की भूमिका महत्वपूर्ण है।

प्राक्कल्पना की सीमाएँ

प्राक्कल्पना के जितने लाभ हैं वहीं थोड़ी-सी असावधानी होने पर त्रुटिपूर्ण प्राक्कल्पना के निर्माण से अनेक हानियाँ भी हो जाती हैं। प्राक्कल्पना की अपनी सीमाएँ हैं जिनका ध्यान अध्ययनकर्त्ता को रखने चाहिए। क्योंकि अगर इसकी सीमाओं के प्रति जागरूक नहीं रहेंगे तो अध्ययनकर्त्ता इसकी कमियों तथा दोषों से सतर्क नहीं रह पाएगा।

NOTES

(1) **अनुसन्धानकर्त्ता की असावधानियाँ** – प्राक्कल्पना अपने आप में दोषपूर्ण नहीं है लेकिन इसके प्रति विश्वास तथा अनुसन्धानकर्त्ता की असावधानियाँ अनुसन्धान में दोष पैदा कर देती हैं। अनुसन्धानकर्त्ता प्राक्कल्पना के निर्माण के समय स्वयं की भावनाओं, पूर्वाग्रहों तथा इच्छाओं पर नियन्त्रण नहीं रख पाता है। इस असावधानी के कारण प्राक्कल्पना में पक्षपात आ जाता है। अनुसन्धानकर्त्ता प्राक्कल्पना में तथ्यों का कारण–प्रभाव सम्बन्ध पक्षपातपूर्ण रूप में प्रस्तुत करता है तथा पूरी अध्ययन की प्रक्रिया में उसे सिद्ध करने का प्रयास करता रहता है। उसका प्राक्कल्पना में अटूट विश्वास ही अन्त में दोषपूर्ण परिणाम निकालता है।

(2) **प्राक्कल्पना को अन्तिम मार्गदर्शक मानना**– अध्ययनकर्त्ता प्राक्कल्पना को अन्तिम मार्गदर्शक मान बैठता हैं उसे प्राक्कल्पना का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। जैसी प्राक्कल्पना होती है उसी को ध्यान में रखकर तथ्यों को एकत्र करता है। अध्ययन–क्षेत्र में स्वयं के विवेक को बिल्कुल काम में नहीं लेता है। इससे अध्ययन वैज्ञानिक नहीं रह पाता है। वह जो जानकारी एकत्र करता है उसका उपयोग पक्षपातपूर्ण रूप से करता है। वेस्टोन के अनुसार प्राक्कल्पनाएँ वे लोरियाँ हैं जो असावधान को गाना गाकर सुला देती है। प्राक्कल्पना उपयोगी होने के साथ–साथ अनुसन्धानकर्त्ता को गुमराह भी कर सकती है।

(3) **अध्ययन में पक्षपात** – अध्ययनकर्त्ता के प्राक्कल्पना में अटूट विश्वास के कारण अध्ययन में अनेक प्रकार के पक्षपात प्रवेश कर जाते हैं। अनुसन्धानकर्ता जब प्राक्कलपना का निर्माण करता है। उसी समय उसकी अपनी रुचियाँ, संवेग, संस्कृति आदि प्रभाव डालती हैं। वह एक विशेष रुचि के विषय का चुनाव कर लेता है। बस यहीं से अध्ययन में पक्षपात अपनाना प्रारम्भ हो जाता है। अनुसन्धानकर्त्ता तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण, सारणीयन तथा निष्कर्ष भी उसी प्रारम्भिक धारणा के अनुसार करता है। इस प्रकार प्राक्कल्पना सम्पूर्ण अध्ययन को अनुसन्धानकर्त्ता की आत्मनिष्ठा के प्रभाव के कारण अवैज्ञानिक बना देती है। वह प्राक्कल्पना के पक्ष में अध्ययन करता चला जाता है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। यंग ने भी इस सम्बन्ध में सतर्क किया है तथा कहा है, ''एक अनुसन्धानकर्त्ता को अपनी प्राक्कल्पना की सत्यता को सिद्ध करने के लक्ष्य से अध्ययन शुरू नहीं करना चाहिए।'' अनुसन्धानकर्त्ता को प्राक्कल्पना को मार्गदर्शक के रूप में लेकर चलना चाहिए। उसे सिद्ध करने का प्रतिष्ठा बिन्दु नहीं बनाना चाहिए।

(4) **प्राक्कल्पना के अनुसार तथ्य–संकलन**– अध्ययनकर्ता के अनुसार तथ्य एकत्र करता चला जाता है। अध्ययन–क्षेत्र में जो वास्तविक तथ्य सामने आते हैं तथा उनके परस्पर गुण–सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता हैं, उनके अनुसार प्राक्कल्पना में संशोधन या परिवर्तन कर लेना चाहिए। अन्यथा अध्ययन के अन्त में निष्कर्ष असत्य, अप्रमाणित तथा भ्रमपूर्ण निकालेंगे। फ्राई के अनुसार, ''मात्र विशिष्ट प्रश्नों के सन्दर्भ में ही तथ्यों का संकलन नहीं करना चाहिए वरन् एक संस्था अथवा स्थिति की खोज में प्रश्नों को हमेशा सुझाव के रूप में समझना चाहिए। अध्ययनकर्त्ता प्राक्कल्पना को ही सब कुछ मान लेता है तथा इससे लाभ के स्थान पर हानियाँ अधिक हो जाती हैं।

NOTES

(5) **सामाजिक घटनाएँ जटिल तथा परिवर्तनशील** – सामाजिक अनुसन्धान में जो प्राक्कल्पनाएँ बनाई जाती हैं वे सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित होती हैं। ये सामाजिक घटनाएँ जटिल तथा परिवर्तनशील होती हैं। प्राक्कल्पना का निर्माण जब किया जाता है तथा तथ्य एकत्र किए जाते हैं और अन्त में निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उस अन्तराल में परिवर्तन आ जाता है। जटिल घटनाओं के सम्बन्ध में प्राक्कल्पना बनाना तथा अध्ययन करना बहुत कठिन कार्य है। प्रारम्भ में जो अनुमान लगाकर प्राक्कल्पना बनाई जाती है वह विषय की जटिलता तथा परिवर्तनशीलता के कारण प्राक्कल्पना पूरे अध्ययनकाल में उपयोगी तथा व्यावहारिक नहीं रह पाती है। इनमें प्राक्कल्पना उतनी उपयोगी नहीं रहती है जितना प्राकृतिक अनुसन्धानों में रहती हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राक्कल्पना अपने आप में अनुसन्धान में महत्वपूर्ण कार्य करती है लेकिन थोड़ी-सी असावधानी से भी वह हानिकारक सिद्ध हो जाती है। यह असावधानी अनेक कारणों से हो जाती है। यंग का कहना है कि अध्ययनकर्त्ता को तथ्यों को सिद्ध करने की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। उसे तो परिस्थिति को सीखने और समझने की ओर ध्यान रखना चाहिए।

प्राक्कल्पना के निर्माण में कठिनाइयाँ

प्राक्कल्पना के निर्माण में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। अनुसन्धानकर्त्ता के लिए प्राक्कल्पना का अध्ययन में जितना अधिक महत्व है, उतनी ही अधिक इसके निर्माण कार्य में उसे सतर्कता रखनी चाहिए। पी. वी. यंग और गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि प्राक्कल्पना का निर्माण ऐसा होना चाहिए जिसका उपयोग अनुसन्धान में हो सके। ऐसी प्राक्कल्पना व्यावहारिक अथवा उपयोगी प्राक्कल्पना कहलाती है जिसके निर्माण में कुछ सैद्धान्तिक और व्यावहारिक कठिनाइयाँ आती है। उनका अनुसन्धानकर्त्ता को ध्यान रखना चाहिए। गुडे एवं हॉट ने दो प्रकार की कठिनाइयों का वर्णन किया है- (1) सैद्धान्तिक और (2) अध्ययन प्रविधियों से सम्बन्धित।

इनका वर्णन निम्नानुसार है-

1. **सैद्धान्तिक ढाँचे सम्बन्धी** – प्राक्कल्पना वही व्यावहारिक अथवा उपयोगी होती है जो सम्बन्धित विज्ञान तथा उसके सिद्धान्तों से सम्बन्धित हो। प्राक्कल्पना में दिये गये कारकों का गुण-सम्बन्ध भी क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित होना चाहिए। अध्ययनकर्त्ता को प्राक्कल्पना का निर्माण करने से पूर्व विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। व्यावहारिक प्राक्कल्पना के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण कठिनाई अनुसन्धानकर्ता के सामने तब आती है जब वह बिना सम्बन्धित ज्ञान के ही प्राक्कल्पना का निर्माण करता है। उसे सम्पूर्ण सम्बन्धित साहित्य पढ़ना चाहिए। जिन क्षेत्रों में अध्ययन नहीं हुए हैं उनमें तो प्राक्कल्पना के निर्माण में और भी अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अगर अनुसन्धानकर्ता नया है, उसे अनुसन्धान का अनुभव नहीं है तब तो उसे और भी परेशानियों का सामना करना पड़ेगा।

2. **प्रविधियों सम्बन्धी** – सामाजिक विज्ञानों में अनेक नवीन अध्ययन की प्रविधियाँ आ गई हैं। अनुसन्धानकर्त्ता कई बार ऐसी प्राक्कल्पनाओं का निर्माण कर लेता है जिनका परीक्षण करने के लिए तथ्य-संकलन की प्रविधियाँ नहीं होती हैं। प्राक्कल्पनाएँ तब तक उपयोग में नहीं लाई जा सकती जब तक कि तथ्य-संकलन की प्रविधि का विकास नहीं कर लिया जाता है।

अत: अनुसन्धानकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह इन उपर्युक्त व्यावहारिक कठिनाइयों का भी ध्यान रखे।

4. **वैज्ञानिक का पक्षपात** – वैज्ञानिक मानव है। अध्ययन की वस्तु मानव है। दोनों ही बुद्धिजीवी हैं। वैज्ञानिक समाज में पैदा होता है, तथा समाज में उसका समाजीकरण होता है। उसकी अपनी संस्कृति होती है। आदर्श और मूल्य होते हैं। इस कारण समाज और उसकी घटनाओं का वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ अध्ययन नहीं कर पाता है। अध्ययन में व्यक्तिगत प्रभाव आ ही जाते हैं। वैज्ञानिक पक्षपात को कम कर सकता है परन्तु पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर सकता। इन सब पृष्ठभूमियों के कारण प्राक्कल्पना के निर्माण में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। समस्या का चुनाव, प्राक्कल्पना का निर्माण, तथ्य-संकलन आदि में वस्तुनिष्ठता बनाए रखना कठिन हो जाता है। वैज्ञानिक अध्ययन करते समय अपनी संस्कृति, समाज, सामाजिक व्यवस्था, जाति, धर्म, भाषा आदि को उच्च मानता है तथा दूसरे समाज, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, जाति, भाषा, धर्म आदि को निम्न समझता है। यह मानव स्वभाव है। अत: सामाजिक अनुसन्धानों में वस्तुनिष्ठता बनाए रखना कठिन कार्य है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्राक्कल्पना जितनी उपयोगी है उससे कहीं अधिक कठिन कार्य व्यावहारिक अथवा उपयोगी प्राक्कल्पना का निर्माण करना है। सामाजिक अनुसन्धान में प्राक्कल्पना की भूमिका सभी चरणों में महत्वपूर्ण है। इसलिए इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

NOTES

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. प्राक्कल्पना से आप क्या समझते है? उपयोगी प्राक्कल्पना की विशेषताएँ लिखिए।
2. प्राक्कल्पना के स्त्रोतों का वर्णन कीजिए।
3. प्राक्कल्पना का अर्थ स्पष्ट करते हुए, इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. प्राक्कल्पना के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. प्राक्कल्पना की सीमाओं की विवेचना कीजिए।
3. प्राक्कल्पना के निर्माण में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. प्राक्कल्पना अंग्रेजी के शब्द का रूपान्तरण है–

   (अ) हाइपोथिसिस (ब) हाइपोडाइस

   (स) हाइपोड्राइक (द) इनमें से कोई नहीं

NOTES

2. प्राक्कल्पना की विशेषताएँ हैं–

(अ) स्पष्टता (ब) विशिष्टता

(स) आनुभविक सन्दर्भ (द) ये सभी।

3. ''प्राक्कल्पना एक अस्थाई अनुमान है।'' यह कथन किसका है–

(अ) बोगार्डस (ब) एस. जिनर

(स) पी. एच. मान (द) गुडे एवं हॉट।

4. प्राक्कल्पना के प्रकार है :

(अ) पाँच (ब) तीन

(स) चार (दा) दो।

5. प्राक्कल्पना के प्रर्वतक हैं –

(अ) के. पी. बैली (ब) जी. ए. लुण्डबर्ग

(स) पी. वी. यंग (द) ये सभी।

उत्तर– 1. (अ), 2. (द), 3. (स), 4. (ब) 5. (द)

NOTES

3 सामाजिक घटना का वैज्ञानिक अध्ययन

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ।
- वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण।
- सामाजिक घटना की प्रकृति की विशेषताएँ।
- सामाजिक घटना के वैज्ञानिक अध्ययन पर आपत्तियाँ एवं उनका समाधान।
- तर्क का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- सामाजिक अनुसंधानों में तर्क।
- अनुसंधान में तर्क का महत्व।
- आगमन पद्धति।
- आगमन पद्धति के दोष।
- निगमन पद्धति।
- निगमन पद्धति के गुण।
- निगमन पद्धति के दोष।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ।
- वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण।
- सामाजिक घटना की प्रकृति की विशेषताएँ।
- सामाजिक घटना के वैज्ञानिक अध्ययन पर आपत्तियाँ एवं उनका समाधान।
- तर्क का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- सामाजिक अनुसंधानों में तर्क।
- अनुसंधान में तर्क का महत्व।
- आगमन पद्धति।
- आगमन पद्धति के दोष।
- निगमन पद्धति।
- निगमन पद्धति के गुण।
- निगमन पद्धति के दोष।

प्राक्कथन

कुछ विद्वान सामाजिक घटनाओं को वैज्ञानिक अध्ययन से उपयुक्त नहीं मानते हैं। इसका कारण यह है कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति की विशेषताओं के रूप में जटिलता, अमूर्तता, अगम्यता, गुणात्मकता, गतिशीलता, आदि पाई जाती हैं। सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता का अभाव होता है। सामाजिक घटनाओं के बारे में भविष्यवाणी करना भी असम्भव है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि विज्ञान का सम्बन्ध किसी विषय सामग्री से नहीं होता है, बल्कि अध्ययन पद्धति से होता है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। प्राकृतिक घटनाओं की भाँति सामाजिक घटनाएँ भी अनायास घटित नहीं होती हैं। दोनों प्रकार की घटनाएँ कुछ नियमों तथा कारकों द्वारा संचालित होती हैं। इस कारण प्राकृतिक घटनाओं की भाँति ही सामाजिक घटनाओं का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है।

विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

हम यह कह सकते हैं कि 'विज्ञान' शब्द से विशेष अध्ययन-वस्तु प्रकट नहीं होती है। विज्ञान वैज्ञानिक पद्धति तथा उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान का द्योतक है। अत: स्पष्ट है कि, ''किसी भी अध्ययन-वस्तु के सम्बन्ध में वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा प्राप्त ज्ञान के क्रमबद्ध या नियमबद्ध संग्रह को विज्ञान कहा जाता है।'' बीसेंज और बीसेंज ने लिखा है, ''वह पद्धति है, न कि विषय-सामग्री जो विज्ञान की कसौटी है।''

इस प्रकार विज्ञान की प्रकृति के सन्दर्भ में तीन पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं- (1) विज्ञान किसी विशेष अध्ययन-वस्तु का एकाधिकार नहीं है अर्थात् कोई भी अध्ययन-वस्तु विज्ञान का अध्ययन-विषय हो सकता है। (2) इस अध्ययन-विषय का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किया जाना चाहिए। (3) किसी भी अध्ययन-विषय के बारे में वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त ज्ञान क्रमबद्ध या नियमबद्ध होना चाहिए। अत: वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त ज्ञान के इस क्रमबद्ध या नियमबद्ध संग्रह को ही विज्ञान कहा जाता है।

अत: स्पष्ट है कि विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का संग्रह करना है, जो वास्तविक तथ्यों के वर्गीकरण तथा विभिन्न तथ्यों के बीच कार्यकरण के सम्बन्धों और उनके पारस्परिक महत्व का विश्लेषण करने से ही हो सकता है। कार्ल पियर्सन के अनुसार, ''तथ्यों का वर्गीकरण, उनके क्रम और सापेक्षित महत्व को जानना ही विज्ञान का कार्य है।'' एक वैज्ञानिक तथ्यों का अध्ययन कर ज्ञान को प्राप्त करने के अलावा उसे क्रमबद्ध रूप में उपस्थित भी करता है, जिनसे तथ्य स्पष्ट हो सकें। प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्वाइनकेयर के अनुसार, ''विज्ञान तथ्यों से इस प्रकार बना है कि जिस प्रकार पत्थरों से मकान बना होता है, परन्तु तथ्यों का एकत्रीकरण उस प्रकार विज्ञान नहीं कहा जा सकता जिस प्रकार पत्थरों के ढेर को हम मकान नहीं कह सकते।'' कार्ल पियर्सन के अनुसार, ''समस्त विज्ञान की एकता केवल उसकी पद्धति में है, न कि उसकी अध्ययन सामग्री में।'' इसलिए विज्ञान को वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा प्राप्त ज्ञान का क्रमबद्ध संग्रह कहा जाता है।

(1) ग्रीन के अनुसार, ''विज्ञान अनुसन्धान की एक पद्धति है।''

(2) स्टुअर्ट चेज के अनुसार, ''विज्ञान पद्धति के साथ चलता है, विषय-वस्तु के साथ नहीं।''

(3) वेनबर्ग और शैबेत के अनुसार, ''के अनुसार ''विज्ञान संसार की ओर देखने की एक निश्चित पद्धति है।''

(4) लुण्डबर्ग के अनुसार, ''व्यापक अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति तथ्यों का क्रमबद्ध निरीक्षण, वर्गीकरण एवं विश्लेषण है।''

(5) कार्ल पियर्सन के अनुसार, ''समस्त विज्ञान की एकता उसकी पद्धति में है, न कि उसकी विषय-सामग्री में है।''

(6) बीसेंज और बीसेंज के अनुसार, ''विज्ञान की कसौटी विषय-सामग्री नहीं बल्कि दृष्टिकोण है।''

(7) मार्टिण्डेल और मोनाकेसी के अनुसार, ''वैज्ञानिक पद्धति से हमारा अभिप्राय उस तरीके से होता है जिसके अन्तर्गत विज्ञान प्रयोग सिद्ध ज्ञान की प्राप्ति हेतु अपनी आधारभूत प्रणालियों को संचालित करता है और अपने उपकरणों व प्रविधियों को प्रयोग में लाता है।''

ऊपर दी गयी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विज्ञान तथा वैज्ञानिक विधि किसी तथ्य अथवा प्रघटना से सम्बन्धित वस्तुनिष्ठ रूप से जानकारी प्राप्त करने का एक तरीका हैं इसमें अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग, वर्गीकरण और विश्लेषण के द्वारा वास्तविकता को समझने का प्रयत्न किया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा प्राप्त किया गया व्यवस्थित ज्ञान विज्ञान कहा जाता है।

वैज्ञानिक पद्धति क्या है?

सामाजिक घटनाओं का वास्तविक ज्ञान ज्ञात करने के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का अनुसरण किया जाना आवश्यक है क्योंकि ''विज्ञान का सम्बन्ध वैज्ञानिक पद्धतियों से है, न कि अध्ययन-वस्तु से।'' इस सम्बन्ध में कार्ल पियर्सन का कथन है कि, ''सत्य तक पहुँचने के लिए कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है, विश्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के द्वार से गुजरना होगा।''

वास्तविकता यह है कि वैज्ञानिक पद्धति अटकलबाजी और मनगढ़न्त धारणाओं से मुक्त है। वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किसी भी प्रकार की घटना के अध्ययन में चाहे वह भौतिक हो या सामाजिक, किया जा सकता है।

वैज्ञानिक पद्धति की मुख्य विशेषताएँ

मार्टिण्डेल तथा मोनाकेसी (Martindal and Monachesi) के अनुसार, ''विज्ञान भी विचार का एक तरीका है और अन्य सभी विचारों की तरह यह भी समस्याओं के प्रत्युत्तर में ही उदय होता है।'' यह वैज्ञानिक विधि तथ्यों एवं प्रघटनाओं को समझने की एक निश्चित कार्य पद्धति है, जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं-

(1) **प्रमाणिकता या सत्यापनशीलता-** वैज्ञानिक पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की सत्यता का परीक्षण किया जा सकता है। कोई भी वैज्ञानिक समान

NOTES

परिस्थितियों में वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की जाँच कर सकता है और समान परिणामों पर पहुँच सकता है। उदाहरण के लिए, यदि वैज्ञानिक पद्धति को प्रयोग करके निष्कर्ष यह आता है कि विघटित परिवार बाल-अपराध को प्रोत्साहित करते हैं तो इस निष्कर्ष की जाँच कोई भी व्यक्ति वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर कर सकता है और वास्तविकता का पता लगा सकता है। अत: वैज्ञानिक विधि दार्शनिक या काल्पनिक तथ्यों के संकलन पर बल न देकर उन तथ्यों के संकलन पर बल देता ही है जिनकी प्रमाणिकता की जाँच की जा सकती है।

(2) **वैषयिकता तथा तटस्थता या वस्तुनिष्ठता** - वैज्ञानिक पद्धति में वैषयिकता का गुण विद्यमान हैं कोई घटना, निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण व विश्लेषण के आधार पर जैसी दिखायी देती है, उसको उसी रूप में प्रकट कर देना तटस्थता कहलाती है। इसमें व्यक्तिपरक (Subjective) रूप से एवं उद्वेगों के आधार पर तथ्यों की व्याख्या नहीं की जाती। इस सम्बन्ध में श्री वुल्फ (Wolfe) ने लिखा है, ''समस्त ठोस ज्ञान प्राप्ति की प्रथम आवश्यकता नग्न तथ्यों को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय व योग्यता है और साथ ही बाहरी स्वरूप मात्रा प्रचलित विचार या व्यक्तिगत इच्छाओं से अप्रभावित रहता है।'' हमारे अपने विचारों, मनोवृत्तियों या उद्वेगों द्वारा अनुसन्धान अगर प्रभावित नहीं होता है तो उसे वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहा जाता है।

(3) **निश्चयात्मकता**- वैज्ञानिक पद्धति की तीसरी विशेषता उनका सुनिश्चित स्वरूप है। इसमें सन्देह पैदा करने वाली बातों पर बल नहीं दिया जाता है, अपितु स्पष्ट रूप से तथ्यों के सत्यापन पर बल दिया जाता है। सभी वैज्ञानिक इसका सुनिश्चित व स्पष्ट तरीके से अनुसरण करके किसी भी समय सत्य की खोज करते हैं। यह पद्धति सभी वैज्ञानिकों के लिए समान अवसर प्रदान करती है। निश्चयात्मकता के इसी गुण के कारण अनुसन्धान की विधि पहले से निर्धारित हो जाती है और प्राप्त होने वाले निष्कर्षों का निर्णय सामग्री विश्लेषण पर छोड़ दिया जाता है।

(4) **सामान्यता**- वैज्ञानिक विधि में सामान्यतया का गुण विद्यमान है। इसी प्रकार के विज्ञानों में इसका एक ही निश्चित रूप मिलता है। इसे सामान्य विधि इसलिए भी कहा जाता है, क्योंकि इसके द्वारा सामान्य नियमों का निर्माण किया जाता है। यह सामान्यता दो अर्थों में दृष्टिगोचर होती है-

(i) वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान की सभी शाखाओं के लिए सामान्य होती है। इस सम्बन्ध में कार्ल पियर्सन का कहना है कि, ''वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की सभी शाखाओं में सामान्य होती हैं।''

(ii) वैज्ञानिक पद्धति सामान्य सत्य को निकालने पर बल देती है।

इसका अभिप्राय यह है कि वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा जो नियम निकाला जाता है: वह घटना के अन्तर्गत किसी एक इकाई के लिए लागू नहीं होता बल्कि समूह की सभी इकाइयों पर समान रूप से लागू होता है। यदि किसी बाल-अपराधी समूह के प्रतिनिधि के रूप में किया जाता है। इस प्रकार उसके सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनको समस्त उस समूह पर लागू किया जाता है जिसका कि वह बाल-अपराधी प्रतिनिधि है।

(5) **क्रमबद्धता**- वैज्ञानिक पद्धति अध्ययन व्यवस्थित और क्रमबद्ध प्रणाली को अपनाने में बल देती है। इसके द्वारा अनुसन्धान में समस्या से सम्बन्धित तथ्य संकलन करने में सहायता मिलती है। वैज्ञानिक पद्धति की प्रत्येक प्रणाली के दो पक्ष होते हैं- (i) तकनीकी पक्ष, (ii) तार्किक पक्ष। तकनीकी पक्ष सामग्री के संकलन से सम्बन्धित होता है। तकनीकी और तार्किक पक्ष तथ्यों से निर्धारण एवं निश्चित व्यवस्था क्रम को बनाये रखा जाता है क्योंकि इसी के आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन की सफलता निर्भर होती है।

(6) **पूर्वानुमान या भविष्यवाणी** - वैज्ञानिक विधि क्रमबद्ध रूप से अध्ययन पर बल देती है तथा इसके द्वारा कार्य-कारण सम्बन्धों का भी ज्ञान हो जाता है, इसलिए इसमें भविष्य की ओर संकेत करने का गुण पाया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति द्वारा निकाला गया आज का सत्य भविष्य में भी समान परिस्थितियों या अवस्थाओं में सत्य रहता है। उदाहरण के लिए, यदि वास्तविक अध्ययन के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि बाल-अपराधयों की संख्या में वृद्धि का एक कारण अश्लील साहित्य और चलचित्र हैं तो यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि यदि अश्लील साहित्य और चलचित्रों पर रोक न लगायी गयी तो बढ़ते हुए बाल-अपराधों को रोकना असम्भव है।

(7) **कार्य-कारण सम्बन्ध**- वैज्ञानिक विधि की एक अन्य प्रमुख विशेषता इसका कार्य-कारण सम्बन्धों पर बल देना है। यह विधि किसी प्रघटना के कारण या परिणाम दोनों का पता लगाने में सहायक होती है। किन्तु जब हम वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं तो एक समय में एक घटना के एक सामाजिक कारक की भी जानकारी हासिल कर लेते हैं।

वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण

(1) **समस्या का चुनाव** - वैज्ञानिक पद्धति का प्रथम चरण समस्या का चुनाव है। किसी भी शोध कार्य के लिए समस्या का होना आवश्यक है। किसी सामाजिक समस्या का निर्धारण करके उसके बारे में पूर्ण ज्ञान उस समय से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करके तथा तत्सम्बन्धित व्यक्तियों से सम्पर्क करके प्राप्त कर लेना चाहिए। समस्या का निर्धारण करते समय समस्या से सम्बन्धित तथ्यों की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में होने का ध्यान रखना चाहिए ताकि सर्वेक्षण आसानी से पूर्ण हो सके।

(2) **प्राक्कल्पना या उपकल्पना का निर्माण**- किसी भी समस्या का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए समस्या के चुनाव के बाद दूसरा चरण उपकल्पना का प्रतिपादन करना है। उपकल्पना का अभिप्राय समस्या के सम्बन्ध में अनुमानित जानकारी प्राप्त करना है। इस अनुमानित जानकारी के आधार पर निश्चित किये गये विषय की रूपरेखा बनाकर अनुसन्धान आरम्भ किया जाता है। अन्त में उपकल्पना की सत्यता व परीक्षा सम्भव हो जाती है। वस्तुत: प्राक्कल्पना वे पूर्व विचार होते हैं जो अनुसन्धानकर्ता के ज्ञान, अनुभव तथा सूचना के आधार पर निश्चित किये गये विषय की रूपरेखा बनाकर अनुसन्धान आरम्भ किया जाता है। अन्त में उपकल्पना की सत्यता व परीक्षा सम्भव हो जाती है। वस्तुत: प्राक्कल्पना वे पूर्व विचार होते हैं जो अनुसन्धानकर्ता के ज्ञान, अनुभव तथा सूचना के आधार पर बनते हैं।

NOTES

(3) **निरीक्षण एवं तथ्य संकलन** – वैज्ञानिक पद्धति का तीसरा चरण निरीक्षण है। अवलोकन के द्वारा समस्या से सम्बन्धित घटना का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। गुडे एवं हॉट ने इस सम्बन्ध में लिखा है, ''विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है और फिर प्रमाणीकरण के लिए अन्तिम रूप से निरीक्षण पर ही लौटकर आना पड़ता है।''

(4) **तथ्यों का सत्यापन, वर्गीकरण एवं सारणीयन** – निरीक्षक द्वारा प्राप्त तथ्यों को एक बार पुन: सत्यापित किया जाता है। परीक्षण की इस विधा को विज्ञान की शब्दावली में सत्यापन कहा जाता है। सत्यापित तथ्य को सही रूप में प्रयोग करने के लिए उन्हें विभाजित करते है। और विभिन्न प्रकार की सारणियों में सजाकर उनकी सारगर्भित व्याख्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं। समानता के आधार पर तथ्यों को अलग-अलग वर्गों, उपवर्गों में बाँटकर सारणी तैयार की जाती है। तथ्यों का ढेर शोधकर्ता को निष्कर्ष पर नहीं पहुँचाता है।

(5) **तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या** – एकत्रित तथ्यों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाता है। इन तथ्यों में कार्य-कारण सम्बन्ध के आधार पर उनकी व्याख्या की जाती है। कोई घटना घटने का कारण निश्चित रूप से होता है। इसी आधार पर नये नियमों का प्रतिपादन किया जाता है तथा पुराने नियमों का परीक्षण करना सम्भव होता है। इस प्रकार बिना तथ्यों के विश्लेषण और व्याख्या के संकलित तथ्य निरर्थक होते हैं।

(6) **सामान्यीकरण**-वैज्ञानिक पद्धति का छठवां चरण सामान्यीकरण है। इस चरण पर आकर शोधकर्ता संकलित तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या के बाद एक सामान्य निष्कर्ष निकालता है। नये नियमों का प्रतिपादन करता है। इन नियमों को ही विज्ञान की भाषा में सिद्धान्त कहा जाता है। इनके समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ ही नियमों में परिवर्तन भी होता रहता है।

(7) **भविष्यवाणी** – वैज्ञानिकता का एक उद्देश्य भविष्यवाणी करना भी है। वैज्ञानिक पद्धति का अन्तिम चरण यह है कि विशेष परिस्थितियों में निश्चित परिणाम प्राप्त होते हैं। इन परिणामों के आधार पर भविष्यावणी करने की क्षमता भी विज्ञान में होनी चाहिए। भौतिक विज्ञान में स्थितियाँ स्थिर होने के कारण निश्चित भविष्यवाणी की जा सकती है, जबकि सामाजिक विज्ञानों में स्थितियाँ स्वभाव एवं घटनाएँ सदैव परिवर्तित होती रहती हैं इस कारण भविष्यवाणी करना कठिन होता है। फिर भी भविष्यवाणी करने का गुण समाज विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में सम्भव है।

मूल्यांकन – उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का संग्रह करना है। यह कार्य वास्तविक तथ्यों के वर्गीकरण तथा विभिन्न तथ्यों के बीच कार्य-कारण के सम्बन्धों और उनके पारस्परिक महत्व का विश्लेषण करने से हो सकता है। कार्ल पियर्सन के अनुसार, ''तथ्यों का वर्गीकरण, उनके क्रम और सापेक्षिक महत्व की योजना ही विज्ञान का कार्य है।'' एक वैज्ञानिक तथ्यों का अध्ययन कर ज्ञान को प्राप्त करने के अलावा उसे क्रमबद्ध रूप में उपस्थित भी करता है, जिससे तथ्य स्पष्ट हो सकें।

सामाजिक घटना की प्रकृति की विशेषताएँ

NOTES

सामाजिक घटनाओं का अध्ययन भौतिक घटनाओं की भाँति करना असम्भव है। इनकी प्रकृति में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) **जटिलता** – सामाजिक घटना की प्रकृति की प्रथम विशेषता मानव व्यवहारों एवं सम्बन्धों की जटिलता हैं मानव व्यवहार एवं सम्बन्धों पर भौतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि कारणों का प्रभाव पड़ता है। इसलिए इन सम्बन्धों पर यदि किसी एक कारक का प्रभाव जानना हो तो अति कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मानव व्यवहारों में परिवर्तन होता रहता है। अत: ये जटिल हो जाते हैं। यही जटिलता भौतिक घटनाओं के अध्ययन की तरह सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में कठिनाई उत्पन्न कर देती है।

(2) **अमूर्तता**–भौतिक घटनाएँ मूर्त होती हैं। इन्हें देखा जा सकता है, लेकिन सामाजिक घटनाएँ या व्यवहार अमूर्त होते हैं, उन्हें देखा नहीं जा सकता, इन्हें तो केवल अनुभव किया जा सकता है। इसलिए इनका प्रत्यक्ष अध्ययन सम्भव नहीं है। मनुष्य की भावनाएँ, विचार, आदर्श, स्नेह, प्रतिमान आदि अमूर्त होते हैं। इसलिए इनको प्रतीक रूप में ही व्यक्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए इनके अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की कमी रहती है।

(3) **सार्वभौमिकता का अभाव** – सामाजिक घटनाओं में भौतिक घटनाओं की तरह सार्वभौमिकता का गुण नहीं होता है। उदाहरणार्थ, भौतिक विज्ञान में गुरुत्वाकर्षण का गुण सार्वभौमिक है। लेकिन सामाजिक घटनाएँ जैसे राजनीति में नीतियाँ सम्पूर्ण विश्व में एक जैसी नहीं हैं। भारत में दहेज पर प्रतिबन्ध है लेकिन अमेरिका में दहेज प्रथा नहीं है। इस प्रकार सामाजिक घटनाएँ सार्वभौमिक न होने के कारण उनका वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं है। यही कारण है कि इनके वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालने के बाद भी निष्कर्ष सार्वभौमिक नहीं हो सकते हैं।

(4) **गुणात्मकता**– सामाजिक घटनाएँ गुणात्मक होती हैं, जबकि भौतिक घटनाएँ परिमाणात्मक होती हैं। इन्हें मापा जा सकता है लेकिन मानवीय व्यवहार को मापा नहीं जा सकता है। उदाहरणार्थ, पानी का विश्लेषण करके यह मापा जा सकता है कि पानी में कितनी मात्रा में हाइड्रोजन है और कितनी मात्रा में ऑक्सीजन है। सामाजिक घटना को मापना असम्भव है। उदाहरणार्थ, मानवीय व्यवहार में सहयोग और संघर्ष की मात्रा को मापा नहीं जा सकता है। अत: वैज्ञानिक अध्ययन करना कठिन हैं

(5) **गतिशील प्रकृति** – सामाजिक घटनाएँ परिवर्तित होती रहती हैं। इस गतिशीलता के कारण सामाजिक घटनाओं के विषय में निरीक्षण के अभाव में कोई सार्वभौमिक सत्य नियम निकालना कठिन है। व्यक्ति का व्यवहार जो आज है, वह कल बना रहेगा, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। फक्कड़ डाकू द्वारा आत्मसमर्पण किए जाने के सम्बन्ध में कोई पूर्व से अनुमान नहीं लगा सकता था। अत: मानवीय व्यवहार की गतिशीलता के कारण वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना कठिन है।

(6) **भविष्यवाणी का अभाव** – वैज्ञानिक अध्ययन की महत्वपूर्ण कसौटी भविष्यवाणी करना हैं इसके द्वारा वर्तमान में प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर भविष्य की घटनाओं का पूर्वानुमान किया

जा सकता है। भौतिक अथवा प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन करके निकाले गए निष्कर्ष सार्वभौमिक सत्य सिद्ध होते हैं। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जैसे- अमूर्तता, परिवर्तनशीलता, गुणात्मकता आदि के कारण घटनाओं में जटिलता आ जाती है। अतः इनके सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना अत्यन्त कठिन कार्य है। अतः भविष्यवाणी के अभाव में सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना असम्भव है।

(7) **सामाजिक घटना के कार्य-कारण की परस्पर निर्भरता** - सामाजिक घटनाएँ जटिल प्रकृति की होने के कारण कार्य और कारण इतने घनिष्ठता से सम्बन्धित होते हैं कि उनका पता लगाना कठिन है कि कौन-से तथ्य कार्य के हैं और कौन-से तथ्य कारण के है। उदाहरणार्थ, निर्धनता और ऋणग्रस्तता दोनों ही एक-दूसरे के कारण तथा कार्य हैं। निर्धनता से ऋणगस्तता की समस्या उत्पन्न होती है तथा ऋणगस्तता से निर्धनता आती है।

सामाजिक घटना के वैज्ञानिक अध्ययन पर आपत्तियाँ एवं उनका समाधान

सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन पर लगने वाले आरोप निम्नलिखित हैं -

(1) **सामाजिक घटनाओं की जटिलता के कारण समाजशास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं**-लुडबर्ग ने लिख है कि, ''कदाचित मानव समूह के व्यवहार से सम्बन्धित वास्तविक विज्ञान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बाधा उसकी विषय-सामग्री की जटिलता है।''

अर्थात् सामाजिक घटनाएँ परिवर्तनशील होती हैं। इसलिए इनकी प्रकृति जटिल होती है। एक स्थान और एक ही समय पर व्यक्तियों के व्यवहार समान नहीं होते हैं। उनमें भिन्नता पायी जाती है। सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित कारकों का पता लगाने से ज्ञात होता है कि एक कारक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। यह सामाजिक घटना में जटिलता उत्पन्न करना है। अतः सामाजिक घटना की यह प्रकृति ही अनुसन्धानकर्ता के लिए वैज्ञानिक अध्ययन में समस्या उत्पन्न करती है।

समाधान - सामाजिक घटना की जटिलता के आधार पर उसे वैज्ञानिक अध्ययन के अयोग्य नहीं माना जा सकता है। किसी घटना के जटिल या सरल होने की बात हमारे ज्ञान पर निर्भर करती हैं। लुडबर्ग अनुसार, ''कोई भी परिस्थिति या व्यवहार की घटना तब जटिल होती है, जब हम उसे समझते नहीं हैं। जटिलता सदैव सापेक्षिक है। एक व्यवहार विषय के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अथवा पूर्ण नियन्त्रण के सम्बन्ध में हमें ज्ञान होता है, जबकि दूसरे व्यक्ति को नहीं। अतः इस आधार पर सामाजिक घटना को वैज्ञानिक अध्ययन के अयोग्य नहीं माना जा सकता है।''

(2) **सामाजिक घटनाओं की अमूर्तता एवं व्यक्तिनिष्ठता** - दूसरे आरोप यह है कि सामाजिक घटनाएँ अमूर्त होती हैं, इसलिए् उन्हें भौतिक घटनाओं की तरह अवलोकित नहीं किया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक घटनाएँ व्यक्तिनिष्ठ होती हैं इसलिए सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन में समस्या आती है।

NOTES

समाधान – वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि सामाजिक और भौतिक घटनाओं को एक ही विधि द्वारा समझा जा सकता है। लुण्डबर्ग के अनुसार, ''प्रथा, परम्परा, विचार, अनुभव आदि सभी प्रकार के निरीक्षण योग्य मानवीय व्यवहार ही हैं और अन्य किसी भी प्रकार के व्यवहार की तरह इनका भी उसी सामान्य पद्धति द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। यह सच है कि विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का निरीक्षण करने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रविधियों तथा उपकरणों का प्रयोग करना ही होगा।''

(3) **सामाजिक घटनाओं की गुणात्मकता** – आरोप लगाया गया है कि भौतिक घटनाएँ परिमाणात्मक होती हैं, जबकि सामाजिक घटनाएँ गुणात्मक होती हैं। घटनाओं की गुणात्मकता वैज्ञानिक अध्ययन में बाधा बन जाती है।

समाधान – परिमाणात्मक और गुणात्मक तथ्यों के बीच का अन्तर अवैज्ञानिक हैं यह अन्तर तो विकसित प्रविधियों का द्योतक हैं अविकसित प्रविधियों के अभाव में गुणात्मक वर्णन ही करना पड़ता है, जबकि प्रविधियाँ विकसित हो जाने पर घटनाओं का गणनात्मक विश्लेषण करते हैं।

(4) **समाजिक घटनाओं को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता** – कुछ विद्वान यह आरोप लगाते हैं कि भौतिक घटनाओं की तरह सामाजिक घटनाओं को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है। अत: इनका वैज्ञानिक अध्ययन असम्भव है।

समाधान – सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में यह आरोप भी सारहीन है, क्योंकि सामाजिक घटना या मानव समाज का उन्मुक्त रूप से वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। यही नहीं, नियन्त्रित अवलोकन पद्धति द्वारा हम सामाजिक घटनाओं को नियन्त्रित करके अध्ययन करते हैं।

मूल्यांकन – उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक घटनाओं की जटिलता, अमूर्तता एवं व्यक्तिनिष्ठता, गुणात्मकता, समरूपता का अभाव, गतिशीलता, भविष्यवाणी का अभाव तथा नियन्त्रित परिस्थितियों में निरीक्षण न करना आदि आरोपों को निराधार ही माना जा सकता है। इन कठिनाइयों को हम दूर करके सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन कर सकते हैं।

भूमिका – मानव एक सामाजिक प्राणी है। समूह में रहकर वह विभिन्न प्रकार के अनुभव करता है। इस प्रकार अनुभव द्वारा वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है। अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता है।

ज्ञान प्राप्त करने का दूसरा तरीका तर्क होता है। व्यक्ति किसी वस्तु या घटना के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने हेतु अनुमान का सहारा लेता है और तर्क के माध्यम से जानकारी प्राप्त करता है तो इस प्रकार से प्राप्त किया गया ज्ञान अप्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। विभिन्न तर्कशास्त्रियों ने माना है कि तर्क अप्रत्यक्ष ज्ञान से सम्बन्धित है। सामाजिक विद्वानों में तर्क द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। तर्क करने वाले विज्ञान को तर्कशास्त्र कहा जाता है। अप्रत्यक्ष ज्ञान पुरुषों से प्राप्त होता है जो साक्ष्य के रूप में प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं।

NOTES

तर्क का अर्थ (Meaning of Logic)

तर्कशास्त्र अंग्रेजी भाषा के 'Logic' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। 'Logic' शब्द 'लॉगस' (Logus) शब्द से बना है, इसका अभिप्राय विचार को व्यक्त करना है। विचार करने से प्राप्त होता है। जब विवेकपूर्ण चिन्तन किया जाता है तो मन की इस प्रक्रिया को 'तर्क' कहा जाता है। तर्क करने में सर्वप्रथम कठिनाई का अनुभव होता हैं तत्पश्चात् इस कठिनाई की स्थापना करके परिभाषा की जाती है, फिर सूचना एकत्र करके उनको वर्गीकृत किया जाता है। इन्हीं वर्गीकृत सूचनाओं को आधार बनाकर उपकल्पना का मूल्यांकन किया जाता है।

तर्क की प्रक्रिया आगमन और निगमन दो रूपों में चलती है। जब सामान्य से विशेष की ओर प्रक्रिया चलती है तब इसे आगमन विधि कहते हैं और जब विशेष से सामान्य की ओर प्रक्रिया चलती है तब इसे निगमन विधि कहते है। इन दोनों ही परिस्थितियों में कुछ ज्ञात तथ्यों के माध्यम से अज्ञात की खोज की जाती है। यही कारण है कि तर्कशास्त्र के विषय-क्षेत्र को आगमन और निगमन दो भागों में बाँटा जा सकता है।

तर्कशास्त्र की परिभाषाएँ

मिल के अनुसार, ''तर्कशास्त्र बुद्धि की उन क्रियाओं का विज्ञान है जो प्रमाण के मूल्यांकन में उपयोगी है तथा यह ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यों तक पहुँचने की प्रक्रिया तथा उसमें सहायता देने वाली सभी अन्य बौद्धिक क्रियाओं पर विचार करता है।''

प्रारम्भ में अनुसन्धानकर्ता तार्किक पद्धति का अत्यधिक प्रयोग करते थे। वे तर्क के आधार पर ही 'पद्धति' को परिभाषित करते थे।

कोसा के अनुसार, ''पद्धति शब्द का अर्थ उस तर्कपूर्ण प्रक्रिया से होता है, जिसका उपयोग सच्चाई को खोजने या उसे दर्शाने के लिए किया जाता है।''

सामाजिक अनुसन्धानों का तर्क

सामाजिक अनुसन्धानों में तर्क का प्रयोग व्याख्या करने के लिए किया जाता है। कार्य-कारण सम्बन्धों के ज्ञान हेतु तथा क्यों और कैसे आदि प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने, ज्ञान की वृद्धि हेतु तथा जिज्ञासा की तुष्टि हेतु तर्क को अत्यन्त उपयोगी माना जाता है। जब तर्क द्वारा व्याख्या की जाती है तो आगमन एवं निगमन विधियों के प्रयोग के साथ-साथ नियमों तथा विभिन्न तथ्यों की खोज की जाती है और यत्र-तत्र बिखरे तथ्यों को वर्गीकृत किया जाता है। तर्क समानता और अनुमान में भी सहायक होते हैं।

प्रमाण के मूल्यांकन में सहायक— सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान में तर्क का प्रयोग प्रमाण के मूल्यांकन के लिए भी किया जाता है। तर्कशास्त्र को सत्य का तो विज्ञान मानते ही हैं, आत्मसंगति का भी विज्ञान मानते हैं। दृश्यनिष्ठ तर्कशास्त्री तर्क के आधार पर वाक्य की यथार्थता तथा निर्णय की वस्तुनिष्ठता की परीक्षा करते है।। तर्कशास्त्र साक्ष्य के अध्ययन में सहायक है। अधिकांश अन्धविश्वास गलत तर्कों पर आधारित होते हैं जिन्हें सामाजिक अनुसन्धान द्वारा दूर किया जा सकता है।

अनुसन्धान में तर्क का महत्व

सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान में तर्क का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुसन्धान में तर्क का प्रयोग करके अनेक भूलों से हम बच जाते हैं। तर्क द्वारा यह भी पता चल जाता है कि किस बात में तार्किक रूप में क्या निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं तथा कौन-कौन से निष्कर्ष गलत हैं। तर्क द्वारा दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों के दोषों को आसानी से समझा जा सकता है। तर्क सिद्धान्त के निर्माण में भी सहायक है। सिद्धान्तों का निर्माण करते समय सामान्य से विशेष या विशेष से सामान्य की ओर तर्क किया जाता है। इस प्रकार तर्क वैज्ञानिक खोज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता हैं तार्किक पद्धति के अन्तर्गत मुख्य रूप से दो पद्धतियाँ आगमन और निगमन प्रयोग में लायी जाती हैं।

आगमन पद्धति

आगमन पद्धति में हम विशिष्ट से सामान्य की ओर अध्ययन करते है। सूक्ष्म से व्यापक की ओर अध्ययन करते हैं। आगमन के विश्लेषण में सामान्य या कम सामान्य से अधिक सामान्य का सही अनुमान लगाने से सम्बन्धित तार्किक विश्लेषण किया जाता है। इसमें ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने का प्रयास किया जाता है और भी स्पष्ट रूप में इस पद्धति के अन्तर्गत तर्क के सन्दर्भ में बहुत-सी विशिष्ट घटनाओं अथवा वास्तविक तथ्यों के निरीक्षण व अध्ययन के आधार पर सामान्य सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है। इसके पश्चात अनुभव तथा प्रयोग के आधार पर इस सामान्य सिद्धान्त की जाँच की जाती है। जैसे हमारे सामने या आस-पास के विभिन्न व्यक्ति रमेश, सुरेश, धनीराम, रामनाथ आदि विभिन्न मनुष्यों को मरते हुए देखकर हम यह सामान्य सिद्धान्त बना सकते हैं कि मनुष्य मरणशील है। इसी प्रकार परिवार में माता द्वारा नौकरी करने पर घर में बच्चे अकेले रह जाते हैं जिससे उनमें अपराध की प्रवृत्ति उत्पन्न होते देखकर हम यह सामान्य निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि माता द्वारा नौकरी करने पर बच्चों में अपराध प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। यहाँ पर तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर है। कार्य-कारण सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति में प्रत्येक घटना का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है, इसीलिए वैज्ञानिक प्रत्येक घटना के कारण को ही खोजने का प्रयत्न करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आगमन पद्धति में अनुभवों के आधार पर नियम बनाये जाते हैं। यही कारण है कि इस पद्धति का दूसरा नाम अनुभवाश्रित पद्धति भी है।

पी. वी. यंग के अनुसार, ''आगमन किसी विशिष्ट तथ्य से तथ्य की सम्पूर्ण श्रेणी को वास्तविक तथ्यों से सामान्य तथ्यों को तथा व्यक्तिगत उदाहरणों से सार्वभौमिक उदाहरणों को तर्क के आधार पर समझने की एक प्रक्रिया है।''

अनेक विद्वान इस पद्धति को ऐतिहासिक पद्धति की संज्ञा देते हैं किन्तु इस पद्धति को आगमन पद्धति कहना ही उचित भी है। इसका कारण यह है कि इसमें पर्याप्त मात्रा में समानता दिखाई देती हैं इसमें कुछ इकाइयों के बारे में भी अनुमान लगा लिया जाता है।

इस पद्धति के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

(1) **वास्तविक निष्कर्ष** - आगमन पद्धति का प्रथम गुण यह है कि इस पद्धति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष वास्तविकता के निकट होते हैं क्योंकि इसके निष्कर्ष विशिष्ट घटनाओं और तथ्यों के निरीक्षण के आधार पर निकाले जाते हैं।

NOTES

(2) **गतिशील दृष्टिकोण** - आगमन पद्धति में बदली हुई परिस्थितियों में नवीन विशिष्ट तथ्य या घटनाओं के सामने आ जाने के कारण दृष्टिकोण अधिक गतिशील हो जाता है।

(3) **निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा सम्भव** - आगमन पद्धति के माध्यम से निकाले गये निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा सम्भव होती है। इसका कारण यह है कि जरूरत पड़ने पर निष्कर्षों को अन्य तथ्यों तथा बदले हुए तथ्यों द्वारा जाँचा जा सकता है।

(4) **निगमन पद्धति की पूरक** - आगमन पद्धति निगमन पद्धति की पूरक होती है। इसका आशय यह है कि निगमन पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की जाँच तथा सुधार आगमन पद्धति द्वारा किया जा सकता है। इस अर्थ में यह पद्धति निगमन पद्धति की पूरक होती है।

आगमन पद्धति के दोष

आगमन पद्धति के दोष निम्नलिखित हैं-

(1) **कठिन प्रयोग** - आगमन पद्धति का प्रयोग करना कोई सरल कार्य नहीं है। इस पद्धति में विशिष्ट घटनाओं का वैज्ञानिक निरीक्षण करना तथा उनके अनुक्रम को खोज निकालना बहुत कठिन कार्य होता है। इस पद्धति के प्रयोग करने से पूर्व अनुसन्धानकर्ता को आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है।

(2) **निष्कर्षों की यथार्थता में सन्देह** - आगमन पद्धति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों में यथार्थता का अभाव होता हैं खास तौर से उस स्थिति में जब निरीक्षण का क्षेत्र बहुत छोटा और सीमित होता है। थोड़े से आँकड़ों के आधार पर ही निकाले गये निष्कर्षों में यथार्थता कम होती है या निष्कर्ष सन्देहास्पद होते हैं।

(3) **पक्षपातपूर्ण निष्कर्षों की सम्भावना** - आगमन पद्धति का यह भी दोष है कि इसमें अनुसन्धानकर्ता आँकड़ों को अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी तरफ तोड़-मरोड़ सकता है। अत: इसके अन्तर्गत पक्षपातपूर्ण निष्कर्षों की सम्भावना बनी रहती हैं ऐसे पक्षपातपूर्ण आँकड़ों से किसी भी प्रकार के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

निगमन पद्धति

निगमन पद्धति आगमन पद्धति के विपरीत होती है। इस पद्धति में कुछ सामान्य तथ्यों को आधार मानकर कार्य आरम्भ किया जाता है और इन मान्यताओं के सन्दर्भ में 'तर्क' का प्रयोग करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस पद्धति में तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है अर्थात् इस पद्धति में हम सामान्य सत्य के आधार पर विशिष्ट सत्य का अनुमान लगाते हैं तथा तर्क के आधार पर उनका अनुमोदन करते हैं। इस सम्बन्ध में पी. वी. यंग का कथन है, ''निगमन सामान्य से विशिष्ट, सार्वभौमिक से व्यक्तिगत तथा किन्हीं आधार वाक्यों से उनकी अनिवार्य विशेषताओं को तर्क के आधार पर निकालने की एक प्रक्रिया है।''

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि निगमन प्रणाली द्वारा अनुसन्धानकर्ता जिन विशिष्ट तथ्यों को ज्ञात करता है, उनका सामाजिक घटना तथा तथ्यों के सम्बन्ध में प्रचलित सामान्य नियमों के आधार पर अनुमोदन करता है।

निगमन प्रणाली द्वारा मौलिक मान्यताओं और धारणाओं के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वही अध्ययन विषय के सम्बन्ध में नियम होते हैं। इन निष्कर्षों में 'तर्क' का प्रमुख स्थान होता है। जैसे – यह मान्यता है कि मनुष्य एक मरणशील प्राणी है। इस पर हम तर्क द्वारा यह सिद्ध कर सकते हैं कि 'प्रकाश' एक मरणशील प्राणी हे, क्योंकि 'प्रकाश' एक मनुष्य है। अत: वह भी मरणशील है।

अत: स्पष्ट है कि मानव स्वभाव व व्यवहार के सम्बन्ध में जो सामान्यताएँ हैं उनके आधार पर निगमन पद्धति की सहायता से हम विभिन्न महत्वपूर्ण निष्कर्षों को निकाल सकते हैं।

निगमन पद्धति के गुण

निगमन पद्धति के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

(1) **सरलता का गुण** – निगमन पद्धति का प्रमुख गुण सरलता है। इसमें समंक एकत्र करने तथा उनका विश्लेषण करने में कठिन कार्य नहीं करने पड़ते हैं। इनमें केवल सामान्य मान्यता के आधार पर तर्क के माध्यम से निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(2) **सार्वभौमिकता** – इस पद्धति का यह गुण है कि इसके द्वारा निकाले गये निष्कर्ष तथा नियम प्रत्येक समय तथा प्रत्येक देश में सत्य होते हैं। इसका कारण यह है कि निष्कर्ष मनुष्य की प्रकृति तथा सामान्य मान्यताओं पर आधारित होते है।

(3) **स्पष्टता तथा निश्चितता** – निगमन पद्धति का यह भी गुण है कि यदि स्वयंसिद्ध तथ्य तथा मान्यताएँ यदि ठीक हों तो इस पद्धति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष निश्चित तथा यथार्थ एवं स्पष्ट होते है क्योंकि इसमें तर्क के द्वारा समस्याओं को दूर कर दिया जाता है।

(4) **निष्पक्षता** – निगमन पद्धति का एक विशिष्ट गुण यह भी है कि इसके द्वारा अध्ययन करने में अनुसन्धानकर्ता पक्षपात नहीं कर पाता है। वह निष्पक्ष होकर कार्य करता है। इसका कारण यह है कि इस पद्धति में निष्कर्षों को सामान्य सत्य के आधार पर तर्क की कसौटी पर परखकर निकाला जाता है, परिणामस्वरूप अनुसन्धानकर्ता निष्कर्षों को अपने विचार तथा दृष्टिकोण से प्रभावित नहीं कर सकता। अत: निष्कर्षों में निष्पक्षता बनी रहती है।

निगमन पद्धति के दोष

निगमन पद्धति के दोष निम्नलिखित हैं –

(1) **अवास्तविक निष्कर्षों की सम्भावना** – इस पद्धति का प्रथम दोष यह भी है कि जिन मान्यताओं के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे हमेशा सत्य या वास्तविक ही नहीं होते हैं। अवास्तविक मान्यताओं के आधार पर असत्य तथा अवास्तविक ही निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के निष्कर्ष वैज्ञानिक न होकर केवल बौद्धिक 'खिलौने' मात्र होते हैं।

(2) **निष्कर्ष सार्वभौमिकता से दूर** – निगमन पद्धति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों के सम्बन्ध में यह सम्भावना की जाती है कि वे सार्वभौमिक नहीं होते हैं क्योंकि प्रत्येक समाज और समय में सामाजिक दशाएँ एक–सी नहीं होती हैं। अत: एक समाज और समय विशेष के सन्दर्भ में तर्क

द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को दूसरे समाज व समय पर लागू नहीं किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में ए. पी. लर्नर ने लिखा है, ''निगमन को सार्वभौमिक नहीं माना जा सकता।''

मूल्यांकन - यद्यपि सामाजिक विज्ञानों में आगमन तथा निगमन दोनों पद्धतियों से अध्ययन किया जाता है लेकिन किसी एक पद्धति से अध्ययन कर लेने मात्र से विषय को पूरी गम्भीरता से नहीं माना जा सकता है। अत: आगमन और निगमन दोनों पद्धतियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं। ये सामाजिक अध्ययनों एवं अनुसन्धानों में सामान्य निष्कर्ष निकालने में समर्थ हो सकती हैं।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. विज्ञान से आप क्या समझते है? वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
2. आगमन तथा निगमन पद्धति की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सामाजिक घटना की प्रकृति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. सामाजिक घटना के वैज्ञानिक पर प्रकाश डालिए।
3. तर्क का अर्थ स्पष्ट करते हुए, इसकी परिभाषाएँ दीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ''विज्ञान अनुसन्धान की एक पद्धति है।'' यह कथन किसका है-

   (अ) ग्रीन (ब) कार्ल पियर्सन

   (ब) लुण्डबर्ग (स) इनमें से कोई नहीं।

2. विज्ञान की विशेषताएँ हैं-

   (अ) निश्चयात्मकता (ब) सामान्यता

   (स) प्रमाणिकता (द) ये सभी।

3. तर्कशास्त्र अंग्रेजी भाषा के शब्द का हिन्दी रूपान्तर है-

   (अ) Location (ब) Logic

   (स) Latuse (द) Longe

4. निगमन पद्धति के गुण हैं -

   (अ) सार्वभौमिकता (ब) निष्पक्षता

   (स) सरलता (द) ये सभी।

उत्तर - 1. (अ), 2. (द), 3. (ब), 4. (द)।

4 सामग्री के प्रकार एवं स्त्रोत

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- सामग्री का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- सामग्री के प्रकार।
- सामग्री के स्त्रोत।
- अवलोकन का अर्थ।
- अवलोकन की विशेषताएँ।
- अवलोकन की प्रक्रिया।
- अवलोकन के प्रकार।
- अवलोकन के गुण।
- अवलोकन की उपयोगिता।
- अवलोकन की विश्वसनीयता के उपाय।
- साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- साक्षात्कार की विशेषताएँ।
- साक्षात्कार की प्रक्रिया।
- साक्षात्कार का प्रतिवेदन।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्रकार।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की कार्यविधि।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का महत्व।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के दोष
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में सावधानियाँ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- सामग्री का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- सामग्री के प्रकार।
- सामग्री के स्त्रोत।
- अवलोकन का अर्थ।
- अवलोकन की विशेषताएँ।

NOTES

- अवलोकन की प्रक्रिया।
- अवलोकन के प्रकार।
- अवलोकन के गुण।
- अवलोकन की उपयोगिता।
- अवलोकन की विश्वसनीयता के उपाय।
- साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- साक्षात्कार की विशेषताएँ।
- साक्षात्कार की प्रक्रिया।
- साक्षात्कार का प्रतिवेदन।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्रकार।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की कार्यविधि।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का महत्व।
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के दोष
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में सावधानियाँ।

प्राक्कथन

सभी प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन सामग्री पर आधारित होते हैं। सामाजिक अनुसन्धान और सामाजिक सर्वेक्षण में सामग्री का विशेष महत्व होता है। यह जहाँ प्राक्कल्पना और सिद्धान्त के बीच की कड़ी होती है वहीं सामाजिक सर्वेक्षण में समस्या और उसके समाधान की योजना का आधार होती है। सामग्री का अर्थ, महत्व और भूमिका को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता हैं जब कोई छात्र किसी शिक्षण संस्था में प्रवेश प्राप्त करने का लक्ष्य निश्चित करता है, जैसे–प्रवेश आवेदन–पत्र कहाँ और कब से मिलने प्रारम्भ होंगे? आवेदन देने की अन्तिम तिथि क्या है? प्रवेश के लिए न्यूनतम प्राप्तांक कितने प्रतिशत हैं? वार्षिक शुल्क कितना है? छात्रावास की सुविधा है या नहीं? संस्था में कौन–कौन से विषय पढ़ाये जाते हैं? संस्था में पढ़ाई कैसी होती है? समाज में उसकी प्रतिष्ठा कितनी है? आदि। इसी प्रकार से वैज्ञानिक अध्ययन में भी प्राक्कल्पना अथवा समस्या से सम्बन्धित स्वीकृत एवं प्रमाणित सभी प्रकार की सांख्यिकी के रूप में सूचनाएँ, तथ्य, जानकारी, आँकड़ें, प्रमाण, कार्य–कारण सम्बन्ध, वस्तुस्थिति आदि जो कुछ भी एकत्र की जाती है वह वैज्ञानिक भाषा में सामग्री कहलाती है। अनुसंधान के कार्य में सामग्री की विभिन्न भूमिकाएँ होती हैं। वह सिद्धान्त और प्राक्कल्पना और प्राक्कल्पना से सिद्धान्त के बीच की कड़ी होती है। अध्ययन की समस्या अथवा प्राक्कल्पना की सहायता से सम्बन्धित सामग्री एकत्र की जाती है। उसकी जाँच तथा विश्लेषण किया जाता है। अध्ययन के अन्त में सामान्यीकरण अथवा सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाता

है। इन सब प्रक्रियाओं में प्रमुख भूमिका सामग्री की होती है। सामग्री विभिन्न प्रकार की होती है। इनसे सिद्धान्तों का परीक्षण किया जाता है। सामग्री के विभिन्न प्रकार प्राक्कल्पना के निर्माण की प्रक्रिया को प्रारम्भ करते हैं। ये सिद्धान्त को पुन: परिभाषित करते हैं। सामग्री सिद्धान्त की तुलना में अधिक स्पष्ट, सुनिश्चित, प्रमाणित होती है।

अत: स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसन्धान, सामाजिक सर्वेक्षण तथा किसी भी प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन में सामग्री का विशेष महत्व होता है, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि सामग्री के सम्बन्ध में हमें पूर्ण जानकारी होनी चाहिए कि सामग्री किसे कहते हैं? सामग्री कितने प्रकार की होती है? इनके स्त्रोत क्या-क्या हैं? वैज्ञानिक अध्ययन में इसकी क्या भूमिकाएँ हैं? सामग्री से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का वर्णन इस प्रकार है।

सामग्री का अर्थ एवं परिभाषा

सामग्री अंग्रेजी के शब्द डाटा (Data) का हिन्दी रूपान्तर है। 'डाटा' शब्द लेटिन के 'डेटम' (Datum) शब्द से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है- ए थिंग गिवन (A Thing Given) अर्थात् 'एक प्रदत्त वस्तु' या 'एक दी हुई वस्तु'। सामग्री की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

1. बृहत् परिभाषित शब्द संग्रह, भारत सरकार, दिल्ली के अनुसार डाटा (Data) का हिन्दी अनुवाद - आधार सामग्री, आँकड़ें, डाटा और दत्त है।

2. द कॉनसाइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी मे किसी प्रकार के तथ्य (Fact) को सामग्री बताया हैं इस शब्दकोश में यह भी लिखा है कि स्वीकृत जानी-मानी चीजें या मान्यताएँ जिनसे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, सामग्री कहलाती हैं।

3. कॉलिन्स का बुल्ड इंगलिश लेंगुएज डिक्शनरी के अनुसार, ''सामान्यतया सामग्री (Data) तथ्यों (Fact) अथवा सांख्यिकी के रूप में सूचना है, जिसका आप विश्लेषण कर सकते हैं अथवा उसे अगले आकलन के लिए उपयोग कर सकते हैं।''

4. थियोडोरसन तथा थियोडोरसन ने माडर्न डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी में सामग्री की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है, ''अवलोकन या मापन के द्वारा एकत्र सूचनाएँ जिनके द्वारा सामान्यीकरण या निष्कर्ष विकसित करने का प्रयास किया जाता है, सामग्री कहलाती है।'' आपने आगे लिखा है, ''जब सामग्री बिना स्वरूप तथा संगठन के होती है तो वह कच्ची सामग्री कहलाती है।''

5. पी. वी. यंग ने साइंटिफिक सोशियल सर्वेश एण्ड रिसर्च में सामग्री की परिभाषा देने से पहले लिखा है कि 'तथ्य' और 'सामग्री' शब्द सम्भवत: वैज्ञानिक लेखों में सबसे ज्यादा प्रयुक्त किये जाते हैं तथा ये उन शब्दों में से हैं जिनकी परिभाषा देना सबसे कठिन है। इसके बाद आपने सामग्री की परिभाषा तथा व्याख्या निम्न रूप से की है, ''सामग्री को ज्ञात उपलब्ध तथ्यों, आँकड़ों आदि सूचनाओं के रूप में परिभाषित किया जाता है।'' इन्होंने आगे लिखा है कि यह परिभाषा अनुसन्धानकर्त्ता के लिए बहुत उपयोगी नहीं है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आपने सामग्री की विस्तार से व्याख्या की है। आपका कहना है, ''सामग्री तथ्यों, आँकड़ों से अधिक है, 'सूचना', 'घटना' या 'अनुभवों' से अधिक है, जीवन इतिहास को बताने वाले की यादों से अधिक है।''

आपने सामग्री की परिभाषा को निम्न शब्दों में बाँधा है, ''सामग्री भूत और वर्तमान की सभी सम्बन्धित जानकारी है जो अध्ययन विश्लेषण की आधार होती है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं एवं अर्थों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सामग्री अध्ययन की समस्या अथवा प्राक्कल्पना से सम्बन्धित सभी प्रकार की जानकारी है। यह जानकारी या सूचना वर्तमान तथा भूतकाल दोनों की होती है जिसके आधार पर विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं अथवा प्राक्कल्पना का परीक्षण किया जाता है। सामग्री में सभी प्रकार के तथ्य आ जाते हैं जो अध्ययनकर्त्ता क्षेत्रीय-कार्य करके एकत्र करता है अथवा दूसरों के द्वारा पहिले से एकत्र किए जा चुके होते हैं।

सामग्री के प्रकार

वैज्ञानिक अनुसन्धान अथवा सर्वेक्षण के अनेक प्रकार की सामग्री एवं संकलन की अनेक पद्धतियाँ हैं। अध्ययन से सम्बन्धित कई सूचनाएँ ऐसी होती हैं जो अध्ययनकर्त्ता स्वयं एकत्र करता है तथा दूसरी संस्थाओं और समितियों द्वारा एकत्र सामग्री को अपने अध्ययन में उपयोग करता है। कई सूचनाएँ, तथ्य, जानकारियाँ ऐतिहासिक होती हैं। वे जीवनियों, पुस्तकों, पाण्डुलिपियों, प्रतिवेदनों, डायरियों, जनगणना प्रतिवेदनों आदि रूप में भी उपलब्ध होती हैं जिनका उपयोग अध्ययनकर्त्ता अपने अनुसन्धान में करता है।

सामग्री दो प्रकार की होती है-

1. प्राथमिक सामग्री, और 2. द्वैतीयक सामग्री।

इसके अर्थ, स्त्रोत, गुण दोष आदि निम्नलिखित हैं-

1. **प्राथमिक सामग्री (Primary Data)** - अगर अध्ययनकर्त्ता स्वयं या तो अपने सहायकों द्वारा सामग्री सीधी बिना किसी सहायता के एकत्र करता है तो ऐसी एकत्र सामग्री प्राथमिक सामग्री कहालती है।

   रॉबर्टसन तथा राइट के अनुसार, ''वह सामग्री प्राथमिक होती है जिन्हें एक विशेष शोध समस्या को हल करने के विशेष उद्देश्य हेतु संकलित किया गया हो।''

   पी. वी. यंग के अनुसार, ''प्राथमिक सामग्री का अभिप्राय उन सूचनाओं एवं आँकड़ों से है जिनको पहली बार एकत्र किया गया हो और जिनके संकलन का उत्तरदायित्व शोधकर्त्ता या अन्वेषणकर्त्ता का अपना है।'' जब अध्ययनकर्त्ता किसी विशिष्ट समस्या अथवा प्राक्कल्पना का अध्ययन करता है तो स्वाभाविक है कि आवश्यक सामग्री उसे विशेष प्रयास करके एकत्र करनी होगी। यह सामग्री जो विशेष प्रयास तथा सुनियोजित पद्धति से एकत्र की जाती है, प्राथमिक सामग्री कहलाती है। जब अनुसन्धानकर्त्ता किसी निश्चित प्रयोजन को ध्यान में रखकर अध्ययन करता है तो चाही गई सूचनाएँ, तथ्य जानकारी, आँकड़े कारकों का परस्पर कारण-प्रभाव के रूप में गुण-सम्बन्ध अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता है। उसे स्वयं के प्रयासों द्वारा अथवा अपनी निगरानी में सहायकों द्वारा एकत्र करवानी पड़ती हैं ऐसी एकत्र सामग्री की सत्यता, प्रमाणिकता तथा विश्वसनीयता का उत्तरदायित्व अनुसन्धानकर्त्ता पर होता है। यह एकत्र सामग्री प्राथमिक सामग्री

कहलाती है। इसे प्रथम-स्तरीय सामग्री, क्षेत्रीय सामग्री तथा मौलिक सामग्री के नाम से भी सम्बोधित करते हैं।

प्राथमिक सामग्री को अध्ययनकर्त्ता अवलोकन साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि सामग्री-संकलन की प्रविधियों के द्वारा एकत्र करता है। अवलोकन प्रविधियों में अध्ययनकर्त्ता होता है अथवा उसके द्वारा प्रशिक्षित उसका सहायक होता है। प्राथमिक सामग्री का संकलन शोधकर्त्ता स्वयं या उसके सहायक सीधे एकत्र करते हैं इसमें दूसरों द्वारा किए गए प्रयोग एवं सामग्री का प्रयोग नहीं किया जाता है। प्राथमिक सामग्री विश्वसनीय होती है क्योंकि अध्ययनकर्त्ता काफी सावधानीपूर्वक अथवा अपनी देख-रेख में संकलित करता है।

2. **द्वैतीयक सामग्री** - अध्ययन से सम्बन्धित सामग्री के संकलन का दूसरा विकल्प भी होता है जिसमें अध्ययनकर्त्ता स्वयं तथ्यों का संकलन नहीं करके दूसरों द्वारा एकत्र तथ्यों को प्राप्त करके अपने अध्ययन में उपयोग करता है तो ऐसी सामग्री को द्वैतीयक सामग्री कहा जाता है।

   पी. वी. यंग के अनुसार, ''द्वैतीयक सामग्री वे होती हैं जिन्हें मौलिक स्त्रोतों से एक बार प्राप्त कर लेने के पश्चात् काम में लिया गया हो एवं जिनका प्रसारण अधिकारी उस व्यक्ति से भिन्न होता है जिसने प्रथम बार तथ्य-संकलन को नियंत्रित किया था।'' द्वैतीयक सामग्री दूसरों के द्वारा एकत्र सामग्री को कहते हैं।

   फारकेस तथा रिचर - के अनुसार, ''द्वैतीयक सामग्री वह विद्यमान अथवा पूर्व-संकलित सामग्री है जिनका संकलन किसी सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता के द्वारा विशिष्ट उद्देश्य के लिए किया जाता है। इनमें तीन प्रमुख प्रकार की सामग्री सम्मिलित होती है- लिखित प्रालेख, जनमाध्यमों द्वारा प्रचारित प्रतिवेदन तथा सरकारी आलेख।''

   अध्ययनकर्ता अपने शोधकार्य अथवा वैज्ञानिक अध्ययन में अनेक ऐसी सूचनाएँ, तथ्य, आँकड़े तथा जानकारियाँ काम में लेता है जो दूसरे अध्ययनकर्ताओं, वैज्ञानिकों, एजेन्सियों, संगठनों आदि के द्वारा एकत्र की हई होती है। उदाहरण से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी। भारत सरकार द्वारा जनगणना प्रतिवेदन तैयार किया जाता हैं सरकार के लिए यह प्रतिवेदन, प्राथमिक सामग्री है लेकिन अन्य कोई भी इसका उपयोग करता है तो उसके लिए यह प्रतिवेदन द्वैतीयक सामग्री होगी।

सामग्री के स्त्रोत

वैज्ञानिक का प्रयास यह रहता है कि वह शोधकार्य में सामग्री सत्य, प्रमाणित तथा विश्वसनीय एकत्र करे। सामग्री की सत्यता तथा विश्वसनीयता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि सामग्री कहाँ से, कैसे और किसने एकत्र की है। सामग्री जहाँ से एकत्र की जाती है उसे सामग्री का स्त्रोत कहते हैं सामग्री के स्त्रोत अनेक हैं। सामग्री के स्त्रोतों के सुविधा के लिए वैज्ञानिकों ने वर्गीकरण किए हैं, वे निम्न हैं-

1. पी. वी. यंग ने सूचनाओं के स्त्रोतों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया है- 1. प्राथमिक स्त्रोत या क्षेत्रीय स्त्रोत तथा 2. द्वैतीयक स्त्रोत या प्रलेखीय स्त्रोत।

2. लुण्डबर्ग ने सामग्री के स्त्रोतों को निम्न दो भागों में विभाजित किया है -

1. ऐतिहासिक स्त्रोत

(i) प्रलेख, कागजात, शिलालेख इत्यादि।

(ii) भूतत्वतीय स्तरें, खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ।

2. क्षेत्रीय स्त्रोत

(i) जीवित व्यक्तियों से प्राप्त विशिष्ट जानकारी,

(ii) क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष निरीक्षण।

3. **बैगले (Bagley)** ने भी सामग्री के दो स्त्रोत बताए हैं- 1. प्राथमिक स्त्रोत और 2. द्वैतीयक स्त्रोत। सामाजिक विज्ञानों में अधिकतर यही वर्गीकरण अधिक प्रचलित तथा मान्य है।

1. प्राथमिक स्त्रोत

अनुसन्धानकर्ता स्वयं तथा अपने संगठन द्वारा जिस अध्ययन में जिन क्षेत्रों से सूचनाएँ, तथ्य या जानकारी सीधे एकत्र करते हैं, वे क्षेत्र प्राथमिक स्त्रोत कहलाते हैं। पी. वी. यंग ने इसको क्षेत्रीय स्त्रोत भी कहा है। इन तथ्यों, सूचनाओं तथा जानकारियों की सत्यता तथा प्रमाणिकता का उत्तरदायित्व स्वयं अनुसन्धानकर्ता का होता हैं प्राथमिक स्त्रोतों की परिभाषाओं से इसका अर्थ और स्पष्ट हो जाएगा।

पी. वी. यंग के अनुसार, ''प्राथमिक स्त्रोत वे स्त्रोत हैं जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों के संकलन में सहायक होते हैं।'' यंग का कहना है कि प्राथमिक या क्षेत्रीय स्त्रोत वे होते हैं जहाँ से प्रथम बार मौलिक सूचनाओं तथा तथ्यों को एकत्र किया जाता है। सामाजिक अध्ययनों में ये प्राथमिक स्त्रोत व्यक्ति तथा वास्तविक घटनाएँ होती हैं।

पीटर एच. मान के अनुसार, ''प्राथमिक स्त्रोत पहली बार एकत्र की जाने वाली सामग्री प्रदान करते हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि वे सामग्री के मौथ्लक समुच्चय होते हैं जो तथ्य संकलनकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं।'' जब सामग्री सम्बन्धित समाज अथवा अध्ययन के क्षेत्र से सीधी एकत्र की जाती है तो वह समाज अथवा अध्ययन का क्षेत्र सामग्री का प्राथमिक स्त्रोत कहलाता है। शोधकार्य में प्राथमिक स्त्रोत व्यक्ति समूह, समिति, समाज, समुदाय, ग्राम आदि कोई भी हो सकता है जहाँ जाकर वैज्ञानिक अध्ययन से सम्बन्धित इकाइयों से तथ्य एकत्र करता हैं सामग्री का संकलन अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि के द्वारा किया जाता है।

पी. वी. यंग ने सामग्री-संकलन के प्राथमिक स्त्रोतों को दो भागों में विभाजित किया है -

1. प्रत्यक्ष स्त्रोत, तथा 2. अप्रत्यक्ष स्त्रोत। अवलोकन, साक्षात्कार और अनुसूची के द्वारा प्राथमिक प्रत्यक्ष स्त्रोत से सामग्री एकत्र की जाती है। प्रत्यक्ष स्त्रोत से तात्पर्य है कि अध्ययनकर्ता स्वयं सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध स्थापित करके तथ्य एकत्र करता है। कई बार ऐसा होता है कि सामग्री का स्त्रोत तो प्राथमिक होता है परन्तु अध्ययनकर्ता बिना प्रत्यक्ष सम्पर्क किए तथ्य एकत्र

करता है। वह शिक्षित सूचनादाताओं को प्रश्नावली भेजकर उत्तर प्राप्त कर लेता है। यह सामग्री संकलन का अप्रत्यक्ष स्त्रोत कहलाता है। रेडियो, दूरदर्शन, दूरभाषा साक्षात्कार आदि भी अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्त्रोतों के उदाहरण हैं। सामाजिक सर्वेक्षण तथा सामाजिक अनुसन्धानों में अधिकांश अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची और प्रश्नावली का प्रयोग सामग्री-संकलन के लिए किया जाता है। यहाँ इन्हीं तथ्य-संकलन की पद्धतियों का विवेचन किया जा रहा है।

NOTES

1. प्रत्यक्ष स्त्रोत

अनुसन्धानकर्ता समाजों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है उसके लिए प्रारम्भिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। अध्ययन की समस्या से सम्बन्धित जितना अधिक ज्ञान तथा सामग्री उपलब्ध होती है अध्ययन की योजना तथा सामग्री संकलन की प्रविधियाँ उसी के अनुसार चुनी जाती हैं। जब अध्ययन के क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान बिल्कुल उपलब्ध नहीं होता है तब अनुसन्धानकर्ता क्षेत्र में जाकर प्रत्यक्ष अवलोकन करके सामग्री एकत्र करता है। कुछ सूचनाएँ तथा तथ्य एकत्र होने के बाद शोधकर्ता साक्षात्कार द्वारा तथ्य तथा सूचनाएँ एकत्र करने की स्थिति में आ जाता है। समस्या से सम्बन्धि प्रश्नों के निर्माण होने की स्थिति आ जाने पर साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण करके उसके द्वारा साक्षात्कार करके तथ्य एकत्र करता है। कुछ प्रत्यक्ष स्त्रोतों से सम्बन्धित तथ्य-संकलन की प्रविधियाँ हैं, जो निम्नलिखित हैं-

1.1.1 अवलोकन - अवलोकन एक ऐसी प्रविधि है जिसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता अध्ययन से सम्बन्धित क्षेत्रों में जाकर विविध घटनाओं को पक्षपात रहित ढंग से देखता है व उनका संकलन करता है। जब अध्ययन-क्षेत्र सीमित होता है व अध्ययन-विषय लोगों की मनोवृत्तियों से सम्बन्धित नहीं होता है तब यह प्रविधि अधिक उपयुक्त रहती है। अर्थात इस प्रविधि द्वारा तथ्यों का संकलन तभी हो सकता है जब अध्ययन का दृष्टिकोण तटस्थ व निष्पक्ष हो। अलोकन की प्रक्रिया निम्न तीन रूपों में हो सकती है :

(i) **सहभागी अवलोकन** - इसमें अध्ययनकर्ता जिस क्षेत्र का अध्ययन करता है वह अनुसन्धानकर्ता उस क्षेत्र में रहकर समूह की गतिविधियों में स्वयं भाग लेता है तथा समूह की सभी गोपनीय व महत्वपूर्ण सामग्री एकत्र कर लेता है।

(ii) **असहभागी अवलोकन** - इसमें अध्ययनकर्ता न तो अध्ययन-समूह में सम्मिलित होता है न ही समुदाय के लोगों के निकट सम्पर्क में आता है। वह तो मात्र एक अज्ञात दर्शक के रूप में घटनाओं का अवलोकन करके सामग्री संकलित करता है।

(iii) **अर्द्ध-सहभागी अवलोकन** - यह सहभागी व असभागी अवलोकनों के बीच की विधि है जिसमें अध्ययनकर्ता एक लम्बी अवधि तक अध्ययन-समूह के बीच सदस्य के रूप में उपस्थित तो नहीं रहता लेकिन विशेष अवसरों पर तथ्यों के संकलन के लिए समूह के सम्पर्क में आता है और घटनाओं का अवलोकन करके तथ्य एकत्र करता है।

1.1.2 साक्षात्कार - सामग्री को संकलित करने में साक्षात्कार एक प्रत्यक्ष स्त्रोत है। इसमें अनुसन्धानकर्ता अध्ययन-विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से प्रत्यक्षः सम्पर्क करता है और विभिन्न

पक्षों पर उनसे वार्तालाप करता है। प्राय: कुछ जटिल सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए सूचनादाताओं के विचार, मनोवृत्तियाँ, व्यक्तिगत जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण होती हैं जिन्हें सामान्य आँकड़ों की भाँति एकत्र नहीं किया जा सकता। इनमें गहन व सूक्ष्म जानकारी की आवश्यकता होती है जो साक्षात्कार के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता स्थान और परिस्थिति - दोनों की सुवधाओं को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कारदाता से सम्पर्क स्थापित करता है। साक्षात्कार करते समय आवश्यकतानुसार सूचनाओं का आलेखन भी किया जा सकता है। इसमें साक्षात्कर्ता के प्रश्नों के उत्तर सूचनादाता द्वारा किए जाते हैं। साक्षात्कार एक प्रकार का वार्तालाप है जो अध्ययनकर्ता एवं साक्षात्कारदाता के मध्य किसी अध्ययन-विषय से सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी के लिए किया जाता है।

1.1.3 अनुसूची - अनुसूची अध्ययन-विषय से सम्बन्धित प्रश्नों की एक ऐसी सूची है जिसे लेकर अध्ययनकर्ता उत्तरदाताओं से मिलता है और उनसे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर पूछ-पूछकर उस सूची में लिखता जाता है। यह अध्ययनकर्ता व उत्तरदाता के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क का एक साधन है। अनुसन्धानकर्ता स्वयं साक्षात्कारदाता के घरजाकर उसे भरते हैं। इसी दृष्टिकोण से इसे प्राथमिक संकलन का एक महत्वूर्ण स्त्रोत माना जाता है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के साथ-साथ अध्ययनकर्ता घटनाओं का अवलोकन भी करता है इसीलिए अनुसूची तथ्य-संकलन की एक एसी प्रविधि मानी जाती है जो क्षेत्रीय सामग्री एकत्रित करने में सहायक होती है।

1.2 अप्रत्यक्ष स्त्रोत

प्राथमिक स्त्रोतों का दूसरा महत्वपूर्ण प्रकार अप्रत्यक्ष स्त्रोत है। इसमें शोधकर्ता या उसके व्यक्ति क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं से सामग्री एकत्र नहीं करते हैं बल्कि किसी अन्य माध्यम के द्वारा सम्पर्क स्थापित किया जाता है, जैसे- प्रश्नावली, आकाशवाणी, दूरभाष, पत्र आदि। कुछ महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष स्त्रोत निम्नलिखित हैं-

1.2.1 प्रश्नावली - प्रश्नावली तथ्य-संकलन की एक ऐसी अप्रत्यक्ष प्रविधि है जिसका प्रयोग सामग्री एकत्र करने के लिए किया जाता हैं इसके द्वारा प्राथमिक सामग्री एकत्र की जाती है। इस पद्धति में शोधकर्ता सूचनादाताओं से पत्र-व्यवहार के माध्यम से सम्पर्क करता है। प्रश्नावली एक प्रश्नों की सूची है जिसे शोधकर्ता अपनी अध्ययन की समस्या से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों के बारे में सूचना एकत्र करने के लिए स्वयं बनाता है तथा अध्ययन-क्षेत्रों के सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा भेज देता है। सूचनादाता प्रश्नों के पढ़कर उत्तर लिख कर प्रश्नावली को डाक द्वारा वापिस शोधकर्ता को भेज देता हैं इस प्रणाली में सूचनादाता का शिक्षित होना आवश्यक हैं इसका प्रयोग तब किया जाता है जहाँ अध्ययन का क्षेत्र बड़ा होता है। सूचनादाता बड़े भौगोलिक क्षेत्र में फैले होते हैं तथा शिक्षित होते हैं। यह सामग्री संकलन की बहुत सस्ती पद्धति है इसमें समय धन तथा श्रम कम लगता हैं इसका प्रमुख दोष यही है कि ये 15 से 20 प्रतिशत ही वापिस लौटकर आती हैं तथा इसके द्वारा उत्तरों की सत्यता तथा प्रमाणिकता की जाँच करना कठिन होता है।

1.2.2 दूरभाष साक्षात्कार - पार्टन के अनुसार दूरभाष साक्षात्कार अप्रत्यक्ष स्त्रोतों से तथ्य-संकलन का साधन हैं इसमें शोधकर्ता दूरभाष के द्वारा सूचनादाता से साक्षात्कार करता है और उससे प्रश्न

पूछकर सूचना एकत्र करता है। इस साधन में उन्हीं सूचनादाताओं से सामग्री एकत्र करना सम्भव है, जो दूरभाष पर उपलब्ध हो सकते हैं। यह प्रविधि वहाँ उपयोग में लाई जा सकती है जहाँ पर दूरभाष सेवा उपलबध हो। इसमें समय की काफी बचत होती है। इसमें सूचनादाता नि:संकोच जानकारी देता है। क्योंकि शोधकर्ता तथा सूचनादाता एक-दूसरे को देख नहीं पाते हैं। उसका एक लाभ तथा एक हानि है। लाभ तो ये है कि सूचनादाता बिना किसी हिचकिचाहट तथा संकोच के प्रश्नों के उत्तर देता है। हानि ये है कि शोधकर्ता सूचनादाता के चेहरे के हावभावों का अवलोकन नहीं कर पाता है तथा उत्तर कितने सही तथा असत्य है जान नहीं पाता है और पूरक प्रश्नों द्वारा उनकी सत्यता की जाँच भी नहीं कर पाता है।

1.2.3 आकाशवाणी या टेलीविजन अपील - आकाशवाणी या टेलीविजन भी तथ्य-संकलन के सस्ते उपकरण हैं। इस प्रविधि में आकाशवाणी के द्वारा श्रोताओं से विषय के सम्बन्ध में अपने विचार, सूचना तथा प्रतिक्रिया भेजने के लिए अपील की जाती है। इस उपकरण द्वारा एक विशाल क्षेत्र में फैले सूचनादाताओं से एक साथ सम्पर्क किया जा सकता है। आकाशवाणी के द्वारा अपील का उत्तर केवल वे श्रोतागण देते हैं जो शिक्षित हैं तथा विषय में रुचि रखते हैं। इसलिए आकाशवाणी अथवा टेलीविजन से सभी सम्बन्धित सूचनादाताओं से सामग्री एकत्र नहीं हो पाती है।

आकाशवाणी या टेलीविजन से निश्चित दिन और समय पर कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है तथा श्रोताओं से निश्चित दिन तथा तारीख तक अपने उत्तर भेजने का निवेदन किया जाता है। उत्तर अधिक-से-अधिक संख्या तथा समय पर प्राप्त करने के लिए श्रोताओं को उत्तम उत्तरों के लिए पुरस्कार देने की घोषणा भी की जाती हैं सूचना प्राप्त करने का पता भी प्रसारित किया जाता है। सामग्री एकत्र करने वाला शोधकर्ता आकाशवाणी अथवा टेलीविजन के द्वारा श्रोताओं को विशेष जानकारी प्रसारित करके तथ्यों तथा सामग्री को एकत्र करते हैं। पिछले वर्षों में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन द्वारा अनेक संगठनों ने कार्यक्रम प्रसारित करके श्रोताओं से सूचनाएँ एकत्रित की हैं। परिवार नियोजन, महिलाओं की स्थिति, दूरदर्शन के प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस विधि द्वारा सामग्री-संकलन में कम समय और धन के द्वारा विशाल क्षेत्र से सामग्री एकत्र हो जाती है,

प्राथमिक स्त्रोतों के लाभ (Merits of Primary Sources) -

सामग्री-संकलन के प्राथमिक स्त्रोतों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रकारों के अनेक लाभ हैं। ये विश्वसनीय, मितव्ययी, सरल, स्वाभाविक, वास्तविक, प्रमाणित आदि होते हैं। प्राथमिक स्त्रोतों के गुण निम्नलिखित हैं -

1. **विस्तृत क्षेत्र के लिए उपयुक्त** - बड़े अध्ययन के क्षेत्र से सामग्री एकत्र करने के लिए प्राथमिक स्त्रोत सबसे उपयुक्त हैं। विस्तृत क्षेत्र में फैले सूचनादाताओं से सामग्री इन स्त्रोतों द्वारा कम समय में एकत्रित की जा सकती है। अप्रत्यक्ष स्त्रोतों द्वारा तो कितने ही व्यापक क्षेत्र में सूचनादाता फैले हों, आवश्यक सामग्री बहुत जल्दी प्राप्त की जा सकती है। इन स्त्रोतों द्वारा एक ही समय में सारे सूचनादाताओं से सम्पर्क किया जा सकता है।

2. **विस्तृत जानकारी** - प्राथमिक स्त्रोतों से सामग्री एकत्र करने का एक बड़ा लाभ यह होता है कि अध्ययनकर्त्ता सूचनादाताओं से जानकारी प्राप्त करता ही है साथ में स्वयं भी घटना तथा क्षेत्र का

अवलोकन करके अनेक जानकारियाँ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार शोध समस्या से सम्बन्धित इन स्त्रोतों द्वारा विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है।

3. **समय, धन एवं श्रम की बचत** – प्राथमिक स्त्रोतों द्वारा सामग्री का संकलन करने में समय बहुत कम लगता है। इसी प्रकार धन भी कम खर्च होता है। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता भी कम पड़ती है। इनके द्वारा एक ही समय में व्यापक क्षेत्र के सभी सूचनादाताओं से सम्पर्क करना सम्भव होता है। इससे ये सामग्री एकत्र करने के स्त्रोत कम खर्चीले, सरल और मितव्ययी होते हैं।

4. **अध्ययन में लचीलापन** – प्राथमिक तथ्य-संकलन की पद्धतियाँ काफी अच्छी होती हैं। उनमें लचीलापन होता है। अनुसन्धानकर्त्ता समस्या के अनुसार तथ्य एकत्र करते समय प्रश्नों को बदल सकता है। अनुपयुक्त प्रश्नों को हटा सकता है। परिस्थितियों के अनुसार नए प्रश्न जोड़ सकता है। स्वयं अध्ययन के क्षेत्र में होने के कारण प्राथमिक स्त्रोतों के इस गुण के परिणामस्वरूप अधिकतम उपयोग करता है। इस प्रकार से शोधकर्त्ता आवश्यक सूचनाएँ तथा सामग्री एकत्रित कर लेता है।

5. **उत्तरदाताओं पर नियंत्रण** – शोधकर्त्ता अनेक विधियों से सामग्री एकत्र करता है जिसमें अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची और प्रश्नावली प्रमुख हैं। इनके द्वारा सामग्री एकत्र करने में शोधकर्त्ता सूचनादाताओं पर भी नजर तथा नियंत्रण रखता है सामग्री योजनाबद्ध रूप में एकत्र की जाती है। साक्षात्कार पथप्रदर्शिका अथवा अनुसूची साक्षात्कार के द्वारा सामग्री एकत्र की जाती है। इसका लाभ यह होता है कि शोधकर्त्ता सूचनादाता को इधर-उधर भटकने नहीं देता है।

6. **गुप्त सूचनाओं का संकलन** – शोधकर्त्ता जब अवलोकन, साक्षात्कार तथा अनुसूची के द्वारा सामग्री एकत्र करता है तो वह अवलोकन द्वारा गुप्त सूचनाएँ देखकर एकत्र कर लेता है। अवलोकन का एक प्रकार सहभागिक अवलोकन तो गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने की विशिष्ट प्रणाली मानी गई है।

7. **विश्वसनीयता** – प्राथमिकता स्त्रोतों द्वारा एकत्र सामग्री विश्वसनीय और यथार्थ होती है। शोधकर्त्ता स्वयं तथ्य-संकलन के समय सूचनादाताओं के समक्ष उपस्थित होता हैं। सूचनादाता के चेहरे के हाव-भाव, उतार-चढ़ाव देखता रहता है तथा झूठी सूचना मिलने पर वह पूरक प्रश्न पूछ कर उत्तरों की विश्वसनीयता की जाँच कर लेता है। इसलिए प्राथमिक स्त्रोतों द्वारा एकत्र सामग्री विश्वसनीय, यथार्थ और स्वाभाविक होती है।

प्राथमिक स्त्रोतों के दोष

प्राथमिक स्त्रोतों के दोष निम्नलिखित हैं-

1. **वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना** – प्राथमिक स्त्रोतों द्वारा तथ्य-संकलन में वैयक्तिक पक्षपता आने की सम्भावना इसलिए रहती है क्योंकि शोधकर्त्ता इन स्त्रोतों का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होता है। कई बार शोधकर्त्ता अपनी भावना, दृष्टिकोण, विचार आदि को सम्मिलित कर लेता है। उनसे प्रभावित रहता हैं इस कारण वह सामग्री का संकलन अपने अनुरूप करता है। जिससे अध्ययन पक्षपातपूर्ण हो जाता है।

2. **वस्तुनिष्ठता का अभाव** – प्राथमिक स्त्रोतों द्वारा तथ्य संकलन करने में शोधकर्त्ता को काफी स्वतन्त्रता होती है। अध्ययन क्षेत्र में कई कठिनाइयाँ आती हैं, जैसे–सूचनादाता का नहीं मिलना, प्रश्नों के उत्तर नहीं प्राप्त होना आदि। ऐसी परिस्थितियों में अध्ययनकर्त्ता सूचनादाताओं एवं प्रश्नों को बदल लेता है इससे तथ्य बदल जाते हैं। सामग्री–संकलन परिस्थितियों के अनुसार करता है। सूचनादाता एवं प्रश्नों आदि को बोलने के परिणामस्वरूप अध्ययन की वस्तुनिष्ठता कम हो जाती है।

3. **ऐतिहासिक सामग्री का अभाव** – प्राथमिक स्त्रोतों के द्वारा केवल वर्तमान की सामग्री एकत्र हो पाती है। इसमें केवल वर्तमान की घटनाओं की सूचनाएँ तथा सामग्री तो एकत्र हो जाती है लेकिन अध्ययन–विषय से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथा कालक्रमिक सामग्री का अभाव रहता है। ये स्त्रोत उन अध्ययनों में बहुत कम काम में आते हैं जहाँ पर अध्ययन ऐतिहासिक तथ्यों तथा सामग्री से सम्बन्धित होता है।

4. **अधिक मानव शक्ति की आवश्यकता** – प्राथमिक स्त्रोतों में क्षेत्र में जाकर अध्ययन करना पड़ता है। साक्षात्कार प्रणाली तथा अवलोकन प्रणालियों में शोधकर्त्ता तथा सहायकों को अध्ययन–क्षेत्र में जाकर सामग्री एकत्र करनी पड़ती है। इसमें अधिक साक्षात्कर्त्ता तथा अवलोकनकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ती हैं अत: अन्य स्त्रोतों की तुलना में यह कभी–कभी अधिक खर्चीली साबित होती है।

5. **प्रशिक्षण का अभाव** – कई बार प्राथमिक स्त्रोतों से सामग्री एकत्र करने में अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है अनुभव की कमी के कारण तथा अन्य ज्ञान के अभाव में सत्य, प्रमाणित तथा विश्वसनीय सामग्री एकत्र नहीं हो पाती है। कुछ सामग्री एकत्र करने की प्रणालियाँ ऐसी हैं जिसमें विशेष प्रशिक्षण चाहिए, जैसे- अवलोकन और साक्षात्कार प्रणालियाँ। तथ्य–संकलनकर्त्ता ठीक से सामग्री एकत्र नहीं कर पाता है। सूचनादाता स्वयं बुद्धिजीवी होने के कारण सूचना तभी सही देता है जब कुशल साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कार लेता है। प्रशिक्षण के अभाव में सामग्री दोषपूर्ण एकत्र होती है।

2. द्वैतीयक स्त्रोत (Secondary Source)

जिन स्त्रोतों से द्वैतीयक सामग्री एकत्र की जाती है, वे द्वैतीयक स्त्रोत कहलाते हैं। इन स्त्रोतों की परिभाषा जॉन मेज, पी. वी. यंग तथा मान ने निम्नलिखित दी हैं–

1. **पी. एच. मान (P. H. Mann)** के अनुसार, ''ये द्वैतीयक स्तर पर प्राप्त किए गए तथ्य होते हैं, अर्थात् ये प्रथम बार एकत्र किए हुए तथ्य नहीं होते हैं बल्कि अन्य व्यक्तियों द्वारा मूल तथ्यों के आधार पर रचित तथ्य होते हैं।''

2. **जॉन मेज (John Madge)** के अनुसार, ''द्वैतीयक स्त्रोतों का निर्माण कही–सुनी बातों एवं अप्रत्यक्ष दर्शकों के आधार पर होता है।''

3. **पी. वी. यंग (P. V. Young)** के अनुसार, ''इन तथ्यों (द्वैतीयक) का उपयोग करने वाले और उन्हें प्रथम बार एकत्र करने वाले लोग पृथक–पृथक होते हैं।''

द्वैतीयक स्त्रोत शोधकर्त्ता के लिए वे स्त्रोत हैं जो उससे पहिले किसी अन्य शोधकर्त्ता ने एकत्र किए थे। अर्थात् सामग्री जो एकत्र करता है उसके बाद उसी सामग्री को अन्य उपयोग करते हैं तथा संकलनकर्त्ता का सन्दर्भ देते हैं। बाद में सामग्री का उपयोग करने वालों के लिए वह सामग्री का द्वैतीयक स्त्रोत हैं। सामग्री संकलन के द्वैतीय स्त्रोतों को मुख्य रूप से निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया गया है-

1. व्यक्तिगत प्रलेख 2. सार्वजनिक प्रलेख

2.1 व्यक्तिगत प्रलेख - व्यक्तिगत प्रलेख लिखित सामग्री होती है। यह प्रकाशित तथा अप्रकाशित दोनों ही रूपों में उपलब्ध होती है। जैसा कि इसके शीर्षक से ही स्पष्ट होता है जो सामग्री व्यक्ति अपने अथवा समाज से सम्बन्धित घटनाओं के सम्बन्ध में लिखता है वह व्यक्तिगत प्रलेख कहलाता है। यह सामग्री व्यक्ति-विशेष के दृष्टिकोण, अनुभव, विचारों, भावनाओं, आदर्शों और मूल्यों आदि के प्रभाव के अनुसार होती हैं व्यक्तिगत प्रलेख की निम्न परिभाषाएँ इस प्रकार है-

1. जॉन मेज का कहना है, "अपने संकुचित अर्थ में, व्यक्तिगत प्रलेख किसी व्यक्ति द्वारा उसकी स्वयं की क्रियाओं, अनुभवों एवं विश्वासों के बारे में स्वयं द्वारा लिखा गया एक विवरण है।"
2. जहोदा और साथियों के अनुसार, "व्यक्तिगत प्रलेखों के अन्तर्गत उन सभी प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जो सामान्यतया सूचनादाताओं के व्यक्तिगत जीवन के आधार पर स्वयं उन्हीं के द्वारा लिखे होते हैं एवं जिनमें उनके स्वयं के अनुभव शामिल होते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तिगत प्रलेख उन सामाजिक घटनाओं का वर्णन है जो भूतकाल में घटी हैं। ये वर्तमान की घटनाओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। इनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के इतिहास को समझाना सरल हो जाता हैं। व्यक्तिगत प्रलेख समाज और संस्कृति, जीवन के तरीके, रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान आदि का वर्णन है। व्यक्तिगत प्रलेख के अन्तर्गत- 1. पत्र, 2. संस्मरण, 3. डायरी और 4. जीवन इतिहास आते है। अब हम एक-एक करके इनकी विवेचना करेंगे।

2.1.1 पत्र (Letter) - पत्र व्यक्तिगत तथा गोपनीय होते हैं इसलिए इनके द्वारा प्राप्त जानकारी सत्य, यथार्थ, वास्तविक और विश्वसनीय होती है। शोधकर्त्ता पत्रों द्वारा महत्वपूर्ण सामग्री एकत्र कर सकते हैं। व्यक्ति पत्र अपने निकट सम्बन्धियों, मित्रों तथा व्यक्तियों को लिखता है। पत्र में व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं, समस्याओं, उपलब्धियों, विचारों, अनुभवों, स्नेह, प्रेम, घृणा आदि लिखता है। व्यक्ति पत्र-व्यवहार के द्वारा पारिवारिक घटनाओं, तनाव, वैवाहिक सम्बन्ध और विवाह-विच्छेद से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओं से सम्बन्धित बातों का आदान-प्रदान करता है। जो लोग राजनीति में होते हैं वे अपने निकट के व्यक्तियों को राजनैतिक घटनाओं के सम्बन्ध में पत्र लिखते हैं। इस प्रकार पत्र द्वैतीयक सामग्री के अच्छे स्त्रोत हैं। शोधकार्यों में विशेष रूप से इतिहासकारों तथा जीवन-लेखकों ने पत्रों का उपयोग करके ज्ञान की वृद्धि की है।

पत्र द्वारा सामग्री एकत्र करने की निम्न तीन कठिनाइयाँ हैं- 1. इन्हें प्राप्त करना कठिन है। 2. पत्र में घटना क्रमबद्ध तथा सन्दर्भ सहित नहीं होती है। 3. पत्र में घटना का वर्णन पूर्ण नहीं होने के कारण

निष्कर्ष निकालना कठिन होता है, और 4. पत्र लेखक के पक्षपात पूर्ण दृष्टिकोण वाले होने के कारण उनमें दी गई सूचना विश्वसनीय कम होती है।

NOTES

2.12 संस्मरण - संस्मरण व्यक्ति के जीवन की घटनाएँ, रोमांचकारी अनुभव, यात्राओं का वर्णन आदि के होते हैं। अनेक लोगों ने, जैसे-कोलम्बस, फाह्यान, मैगस्थनीज, ह्वेनसांग आदि ने अपने संस्मरण लिखे हैं। अनेक लोग अपने संस्मरण अन्य लोगों को चाव से सुनाते हैं। यात्राओं तथा जीवन की महत्वपूर्ण तथा रोमांचक घटनाओं के संस्मरण लिखने की परम्परा सदियों से चली आ रही है। संस्मरण द्वारा एक समय-विशेष के लोगों के रीति-रिवाज, संस्कृति, भाषा, रहन-सहन आदि को समझने में बड़ी मदद मिलती है। सामग्री-संकलन में संस्मरण द्वैतीयक स्त्रोत के रूप में अच्छी समृद्ध सामग्री प्रदान करते हैं।

2.1.2 डायरियाँ - अनेक लोग प्रतिदिन अपने जीवन की घटनाएँ ज्यों-की-त्यों लिखते हैं। डायरी गोपनीय दस्तावेज है इसलिए व्यक्ति जीवन के गोपनीय तथा महत्वपूर्ण सत्य को नि:संकोच डायरी में लिख देता हैं व्यक्ति अपनी डायरी में वस्तुनिष्ठ तथा निष्पक्ष रूप से लिखता है, इसीलिए डायरियाँ व्यक्तियों की गोपनीय, व्यक्तिगत सूचना एकत्र करने के उत्तम द्वैतीयक स्त्रोत हैं।

जॉन मेज के अनुसार, ''डायरियाँ सबसे ज्यादा रहस्याद्घाटन करने वाली होती हैं क्योंकि एक ओर व्यक्ति को इनका जनता के सामने प्रदर्शित होने का भय नहीं होता तथा दूसरी ओर इनमें घटनाओं एवं क्रियाओं के घटित एवं सम्पन्न होने के समय ही उनको बहुत स्पष्ट रूप में लिख लिया जाता है।'' डायरियों में तथ्य गोपनीय, विश्वसनीय तथा यथार्थ होते हैं। डायरियाँ शोध कार्यों में सहायक होती हैं। महापुरुषों के यात्रा-वर्णन, जीवन के वृतान्त, जेल या युद्ध के संस्मरण, कार्य आदि के वर्णन उनकी डायरियों में प्राप्त हो जाते हैं जिनका अनुसन्धान में उपयोग किया जाता रहा है।

डायरी की सीमाएँ - डायरी की कुछ सीमाएँ भी हैं जिनका शोधकार्य में ध्यान रखना चाहिए। डायरियाँ सामग्री का स्त्रोत तो परन्तु उनमें घटना का वर्णन तथा सामग्री का प्रस्तुतीकरण क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित नहीं होता है। कभी-कभी लेखक डायरियों में कुछ बढ़ा-चढ़ा कर लिख डालता है वह सोचता है कि शायद भविष्य में लोग इसे पढ़ें अथवा प्रकाशित करें। आलपोर्ट के अनुसार, ''डायरियों में घटनाओं को पूरी तरह स्वीकार करके चला जाता है तथा अक्सर उन व्यक्तियों या दशाओं का विवरण भुला दिया जाता है जिसके अस्तित्व व चरित्र के बारे में डायरी के लेखक को अनुमान मात्र होता है।'' जॉन मेज ने लिखा है, ''डायरियाँ जीवन के नाटकीय संघर्षात्मक पक्षों का तो बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन कर सकती हैं परन्तु कई महीनों के शान्तिपूर्ण एवं सुख सुखद क्षणों को इनमें उचित मात्रा में स्थान नहीं दिया जाता है।'' उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि डायरियों द्वारा प्राप्त सामग्री का उपयोग शोधकर्त्ता को सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

2.1.4 जीवन-इतिहास (Life History) - जीवन-इतिहास को सामग्री-संकलन के लिए द्वैतीयक स्त्रोत के रूप में बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है। जॉन मेज के अनुसार, ''वास्तविक अर्थ में जीवन-इतिहास का तात्पर्य किसी विस्तृत आत्मकथा से होता है। सामान्य अर्थों में इसका प्रयोग किसी भी जीवन-सम्बन्धी सामग्री के लिए किया जा सकता है।'' किसी भी प्रकार की जीवन-सम्बन्धी सामग्री को सामाजिक अध्ययनों में जीवन इतिहास के अन्तर्गत रखा जाता है। विद्वानों ने जीवन-इतिहास

को दो भागों में बाँटा है- 1. आत्मकथा (Autobiography) जिसे व्यक्ति अपने बारे में खुद लिखता है, और 2. जीवन चरित्र (Biography) जिसे लिखने वाला व्यक्ति स्वयं के बारे में न लिखकर अन्य व्यक्ति की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के बारे में लिखता है। सामान्यतया लेखक ख्याति-प्राप्त व्यक्तियों के जीवन-चरित्र लिखा करते हैं। ये दोनों ही सामग्री-संकलन के द्वैतीयक स्त्रोत कहलाते हैं।

जीवन-इतिहास के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और अन्य विभिन्न प्रकार की घटनाओं को समझना तथा अध्ययन करना सम्भव हो जाता है। जिस समय की जीवनी होती है उस समय से सम्बन्धित सामग्री इनमें से उपलब्ध की जा सकती है। जीवन-इतिहास के द्वारा सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक समस्याओं, संरचना, संस्कृति आदि का अध्ययन किया जा सकता है। समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों, नेताओं और क्रान्तिकारियों आदि का जीवन-चरित्र सम्बन्धित विषय और क्षेत्र की अच्छी जानकारी के ये स्त्रोत होते हैं जिनसे विषय में उस काल का ज्ञान मिल जाता हैं समाज सुधारकों के जीवन इतिहास के द्वारा समाज की बुराइयों, कुरीतियों और अन्धविश्वसासों आदि को समझा जा सकता है जो व्यापक अध्ययन करने में सहायक-सिद्ध हो जाता है। राजनीतिज्ञों की जीवनी में राजनैतिक सामग्री मिलती है जो उस समय की राज्य तथा सरकार व्यवस्था से सम्बन्धित होती हैं इस प्रकार जीवन-इतिहास वैज्ञानिक अध्ययन के लिए सामग्री के अच्छे स्त्रोत होते हैं।

यद्यपि जीवन-इतिहास सामाजिक शोध में पर्याप्त उपयोगी है परन्तु फिर भी इसकी निम्नलिखित सीमाएँ हैं-

1. इनमें वस्तुनिष्ठता का अभाव पाया जाता है। आत्मकथाएँ जो लिखते हैं वे इस सम्भावना को मानते हैं कि कभी उनकी जीवनी या आत्मकथा प्रकाशित हो सकती है। इस सम्भावना के कारण वे कई तथ्य तथा सामग्री को नहीं लिखते हैं। आत्मकथा में इस प्रकार निष्पक्षता का अभाव होता है तथा वह व्यक्तिपरक हो जाती है।

2. इनकी पुन: जाँच या परीक्षण करना सम्भव नहीं होता है। जीवन-इतिहास भूतकाल की जानकारी तथा तथ्यों का वर्णन होता है जिनकी जाँच करना सम्भव नहीं होता है। जिस समय जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखी गई थी उसकी जाँच करना असम्भव होता है।

3. कभी-कभी इनमें व्यक्तिगत का चित्रण बहुत बढ़ा-चढ़ा कर भी लिख दिया जाता है। लेखक जिस व्यक्तित्व अथवा महापुरुष में रुचिशील होता है, उस नेता अथवा महापुरुष की जीवनी लिखता है तथा वह अचेतन रूप में कभी-कभी घटना का वर्णन अपने नेता की प्रशंसा में कुछ अधिक ही लिख डालता है। उससे जीवन-इतिहास सामग्री का स्त्रोत यथार्थ और विश्वसनीय नहीं रहता।

4. इनमें घटनाओं का चित्रण उनके महत्व के अनुरूप नहीं होता है। लेखक कुछ घटनाओं का वर्णन बढ़ा-चढ़ा के कर देता है तथा कुछ का वर्णन बहुत संक्षिप्त लिखता है। इससे इन स्त्रोतों में उपलब्ध सामग्री सन्तुलित तथा विषय के महत्व के अनुसार वर्णित नहीं होती है। यह अध्ययन के निष्कर्षों को भी पक्षपातपूर्ण बना देती है।

व्यक्तिगत प्रलेखों की उपयोगिता - समाज के वैज्ञानिक अध्ययनों में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा उपलब्ध सामग्री का विशेष महत्व है। कुछ ऐसे अध्ययन हैं जिनमें इस सामग्री का विशिष्ट स्थान है, जैसे- मनोवैज्ञानिक और सामाजिक मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान। जिन शोध कार्यों में व्यक्तियों की भावना, दृष्टिकोणों तथा मनोवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है वहाँ तो सामग्री का स्त्रोत उससे उत्तम कोई नहीं हो सकता। जहोदा तथा साथियों ने भी लिखा है, ''साधारणत: व्यक्तिगत प्रलेखों की उपयोगिता अवलोकन विधियों की उपयोगिता के समान है। बाह्य व्यवहार के अध्ययन में अवलोकन विधियों के प्रयोग से जो कुछ प्राप्त किया जा सकता है वही सब आन्तरिक अनुभवों के अध्ययन में पत्रों के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।'' आप लोगों का कहना है कि प्रारम्भिक जानकारी व्यक्तिगत प्रलेखों से प्राप्त करके निष्कर्ष तक पहुँच जा सकता है।

मोजर के अनुसार, ''व्यक्तिगत प्रलेख उस समय ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाते हैं जब ये सम्बन्धित व्यक्ति से बिना अनुरोध के प्राप्त हो जाएँ। कुछ विशिष्ट सर्वेक्षणों में ये (व्यक्तिगत प्रलेख) प्रारम्भिक खोज के स्तर पर प्राक्कल्पना का निर्माण करने और अध्ययन कार्य को आगे बढ़ाने के लिए शोधकर्त्ता के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं।'' व्यक्तिगत प्रलेख प्रारम्भिक शोध के स्तर पर प्राक्कल्पना का निर्माण करने में सहायक होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तिगत प्रलेख ऐसी अनेक जानकारी तथा सूचनाएँ प्रदान करते हैं जो शोधकर्त्ता सहभागिक अवलोकन द्वारा भी कठिनाई से एकत्र कर पाता हैं व्यक्तिगत प्रलेख के द्वारा घटनाओं से सम्बन्धित अनेक आन्तरिक तथ्य तथा सूचनाएँ ज्ञात हो जाती हैं जिससे शोधकार्य में सहायता मिल जाती है।

व्यक्तिगत प्रलेख की सीमाएँ (Limitations of Personal Documents) -

व्यक्तिगत प्रलेख की सीमाएँ निम्नलिखित हैं-

1. इनको प्राप्त करना बहुत कठिन है। यह पता लगाना बहुत कठिन है कि व्यक्तिगत प्रलेख किसके पास में है? कौन-कौन से प्रलेख लिखे गए हैं? कहाँ पर रखे हैं? यह भी कोई आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति का पता चल जाने के बाद वह अध्ययन के लिए दे ही दे।
2. व्यक्तिगत प्रलेखों की प्रामणिकता तथा विश्वसनीयता का पता लगाना बहुत कठिन है। सर्वप्रथम तो समस्या ये आती है कि व्यक्तिगत प्रलेख सत्य कितना है तथा गलत कितना? वास्तव में उसे शोध कार्य में काम में लिया जा सकता है या नहीं? मूल कृति में जो सामग्री दी गई है वह कितनी विश्वसनीय है इसका पता लगाना कठिन है। कई बार इनमें घटनाओं को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन कर दिया जाता है।
3. व्यक्तिगत प्रलेखों के आधार पर सामान्यीकरण करना बहुत कठिन है। ये केवल व्यक्ति के विचार और दृष्टिकोण होते हैं। पत्र, संस्मरण, डायरी तथा जीवन-इतिहास में सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व नहीं होता हैं इनके आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सामान्यीकरण करना ठीक नहीं है।
4. इस सामग्री का सांख्यिकीय विश्लेषण करना असम्भव है। जहोद तथा साथियों के अनुसार, ''व्यक्तिगत प्रलेख सांख्यिकीय प्रविधियों की सहायता से उपयोग में लाए जाने के लिए ज्यादा उपयुक्त नहीं होते।'' इनके द्वारा प्राप्त जानकारी गुणात्मक होती है।

NOTES

5. व्यक्तिगत प्रलेख में उपलब्ध सामग्री पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं होती हैं उसमें कुछ बातों को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा जाता है तथा कुछ बातों को कम महत्व दिया जाता है। इस प्रकार इस सामग्री में पक्षपात होता है। अनुसन्धान में इस सामग्री के द्वारा निष्पक्ष निर्णय निकलना असम्भव हैं।

शोधकर्त्ता को व्यक्तिगत-प्रलेखों का उपयोग इन उपर्युक्त सीमाओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए तथा उन्हें अध्ययन में ज्यों-का त्यों काम में नहीं लेना चाहिए। वैज्ञानिकता को बनाए रखने के लिए उसे सावधानियाँ बरतनी चाहिए।

2.2 सार्वजनिक प्रलेख

द्वितीयक स्त्रोत के रूप में सार्वजनिक प्रलेख भी सामग्री-संकलन का एक प्रमुख स्त्रोत है। अन्य द्वैतीयक स्त्रोतों की तुलना में यह अधिक प्रमाणित और विश्वसनीय होते हैं। यह सार्वजनिक हित को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं इसे सरकारी, गैर-सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी संस्थाएँ और समितियाँ सार्वजनिक हित तथा उपयोग के लिए तैयार करती हैं। कभी-कभी व्यक्तिगत स्तर पर भी सामग्री एकत्र की जाती है और जब उसे सार्वजनिक उपयोग के लिए उपलब्ध कर दिया जाता है तो वह भी सार्वजनिक प्रलेख माना जाता है। सार्वजनिक प्रलेख का दायरा अधिक व्यापक होता है तथा ये सत्य और वस्तुनिष्ठ होते हैं। विद्वानों ने सार्वजनिक प्रलेखों को दो प्रकार में विभाजित किया है- 1. प्रकाशित प्रलेख, तथा 2. अप्रकाशित प्रलेख

2.2.1 प्रकाशित प्रलेख - इनके प्रकार की संस्थाएँ, समितियाँ या संगठन समय-समय पर अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्राथमिक सामग्री एकत्र करते तथा कराते रहते हैं। लोगों की सूचनार्थ इन्हें प्रकाशित भी करना होता है। लेखा-जोखा रखने के लिए तथा सम्बन्धित संगठनों को वस्तु स्थिति से अवगत कराने के लिए इनकी प्रतियाँ सूचनार्थ तथा अग्रिम कार्यवाही के लिए भी भेजनी होती हैं। जब शोधकर्त्ता इन संकलित तथा प्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान में प्रयोग करता है तो वह द्वैतीयक स्त्रोत कहा जाता है। सार्वजनिक प्रलेख के निम्न छः प्रकार हैं-

(i) **व्यक्तिगत शोधकर्त्ताओं के प्रकाशन** - भारतवर्ष में तथा विश्व में विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शिक्षण-संस्थाओं में विद्यार्थियों द्वारा पाठ्यक्रम के अन्तर्गत तैयार किए गए शोध प्रबन्ध तथा लघु-शोध प्रबन्ध जो प्रकाशित होते हैं द्वैतीय सामगी के स्त्रोत होते हैं। ये स्त्रोत, विश्वसनीय, प्रमाणित तथा यथार्थ होते हैं।

(ii) **शोध-संस्थाओं के प्रतिवेदन**- देश-विदेश में विभिन्न शोध-संस्थान अपने-अपने क्षेत्र में शोध-कार्य करवाते हैं। वैज्ञानिक और शोधकर्त्ताओं के लिए उनके प्रतिवेदन को प्रकाशित करवाते रहते हैं। ये प्रकाशन दूसरे अध्ययनकर्त्ताओं के लिए अच्छी सामग्री के स्त्रोत के रूप में उपयोगी होते हैं। भारत में समाज विज्ञान शोध-परिषद्, टाटा समाज विज्ञान संस्थान, जनजातीय अनुसन्धान संस्थान, राष्ट्रीय व्यवहारिक आर्थिक शोध-परिषद् और राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध तथा प्रशिक्षण संस्थान ऐसे संस्थान हैं जो समय-समय पर अध्ययनों और शोध कार्यों के प्रतिवेदन प्रकाशित करवाते रहते हैं। ये प्रकाशित प्रतिवेदन औरों के लिए उपयोगी सामग्री सिद्ध हुए हैं।

NOTES

(iii) समितियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन – अनेक सरकारी और गैर-सरकारी समितियों और आयोगों द्वारा समय-समय पर अनेक प्रकार के तथ्य एकत्र किए जाते रहते हैं। इनके क्षेत्र तथा विषय विविध प्रकार के होते हैं, जैसे- जन-गणना, अपराध, शिक्षा, बेकारी आदि। ये समितियाँ और आयोग सार्वजनिक उपयोग के लिए तथ्यों तथा सामग्री को प्रकाशित करवाते हैं। राष्ट्रीय नियोजन-समिति, भारतीय योजना आयोग, लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग, मद्य-निषेध जाँच समिति, अखिल भारतीय सुधार समिति आदि द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन इस प्रकार की सामग्री के स्त्रोत हैं।

(iv) अभिलेख – अभिलेख सामग्री का द्वैतीयक स्त्रोत है। अनेक सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और गैर-सरकारी संगठन अपने-अपने कार्यों के क्षेत्रों के अनुसार तथ्य, आँकड़े, और सूचनाएँ एकत्र करते रहते हैं। इनमें गोपनीय तथा अगोपनीय अभिलेख होते हैं। अनेक संस्थाओं, विभागों, समितियों तथा आयोगों द्वारा प्रतिवेदन तैयार करवाए जाते रहते हैं। कई संस्थाओं में अक्सर विचार-गोष्ठियाँ, बैठकें आदि होती हैं उनकी कार्यवाहियों के प्रतिवेदन तैयार करवाये जाते हैं परन्तु ये द्वैतीयक सामग्री के बहुत उपयोगी स्त्रोत होते हैं। इनका उपयोग शोधकर्त्ता विशेष अनुमति प्राप्त करके करते हैं।

(v) पाण्डुलिपियाँ – अनेक विद्वान, राजनेता, समाज सुधारक महापुरुष अपने-अपने रुचि के क्षेत्रों में बड़ी लगन और मेहनत से कार्य करते हैं। विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य एकत्र करते हैं, उन्हें व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध करके लिखते हैं। यह लिखित सामग्री पाण्डुलिपि के रूप में तैयार तो हो जाती है लेकिन किन्हीं कारणों से प्रकाशित नहीं हो पाती है। बाद में इसका पता चलता है तब इसे पुस्तकालय अथवा संग्रहालय आदि में सुरक्षित रखा जाता है। वहाँ इनको जन-सामान्य तथा ज्ञान-पिपासु पढ़ सकते हैं, शोधकार्य में इसका उपयोग कर सकते हैं।

(vi) शोधकर्त्ताओं के प्रतिवेदन- देश-विदेशों में अनेक शोधकर्त्ता विभिन्न क्षेत्रों में शोधकार्य करते हैं उनका प्रतिवेदन तैयार करते हैं। उनको उपाधि भी मिल जाती है, परन्तु किन्हीं कारणों से ये शोध-निबन्ध या विनिबन्ध तथा प्रतिवेदन प्रकाशित नहीं हो पाते हैं। इस प्रकार के शोध-कार्य अप्रकाशित होते हुए भी सामग्री के महत्वपूर्ण तथा उपयोगी स्त्रोत होते हैं। इस प्रकार की सामग्री सत्यप्रमाणित तथा विश्वसनीय भी होती है।

(vii) अप्रकाशित लोक-संस्कृति, लोक-साहित्य, लोक-गीत, शिलालेख – ये सभी द्वैतीयक सामग्री के स्त्रोत हैं। आदिम समाजों, ग्रामीणों समाजों तथा गिरिजन समाजों में मौखिक साहित्य में विभिन्न सामजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों द्वारा इनका उपयोग किया जाता है। इन समाजों को तथा इनकी संस्कृति को समझने के लिए इन सामग्री के स्त्रोतों का विशेष अध्ययन किया जाता है।

सार्वजनिक प्रलेख की उपयोगिता – सामाजिक अनुसन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में प्राक्कल्पना का निर्माण तथा समस्या की व्याख्या के लिए पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है जो सार्वजनिक प्रलेख भी द्वितीयक स्त्रोत के रूप में प्रदान करते हैं। थोमस ऐडिसन ''मैं जब भी कोई खोज या अनुसन्धान करना चाहता हूँ तब मैं भूतकाल में उसके सम्बन्ध में जो कुछ किया जा चुका है, उसे पढ़ कर उसके

पश्चात् अपना कार्य प्रारम्भ करना चाहता हूँ।'' सार्वजनिक प्रलेख जो कि प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के होते हैं सामाजिक अनुसन्धान में इन स्त्रोतों द्वारा उपलब्ध की गई सामग्री बहुत उपयोगी होती है। अध्ययन की सम्पूर्ण योजना इसके द्वारा प्रदान की गई सामग्री की सहायता से सरलतापूर्वक बनाई जा सकती है।

पी. वी. यंग ने प्रलेख द्वारा प्रदान की गई सामग्री के लाभ निम्नलिखित बताए हैं-

1. इसके द्वारा सही प्रश्नों को पूछने में सहायता मिलती है तथा शोधकार्य में अन्तदृष्टि प्राप्त होती है।
2. यह सामग्री अध्ययन पद्धतियों के चुनाव करने में सहायता प्रदान करती है।
3. इसके द्वारा प्राक्कल्पना के निर्माण तथा परीक्षण में सहायता मिलती है।
4. इसके द्वारा अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचने में सहायता मिलती है।

द्वैतीयक सामग्री अनुसन्धान में प्राथमिक सामग्री के संकलन का मार्गदर्शन करती है। यह यथार्थ तथ्य संकलन में सहायक होती है।

सार्वजनिक प्रलेख की सीमाएँ (Limitations of Public Documents) -

सार्वजनिक प्रलेख द्वैतीयक सामग्री के स्त्रोत हैं। इनके विभिन्न प्रकारों की सीमाओं का उल्लेख प्रत्येक स्त्रोत में किया जा चुका है। इनकी सबसे प्रमुख सीमा यही है कि इनका उपयोग करने से पहले इनकी सार्थकता, विश्वसनीयता, प्रमाणितकता, पता लगा लेना चाहिए। द्वैतीयक स्त्रोत द्वारा उपलब्ध सामग्री का उपयोग यथासम्भव कम-से-कम करना चाहिए तथा उसका पूरक सामग्री के रूप में प्रयोग करना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्राप्त सामग्री के आधार पर प्राथमिक सामग्री एकत्र करने के लिए इस सामग्री को मार्गदर्शक के रूप में काम में लेना चाहिए। अध्ययन की वैज्ञानिकता तथा वस्तुनिष्ठता बनाए रखने के लिए सार्वजनिक प्रलेख तथा प्रलेखीय सामग्री का उपयोग करते समय उसके सम्बन्ध में यह पता लगा लेना चाहिए कि वह सामग्री किसके द्वारा, किस उद्देश्य से कब तथा क्यों एकत्र की गई थी तथा वह कितनी सत्य तथा विश्वास करने योग्य हैं इसके उपरान्त भी इस सामग्री का उपयोग सतर्कतापूर्वक तथा सोच-समझ कर करना चाहिए। बाडले के अनुसार, ''प्रकाशित सांख्यिकी को उसके अर्थ और सीमाओं को समझे बना वैसे-का-वैसा मान लेना खतरे से खाली नहीं है तथा सदैव आवश्यक है कि ऐसी सांख्यिकी पर आधारित तर्कों को पूर्ण सावधानी के साथ समालोचना कर ली जाय।'' यह बात प्रकाशित सामग्री पर भी लागू होती है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि द्वैतीयक सामग्री जितनी उपयोगी है उसके उपयोग में उतनी ही सावधानी का ध्यान रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।

अवलोकन

मानव ने अपने चारों ओर के पर्यावरण का प्रारम्भिक ज्ञान अवलोकन द्वारा ही प्राप्त किया है। मानव के पास संचित ज्ञान का अधिकांश भाग अवलोकन का ही परिणाम है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप यह जान जायेंगे कि दैनिक जीवन में ही नहीं बल्कि विज्ञानों के संदर्भ में भी अवलोकन, अनुसंधान की प्रमुख प्रविधि के रूप में जाना जाता है। सामाजिक विज्ञानों में तो इस प्रविधि का प्रयोग

बाद में आरम्भ हुआ है, लेकिन प्राकृतिक विज्ञानों में इसका प्रयोग सम्भवत: प्रारम्भ से होता आया है। गुडे एवं हाट के अनुसार, ''विज्ञान अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा उसे सत्यापन के लिए अन्ततः आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही पुनः लौटना पड़ता है।'' समाजशास्त्र जन्मदाता अगस्त कॉम्टे जब समाजशास्त्र की रूपरेखा का निर्माण कर रहे थे, तब उन्होंने भी यह अनुभव किया कि यदि समाजशास्त्र को विज्ञान का दर्जा दिलाना है, तो अवलोकन द्वारा उसकी विषय वस्तु का निर्माण करना होना चाहिए। उनके उत्तराधिकार के रूप में माने जाने वाले समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने भी अपनी पुस्तक ''द रूल्स ऑफ सोशियोलोजिक मैथड्स'' में तथ्यों के वैज्ञानिक अवलोकन पर ही बल दिया है।

अवलोकन का अर्थ एवं विशेषतायें

अवलोकन शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Observation' का पर्यायवाची है। जिसका अर्थ 'देखना, प्रेक्षण, निरीक्षण, अर्थात् कार्य-कारण एवं पारस्परिक सम्बन्धों को जानने के लिये स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण है। सी. ए. मोजर ने अपनी पुस्तक 'सर्वे मैथड्स इन सोशल इनवेस्टीगेशन' में स्पष्ट किया है कि अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा नेत्रों के प्रयोग की स्वतन्त्रता पर बल दिया जाता है। अर्थात् यह किसी घटना को उसके वास्तविक रूप में देखने पर बल देता है। श्रीमती पी. वी. यंग ने अपनी कृति ''साइंटिफिक सोश सर्वेज एण्ड रिसर्च'' में कहा है कि ''अवलोकन को नेत्रों द्वारा सामूहिक व्यवहार एवं जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ-साथ सम्पूर्णता की रचना करने वाली पृथक इकाईयों के अध्ययन की विचारपूर्ण पद्धति के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।'' श्रीमती यंग ''अवलोकन स्वत: विकसित घटनाओं का उनके घटित होने के समय ही अपने नेत्रों द्वारा व्यवस्थित तथा जानबूझ कर किया गया अध्ययन है।'' इन परिभाषाओं में निम्न बातों पर बल दिया गया है। 1. अवलोकन का सम्बन्ध कृत्रिम घटनाओं एवं व्यवहारों से न होकर, स्वाभाविक रूप से अथवा स्वत: विकसित होने वाली घटनाओं से है। 2. अवलोकनकर्त्ता की उपस्थिति घटनाओं के घटित होने के समय ही आवश्यक है ताकि वह उन्हें उसी समय देख सकें। 3. अवलोकन को व्यवस्थित रूप में आयोजित किया जाता है।

अत: स्पष्ट है कि अवलोकन सामाजिक शोध में सामग्री संकलित करने की एक प्रत्यक्ष एवं महत्वपूर्ण प्रविधि है। मैलिनोवस्की ने ट्रोवियण्ट द्वीप वासियों का, लिण्ड ने 'मिडल टाउन' का, डोलार्ड ने 'सदर्व स्टेट्स का, बार्नर एवं लंट ने 'चांक सिटी' का अध्ययन अवलोकन विधि द्वारा ही किया है। भारत में डा. एम. एन. श्रीनिवास, डा. श्याम चरण दुबे, डा. बी. आर. चौहान, डा. मजूमदार, आदि समाजशास्त्रियों ने 'ग्रामीण अध्ययनों में इस विधि का प्रयोग किया है। अवलोकन के लिए अवलोकन कर्त्ता, समूह अथवा समुदाय के दैनिक जीवन में भाग भी ले सकता है (सहभागी अवलोकन), अथवा दूर बैठकर भी घटनाओं का अवलोकन कर सकता हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम अवलोकन की निम्न विशेषतायें स्पष्ट कर सकते हैं।

1. **मानवीय इन्द्रियों का पूर्ण प्रयोग** – यद्यपि अवलोकन में हम कानों एवं वाक् शक्ति का प्रयोग भी करते हैं, परन्तु इनका प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। इसमें नेत्रों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है।

2. **उद्देश्यपूर्ण एवं सूक्ष्म अध्ययन** – अवलोकन विधि सामान्य निरीक्षण से भिन्न होती है। हम हर समय ही कुछ न कुछ देखते रहते हैं; परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे अवलोकन नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक अवलोकन का एक निश्चित उद्देश्य होता है; और उसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए समाज वैज्ञानिक सामाजिक घटनाओं का अवलोकन करते हैं।

3. **प्रत्यक्ष अध्ययन** – अवलोकन पद्धति की यह विशेषता है कि इसमें अनुसंधानकर्त्ता स्वयं ही अध्ययन क्षेत्र में जाकर अवलोकन करता है, और वांछित सूचनायें एकत्रित करता है।

4. **कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाना** – सामान्य अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता घटनाओं को केवल सतही तौर पर देखता है, जबकि वैज्ञानिक अवलोकन में घटनाओं के बीच विद्यमान कार्य-कारण सम्बन्धों को खोजा जाता है ताकि उनके आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सके।

5. **निष्पक्षता** – अवलोकन में क्योंकि अवलोकनकर्त्ता स्वयं अपनी आँखों से घटनाओं को घटते हुये देखता है, अत: उसके निष्कर्ष निष्पक्ष होते हैं।

6. **सामूहिक व्यवहार का अध्ययन** – सामाजिक अनुसंधान में जिस प्रकार से व्यक्तिगत व्यवहार का अध्ययन करने के लिये ''वैयक्तित्व अध्ययन पद्धति'' को उत्तम माना जाता है, उसी प्रकार से सामूहिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिये अवलोकन विधि को उत्तम माना जाता है।

अवलोकन की प्रक्रिया

अवलोकन सोच समझकर की जाने वाली क्रमबद्ध प्रक्रिया है। अत: अवलोकन प्रारम्भ करने से पूर्व, अवलोकनकर्त्ता अवलोकन के प्रत्येक चरण को सुनिश्चित कर लेता है।

प्रारम्भिक आवश्यकतायें

अवलोकनकर्त्ता को सर्वप्रथम अवलोकन की रूपरेखा बनाने के लिये यह निश्चित करना पड़ता है कि 1. उसे किसका अवलोकन करना है? 2. तथ्यों का आलेखन कैसे करना है? 3. अवलोकन का कौन सा प्रकार उपयुक्त होगा? 4. अवलोकनकर्त्ता व अवलोकित के बीच सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित किया जाना है?

पूर्व जानकारी प्राप्त करना

इस चरण में अवलोकनकर्त्ता निम्न जानकारी पूर्व में प्राप्त कर लेता है। 1. अध्ययन क्षेत्र की इकाईयों के सम्बन्ध में जानकारी। 2. अध्ययन समूह की सामान्य विशेषताओं की जानकारी; जैसे स्वभाव, व्यवसाय रहन-सहन, इत्यादि। 3. अध्ययन क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति की जानकारी, घटना स्थलों का ज्ञान एवं मानचित्र आदि।

विस्तृत अवलोकन रूपरेखा तैयार करना

रूपरेखा तैयार करने के लिये निम्न बातों को निश्चित करना होता है –

1. उपकल्पना के अनुसार अवलोकन के लिए तथ्यों का निर्धारण,

2. आवश्यकतानुसार नियंत्रण की विधियों एवं परिस्थितियों का निर्धारण,

3. सहयोगी कार्यकर्त्ताओं की भूमिका का निर्धारण।

NOTES

अवलोकन यंत्र

अवलोकन कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व, निम्न अवलोकन यंत्रों का निर्माण करना आवश्यक है; जैसे

1. अवलोकन निर्देशिका या डायरी
2. अवलोकित तथ्यों के लेखन के लिये उचित आकार के अवलोकन कार्ड
3. अवलोकन-अनुसूची एवं चार्ट-सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से संकलित करने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है।

अन्य आवश्यकतायें

इसमें कैमरा, टेप, रिकार्डर, मोबाइल आदि को शामिल किया जा सकता है। इनकी सहायता से भी सूचनायें संकलित की जाती हैं।

अवलोकन के प्रकार

अवलोकन को निम्न भागों में विभाजित किया गया है-

अवलोकनकर्त्ताओं की संख्या के आधार पर अवलोकन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- 1. व्यक्तिगत अवलोकन 2. सामूहिक अवलोकन। व्यक्तिगत अवलोकन का अर्थ उस अवलोकन से है जो प्राय: किसी अध्ययनकर्त्ता के द्वारा स्वयं व्यक्तिगत स्तर पर किसी घटना विशेष अथवा सामूहिक व्यवहार के अध्ययन के लिये आयोजित किया जाता है। जबकि सामूहिक अवलोकन में अवलोकनकर्त्ताओं के एक समूह द्वारा, पृथक-पृथक रूप से किसी घटना विशेष सामूहिक व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है। व्यक्तिगत अवलोकन को उसकी व्यवस्था के आधार पर प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है : 1. अनियन्त्रित अवलोकन 2. नियन्त्रित अवलोकन।

अनियन्त्रित अवलोकन (Uncontrolled Observation)

इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता है। वह बिना किसी प्रतिबन्ध के घटना स्थल पर स्वयं जाकर घटनाओं को स्वभाविक अवस्था में घटित होते हुए देखता है और तथ्यों को एकत्रित करता है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकन की जाने वाली घटना को बिना प्रभावित किये हुये, उसे उसके स्वाभाविक रूप में देखने का प्रयास किया जाता है। इसलिए गुड एवं हाट इसे साधारण अवलोकन कहते हैं। जहोदा एवं कुक इसे 'असंरचित अवलोकन' का नाम देते हैं। समाज विज्ञानों में इस अवलोकन को स्वतन्त्र अवलोकन अनौपचारिक अवलोकन तथा अनिश्चित अवलोकन भी कहा जाता है। सामाजिक अनुसंधानों में अनियन्त्रित अवलोकन पद्धति ही सर्वाधिक प्रयुक्त होती है। जैसा कि गुड एवं हाट कहते हैं कि 'मनुष्य के पास सामाजिक सम्बन्धों के बारे में उपलब्ध अधिकांश ज्ञान अनियन्त्रित (सहभागी अथवा असहभागी) अवलोकन से ही प्राप्त किया गया है।'' इस प्रकार उपरोक्त विवेचन अनियन्त्रित अवलोकन की चार विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

1. अवलोकनकर्त्ता पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं लगाया जाता है।
2. अध्ययन की जाने वाली घटना पर भी कोई नियन्त्रण नहीं लगाया जाता है।

NOTES

3. घटना का स्वाभाविक परिस्थिति में अध्ययन किया जाता है।
4. यह अत्यन्त सरल एवं लोकप्रिय विधि है।

अनियन्त्रित अवलोकन के तीन प्रकार होते हैं–

पूर्ण-सहभागी अवलोकन

पूर्ण–सहभागी अवलोकन से तात्पर्य उस अवलोकन से है जिसमें अवलोकनकर्त्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह में जाकर रहने लगता है। उस समूह की सभी क्रियाओं में सदस्य की तरह भाग लेता है। समूह के सदस्य भी उसे स्वीकार कर लेते हैं, और उसे अपने समूह का सदस्य मान लेते हैं। अध्ययनकर्त्ता समूह के उत्सवों, संस्कारों एवं अन्य क्रियाकलापों में उसी तरह भाग लेता है जिस तरह अन्य सदस्य भाग लेते हैं। जॉन मैज ने अपनी पुस्तक ''द टूल्स इन सोशल साइन्सेस'' में लिखा है– ''जब अवलोकनकर्त्ता के हृदय की धड़कने समूह के अन्य व्यक्तियों की धड़कनों में मिल जाती हैं और वह बाहर से आया हुआ कोई अन्जान व्यक्ति नहीं रह जाता, तो इस प्रकार का अवलोकनकर्त्ता पूर्ण–सहभागी अवलोकनकर्त्ता कहलाता है।'' सन् 1924 में, लिण्ड मैन ने अपनी पुस्त्क ''सोशल डिस्कवरी'' में सर्वप्रथम सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग किया था। लिण्ड मैन ने कहा है कि औपचारिक प्रश्नों पर आधारित साक्षात्कार–विधि द्वारा समस्या के तल में नहीं पहुँचा जा सकता। सामाजिक अन्तक्रियाओं के पीछे छिपे हुये व्यक्तिपरक तथ्य असहभागिक अवलोकन के नेत्रों से प्राय: ओझल हो जाते हैं। अत: व्यक्तिपरक तथ्यों को समझे के लिए पूर्ण–सहभागी अवलोकन का प्रयोग आवश्यक है।

श्रीमती पी. वी. यंग – ''सामान्यत: अनियन्त्रित अवलोकन का प्रयोग करने वाला सहभागी अवलोकनकर्त्ता उस समूह के जीवन में ही रहता तथा भाग लेता है जिसका कि वह अध्ययन कर रहा है।''

जार्ज ए. लुण्डबर्ग – ''अवलोकनकर्त्ता अवलोकित समूह से यथासम्भव पूर्ण तथा घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करता है, अर्थात् वह समुदाय में बस जाता है तथा उस समूह के दैनिक जीवन में भाग लेता है।''

श्री जॉन हॉबर्ड जेल और उसमें रहने वाले कैदियों का अध्ययन करने के लिये अनेक वर्षों तक जेल में कैदियों के साथ ही रहे।

श्री मैलिनावस्की (मानव शास्त्री) ने पश्चिमी प्रशान्त महासागर के तट पर रहने वाली जन–जाति का अध्ययन उनके साथ रहकर ही किया।

फ्रेडलीपले ने श्रमिक परिवारों पर औद्योगीकरण के प्रभावों का अध्ययन करने के लिये सहभागी अवलोकन प्रविधि को ही अपनाया।

पूर्ण–सहभागी अवलोकन के संदर्भ में चूंकि अध्ययनकर्त्ता को अध्ययन समूह में अपने आपको पूर्णतया सहभागी बनाकर इस समूह की उन सभी क्रियाकलापों में यथासम्भव उन्मुक्त रूप में भाग लेना होता है। तथापि यह भी आवश्यक होता है कि वह अपने उद्देश्य से विचिलत नहीं हो; अर्थात् अपने उद्देश्य के प्रति सदैव सजग रहे । अतः यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि अवलोकनकर्त्ता द्वारा समूह को अपने प्रति जागरूक किया जाना चाहिए अथवा नहीं ? यानि, क्या अवलोकनकर्त्ता द्वारा समूह के लोगों को अपना परिचय एवं उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहिए ? इस संदर्भ में विद्वानों में वैचारिक भिन्नता है। अमेरिकन समाजशास्त्रियों का मत है कि अवलोकनकर्त्ता को अपना परिचय एवं मूल उद्देश्य स्पष्ट नहीं करना चाहिए। उसे चालाकी और सजगता से काम लेते हुये समूह की सभी क्रियाओं में भागीदारी निभानी चाहिये और साथ ही साथ, अपने प्रति समूह के विश्वास को भी बनाये रखना चाहिए। दूसरी ओर भारतीय समाज शास्त्रियों का मत है कि अवलोकनकर्त्ता को अपना परिचय व उद्देश्य अध्ययन समूह से छिपाना नहीं चाहिये; बल्कि उनके मध्य अपना वास्तविक परिचय व उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहिए; अन्यथा समूह के सदस्यों को उस पर सन्देह हो सकता है। ऐसी स्थिति में, समूह के सदस्यों का व्यवहार स्वाभाविक न होकर कृत्रिमतापूर्ण हो सकता है और यदि ऐसा हुआ तो अवलोकनकर्त्ता अपने उद्देश्य में असफल हो जायेगा। नैतिकता के दृष्टि से भी यह उचित है कि अवलोकनकर्त्ता को अपना परिचय व उद्देश्य अध्ययन समूह को स्पष्ट कर देना चाहिये।

उपरोक्त विश्लेषण से पूर्ण सहभागी अवालोकन की निम्न विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं–

1. अवलोकनकर्ता, अवलोकन की जाने वाली परिस्थितियों अथवा समूह में स्वयं भागीदारी करता है।

2. अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह का पर्ण रूपेण सदस्य बन जाता है। और उनके सभी क्रिया–कलापों में सक्रिय रूप से भाग लेता है।

3. सत्य की खोज के लिए सजगता, वाक् पटुता व चतुरता के साथ वास्तविक तथ्यों का संकलन करने का प्रयास करता है।

इसी संदर्भ में श्री बी. डी. पॉल ने निम्न उपायों का उल्लेख किया है, जिन्हें अपनाकर अवलोकनकर्त्ता अपने अवलोकन में सफलतापूर्वक सहभागिता निभा सकता है। जैसे–समूह के सदस्यों से आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना, उनका विश्वास प्राप्त करना, उनके सुख–दुःख में साझीदारी निभाना, खेत जोतने, मकान बनाने, शिकार करने, उनके साथ खेलने में भागीदारी निभाना, समय–समय पर उपहार देना व उपहार स्वीकार करना, त्योंहारों व उत्सवों पर भोजन व धन वितरित करना, बच्चों को खिलौने व टॉफियाँ आदि वितरित करना, आदि। इन सभी कार्यों में अवलोकनकर्त्ता को समूह की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये अपनी सूझ–बूझ से काम लेना होगा।

पूर्ण–सहभागी अवलोकन के गुण– तथ्य संकलन की एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में पूर्ण–सहभागी अवलोकन के गुण निम्नलिखित हैं–

1. **गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन** – अवलोकनकर्त्ता अध्ययन परिस्थिति अथवा समूह में स्वयं प्रत्यक्ष रूप से लम्बे समय तक भागीदारी निभाता है। अतः उसे समूह की जितनी सूक्ष्म जानकारी प्राप्त हो जाती हे, उतनी अन्य प्रविधियों से असम्भव है।

2. **स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन** – अवलोकनकर्त्ता समूह में इतना घुलमिल जाता है कि उसकी उपस्थिति समूह के व्यवहार को किसी भी तरह से प्रभावित नहीं करती है। अतः, उसे समूह के वास्तविक व्यवहार को नजदीकी से देखने व अध्ययन करने का अवसर मिलता है।

3. **अधिक विश्वसनीयता** – अवलोकनकर्त्ता सम्बन्धित समूह में रहकर स्वयं अपने नेत्रों से घटनाओं को स्वाभाविक तथा क्रमबद्ध रूप से घटते हुये देखता है। अतः संकलित सूचनायें अधिक विश्वसनीय होती हैं।

4. **संग्रहित सूचनाओं का परीक्षण सम्भव** – अवलोकनकर्त्ता, व्यक्तिगत रूप में समूह की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेता रहता है। अतः, शंका होने पर पुनः वैसी ही परिस्थिति में सूचनाओं की शुद्धता एवं विश्वसनीयता की जाँच सम्भव है।

5. **सरल अध्ययन** – सम्बन्धित समूह का सदस्य बन जाने के कारण अवलोकनकर्त्ता घटनाओं एवं परिस्थितियों का सरलता से अवलोकन कर सकता हैं यही कारण है कि अनेक मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने छोटे समुदायों, जन–जातियों एवं सांस्कृतिक समूहों के किसी भी पक्ष का अध्ययन करने में इस विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

सहभागी अवलोकन के दोष/सीमायें–

1. **पूर्ण सहभागिता सम्भव नहीं** – रेडिन एवं हरसकोविट्स ने इस विधि को पूर्णतया अव्यवहारिक कहा है। यह सत्य भी है। उदाहरण के लिए, जनजातियों के साथ सहभागिता के दौरान उनके रीति–रिवाजों, आदतों, मनोवृत्तियों के अनुसार अवलोकनकर्त्ता का रहना सम्भव नहीं हो सकता है। इसी प्रकार, पागलों के अध्ययन के दौरान भी सहभागिता असम्भव है। एम. एम. बसु के अनुसार, ''एक क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता कुछ व्यावहारिक कारणों से अध्ययन किये जाने वाले समुदाय के जीवन में कभी भी पूर्णतया भाग नहीं ले सकता है।''

2. **व्यक्तिगत प्रभाव** – अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह में इतना घुलमिल जाता है कि कभी–कभी अवलोकनकर्त्ता के व्यवहार एवं स्वभाव का प्रभाव, समूह के व्यक्तियों के व्यवहार में भी परिवर्तन ला देता है। ऐसी स्थिति में, समूह के स्वाभाविक एवं वास्तविक व्यवहार का अवलोकन असम्भव है।

3. **साधारण तथ्यों का छूट जाना** – कभी–कभी अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह से सहभागिता के चलते कई महत्वपूर्ण तथ्यों को सामान्य समझकर छोड़ देता है, जबकि वे तथ्य अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।

4. **वस्तु–निष्ठता का अभाव** – अवलोकनकर्त्ता की समूह में अत्यधिक सहभागिता उसमें समूह के प्रति लगाव व आत्मीयता पैदा कर देती है। परिणामस्वरूप, वह समूह के अवगुणों को छिपाकर अच्छाईयों को ही चिन्हित करने लग जाता है, जिससे कि अध्ययन की वस्तुनिष्ठता में कमी आती है।

5. **अत्यधिक खर्चीली** – अवलोकनकर्त्ता को अध्ययन समूह से सहभागिता प्राप्त करने एवं उनका विश्वास जीतने में काफी समय के साथ–साथ अधिक धन भी व्यय करना पड़ता है।

6. **सीमित क्षेत्र का अध्ययन** – इस प्रविधि से बड़े समुदाय के सभी लोगों को अध्ययन सम्भव नहीं है। अत: इस प्रविधि का प्रयोग लघु समुदाय में ही संभव है।

7. **भूमिका सामंजस्य में कठिनाई** – अवलोकनकर्ता को दो भूमिकाओं का निर्वहन करना होता है। एक भूमिका अवलोकनकर्त्ता की एवं दूसरी समूह के सदस्य की। दोनों भूमिकाओं के उचित निर्वहन से ही वह निष्पक्ष सूचनायें एकत्रित कर सकता है। अन्यथा 'भूमिका संघर्ष' अवलोकनकर्त्ता की मेहनत पर पानी फेर सकता हैं मोजर के अनुसार, ''सहभागिक अवलोकन एक व्यक्ति प्रधान क्रिया है, अत: इसकी सफलता बहुत कुछ अवलोकनकर्त्ता के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है।''

NOTES

असहभागिक अवलोकन

यह विधि सहभागी अवलोकन के विपरीत है। इसमें अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह के बीच उपस्थिति रहते हुये भी, उनके क्रियाकलापों में भागीदारी नहीं निभाता है; बल्कि तटस्थ तथा पृथक रहते हुए वह एक मूक दर्शक की तरह घटनाओं को घटते हुए देखता है, सुनता है एवं उनका आलेखन करता है। जैसे किसी महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में अतिथियों के साथ बैठकर घटनाओं का निरीक्षण करना। तथापि, यह आवश्यक है कि असहभागी अवलोकनकर्त्ता को अपनी उपस्थिति से समूह के घटनाक्रम को प्रभावित नहीं होने देना चाहिये।

असहभागी अवलोकन की विशेषतायें

उपरोक्त विवेचन से असहभागी अवलोकन की निम्न विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं–

1. **वस्तु परकता** – अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह में घुलता मिलता नहीं है, बल्कि एक मौन दर्शक के ही रूप में रहकर तथ्यों का संकलन करता है। अत: उसके अध्ययन में वस्तु–निष्ठता बनी रहती है।

2. **कम खर्चीली** – सहभागी अवलोकन की तुलना में समय व धन कम खर्च होता है तथा भूमिका सामंजस्य की समस्या से भी मुक्ति मिल जाती है।

3. **विश्वसनीयता** – अवलोकनकर्त्ता अपरिचित के रूप में होता है। अत: अध्ययन समूह के सदस्य बिना हिचकिचाये स्वाभाविक रूप से व्यवहार करते हैं। अत: तथ्यों की विश्वसनीयता बनी रहती है।

असहभागी अवलोकन के दोष

असहभागी अवलोकन के दोष निम्नलिखित हैं–

1. पूर्ण असहभागिता सम्भव नहीं हो पाती है; अर्थात् अवलोकनकर्त्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कहीं न कहीं घटनाओं से प्रभावित हो सकता है।

2. यदि अध्ययन समूह के सदस्यों को अवलोकनकर्त्ता पर सन्देह हो जाने की दशा में, उनके व्यवहार में कृत्रिमता आ सकती हैं।

3. अवलोकनकर्त्ता घटनाओं को केवल अपने दृष्टिकोण से ही देखता है जिससे मौलिकता संदेहपूर्ण हो सकती है।

4. अचानक घटित होने वाली घटनाओं का अध्ययन इस प्रविधि से असम्भव है।

5. इस प्रविधि से गहन अध्ययन सम्भव नहीं होता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, आप सहभागी व असहभागी अवलोकन में निम्न अन्तर स्पष्ट कर सकते हैं :-

1. **अध्ययन की प्रकृति** – सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता सामुदायिक जीवन की गहराई तक पहुँचकर समूह का गहन, आन्तरिक एवं सूक्ष्म अध्ययन कर सकता हैं इसके विपरीत असहभागी अवलोकन से समूह के केवल बाहरी व्यवहार का अध्ययन सम्भव हो सकता है। गोपनीय सूचनायें प्राप्त नहीं की जा सकती है।

2. **सहभागिता का स्तर** – सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता स्वयं अध्ययन समुदाय में जाकर रस बस जाता है एवं उसके क्रिया-कलापों में सक्रियता से भाग लेता है। असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता की स्थिति एक अपरिचित की रहती है; अर्थात् वह अध्ययन समूह से पृथक व तटस्थ रहकर अध्ययन करता है।

3. **सूचनाओं की पुर्नपरीक्षा** – सहभागी अवलोकन में सहभागिता के कारण अवलोकनकर्त्ता प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता की जाँच कर सकता है, जबकि असहभागी अवलोकनकर्त्ता कभी-कभी या घटनाओं के घटने की सूचना मिलने पर ही अध्ययन समूह में जाता है। अत: अवलोकित घटनाओं की पुर्नपरीक्षा असम्भव हो जाती है।

4. **सामूहिक व्यवहार की प्रकृति** – सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता सामुदायिक जीवन में घुलमिल जाता है। अत:, घटनाओं का अवलोकन उनके सरल एवं स्वाभाविक रूप में सम्भव होता है जबकि असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता के एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में होने के कारण लोग उसे शंका एवं संदेह की दृष्टि से देखते हैं। अत:, स्वाभाविक मानवीय व्यवहार का अध्ययन असम्भव होता है।

5. **समय व धन** – सहभागी अवलोकन समय व धन दोनों की दृष्टि से खर्चीला है, क्योंकि अवलोकनकर्त्ता को लम्बे समय तक अध्ययन समूह में रहना पड़ता है। इसकी तुलना में असहभागी अवलोकन में समय व धन कम खर्च होता है।

अर्द्धसहभागी अवलोकन –

पूर्ण सहभागिता एवं पूर्ण असहभागिता दोनों ही स्थितियाँ व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये, गुडे एवं हॉट ने बीच के मार्ग को अपनाने का सुझाव दिया है। अर्थात्, अर्द्धसहभागी अवलोकन, सहभागी एवं असहभागी अवलोकन दोनों का समन्वय हैं इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता परिस्थिति, आवश्यकता और घटनाओं की प्रकृति के अनुसार कभी अध्ययन समूह में सहभागिता निभाते हुए सूचनायें एकत्रित करता है, और कभी उससे पूर्णतया पृथक

रहकर एक मूक दर्शक के रूप में सूचनायें एकत्रित करता है। विलियन ह्वाइट के अनुसार, ''हमारे समाज की जटिलता को देखते हुये पूर्ण एकीकरण का दृष्टिकोण अव्यावहारिक रहा है। एक वर्ग के साथ एकीकरण से उसका सम्बन्ध अन्य वर्गों से समाप्त हो जाता है। अतः अर्द्ध-सहभागिता संभव होने के साथ ही उपयुक्त भी प्रतीत होती है।''

अनियन्त्रित अवलोकन की उपयोगिता -

अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि अनियिन्त्रत अवलोकन, घटनाओं का उनके स्वाभाविक रूप में अध्ययन करने की प्रविधि है। इसके महत्व का वर्णन निम्नलिखित है-

1. सामाजिक घटनाओं के बिना प्रभावित किये, उन्हें उनके स्वाभाविक रूप में देखे जाने एवं सूचनायें एकत्रित किया जाने को संभव बनाना।
2. अध्ययन में निष्पक्षता व वैषियकता बनाने को संभव बनाना।
3. परिवर्तनशील व जटिल सामाजिक घटनाओं एवं व्यवहारों का अध्ययन को व्यावहारिक बनाना।

अनियिन्त्रत अवलोकन के दोष निम्नांकित हैं-

1. अवलोकनकर्त्ता इस विश्वास से ग्रसित हो सकता है कि उसने जो कुछ अपनी आँखों से देखा है, वह सब सही हैं परिणामस्वरूप, त्रुटियों, भ्रान्तियों आदि की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।
2. कभी-कभी अनावश्यक तथ्यों के संकलित हो जाने के कारण समय, धन व परिश्रम के अपव्यय होने की सम्भावना रहती है।
3. घटनाओं को देखते समय अवलोकनकर्त्ता तथ्यों को लेखन नहीं कर पाता है। अतः आवश्यक सूचनायें छूट भी सकती हैं।
4. व्यक्तिगत पक्षपात आ जाने के कारण, वैज्ञानिकता खतरें में पड़ सकती है।

नियन्त्रित अवलोकन -

अनियिन्त्रत अवलोकन में पायी जाने वाली कमियों जैसे- विश्वसनीयता एवं तटस्थता का अभाव-ने ही नियन्त्रित अवलोकन को जन्म दिया है। नियिन्त्रत अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर तो नियन्त्रण होता ही है, साथ ही साथ अवलोकन की जाने वाली घटना अथवा परिस्थिति पर भी नियन्त्रण किया जाता है। अवलोकन सम्बन्धी पूर्व योजना तैयार की जाती है, जिसमें निर्धारित प्रक्रिया एवं साधनों की सहायता से तथ्यों का संकलन किया जाता है। इस प्रकार के अवलोकन में निम्न दो प्रकार से नियन्त्रण लागू किया जाता है-

1. **सामाजिक घटना पर नियन्त्रण** - इस प्रविधि में अवलोकित घटनाओं को नियन्त्रित किया जाता है जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोगशाला में परिस्थितियों को नियन्त्रित करके अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार समाज वैज्ञानिक भी सामाजिक घटनाओं अथवा परिस्थितियों को नियन्त्रित करके, उनका अध्ययन करता है। तथापि, सामाजिक घटनाओं एवं मानवीय व्यवहारों को नियन्त्रित करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। इस प्रविधि का प्रयोग बालकों के व्यवहारों, श्रमिकों की कार्य-दशाओं, आदि के अध्ययनों में किया जाता है।

2. **अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण** - इसमें घटना पर नियन्त्रण न रखकर, अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण लगाया जाता है। यह नियन्त्रण कुछ साधनों द्वारा संचालित किया जाता हैं जैसे अवलोकन की विस्तृत पूर्व योजना, अवलोकन अनुसूची, मानचित्रों, विस्तृत क्षेत्रीय, नोट्स व डायरी, कैमरा, टेप रिकार्डर आदि प्रयोग किया जाना। नियन्त्रण के सम्बन्ध में गुडे एवं हॉट का कहना है ''सामाजिक अनुसंधान में अध्ययन-विषय पर नियन्त्रण रख पाना तुलनात्मक दृष्टि से कठिन होता है; अत: अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण अधिक व्यावहारिक एवं प्रभावी प्रतीत होता है।''

अत: स्पष्ट है कि नियन्त्रित अवलोकन सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिकता, विश्वसनीयता एवं तटस्थता की दृष्टि से अनियिन्त्रित अवलोकन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है; और यह इसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण है।

नियन्त्रित एवं अनियिन्त्रत अवलोकनों में अन्तर -

उपरोक्त दोनों पद्धतियों में निम्न अन्तर पाये जाते हैं-

1. नियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं एवं परिस्थतियों को अध्ययन के उपरान्त कुछ समय तक नियन्त्रित रखना पड़ता है, जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं के विभिन्न पक्षों को, आवश्यकतानुसार उनके स्वाभाविक रूप में अवलोकित किया जाता है।

2. नियन्त्रित अवलोकन का संचालन पूर्व योजना के अनुसार ही किया जाता है। अनियन्त्रित अवलोकन बिना पूर्व योजना किया जाता है।

3. नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता को अपने व्यवहार को पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुसार ही क्रियान्वित करना पड़ता है। अनियिन्त्रित अवलोकन में इस प्रकार का कोई नियन्त्रित नहीं होता है।

4. नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकन के लिए निम्न यन्त्रों- जैसे, अवलोकन निर्देशिका, अनुसूची, अवलोकन कार्ड, आदि का प्रयोग किया जाता है; जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में यन्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

5. नियिन्त्रत अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता को पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है। अत: अध्ययन निष्पक्ष, विश्वसनीय एवं वस्तुनिष्ठ बना रहता है। अनियिन्त्रत अवलोकन में घटनाओं को उनके स्वाभाविक रूप में ही देखा जाता है।

6. नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण होने के कारण अध्ययन गहन एवं सूक्ष्म नहीं हो पाता है; जबकि अनियिन्त्रत अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण न होने के कारण अध्ययन स्वाभाविक, गहन एवं सूक्ष्म हो जाता है।

सामूहिक अवलोकन -

सामूहिक अवलोकन में अध्ययन की जाने वाली घटना के विभिन्न पक्षों का एकाधिक विषय-विशेषज्ञों द्वारा अवलोकन किया जाता है, स्पष्ट है कि सामूहिक अवलोकन में अवलोकन का कार्य कई

व्यक्तियों के द्वारा किया जाता हैं इन सभी अवलोकनकर्त्ताओं में कार्य बाँट दिया जाता है, और उनके कार्यों का समन्वय एक केन्द्रीय संगठन द्वारा किया जाता है।

सामूहिक अवलोकन का प्रयोग 1984 में इंग्लैण्ड में वहाँ के निवासियों के जीवन, स्वभाव व विचारों के अध्ययन के लिए किया गया था। 1944 में जमैका में स्थानीय दशाओं के अध्ययन के लिए भी इस विधि का प्रयोग किया गया था। यह प्रविधि खर्चीली होने के साथ-साथ कुशल प्रशासन भी चाहती है। इसी वजह से इस विधि का प्रयोग व्यक्ति के बजाय सरकारी या अर्द्ध सरकारी संस्थानों द्वारा अधिक किया जाता है।

सामूहिक अवलोकन के गुण

सामूहिक अवलोकन के गुण निम्नलिखित हैं-

1. यह अध्ययन की सहकारी एवं अन्तर - अनुशासकीय विधि है।
2. इसमें अध्ययन विश्वसनीय एवं निष्पक्ष होता है।
3. इसमें व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना नहीं होती है।
4. इसमें नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित अवलोकन विधियों का मिश्रण होता हैं।
5. इसमें व्यापक क्षेत्र का अध्ययन सम्भव है।
6. गहन अध्ययन एवं पुन: परीक्षण सम्भव है।

सामूहिक अवलोकन की सीमाएँ

सामूहिक अवलोकन की सीमाएँ निम्नांकित हैं-

1. एक से अधिक कुशल अवलोकन कर्त्ताओं को जुटा पाना कठिन कार्य है।
2. विभिन्न अवलोकनकर्त्ताओं के कार्यों में परस्पर सन्तुलन बनाए रखना आसान नहीं है।
3. वांछित मात्राओं में समय, धन एवं परिश्रम की व्यवस्था कर पाना आसान नहीं हैं
4. इस प्रविधि का प्रयोग प्राय: सरकारी संगठनों के द्वारा अधिक किया जाता है।

अवलोकन पद्धति - उपयोगिता एवं सीमायें

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अवलोकन पद्धति की उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट कर सकते हैं-

1. **सरलता :** यह विधि अपेक्षाकृत सरल है। अवलोकन करने के लिये अवलोकनकर्त्ता को कोई विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।
2. **स्वाभाविक पद्धति :** मानव प्राचीनकाल से ही स्वाभावत: अवलोकन करता आया है।

3. **वैषयिकता :** चूँकि इस विधि में अवलोकनकर्त्ता घटनाओं को अपनी आँखों से देखकर उनका हूबहू विवरण प्रस्तुत करता है। अत: वैषयिकता बनी रहती है।

4. **विश्वसनीयता :** अध्ययन निष्पक्ष होने के कारण विश्वसनीयता बनी रहती है।

5. **सत्यापन शीलता :** संकलित सूचनाओं पर संशय होने पर पुन: परीक्षण सम्भव होता है।

6. **उपकल्पना का स्त्रोत :** अवलोकन के समय अवलोकनकर्त्ता द्वारा घटना के प्रत्यक्ष निरीक्षण के कारण घटनाओं के प्रति नवीन विचारों एवं उपकल्पनाओं की उत्पत्ति होती है, जो भावी अनुसन्धान का आधार बनती है।

7. **सर्वाधिक प्रचलित पद्धति :** अपनी सरलता, सार्थकता एवं वस्तुनिष्ठता के कारण यह अवलोकन की सर्वाधिक लोकप्रिय पद्धति है।

अवलोकन पद्धति की सीमायें

इस विधि की सीमाएँ निम्नांकित हैं-

1. **सभी घटनाओं का अध्ययन सम्भव नहीं** - कुछ घटनाओं का अध्ययन सम्भव नहीं हो पाता है। जैसे - (i) पति-पत्नी के व्यक्तिगत व व्यावहारिक जीवन का अवलोकन (ii) कुछ घटनाओं के घटित होने का समय व स्थान का निश्चित न होना। जैसे पति-पत्नी की कलह, सास-बहू की तकरार। (iii) अमूर्त घटनायें, जैसे, व्यक्ति के विचार, भावनायें, आदि।

2. **व्यवहार में कृत्रिमता** - कभी-कभी अवलोकन के समय लोग अपने स्वाभाविक व्यवहार से हटकर नाटकीय व्यवहार करते हैं। परिणामस्वरूप सही निष्कर्ष नहीं निकाल पाते हैं।

3. **सीमित क्षेत्र** - समय, धन एवं परिश्रम की सीमितता के चलते यह विधि सीमित क्षेत्र का ही अध्ययन करने में सक्षम है।

4. **पक्षपात** - अवलोकित समूह के व्यवहार में कृत्रिमता एवं अवलोकनकर्त्ता के मिथ्या-झुकाव के कारण अध्ययन में पक्षपात आने की सम्भावना रहती है।

5. **ज्ञानेन्द्रियों में दोष** - कभी-कभी ज्ञानेन्द्रियाँ वास्तविक व्यवहार को समझने में समर्थ नहीं होती हैं जबकि अवलोकन में ज्ञानेन्द्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती हैं। ऐसी स्थिति में अध्ययन प्रभावित होता है।

अवलोकन की विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता के उपाय

यद्यपि अवलोकन में नेत्रों द्वारा सामाजिक घटनाओं का निरीक्षण करके ही तथ्यों का संकलन किया जाता है। फिर भी कुछ त्रुटियों अवलोकन की विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता को सन्देहजनक बना देती है। जैसे - ज्ञानेन्द्रियों की सीमायें, सामान्यज्ञान के आधार पर अवलोकन और निर्वाचन, व्यवहार की कृत्रिमता, घटना की अप्रियता, अव्यवस्थिति अवलोकन, अवलोकनकर्त्ता का पक्षपात आदि। निम्न उपायों को अपनाकर अवलोकन की विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता को बनाये रखा जा सकता

है। जैसे- (i) विस्तृत अवलोकन योजना बनाकर (ii) उपकल्पना का निर्माण करके, (iii) अनुसूची का प्रयोग करके (iv) सामूहिक अवलोकन को अपनाकर, (iv) उचित समाजमिति पैमानों का प्रयोग करके ।

NOTES

साक्षात्कार

सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण में साक्षात्कार प्राथमिक श्रेणी के तथ्य संकलन की एक प्रमुख प्रविधि है। सम्बन्धित व्यक्तियों की भावनाओं, मनोवृत्तियों, प्रवृत्तियों, उद्वेगों, रूझानों आदि का पता लगाने के लिए इस प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें सम्बद्ध व्यक्तियों से आमने-सामने बैठकर वार्तालाप किया जाता है। अत: साक्षात्कार वह वार्तालाप है जो अनुसंधान विषय से सम्बन्धित वांछित जानकारियाँ संकलित करने के उद्देश्य से अनुसंधानकर्त्ता (साक्षात्कारकर्त्ता) ओर जानकारियाँ देने वाले व्यक्ति/व्यक्तियों (उत्तरदाताओं) के बीच आमने-सामने की स्थिति में किया जाता है। यह वार्तालाप अनुसंधान उद्देश्य के वर्णन और अन्त:क्रिया विषय वस्तु से सम्बन्धित कारकों पर केन्द्रित रहता है। गुडे एवं हॉट ने इसे मूल रूप में ''एक सामाजिक अन्त:क्रिया की प्रक्रिया'' माना है। अंग्रेजी का ''इन्टरव्यू'' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है - ''इन्टर'' अर्थात ''भीतर'' अथवा ''अन्दर'' तथा ''व्यू'' अर्थात ''दृष्टि'' या देखना अर्थात् ''अन्तर-दृष्टि'' । सी. ए. मोजर के अनुसार, ''एक सर्वेक्षण साक्षात्कार साक्षात्कारकर्त्ता तथा उत्तरदाता के बीच एक वार्तालाप है, जिसका उद्देश्य उत्तरदाता से निश्चित सूचना प्राप्त करना होता है।'' ''पी. वी. यंग के अनुसार ''साक्षात्कार एक ऐसी क्रमबद्ध प्रक्रिया के रूप में माना जा सकता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आंतरिक जीवन में थोड़ा बहुत कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है। जो कि उसके लिये सामान्यतया तुलनात्मक रूप में अपरिचित होता है।''

* साक्षात्कार के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं-

1. दो या दो से अधिक व्यक्ति 2. आमने-सामने के सम्बन्ध 3. विशेष उद्देश्य हेतु तथ्यों का संकलन।

* इस पद्धति के दो व्यक्तियों के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर होते हैं। स्पष्ट है कि साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर परस्पर आमने-सामने होकर संवाद, वार्तालाप करते हैं। अत: यह एक सामाजिक प्रक्रिया है।

साक्षात्कार की विशेषताएँ

ब्लैक एंड चैम्पियन ने साक्षात्कार की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं-

1. साक्षात्कार और उत्तरदाता के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क, वार्तालाप और मौखिक संभाषण होता है।

2. साक्षात्कार सूचना संकलन की मौखिक प्रविधि है। इसमें मौखिक रूप से प्रश्न पूछे जाते हैं, तथा मौखिक उत्तर मिलते हैं।

3. उत्तरदाता से प्राप्त जानकारी साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा रिकॉर्ड की जाती हैं

4. साक्षात्कारकर्त्ता और उत्तरदाता एक-दूसरे के लिये अजनबी होते हैं तथापि, साक्षात्कार के समय उनके बीच अस्थायी प्राथमिक सम्बन्ध हो जाता है।

NOTES

5. साक्षात्कार के स्वरूप में लचीलापन होता है।

6. दो या दो से अधिक व्यक्ति किन्हीं विशिष्ट उद्‌देश्य के लिये आमने-सामने के संबंध स्थापित करते हैं।

साक्षात्कार की प्रमुख विशेषताएँ

साक्षात्कार प्रविधि की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं -

1. **व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष की जानकारी प्राप्त करना** - अन्य प्रविधियों की तुलना में, साक्षात्कार के द्वारा उत्तरदाता के व्यक्तित्व का अधिक अच्छी तरह से पता लगा सकता है क्योंकि आमने-सामने के सम्पर्क में की गयी बातचीत-विशेषकर यदि वह अनौपचारिक वातावरण में हो रही हो तो उत्तरदाता के व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को उद्‌घाटित करती है।

2. **मानवीय व्यक्तित्व को रेखांकित करना** - व्यक्ति के जीवन इतिहास को जानने के लिये उसके अनुभवों, मनोवृत्तियों, मूल्यों व व्यवहारों के बारे में पूर्ण जानकारी आवश्यक होती है। अतएव गैर निर्देशित, स्वत: प्रवाहित, साक्षात्कार के माध्यम से साक्षात्कारकर्त्ता न केवल उत्तरदाता के विगत जीवन के बारे में पर्याप्त जानकारी एकत्रित कर लेता है बल्कि उसके विचारों व व्यवहारों के पीछे छिपी मूल भावनाओं को भी समझ सकता है।

3. **अवलोकन का अवसर पाना** - उत्तरदाता ''क्या'' कहता है, ध्यान केवल इसी पर नहीं दिया जाता है, बल्कि वह ''कैसे'' कहता है, ध्यान इस पर भी दिया जाता है। कुशल साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाताओं के हाव-भाव, स्वर के उतार-चढ़ाव, आदि के आधार पर यह अनुमान लगा लेता है कि उत्तरदाता पूरी व सही सूचनायें दे रहा है या कुछ छिपाने का प्रयत्न कर रहा है। उदाहरण के लिए, उत्तरदाता अपनी आर्थिक स्थिति जिस स्तर की बता रहा है उसकी कुछ सीमा तक पुष्टि उसके रहन-सहन, घर के वातावरण, फर्नीचर, सजावट आदि से हो सकी है।

4. **उपकल्पना का स्त्रोत** - उत्तरदाताओं का व्यवहार, उनकी मनोवृत्तियाँ, टिप्पणियाँ आदि कई बार साक्षात्कारकर्त्ता को गहन अन्त:दृष्टि प्रदान करती है। इससे अनुसंधानकर्त्ता को न केवल विषय को अच्छी तरह समझने में मदद मिलती है बल्कि शोध के लिये नई दिशा या विश्लेषण के नये आयाम भी मिल जाते हैं।

5. **अन्य प्रविधयों से प्राप्त तथ्यों का परीक्षण करना** - जब अनुसंधान के लिए तथ्य अन्य प्रविधियों जैसे अवलोकन या प्रश्नावली की सहायता से संकलित किये गये हों तब उनकी सहायता व विश्वसनीयता की जाँच साक्षात्कार द्वारा ही की जाती है।

6. **प्रश्नावली का पूर्व-परीक्षण** - जब तथ्य संकलन के लिए प्रश्नावली प्रविधि का प्रयोग करना हो तब साक्षात्कार के द्वारा इसका पूर्व-परीक्षण किया जाता है, ताकि उसकी कमियों को दूर करके उसे अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

एक विशिष्ट उद्देश्य से आयोजित सामाजिक अन्त:क्रिया के बतौर, साक्षात्कार प्रक्रिया को योजनाबद्ध रूप से संगठित किया जाना वांछित है। तद्नुसार साक्षात्कार की प्रक्रिया के मुख्यत: तीन चरण होते हैं : 1. साक्षात्कार के बारे में प्रारम्भिक तैयारी, 2. साक्षात्कार की प्रक्रिया, 3. साक्षात्कार का समापन एवं प्रतिवेदन। हम इन सब पक्षों पर यहाँ विचार करेंगे।

साक्षात्कार की प्रारम्भिक तैयारी : किसी भी साक्षात्कार के प्रारम्भ से पूर्व सूचनादाताओं की सामाजिक-सांस्कृतिक तथा डिमोग्राफिक पृष्ठभूमि का प्रकार, साक्षात्कार का समय, स्थान व उपकरण के बारे में प्रारम्भिक विचार कर लेना चाहिए। साक्षात्कार के प्रारम्भिक चिंतन अथवा तैयारी में निम्न बातों को सम्मिलित किया जाता है-

1. **समस्या की पूर्ण जानकारी :** विषय के ज्ञान के अभाव में साक्षात्कारकर्त्ता को लज्जित होना पड़ सकता है और ऐसी स्थिति में अनुसंधान की सफलता भी संदिग्ध हो जाती है। अत: यह आवश्यक है कि साक्षात्कारकर्त्ता को विषय के बारे में पूर्ण जानकारी हो जिसे वह सूचनादाता के समक्ष स्पष्ट कर सके।

2. **सूचनादाताओं के बारे में जानकारी :** साक्षात्कारकर्त्ता को सूचनादाताओं की शैक्षिक योग्यता, उनके निवास स्थान, व्यवसाय, स्वभाव, अवकाश तथा मिलने के समय, आदि के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होनी चाहिए।

3. **साक्षात्कारकर्त्ताओं का चुनाव :** साक्षात्कारदाताओं का चुनाव करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम ऐसे व्यक्तियों का चयन करें जो कि समस्या के बारे में गहन, विस्तृत, अर्थपूर्ण एवं प्रामाणिक सूचनाएं दे सके। साक्षात्कारदाताओं की संख्या का निर्धारण साक्षात्कार के उद्देश्य तथा साक्षात्कार के प्रकार पर निर्भर होने के साथ ही, अनुसंधान सामग्री की प्रकृति पर निर्भर होता है।

4. **समय एवं स्थान का निर्धारण :** साक्षात्कार के लिए उचित समय एवं स्थान का निर्धारण भी एक आवश्यक चरण है जिसे साक्षात्कारदाता की सलाह से किया जाना चाहिए। इसके लिए पत्र, टेलीफोन या व्यक्तिगत सम्पर्क की सहायता की जा सकती है। समय ऐसा होना चाहिए, जो साक्षात्कारकर्त्ता के लिए सुविधाजनक हो। साथ ही सार्वजनिक स्थान अथवा व्यवसाय स्थल पर साक्षात्कार लेना उपयुक्त नहीं होता है।

5. **साक्षात्कार यंत्रों की रचना-** साक्षात्कार के संचालन के लिए प्रमुखत: दो यंत्रों की रचना की जाती है। 1. साक्षात्कार अनुसूची 2. साक्षात्कार प्रदर्शिका (निर्देशिका) की। इनमें से कौन सा यंत्र कहाँ प्रयोग में लाया जाएगा, यह साक्षात्कार के प्रकार एवं अध्ययन-विषय पर निर्भर करता है। हम संक्षेप में इन दोनों ही यंत्रों का यहाँ उल्लेख करेंगे।

(i) साक्षात्कार अनुसूची : यह विषय से सम्बधित क्रमबद्ध प्रश्नों की एक सूची है। इन प्रश्नों को साक्षात्कारकर्त्ता पूछता जाता है और प्रत्युत्तरों को निर्धारित रिक्त स्थानों में लिखता चला जाता है।

(ii) साक्षात्कार निर्देशिका : साक्षात्कार निर्देशिका एक लिखित प्रपत्र होता है, जिसमें अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों का विवरण होता है। अनिर्दिष्ट और अनौपचारिक साक्षात्कार में इसका प्रयोग प्रमुख रूप से किया जाता है क्योंकि इस श्रेणी के साक्षात्कार का मूल उद्देश्य यह होता है कि उत्तरदाता को अपनी बातें कहने की यथासम्भव, तथापि यथवांछित, स्वतन्त्रता हो, ताकि गहन एवं विस्तृत जानकारियाँ प्राप्त की जा सके इसलिए साक्षात्कार पथ-प्रदर्शिका की रचना करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह पथ-प्रदर्शिका नियंत्रण सिद्ध न हो, बल्कि मार्गदर्शक हो। सार रूप में, साक्षात्कार पथ-प्रदर्शिका का उद्देश्य साक्षात्कारकर्त्ता को नियन्त्रित किया जाना है, जबकि साक्षात्कार अनुसूची द्वारा साक्षात्कारदाता को नियन्त्रित किया जाता है। व्यावहारिक रूप में, साक्षात्कार पथ-प्रदर्शिका साक्षात्कारकर्त्ता के पास वह उपकरण है जो साक्षात्कारदाता को खुलकर, विस्तार और गहनता से अपनी बातें कहने की स्वतन्त्रता देने के साथ ही वार्तालाप की विषयवस्तु की सीमा में रखता है।

साक्षात्कार की प्रक्रिया - साक्षात्कार की प्रारम्भिक तैयारी कर लेने के बाद सूचनादाता से साक्षात्कार करना होता है। साक्षात्कार का संचालनक करते समय निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए-

1. **सूचनादाता से सम्पर्क :** साक्षात्कार के लिए सबसे पहला कार्य होता है, सूचनादाता से पूर्व निश्चित समय एवं स्थान पर सम्पर्क स्थापित करना।

2. **उद्देश्य बताना :** साक्षात्कारदाता को अध्ययन विषय का संक्षिप्त परिचय देने तथा अध्ययन का उद्देश्य बताने के साथ ही अनुसंधानकर्त्ता-व्यक्ति अथवा संस्था का परिचय भी देना चाहिए ताकि साक्षात्कारदाता को यह विश्वास हो सके कि, किसी अवांछित व्यक्ति या संस्था को जानकारियाँ नहीं दी गयी हैं।

3. **सहयोग की प्रार्थना :** अनुसंधान का उद्देश्य आदि बताने के बाद साक्षात्कारकर्त्ता को अध्ययन में सहयोग देने की प्रार्थना करनी चाहिए। उसे यह विश्वास भी दिलाया जाना चाहिए कि उसके द्वारा दी गई सूचनाएं गुप्त रखी जायेगी, तथा अध्ययन का उद्देश्य विशुद्ध वैज्ञानिक है।

4. **वार्तालाप प्रारम्भ करना :** उपर्युक्त बातों के बाद सूचनादाता से विषय से सम्बन्धित वार्तालाप प्रारम्भ किया जाता है और विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते है। प्रश्न करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रश्नों का क्रम सही हो, प्रश्न विषय से सम्बन्धित हों, उनकी भाषा सरल हो। प्रश्न आदेशात्मक, उपदेशात्मक, निषेधात्मक तथा पथ-प्रदर्शक भी नहीं होने चाहिए। (वस्तुत: साक्षात्कार अनुसूची तथा साक्षात्कार निर्देशिका के द्वारा इन आवश्यकताओं की पूर्ति को संभव बनाया जाता है।

5. **सहानुभूति सुनना :** साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता को कम बोलना चाहिए और सूचनादाता को धैर्य एवं सहानुभूतिपूर्वक सुनना चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता को सूचनादाता की बातों में रूचि का संकेत देना चाहिए।

6. **प्रोत्साहन एवं पुनःस्मृति :** सूचनादाता कई बार सूचना देते-देते भटक जाता है, अथवा उसकी रूचि कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता को चाहिए कि वह ऐसे वाक्यों का प्रयोग

करे जिनसे सूचनादाता को उत्साहवर्धन हो और उसे सूचना देने हेतु प्रोत्साहन मिले। उदाहरण के रूप में, आपने हमें बहुत ही महत्वपूर्ण बातें बतायी हैं, 'आपके अनुभव अनुसंधान के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे' 'आपकी सूचना ने तो हमें नवीन दिशा प्रदान की है' आदि वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए।

7. **क्रोधित होने से बचाव :** साक्षात्कारकर्त्ता को चाहिए कि वह सूचनादाता से ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जिससे वह क्रोधित हो जाये और साक्षात्कार को बीच में ही समाप्त करना पड़े।

8. **साक्षात्कार का नियंत्रण एवं प्रमाणीकरण :** साक्षात्कार के प्रमाणीकरण के संदर्भ में निम्नांकित बातों पर ध्यान रखना चाहिए :

   (i) साक्षात्कार में सूचनादाता ने कोई परस्पर विरोधी बातें तो नहीं कहीं; ऐसा होने का कारण यह हो सकता है कि सूचनादाता ने किसी बात को ठीक से न समझा हो या गलत समझा हो।

   (ii) कई बार सूचनादाता, साक्षात्कारकर्त्ता को धोखा देने या झूठ बोलने का प्रयास करता है। जब उसे इस दशा में ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे यह प्रकट हो कि ये सब बातें साक्षात्कारकर्त्ता को पहले ही मालूम हैं।

   (iii) सूचनाओं की प्रामाणिकता को ज्ञात करने के लिए खोजपूर्ण प्रश्न तथा प्रति प्रश्न किये जाने चाहिए।

   (iv) साक्षात्कार द्वारा प्राप्त तथ्यों के बीच कार्य–कारण का सम्बन्ध ज्ञात करना चाहिए; अन्य शब्दों में, साक्षात्कार में कही गई बातों की तर्क संगतता को देखना चाहिए।

साक्षात्कार का समापन एवं प्रतिवेदन

1. **साक्षात्कार की समाप्ति :** जब सूचनादाता सब कुछ कह चुका होता है तो उसकी गति मंद हो जाती है तो समझ लेना चाहिए कि साक्षात्कार समाप्ति की ओर है। सूचनादाता को साक्षात्कार की समाप्ति के बाद प्रसन्न एवं सन्तुष्ट मुद्रा में छोड़ना चाहिए जिससे कि यदि साक्षात्कार को कभी पुन: प्रारम्भ करना पड़े तो वह सूचना देने के लिए तैयार रहे। साक्षात्कार के अन्त में साक्षात्कारकर्त्ता को सूचनादाता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए तथा उसके द्वारा दिये गए सहयोग के लिए धन्यवाद देना चाहिए और भविष्य में भी सहयोग की अपेक्षा के साथ विदा लेनी चाहिए।

2. **साक्षात्कार को लिखना :** साक्षात्कार की समाप्ति के बाद एक महत्वपूर्ण कार्य है – साक्षात्कार को लिखना । संरचित साक्षात्कार में तो अनुसूची में सूचनाओं को हाथों–हाथ लिख लिया जाता है, लेकिन असंरचित, अनिर्देशित तथा अनौपचारिक साक्षात्कारों में सूचनाओं का लिखना एक कठिन कार्य है क्योंकि जो सूचनादाता मुक्त रूप से सूचना दे रहा हो तो सम्पूर्ण वार्तालाप को लिखने में क्रम टूटने का डर रहता है। ऐसी स्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता की केवल कुछ मोटी–मोटी बातों को नोट कर लेना चाहिए अथवा संक्षिप्त शब्दों या संकेत लिपि या टेपरिकॉर्डर का प्रयोग करना चाहिए।

3. **साक्षात्कार प्रतिवेदन :** साक्षात्कार की समाप्ति के बाद एक और महत्वपूर्ण कार्य है - साक्षात्कार प्रतिवेदन तैयार करना। प्रतिवेदन करने के लिए साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा लिए गए नोट्स, टेपरिकॉर्डर आदि की सहायता ली जानी चाहिए। इस रिपोर्ट के आधार पर ही संकलित की गई सूचनाओं का निर्वाचन व वर्गीकरण किया जाता है एवं निष्कर्ष निकाले जाते हैं। प्रतिवेदन न लिखते समय यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह सही और पक्षपात रहित हो।

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में जिन विधियों द्वारा अध्ययन कार्य किया जाता है, उन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : प्रथम परिमाणात्मक विधि; व द्वितीय, गुणात्मक विधि। वैयक्तिक अध्ययन पद्धति गहन अध्ययन की एक विधि है। इस विधि में ढेर सारी इकाईयों के बारे में जानने की इच्छा को त्याग कर, 'एक' ही इकाई के बारे में विस्तृत तथा गहन जानकारियाँ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, इसलिए इसे गुणातमक अध्ययन कहा जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि सामाजिक अनुसन्धान की महत्वपूर्ण व प्राचीन विधि हैं इसके द्वारा किसी सामाजिक इकाई को अध्यन का मुख्य बिन्दु मानते हुए, इसका गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए तथ्यों को संग्रहित किया जाता है। ऐसे अध्ययन की इकाई परिवार, व्यक्ति, संस्था या समुदाय भी हो सकता हैं। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में, इस पद्धति का सर्वप्रथम उपयोग फेड्रिक लीप्ले ने किया था। इसके बाद, हर्बर्ट स्पेन्सर ने विभिन्न संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन विलियम हले ने बाल अपराधियों तथा राबर्ट रेडफिल्ड ने कृषक समाज के अध्ययन में इस विधि का उपयोग किया। इस विधि में इकाई विशेष पर ध्यान केन्द्रित किया जाने के कारण, इसे 'एकल अध्ययन' विधि भी कहा जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की परिभाषाएँ

वैयक्तिक अध्ययन विधि की परिभाषाएँ निम्नांकित हैं–

गुडे और हॉट - ''यह सामाजिक तथ्यों को संगठित करने की ऐसी विधि है जिससे अध्ययन किये जाने वाले सामाजिक विषय की एकात्मक प्रकृति की पूर्णतया रक्षा हो सके।''

बीसन्ज और बीसन्ज - ''वैयक्तिक अध्ययन गुणात्मक विश्लेषण का एक स्वरूप है जिससे किसी एक व्यक्ति, परिस्थिति अथवा एक संस्था का अत्यन्त सावधानीपूर्वक एवं सम्पूर्ण निरीक्षण किया जाता है।''

गिडिंग्स - ''अध्ययन किया जाने वाला विषय केवल एक व्यक्ति अथवा उसके जीवन की एक घटना अथवा विचार यहाँ तक कि - एक राष्ट्र या इतिहास का एक युग भी हो सकता है।''

पी. वी. यंग - ''वैयक्ति अध्ययन किसी सामाजिक इकाई चाहे वह एक व्यक्ति परिवार, संस्था सांस्कृतिक वर्ग अथवा समुदाय हो, के जीवन का अध्ययन एवं उसकी विवेचना करने की एक विधि है।''

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की विशेषताएँ

वैयक्तिक अध्ययन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. अध्ययन की विशिष्ट इकाई

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में एक साथ अनेक सामाजिक इकाईयों का अध्ययन नहीं किया जाता बल्कि एक विशिष्ट इकाई का अध्ययन किया जाता है। यह विशिष्ट इकाई परिवार, संस्था समूह या जाति हो सकती है ताकि अध्ययन गहन तथा सूक्ष्म हो सके। यह इकाई मूर्त व अमूर्त दोनों हो सकती है। गिडिंग्स के अनुसार, ''वह कोई व्यक्ति हो सकता है या उसके जीवन की एक घटना अथवा एक समस्त राष्ट्र साम्राज्य अथवा ऐतिहासिक युग।

2. व्यक्तिगत अध्ययन

सम्बन्धित इकाई का व्यक्तिगत अध्ययन होता है। तथापि यह निर्धारित अवश्य किया जाता है कि उस विशेष इकाई के बारे में ''क्या'' व ''कितना'' अध्ययन किया जाना है।

3. गहन व सूक्ष्म अध्ययन

चयनित इकाई का गहन व सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। समय की परवाह किये बिना, लम्बे समय तक अध्ययन किया जाता है, ताकि तथ्यों की गहराई से जाँच की जा सके।

4. वर्तमान व अतीत का अध्ययन

इकाई के वर्तमान व अतीत दोनों का अध्ययन किया जाता है। अत: इस अध्ययन को वर्तमान व अतीत दोनों का समन्वय भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, इकाई से सम्बन्धित अतीत को ज्ञात किया जाने के साथ ही उसके वर्तमान को जानने का प्रयास भी किया जाता है।

5. संख्यात्मक अध्ययन की अपेक्षा गुणात्मक अध्ययन

इकाई के गुणात्मक पक्षों को ज्ञात किया जाने पर अधिक बल दिया जाता है। परिणामस्वरूप, तथ्यों का विश्लेषण भी सांख्यिकीय आधार पर नहीं किया जाता; और न ही निष्कर्ष निकालने या कुछ वक्त करने में संख्याओं का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के लिए, कोई बालक विद्यालय में गलत व्यवहार कितनी बार करता है, इसके अध्ययन पर बल नहीं दिया जाता; बल्कि वह गलत व्यवहार किन कारणों से कर रहा है इसके अध्ययन पर बल दिया जाता है।

6. कार्य-कारण का अध्ययन

अध्ययन में किसी घटना में अन्तर्निहित कारकों की पहचान की जाकर इन कारकों में कार्य-कारण सम्बन्धों को स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए विद्यालय में अनुपयुक्त व्यवहार करने वाले बालक की पारिवारिक पृष्ठभूमि यदि यह उजागर करती है कि बालक के माता-पिता में अक्सर कलह रहता है तो यह स्थिति बालक के गलत व्यवहार के लिए उत्तरादायी होती है।

NOTES

7. सम्पूर्ण अध्ययन

वैयक्तिक अध्ययन में इकाई का उसकी सम्पूर्णता में अध्ययन किया जाता है। सम्पूर्णता से अभिप्राय अध्ययन को मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक, प्राणीशास्त्रीय आदिसभी दृष्टियों से सम्पन्न करना है। अर्थात्, इकाई का एक समग्रता के रूप में अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, उस विशेष इकाई, जिसका कि अध्ययन करना है, के किसी विशेष पक्ष या पहलू को न लेकर सम्पूर्ण के ही अध्ययन का केन्द्र बनाते हैं।

8. तुलनात्मक अध्ययन

अध्ययन इकाई के अतीत के साथ-साथ उसके वर्तमान का अध्ययन यह संभव बनाता है कि अतीत और वर्तमान की तुलना की जाकर अर्थपूर्ण सह-सम्बन्धों को स्थापित किया जा सके।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हैं कि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में व्यक्ति संस्था, समूह, समुदाय अथवा किसी इकाई के विषय में प्रत्येक प्रकार से सूक्ष्म व सम्पूर्ण अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन गुणात्मक होता है न कि भावात्मक। सूचनाएँ विशेषत: गुणात्मक रूप में प्रस्तुत की जाती है। अनुसन्धानकर्त्ता लम्बे समय तक अनुसन्धान करता है तथा प्रत्येक प्रकार की सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की जाती है इस कारण यह किसी घटना का अध्ययन सम्पूर्णता से करती है ताकि अध्ययन के निष्कर्ष सही और सटीक प्राप्त हो सके। सा. अनुसंधान में यह एक महत्वपूर्ण व उपयोगी विधि है।

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्रकार

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति को दो भागों में विभक्त किया गया है –

1. **व्यक्ति का वैयक्तिक अध्ययन** – इस प्रकार के अध्ययन में किसी व्यक्ति के जीवन की विशेष घटना उसके जीवन चरित्र का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के लिए सम्बन्धित व्यक्ति के पारिवारिक सदस्यों, मित्रों व जानकारों से उस व्यक्ति के बारे में सूचनाऐं संकलित की जा सकती हैं। इसके साथ ही उसमें सम्बन्धित साधन जैसे डायरी, पुस्तक, आत्मलेख जीवन इतिहास पत्र व कविताओं के द्वारा सूचनाऐं प्राप्त की जा सकती हैं उदाहरण के लए सम्राट अशोक के वैयक्तिक अध्ययन हेतु हम उसके शिलालेख, जीवन इतिहास, उस समय की मुद्राऐं, स्तम्भ लेख व पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जानकारी प्राप्त कर अध्ययन किया जा सकता है।

2. **संस्था या समुदाय का वैयक्तिक अध्ययन** – इसमें अध्ययन की इकाई एक वर्ग, जाति, समुदाय, समूह या संस्था, का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन में अनुसंधानकर्त्ता को अत्यन्त सावधानी, कौशल व अनुभव की आवश्यकता होती है। इसमें अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन की सम्बन्धित इकाई के साथ पूर्ण सांमजस्यता बैठाए रखता है। तथा भीतरी स्थिति की जानकारी के अध्ययन हेतु सामग्री संकलन की एक महत्वपूर्ण विधि है जैसे राजस्थान की आदिवासी जनजाति स्थिति के अध्ययन हेतु उनके समाज में होने वाले रीति-रिवाज, वैवाहिक स्थिति, पारिवारिक स्थिति सभी की सामग्री संकलित करते हुए उक्त जनजाति का सम्पूर्ण और गहन अध्ययन सम्भव हो सकेगा।

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की कार्य-विधि

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का सम्बन्ध व्यक्ति के भूतकाल व वर्तमान से सम्बन्धित उपलब्ध सूचनाओं से होता हैं यह किसी व्यक्ति अथवा समूह के जीवन में सम्बन्धित घटनाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक परिवेश में इस प्रकार अध्ययन करना है जिसमें सम्पूर्ण समूह की मौलिक विशेषताओं की जानकारी प्राप्त हो सके। व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति में अनुसंधानकर्त्ता को बहुत सोच-समझकर व नियोजित व व्यवस्थित ढंग से अपने कार्य को करना होता है ताकि उसे निष्कर्ष में ''पूर्णता'' की प्राप्ति हो सके। ''पूर्णता'' से अभिप्राय है पूर्ण अध्ययन के द्वारा अध्ययन इकाई के सम्बन्ध में समग्र ज्ञान की प्राप्ति, ताकि अध्ययन पूर्ण व्यवस्थित व गहन हो सके। और इसी व्यवस्थिति और गहन अध्ययन की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति में निम्न कार्यविधि अपनाई जाती है-

1. **समस्या का विस्तृत विवेचन** - वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में समस्या का विस्तृत विवेचन अति आवश्यक है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि उस समस्या के सभी पहलुओं की स्पष्ट व्याख्या कर ली जाए। जितना अधिक अध्ययन व्यवस्थित और नियोजित होगा अध्ययन की सफलता की सम्भावना भी उतनी ही अधिक होगी।

2. **समस्या का चुनाव** - अध्ययनकर्त्ता को अध्ययन समस्या का चुनाव सही ढंग से करना अति आवश्यक है। अध्ययन की इकाई व्यक्ति समूह संस्था, जाति या वर्ग किस रूप में किया जाना है। इसका निर्धारण करना आवश्यक है। यह इकाईयां साधारण, असाधारण व विशिष्ट भी हो सकती हैं यदि वह समस्या के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।

इकाईयों का निर्धारण

समस्या के चुनाव के पश्चात् अध्ययनकर्त्ता के लिए आवश्यक हो जाता है कि अध्ययन से सम्बन्धित इकाईयां कौन-कौन सी हैं और उनकी संख्या कितनी है अध्ययनकर्त्ता को बहुत अधिक इकाईयों का चयन न करते हुए समस्या से सम्बन्धित सीमित इकाईयों को ही चुनना चाहिए ताकि अध्ययन विशेषीकृत और नियोजित तरीके से हो सके।

अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण

इकाईयों की संख्या के निर्धारण के बाद अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण करना अति आवश्यक हैं यदि अध्ययन की इकाई व्यक्ति है तो उस व्यक्ति से सम्बन्धित दस्तावेज, जीवन इतिहास, आत्मकथा, डायरी, व्यक्ति के भूत व वर्तमान से सम्बन्धित क्षेत्रों का निर्धारण किया जाना महत्वपूर्ण है।

घटनाओं का क्रम विन्यास

अध्ययन क्षेत्र के निर्धारण करने के पश्चात् उसको समय या काल के सन्दर्भ में समस्या को समझना अति आवश्यक है समस्या के स्वरूप में एक निश्चित अवधि में क्या-क्या परिवर्तन हुए और क्या-क्या होने सम्भव हैं इनको विस्तार से व्यवस्थित करना आवश्यक है इस तरह अध्ययन से सम्बन्धित घटनाओं को क्रम से व्यवस्थित करना अति आवश्यक है।

प्रेरक व निर्धारक कारक

निर्धारक व प्रेरक कारक वे कारक होते हैं जिनके कारण कोई समस्या उत्पन्न होती है। वैयक्तिगत अध्ययन पद्धति में इन कारकों का अध्ययन करना आवश्यक है। इसमें उन कारकों का अध्ययन किया जाता है जिसके कारण घटना घटी थी या उस वैयक्तिक स्थिति की वर्तमान दशा पैदा हुई। जैसे एक अपराधी व्यक्ति के अध्ययन में हम उन कारको का अध्ययन करेंगे जिनके कारण वह व्यक्ति अपराधी बना न कि उसके अपराध की प्रकृति।

विश्लेषण व निष्कर्ष

वैयक्ति अध्ययन पद्धति की कार्यप्रणाली में प्राप्त तथ्यों व सूचनाओं का विश्लेषण करके कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं किन-किन कारकों से वैयक्तिक स्थिति में क्या-क्या परिवर्तन हुए एवं किन-किन परिवर्तनों की सम्भावना है- इन सबका विश्लेषण इस स्तर पर किया जाता है साथ ही इन आधारों पर कुछ निष्कर्ष भी निकाले जाते हैं।

वैयक्तिक अध्ययन की प्रविधियाँ व तथ्यों के स्त्रोत

वैयक्तिक अध्ययन में कुछ ऐसी प्रविधियाँ व स्त्रोत होते हैं जिनके आधार पर अध्ययन की जाने वाली इकाई के बारे में अधिक से अधिक तथ्य एकत्रित किये जा सकते हैं। वैयक्तिक अध्ययन पद्धति साक्षात्कार तथा निरिक्षण प्रविधि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। वैयक्तिक अध्ययन में दो स्त्रोत हो सकते हैं :

1. प्राथमिक स्त्रोत
2. द्वैतीयक स्त्रोत

1. **प्राथमिक स्त्रोत** - प्राथमिक स्त्रोत में सूचनाओं का संकलन प्राथमिक आधार पर होता है इनके माध्यम से अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन विषय से सम्बन्धित तथ्यों व सूचनाओं को स्वयं एकत्रित या संकलित करता है। चूँकि इसमें व्यक्तिगत रूप से प्राथमिक स्त्रोतों पर सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। इसलिए इस स्त्रोत से प्राप्त सूचनाएं अत्यधिक गहन, सूक्ष्म व व्यवस्थित होती हैं। साथ ही अनौपचारिकता भी पाई जाती है।

2. **द्वैतीयक स्त्रोत** - द्वैतीयक स्त्रोत वे स्त्रोत होते हैं जिसमें अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन की सूचनाओं का संकलन नहीं करता है बल्कि सम्बन्धित अध्ययन की इकाई के व्यक्तिगत प्रलेखों जैसे- पुस्तक, पत्र, डायरी एवं सरकारी रिकार्ड आदि के माध्य से सूचनाओं का संकलन करता है। इस सम्बन्ध में श्रीमती पी. वी. यंग ने कहा है, ''व्यक्तिगत प्रपत्र अनुभव की क्रमबद्धता प्रकट करते हैं जिनसे लेखक के व्यक्तित्व, सामाजिक सम्बन्धों तथा जीवन दर्शन पर, जो वैशविक वास्तविकता अथवा व्यक्ति प्रधान प्रशंसा के रूप में होती है- पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

   सेल्टिस एवं अन्य ने Research Methods in social Relations' में व्यक्तिगत प्रलेखों का समावेश किया है वे हैं-

(अ) अलिखित प्रलेख

(ब) ऐसे प्रलेख जो लेखक के निर्देशन में लिखे गए हैं

(स) वे प्रलेख जो किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत अनुभवों पर प्रकाश डालते हो।

NOTES

ये व्यक्तिगत प्रलेख सूचनाओं के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। कुछ महत्वपूर्ण स्त्रोत निम्नलिखित हैं-

डायरियाँ

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के अध्ययन में लिखित प्रलेख में डायरी महत्वपूर्ण स्त्रोत है। डायरियाँ व्यक्तियों द्वारा स्वयं लिखी जाती हैं। डायरी में व्यक्ति अपने जीवन के सुखद व बुरे संस्मरणों को लिखता है साथ ही व्यक्ति की व्यक्तिगत तथा गुप्त बातें लिखता है। यदि हमें व्यक्ति के वास्तविक तथ्य खोजना है तो हमें उस व्यक्ति की डायरी से ही वह सूचना प्राप्त हो सकेगी, क्योंकि ऐसी बहुत सी बातें, जो कि प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा नहीं पूछी जा सकती, हमें आसानी से डायरी द्वारा वास्तविक व सम्पूर्ण सूचनाऐं मिल सकती हैं।

पत्र

वैयक्तिक अध्ययन में पत्रों का भी महत्व होता है। यह ठीक है कि पत्रों के द्वारा हमें सामग्री व्यवस्थित या क्रमबद्ध रूप में प्राप्त हो पाती परन्तु फिर पत्रों से हमें काफी सामग्री प्राप्त हो सकती है। पत्रों द्वारा व्यक्ति अपनी भावनाओं व विचारों का आदान-प्रदान करता है कभी-कभी जीवन के गोपनीय तथ्यों को भी इनके द्वारा उजागर किया जाता है। जवाहरलाल नेहरू द्वारा इंदिरा गाँधी को लिखे पत्र जीवन के दर्शन कराते हैं। इसी प्रकार महात्मा गाँधी व अन्य महापुरुषों द्वारा लिखे पत्र आज भी सुरक्षित हैं। इस प्रकार यह पता चलता है कि व्यक्तिगत पत्र व्यक्ति विशेष के जीवन के अनेक तिथियों को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं।

जीवन इतिहास

जीवन इतिहास जीवन का मूर्तिमान स्वरूप है। इसमें जीवन का सार निहित होता है। अधिकतर जीवन इतिहास में व्यक्ति विशेष की परिवारिक पृष्ठभूमि, व्यक्ति के जीवन में घटित घटनाएं, परिस्थिति आदि का विवरण होता है। यह जीवन इतिहास व्यक्ति विशेष के प्रति व्यक्ति की धारणा आदि का विवरण होता हैं यह जीवन इतिहास व्यक्ति विशेष द्वारा अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखा जाता है अथवा अनुसन्धानकर्त्ता को कभी-कभी सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा अपनी स्वेच्छा से लिखा जाता है। इस सम्बन्ध में पी. वी. यंग ने कहा है कि व्यक्तिगत प्रपत्र व्यक्ति के अनुभव की क्रमबद्धता को प्रगट करते हैं जिनमें व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं सामाजिक संबंधों आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त करना सरल होता है।

1. प्राथमिक स्त्रोत - वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्राथमिक स्त्रोत में साक्षात्कार व अवलोकन दो विधियां ऐसी हैं जिनमें व्यक्ति स्वयं तथ्यों का संकलन करता है। साक्षात्कार अथवा अवलोकन के द्वारा व्यक्ति सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं, विशिष्ट परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं ऐसी घटनाएं है जो उस व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती है और उसके जीवन को नया मोड़ देती है।

साक्षात्कार और निरीक्षण के अतिरिक्त व्यक्ति की सामायिक अभिव्यक्तियाँ, व्यक्ति के मित्रों, नाते-रिश्तेदारों व जानकारों द्वारा दी गई सूचनाओं व उनके सम्बन्ध में व्यक्ति किये गये विचार भी वैयक्तिक व गहन अध्ययन में सहायक होते हैं।

सामाजिक मेल-मिलापों, वार्तालापों भावात्मक अध्ययनों, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों आदि के माध्यम से भी अध्ययन इकाई के सम्बन्ध में प्राथमिक व मौखिक सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं।

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में अध्ययन के स्वरूप के आधार पर सूचनाओं के प्राथमिक और द्वितीयक स्त्रोतों का चयन किया जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का महत्व

''वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति के विरोध में चाहे कुछ भी कहा गया हो, परन्तु यह सत्य है सामाजिक इकाईयों के अध्ययन में यह पद्धति आधारभूत रहेगी।''

''किसी भी सामाजिक अनुसंधान में सूक्ष्म अनुसंधान में सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता के लिए वैयक्तिक अध्ययन की पद्धति महत्वपूर्ण है। इसका अध्ययन सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के साथ-साथ मानसिक समस्याओं के अध्ययन के लिये भी किया जाता है। कूले के अनुसार वैयक्तिक अध्ययन विधि हमारे बोध ज्ञान को विकसित करती है और जीवन पर स्पष्ट प्रभाव डालती है वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का महत्व हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं-

1. **महत्वपूर्ण प्राक्कल्पनाओं का साधन** - वैयक्तिक अध्ययन विधि अनेक महत्वपूर्ण प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करने में एक साधन के रूप में कार्य करती है इसमें अनेक इकाईयों का विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन किया जाता हैं और निष्कर्षों पर पहुँचा जाता है।

2. **अतिगहन अध्ययन** - व्यक्तिक अध्ययन विधि में व्यक्तिगत इकाईयों का, जो कि सामाजिक अनुसंधान का आधार है, का अतिगहन अध्ययन किया जाता है। इस प्रविधि में इकाईयों के केवल समस्या से सम्बन्धित विशिष्ट पहलुओं का ही अध्ययन नहीं बल्कि इकाईयों के सभी पहलुओं का हर दृष्टि से अध्ययन किया जाता है और इस रूप में यह अतिग्रहन अध्ययन होता है।

3. **इकाईयों का वर्गीकरण** - व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति के अध्ययन में इकाईयों का वर्गीकरण व विभाजन किया जाता है। वैयक्तिक अध्ययन विभिन्न इकाईयों को विभिन्न समूहों में विभाजित एवं वर्गीकृत करने में सहायक होता हैं यह विधि व्यक्तिगत अध्ययन में सूक्ष्मता प्राप्त करके इकाईयों के विभिन्न गुणों से परिचित कराने में सहायक होती है। इसमें निर्दशन निकालने में भी आसानी हो जाती है।

4. **व्यक्तिगत अनुभवों का स्त्रोत** - व्यक्तिगत अध्ययन विधि अनुभवों को प्राप्त करने का एक विस्तृत स्त्रोत है। वास्तव में इस विधि में अन्य विधियों से कहीं अधिक अनुभव अनुसंधानकर्त्ता को प्राप्त हो जाते हैं। वैयक्तिक अध्ययन विधि में जीवन के प्राय: सूक्ष्म पहलू का अध्ययन किया जाता है और इस रूप में स्वत: ही अनुसंधानकर्ता को अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं।

NOTES

5. **मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में सहायक** – वैयक्तिक अध्ययन पद्धति मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में सर्वाधिक उपयोगी होता है। चूँकि व्यक्ति की अधिकांश क्रियाएं एवं व्यवहार उसकी मानसिक दशाओं के परिणाम होते हैं और ये मानसिक दशांए इनकी सूक्ष्म एवं जटिल प्रकृति की होती है कि केवल प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से उनका अध्ययन नहीं किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं जिन परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं उन्हें केवल व्यक्तिक अध्ययन के द्वारा ही समझा जा सकता है।

6. **प्रारम्भिक अध्ययन में सहायक** – वैयक्तिक अध्ययन पद्धति प्रारम्भिक अध्ययन में सहायक होती है किसी बड़े–बड़े अध्ययन को प्रारम्भ करने के लिए यह आवश्यक होता है कि प्रारम्भिक स्तर पर ही विषय से सम्बन्धित कुछ इकाईयों की जानकारी प्राप्त कर ली जाए। इससे उपकरणों के लिए निर्देशन की प्राप्ति आदि में सुविधा होती है।

7. **मनोवृत्तियों के अध्ययन में सहायक** – वैयक्तिक अध्ययन पद्धति मनोवृत्तियों के अध्ययन में सहायक है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत रुचियों, मनोवृत्तियों एवं सामाजिक मूल्यों का अध्ययन किया जाता है। अध्ययनकर्त्ता जब तक व्यक्त्यिों की रुचियो, मनोवृत्तियों एवं सामाजिक मूल्यों एवं विशेष परिस्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं को समझ नहीं लेता, तब तक अध्ययन में वैज्ञानिकता नहीं आ पाती है।

8. **अनुसन्धानकर्त्ता के ज्ञान का विस्तार** – वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का आठवां महत्व यह है कि इसके द्वारा अनुसंधानकर्त्ता के ज्ञान का विस्तार होता हैं इस अध्ययन विधि के द्वारा किसी सामाजिक इकाई से सम्बन्धित वैयक्तिक प्रलेखों का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्त्ता के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करता है। इससे उनके ज्ञान का विस्तार होता है एवं उसे स्वयं ही एक अर्न्तदृष्टि प्राप्त हो जाती है जो अध्ययन की सफलता में सहायक होती है।

उपर्युक्त विवरण से ये ज्ञात होता है कि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के अनेक महत्व या गुण हैं जो इसे उपयोगी बनाते हैं। प्रो. सी. एच. कूले के अनुसार, ''व्यक्तिगत अध्ययन विधि हमारे बोध ज्ञान को विकसित करती है एवं जीवन को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है यह प्रत्यक्षरूप से व्यवहारों का अध्ययन करती है, न कि अप्रत्यक्ष व अमूर्त साधनों द्वारा।

''**वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की सीमाएं/दोष** – यद्यपि ये सत्य है कि वैयक्तिक अध्ययन विधि का समाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है फिर भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इस विधि की अपनी कुछ सीमाएं भी है जो कि निम्नलिखित हैं–

1. **अप्रमाणिक तथ्य** – व्यक्तिगत तथ्यों में कई बार अप्रमाणिक तथ्य एकत्र होते हैं इनके द्वारा जिन तथ्यों का संग्रह किया जाता है उन्हें प्रमाणित नहीं किया जा सकता । तथ्यों का सत्यापन नहीं होने से अध्ययन के निष्कर्ष गलत हो सकते हैं अत: अप्रमाणिक तथ्य इस पद्धति की एक सीमा है।

2. **केवल कुछ इकाईयों के आधार पर निष्कर्ष** – वैयक्तिक अध्ययन विधि की सबसे मुख्य सीमा यह है कि इसमें केवल कुछ थोड़ी सी इकाईयों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाल दिये जाते हैं और इसी कारण यदि उन विशेष परिस्थितियों अथवा विशेष गुणों को जिनकी उपस्थिति के कारण निष्कर्ष निकाले गये हैं। ध्यान में न रखा जाए तथा निष्कर्षों को समान्य रूप में सभी इकाईयों पर लागू किया जाए तो निश्चय ही धोखा खाने की सम्भावना बनी रहती है।

3. **अत्यधिक खर्चीली विधि** – वैयक्तिक अध्ययन विधि अत्यधिक खर्चीली विधि है साथ ही अत्यधिक समय साध्य हैं इसका कारण यह है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में तथ्य संकलन करने के लिए उसका जीवन इतिहास, डायरी एवं वातावरण आदि का पूर्ण अध्ययन करना पड़ता है। जिसमें समय अधिक लगता है।

4. **निर्देशन प्रणाली का अभाव** – वैयक्तिक अध्ययन विधि में निदर्शन का अभाव पाया जाता है। और साथ ही इसमें सही प्रतिनिधि इकाईयों का अध्ययन नहीं हो पाता है। केवल मनमाने ढंग से चुनी हुई कुछ इकाईयों के आधार पर ही अध्ययन करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं जो कि सही नहीं होते हैं और न ही विश्वसनीय होते हैं।

5. **अवैज्ञानिक विधि** – वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में कुछ हद तक अवैज्ञानिक अध्ययन होता है। इसमें न तो इकाईयों के चुनाव पर किसी प्रकार का नियन्त्रण रहता है और न ही सूचना संकलन करने पर किसी प्रकार का नियन्त्रण रहता है। इसके लिए किसी भी प्रकार के वैज्ञानिक एवं संग्रहित प्रविधि का भी सहारा नहीं लिया जाता है। इस तरह यह पद्धति अवैधानिक है।

6. **पक्षपात की समस्या** – वैयक्तिक अध्ययन विधि में सदैव ही पक्षपात आने की पूर्ण सम्भावना रहती है। अनुसंधानकर्त्ता एक व्यक्ति से सम्बन्धित प्राय: उन सभी घटनाओं एवं तथ्यों का अध्ययन करता है, जो उसके स्वयं के जीवन में भी घटित होते हैं। इस प्रकार अनुसन्धानकर्त्ता का अपना व्यक्तिगत पक्ष पक्षपात पूर्ण हो जाता है।

7. **अत्यधिक सीमित अध्ययन** – व्यक्तिगत अध्ययन विधि में अत्यधिक सीमित अध्ययन है। इसके द्वारा थोड़ी सी इकाईयों के अध्ययन के आधार पर ही सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। ये इकाईयाँ सम्पूर्ण एवं समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती हैं। यही कारण है कि अन्य पद्धतियों की तुलना में इस पद्धति से सूचनाएं कभी–कभी अपूर्ण एवं अव्यवहारिक होती है इस तरह यह पता चलता है कि अत्यधिक सीमित अध्ययन इस पद्धति का एक दोष या सीमा है।

व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति की उपयुक्त सीमाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह पद्धति पूर्णतया दोष मुक्त नहीं हैं। हालांकि सी रोजर्स, एल्टनमयो, अल्फ्रेड किन्से तथा जॉन डोलार्ड आदि ने इस विधि में तथ्य संकलन, लेखन एवं सम्पादन के स्तर पर अनेक सुधार किये हैं। इस तरह यह आशा की जाती है कि यह पद्धति दोष मुक्त होकर घटनाओं का सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन करने में सक्षम सिद्ध होगी।

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में सावधानियाँ – वैयक्तिक अध्ययन पद्धति स्वयं एक वैज्ञानिक पद्धति है इसमें उन सभी चरणों का उपयोग किया जाता है जो वैज्ञानिक पद्धति से सम्बन्धित होती है इस कारण इसके अध्ययन में कई सावधानियाँ रखनी पड़ती हैं जॉन डोलार्ड के अनुसार वे निम्नलिखित हैं–

1. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में जिस इकाई व व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है, उसको सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना आवश्यक है।

2. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में इकाई के जीवन पर प्रभाव का भी अध्ययन करना पड़ता है। अर्थात वैयक्तिक अध्ययन के लिए किसी व्यक्ति या इकाई से सम्बन्धित घटनाओं को जान लेना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि सम्पूर्ण व्यावहारिक घटनाओं का अध्ययन भी आवश्यक है।

3. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में घटनाओं को व्यक्ति या अध्ययन की इकाई की पारिवारिक व व्यावहारिक पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए।

4. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति में अध्ययन की इकाई से सम्बन्धित एकत्रित तथ्यों के बारे में यह देखना भी आवश्यक है कि उस इकाई को सामाजिक रूप देने में सहयोगी है या बाधक।

5. इस अध्ययन पद्धति में अध्ययन से प्राप्त सामग्री का विवेचन पूर्व-स्थापित सैद्धान्तिक मान्यताओं के सन्दर्भ में की जानी चाहिए जिसमें निष्कर्ष अधिक व्यवस्थित बन सके।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. सामग्री से आप क्या समझते है? इसके प्रकार बताइए।
2. सामग्री के स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।
3. अवलोकन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताएँ बताइए।
4. अवलोकन के प्रकारों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
5. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. साक्षात्कार की प्रक्रिया एवं तकनीक को समझाइए।
7. वैयक्तिक मध्यमान पद्धति से आपका क्या अभिप्राय है? इसके प्रमुख बिन्दुओं का समझाइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सामग्री प्राथमिक स्त्रोतों के दोष बताइए।
2. सामग्री के सार्वजनिक प्रलेखों की उपयोगिता को समझाइए।
3. अवलोकन की प्रक्रिया को समझाइए।
4. सहभागी अवलोकन से आप क्या समझते है?
5. साक्षात्कार के प्रतिवेदन का उल्लेख कीजिए।
6. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
7. वैयक्ति अध्ययन की कार्यविधि को समझाइए।
8. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का महत्व बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सामग्री अंग्रेजी भाषा के शब्द का हिन्दी रूपान्तर है–

   (अ) Data (ब) Date

   (स) Deta (द) Dote ।

NOTES

2. लुण्डबर्ग ने सामग्री के स्त्रोतो को भागों में बाँटा है-

(अ) चार (ब) दो

(स) पाँच (द) छः।

3. सामग्री के स्त्रोत है।-

(अ) प्रत्यक्ष (ब) अप्रत्यक्ष

(स) अ, ब दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।

4. द्वैतीयक सामग्री के स्त्रोत है-

(अ) पत्र (ब) डायरियाँ

(स) संस्मरण (द) ये सभी।

उत्तर - 1. (अ), 2. (ब), 3. (स), 4. (द)।

NOTES

5 सामाजिक अनुसंधान के प्रकार

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अनुसंधान।
- अन्वेषणात्मक अनुसंधान की कार्य प्रणाली।
- वर्णनात्मक अनुसंधान।
- वर्णनात्मक अनुसंधान की विशेषताएँ।
- वर्णनात्मक अनुसंधान के चरण।
- परीक्षणात्मक अनुसंधान।
- परीक्षणात्मक अनुसंधान के प्रकार।
- विशुद्ध अनुसंधान।
- व्यावहारिक अनुसन्धान।
- व्यावहारिक अनुसंधान की उपयोगिता।
- क्रियात्मक अनुसंधान।
- मूल्यांकनात्मक अनुसंधान।
- मूल्यांकनात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया।
- मूल्यांकनात्मक अनुसंधान की समस्याएँ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अनुसंधान।
- अन्वेषणात्मक अनुसंधान की कार्य प्रणाली।
- वर्णनात्मक अनुसंधान।
- वर्णनात्मक अनुसंधान की विशेषताएँ।
- वर्णनात्मक अनुसंधान के चरण।
- परीक्षणात्मक अनुसंधान।
- परीक्षणात्मक अनुसंधान के प्रकार।
- विशुद्ध अनुसंधान।
- व्यवहारिक अनुसंधान।
- व्यवहारिक अनुसंधान की उपयोगिता।
- क्रियात्मक अनुसंधान।
- मूल्यांकनात्मक अनुसंधान।
- मूल्यांकनात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया।
- मूल्यांकनात्मक अनुसंधान की समस्याएँ।

प्राक्कथन

समाज तथा उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा किया जाता है। अध्ययन के अनेक उद्देश्य होते हैं। इसी प्रकार से सामाजिक अनुसन्धान के भी कई लक्ष्य, आधार, परिप्रेक्ष्य, आदि होते हैं अध्ययन तथा शोध के अनेक चर होते हैं। सामाजिक अनुसन्धान तथा अध्ययन की समस्याओं तथा उद्देश्य की भिन्नताओं के आधार पर विभिन्न वैज्ञानिकों ने सामाजिक अनुसन्धान के प्रकारों का उल्लेख किया हैं इन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर सामाजिक अनुसन्धान के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं- (1) अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अनुसन्धान, (2) वर्णनात्मक अनुसन्धान, (3) परीक्षणात्मक अनुसन्धान, (4) शुद्ध अनुसन्धान, (5) व्यवहारिक अनुसन्धान, (6) क्रियात्मक अनुसन्धान और (7) मूल्यांकनात्मक अनुसन्धान।

उपर्युक्त सामाजिक अनुसन्धान के प्रकार ज्ञान-प्राप्ति, जिज्ञासा को शान्त करने, प्राक्कल्पना का निर्माण, समाज-कल्याण, समाज-विकास, समस्याओं के निराकरण, घटना का वर्णन तथा व्याख्या आदि के अधार पर किए गए हैं। अनुसन्धानकर्त्ता को इनकी स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए जिसकी विवेचना वैज्ञानिकों ने निम्न प्रकार से की है-

(1) अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अनुसन्धान (Exploratory or Formulative Research)

जब किसी ऐसे विषय या समस्या पर वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ करना तय किया जाता है जिसके सम्बन्ध में सामान्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती है तो ऐसे विषय पर सर्वप्रथम अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक अनुसन्धान किया जाता है जिससे कि प्राथमिक जानकारी तथा सामग्री एकत्र करके प्राक्कल्पना का निर्माण तथा अध्ययन की योजना बनाई जा सके।

सेलटिज के अनुसार, ''अन्वेषणात्मक अनुसन्धान अनुभव प्राप्त करने के लिए किया जाता है तथा इसके आधार पर आगामी अनुसन्धान की एक निश्चित एवं सार्थक प्राक्कल्पना का निर्माण किया जा सके।'' अन्वेषणात्मक अनुसन्धान किसी विषय के सम्बन्ध में परिचय, प्रारम्भिक सूचनाएँ तथा अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने के लिए किया जाता हैं जिन क्षेत्रों में अध्ययन नहीं हुए हैं उनके सम्बन्ध में अध्ययन का कार्य इसी अनुसन्धान के द्वारा प्रारम्भ होता है, इसलिए इसका नाम भी अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अनुसन्धान रखा गया है। यह अनुसन्धान प्राक्कल्पनाओं के निर्माण, नवीन प्राक्कल्पनाओं के विकास, नूतन अध्ययन के क्षेत्रों का परिचय, अनुसन्धान को स्पष्ट तथा सुनिश्चित करने के लिए किया जाता हैं यह अनुसन्धान समस्या के कारणों का कारण-प्रभाव सम्बन्ध स्पष्ट करने के साथ-साथ विषय से परिचित भी करवा देता है। अन्वेषणात्मक अनुसन्धान कुछ प्रक्रियाओं तथा कार्य प्रणालियों के आधार पर किया जाता है इससे इस अनुसन्धान में अच्छी सफलता मिलती है।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान की कार्य-प्रणाली- अन्वेषणात्मक अनुसन्धान को क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित कार्य-प्रणालियों का उपयोग किया जाता है जिससे कि समस्या से सम्बन्धित प्राथमिक सामग्री पर्याप्त मात्रा में एकत्र की जा सके।

1. **सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन** - अन्वेषणात्मक अनुसन्धान का प्रथम चरण विषय से सम्बन्धित प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्य का गहनता से अध्ययन करना है। विषय अथवा

समस्या से सम्बन्धित सन्दर्भ साहित्य शोध पत्र-पत्रिकाएँ, लेखों, पुस्तकों आदि का अध्ययन करना होता है। ऐसा करने से विषय की समस्या से सम्बन्धित जो भी अध्ययन हुए हैं उसकी जानकारी मिल जाती है तथा आगे किस प्रश्न का अनुसन्धान किया जा सकता है, इसका भी पता चल जाता है।

NOTES

2. **अनुभव सर्वेक्षण** – यहाँ अनुभव सर्वेक्षण से अभिप्राय है कि अध्ययन-विषय अथवा समस्याओं से सम्बन्धित जिन व्यक्तियों को अनुभव है और ज्ञान है तथा जो किन्हीं कारणों से उसे सार्वजनिक रूप से व्यक्ति नहीं कर सके हैं उन व्यक्तियों का सर्वेक्षण करके उनके अनुभव तथा ज्ञान को एकत्र करना है। विषय से सम्बन्धित समाज के वृद्धजन, तथा सम्बन्धित लोग बहुमूल्य जानकारी रखते हैं तथा अशिक्षित होने के कारण या अन्य किसी कारण से वे उन अनुभवों को दूसरों को नहीं बता पाते हैं। इस अनुसन्धान का कार्य ऐसे लोगों का पता लगाना, उनसे सम्पर्क करना, साक्षात्कार के द्वारा विषय से सम्बन्धित उनके अनुभवी ज्ञान तथा निष्कर्ष को एकत्र करके वर्णन तथा व्याख्या करना होता है। इसमें अनुभवी, महत्वपूर्ण जानकारी तथा विषय के ज्ञाताओं का चयन करना सरल कार्य नहीं है। इस कार्य को पूर्ण सावधानी से करना होता है जिससे समय और धन की बचत भी होती है तथा प्राप्त सूचनाएँ अनुसन्धान को नई दिशा भी प्रदान कर सकती हैं।
3. **सही सूचनादाताओं का चयन** – इस अनुसन्धान की सफलता उपयुक्त तथा वास्तविक अन्तदृष्टि प्रदान करने वाले सूचनादाताओं के चुनाव पर निर्भर करती है। इसके लिए अध्ययन-विषय से सम्बन्धित क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों, पदाधिकारियों, समाज सुधारकों, प्रतिनिधियों आदि को चुनना चाहिए जो विषय की जानकारी दे सकें। गाँवों से सम्बन्धित किसी विषय का अन्वेषणात्मक अनुसन्धान करने के लिए वार्ड पंचों, उप-सरपंचों, सरपंच, ग्राम तथा विभिन्न जातियों के पंचों तथा अन्य पदाधिकारियों तथा कार्यकर्त्ताओं का चुनाव करेंगे। इनके अतिरिक्त शिक्षण संस्थाओं के अध्यापकों, प्रधानाचार्यों आदि से भी सम्पर्क करना चाहिए।
4. **उपयुक्त प्रश्न पूछना** – अनुसन्धान को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों का निर्माण बहुत सोच-समझ कर किया जाए। प्रश्नों का निर्माण सावधानीपूर्वक किया जाए। सूचनादाताओं से प्रश्न सावधानीपूर्वक उपयुक्त क्रम एवं समयानुसार पूछे जाएँ। ऐसा करने पर ही अनुसन्धान से सम्बन्धित अच्छी सामग्री एवं तथ्य एकत्र हो पाएँगे।
5. **अन्तदृष्टि-प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण** – इस अनुसन्धान में अन्तदृष्टि-प्रेरक घटनाओं का संकलन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण बहुत महत्वपूर्ण पक्ष है। ये घटनाएँ अनुसन्धानकर्त्ता के सीमित ज्ञान में वृद्धि करती है तथा उसे समस्या के सभी पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है तथा अनुसन्धानकर्त्ता को उन बातों का पता चलता है जो कई बार विशेष अध्ययन करने पर भी पता नहीं चलती। ऐसी जानकारियाँ अनुसन्धान को सफलता प्रदान करती हैं।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान के प्रमुख कार्य (Main Functions of the Exploratory Research) – सेलटिज तथा साथियों ने इस अनुसन्धान के प्रमुख कार्य को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है, ''अन्वेषणात्मक अनुसन्धान उन अनुभवों को प्राप्त करने के लिए जरूरी है जो कि अधिक निश्चित अनुसन्धान के लिए उचित प्राक्कल्पना के निर्माण में सहायक होगा।'' अनुभवों को प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्वेषणात्मक अनुसन्धान के निम्नलिखित प्रमुख कार्य हैं-

1. महत्वपूर्ण सामाजिक अनुसन्धान के विषयों तथा समस्याओं की ओर अनुसन्धानकर्त्ताओं का ध्यान दिलाना।

NOTES

2. अनुसन्धान के लिए विभिन्न नई-नई समस्याओं से सम्बन्धित व्यावहारिक और उपयोगी प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करना।
3. अनुसन्धान के लिए नए-नए अध्ययन के क्षेत्रों का विकास करना तथा अनुसन्धानकर्त्ता को अन्तदृष्टि-प्रेरक घटनाओं के सम्पर्क में लाना।
4. प्राक्कल्पनाओं की जाँच करवाने में सहायता प्रदान करना।
5. अनुसन्धान की योजना तथा प्रारूप तैयार करने के लिए प्रारम्भिक तथा प्राथमिक सामग्री प्रदान करना।
6. अनुसन्धान में विभिन्न प्रणालियों की व्यावहारिकता तथा उपयोगिता को मालूम करना।
7. प्राथमिक सामग्री प्रदान करके अनुसन्धान के क्षेत्रों का विकास करना।
8. इस अनुसन्धान का प्रमुख कार्य है- अनुसन्धान से सम्बन्धित प्रारम्भिक सूचनाएँ तथा सामग्री प्रदान करके अनुसन्धान के कार्य को निश्चित दिशा प्रदान करना।
9. अनुसन्धानकर्त्ता को विषयों के विभिन्न लक्षणों के सम्बन्ध में जानकारी देकर उसमें रुचि पैदा करना तथा गहन अध्ययन के लिए विषयों के प्रति आकर्षण पैदा करना।

सामाजिक अनुसन्धान में अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक अनुसन्धान का उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के कारण विशिष्ट स्थान है।

(2) वर्णनात्मक अनुसन्धान (Descriptive Research)

वर्णनात्मक अथवा विवरणात्मक अनुसन्धान, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, एक ऐसा अनुसन्धान है जिसका प्रमुख लक्ष्य अध्ययन की समस्या अथवा विषय के सम्बन्ध में सत्य, प्रमाणित तथा यथार्थ सामग्री एकत्र करके उनका क्रमबद्ध, तार्किक तथा व्यवस्थित वर्णन करना अथवा विवरण तैयार करना है। इस शोध का उद्देश्य घटना, समस्या अथवा विषय का वर्णन या विवरण प्रस्तुत करना है इसीलिए इसका नाम वैज्ञानिकों ने वर्णनात्मक अथवा विवरणात्मक अनुसन्धान रखा है। कपालन के अनुसार, "वैज्ञानिक क्रिया का वास्तविक प्रारम्भ घटनाओं के विवरण से शुरू होता है। इसके बाद ही उनका समूहीकरण, वर्गीकरण और विश्लेषण किया जाता है।" यह वर्णनात्मक शोध व्यक्ति, समूह, समाज, संस्कृति, जाति, समुदाय आदि से सम्बन्धित सामाजिक घटनाओं के वर्णन करने के लिए किये जाते हैं। जिसमें आयु, लिंग भेद, शिक्षा, व्यवसाय या अन्य लक्षणों के आधार पर वर्णन किया जाता है। जनगणना रिपोर्ट तथा किसी विषय से सम्बन्धित लोगों के मतों का अध्ययन इस शोध के प्रकार होते हैं। शोध में अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि के द्वारा तथ्य तथा सामग्री एकत्र की जाती है। इसमें घटना का "क्या है?" के आधार पर वर्णन किया जाता है।

वर्णनात्मक अनुसन्धान की विशेषताएँ - वर्णनात्मक अनुसन्धान की प्रमुख विशेषताएँ वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित बताई हैं-

1. जिस विषय अथवा समस्या का अध्ययन जब प्रथम बार करते हैं तो सबसे पहिले वर्णनात्मक शोध किया जाता है। यह नवीन अध्ययनों के लिए विशेष सार्थक तथा वैज्ञानिक है।
2. वर्णनात्मक शोध की प्रक्रिया के चरण वैज्ञानिक पद्धति के जैसे होते हैं परन्तु इसमें प्राक्कल्पना का निर्माण करना सम्भव नहीं होने के कारण प्राक्कल्पना नहीं बनाई जाती है।

3. यह शोध समस्या की व्याख्या, तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण, संगठन, विश्लेषण तथा वर्णन के चरणों में होकर सम्पन्न होता है।
4. वर्णनात्मक अनुसन्धान में अध्ययन की इकाई का पूर्ण अध्ययन नहीं किया जाता है, बल्कि किसी एक पक्ष अथवा कुछ पहलुओं का ही अध्ययन किया जाता है।
5. अनुसन्धानकर्त्ता घटना का वस्तुनिष्ठ तथा पक्षपात रहित अध्ययन करता है। वह "क्या है?" का अध्ययन करता है। "क्या होना चाहिए?" का अध्ययन नहीं करता है।
6. शोधकर्त्ता का परिप्रेक्ष्य वैज्ञानिक होता है मानविकी नहीं होता है। वह समाज सुधारक या भविष्यवेत्ता नहीं होता है।

वर्णनात्मक अनुसन्धान के चरण (Steps of Descriptive Research) – वर्णनात्मक शोध में प्राक्कल्पना का निर्माण नहीं किया जाता है बल्कि अनुसन्धान के उद्देश्यों को स्पष्ट तथा निश्चित किया जाता है। समस्या की व्याख्या की जाती है तथा शोध के मौखिक प्रश्नों को निश्चित किया जाता है जिससे सम्बन्धित सामग्री एकत्र करनी होती है।

2. **प्रविधियों का चयन** – वर्णनात्मक शोध के प्रश्नों तथा सामग्री की प्रकृति के अनुसार तथ्य तथा सामग्री-संकलन के लिए विभिन्न प्रविधियों में से उपयुक्त प्रविधियों का चयन किया जाता है जिससे सम्बन्धित सामग्री का संकलन किया जा सके।
3. **निदर्शन का चुनाव** – अध्ययन का क्षेत्र (समग्र) जब बड़ा होता है तो निदर्शन प्रणाली के द्वारा कुछ सूचनादाताओं को चुना जाता है तथा सीमित धन, समस्या और कार्यकर्त्ताओं की संख्या के आधार पर क्षेत्र, इकाइयाँ तथा प्रविधि का चयन किया जाता है। ये इकाइयाँ समग्र की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती हैं।
4. **सामग्री का संकलन** – शोध का महत्वपूर्ण चरण तथ्यों तथा सामग्री का संकलन है। ये सामग्री का संकलन, अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि में जो चुनी जाती हैं, उनसे एकत्र करते है।। समय-समय पर जाँच भी करते हैं कि सूचनादाता जो उत्तर दे रहा है वह सत्य तथा विश्वसनीय है अथवा नहीं। ऐसा पूरक प्रश्न पूछ कर पता लगा लिया जाता है।
5. **तथ्यों का वर्गीकरण तथा विश्लेषण** – एकत्र तथ्यों को उनके गुणों तथा प्रकृति के आधार पर विभिन्न समूहों में वर्गीकृत किया जाता है। समानता के आधार पर वर्ग बनाए जाते हैं। उन वर्गों को क्रम से सारणी के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। तथ्यों के गुण-सम्बन्ध को देखने के लिए सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है।
6. **प्रतिवेदन लिखना** – अन्त में तथ्यों, सामग्री तथा एकत्र सूचना को क्रम से वर्णनात्मक तथा विरणात्मक रूप में लेखबद्ध कर दिया जाता है। इसमें भाषा का विशेष ध्यान रखा जाता है। सम्बन्धित विज्ञान की मान्यता-प्राप्त भाषा तथा शब्दावली का ही प्रयोग किया जाता है जिससे लोग उसका वही अर्थ लगाएँ जो शोधकर्त्ता उन्हें कहना चाहता है। इस प्रकार वर्णनात्मक शोध कार्य पूर्ण होता है तथा उसका लाभ अन्य वैज्ञानिक उठा पाते हैं।

(3) परीक्षणात्मक अनुसन्धान (प्रयोगात्मक शोध) (Experimental Research)

परीक्षणात्मक अनुसन्धान एक प्रकार से ऐसा अवालोकन है जो नियन्त्रित परिस्थितियों में किया जाता है। इस शोध में प्रयोग का विशेष महत्व होता है। प्रयोग से अभिप्राय है नियन्त्रित परिस्थितियों में अवलोकन करना। जहोड़ा के अनुसार, "सामान्य अर्थ में एक परीक्षण को प्रमाण के संकलन को

व्यवस्थित करने की प्रणाली माना जा सकता है जिसमें कि किसी प्राक्कल्पना की सार्थकता के विषय में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।'' परीक्षणात्मक शोध प्राक्कल्पना की सत्यता, प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता की जाँच करने की प्रक्रिया है। इसमें आनुभविक तथ्यों को एकत्र किया जाता है तथा जिनमें परस्पर कारण-प्रभाव सम्बन्ध स्पष्ट तथा सुनिश्चित होते हैं। इस अनुसन्धान में विभिन्न कारकों तथा चरों का परस्पर कारणीय सम्बन्धों का नियन्त्रित परिस्थितियों में अध्ययन किया जाता है तथा अन्त में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है।

चेपिन (Chapin) के अनुसार, ''समाजशास्त्रीय अनुसन्धान में परीक्षणात्मक रचना की अवधारणा नियन्त्रण की दशाओं में अवलोकन द्वारा मानवीय सम्बन्धों के अध्ययन की ओर संकेत करती है।'' आलोच्य शोध सामाजिक विज्ञानों में कुछ वैसा ही प्रयोग है जैसा भौतिक विज्ञानों में नियन्त्रित परिस्थितियों में प्रयोग या परीक्षण किया जाता है। परीक्षणात्मक शोध सामाजिक घटनाओं का अध्ययन नियन्त्रित परिस्थितियों में परीक्षण करके, कारकों का कारण-प्रभाव के क्रम में अवलोकन करता है। इसमें कुछ कारकों पर नियन्त्रण कर लिया जाता है तथा अन्यों की मात्रा घटा-बढ़ा कर परस्पर प्रभाव तथा सम्बन्ध देखे जाते हैं। परीक्षणात्मक शोध की उपर्युक्त विशेषताओं को चेपिन ने निम्न रूप से स्पष्ट किया है, ''प्रयोग नियन्त्रित दशाओं में किया जाने वाला अवलोकन मात्र है। जब केवल अवलोकन किसी समस्या को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाने में असफल रहता है, तब वैज्ञानिक के लिए परीक्षण का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।'' यह शोध सामाजिक विज्ञानों तथा समाजशास्त्र में प्रयोगशाला-प्रणाली की विकल्प जैसा है। परीक्षणात्मक शोध का उद्देश्य घटनाओं की व्याख्या तथा स्पष्टीकरण करना होता है इसलिए इसे व्याख्यात्मक शोध भी कहते हैं।

I. परीक्षणात्मक अनुसन्धान के प्रकार – अनुसन्धानकर्त्ता ने परीक्षणात्मक शोध के परीक्षण के समय समूहों पर नियन्त्रण आदि के आधार पर निम्न तीन प्रकार बताए हैं- (1) पश्चात् परीक्षण, (2) पूर्व-पश्चात् परीक्षण और (3) कार्यान्तर तथ्य परीक्षण।

1. **पश्चात् परीक्षण** – इस परीक्षण में समान गुणों वाले दो समूह को सम्मिलित किया जाता है। एक समूह को ज्यों-का-त्यों रहने दिया जाता है, उसमें कोई परिवर्तन लाने का प्रयास नहीं किया जाता है। इसे नियन्त्रित समूह कहते हैं। दूसरा समूह परीक्षणात्मक समूह होता है, उसमें किसी कारक या चर के प्रभाव में परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है। एक निश्चित समयावधि के बाद दोनों-नियन्त्रित समूह और परीक्षणात्मक समूह का अध्ययन किया जाता है। अगर परीक्षणात्मक समूह में नियन्त्रित समूह की तुलना में अधिक परिवर्तन आता है तो इसका कारण वह कारक अथवा चर है जिसके द्वारा परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया था। उदाहरण द्वारा इसे और स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए बिल्कुल समान लक्षणों वाले दो गाँव लेते हैं। एक गाँव को नियन्त्रित समूह के रूप में रखते हैं तथा दूसरे को परीक्षणात्मक समूह के रूप में। इस दूसरे परीक्षणात्मक गाँव में अस्पृश्यता को दूर करने के लिए प्रचार-प्रसार करते हैं। उन्हें अस्पृश्यता की हानियाँ आदि की विशेष शिक्षा देते हैं। कुछ महीनों बाद गाँव के अस्पृश्यता सम्बन्धी व्यवहार और दृष्टिकोण का अध्ययन करते हैं। अगर दूसरे परीक्षणात्मक गाँव में अस्पृश्यता के सम्बन्ध में कमी के परिणाम आते हैं तथा प्रथम नियन्त्रित समूह ज्यों-का-त्यों मिलता है तो निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रचार-प्रसार तथा शिक्षा से अस्पृश्यता पर प्रभाव पड़ता है, उसमें कमी हो जाती है।

2. **पूर्व-पश्चात् परीक्षण** – इस परीक्षण में केवल एक समूह लिया जाता है। इसमें नियन्त्रित समूह को नहीं लिया जाता है। इस समूह का पहले किसी तथ्य-संकलन की विधि से अध्ययन किया

जाता है, उसकी वस्तु स्थिति मालूम कर ली जाती है। इसके बाद उस समूह में नवीन कारक या कारकों का प्रभाव डालकर परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। कुछ समय पश्चात् उस समूह का उसी तथ्य-संकलन विधि से पुनः अध्ययन किया जाता है। दोनों अध्ययनों की तुलना की जाती है। अगर अन्तर आता है तो उसे उन नवीन कारकों का परिणाम मान लिया जाता है। उदाहरण के द्वारा इसे समझा जा सकता है। एक गाँव लिया, उसमें अस्पृश्यता की स्थिति का अध्ययन किया। इसके बाद वहाँ पर प्रचार-प्रसार द्वारा अस्पृश्यता के दोषों को बताया। निश्चित अवधि के बाद पुनः उन्हीं तथ्य-संकलन की विधियों से अस्पृश्यता की स्थिति का अध्ययन किया। दोनों अध्ययनों की तुलना करने पर अगर उस गाँव में अस्पृश्यता में कमी मिलती है तो इसका कारण वे प्रचार-प्रसार हैं जो उस गाँव में किए गए थे।

3. **कार्यान्तर तथ्य परीक्षण** – इस परीक्षण के द्वारा भूतकाल से सम्बन्धित अथवा किसी ऐतिहासिक घटना का अध्ययन किया जाता है। भूतकाल की घटना को दुबारा समाज में दोहराना सम्भव नहीं है। जब किसी समाज में घटना पहले घट चुकी है उसके कारणों तथा प्रभावों का पता लगाने के लिए कार्यान्तर तथ्य परीक्षण विधि का प्रयोग किया जाता है। मान लजिए एक जनजाति समाज में कार्यक्रम चलाया गया था। बाद में इस कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन करना चाहते हैं तो कार्यान्तर तथ्य परीक्षण द्वारा निम्न प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है तथा प्रभावों का पता कर सकते हैं। इसके लिए हम दो जनजातियों का चुनाव करेंगे एक वह जनजाति जिसमें कल्याण कार्यक्रम नहीं चलाया गया था तथा दूसरी वह जनजाति जिसमें कार्यक्रम चलाया गया था। दोनों का अध्ययन करके पता चल जाएगा कि उनमें कितना अन्तर है। यह अन्तर विशेष रूप से उस जनजाति में दिखाई पड़ता है जिसमें कार्यक्रम चलाया गया था तो परिणाम स्पष्ट सामने आ जाता है कि इस परिवर्तन का कारण कल्याण कार्यक्रम ही है।

(4) विशुद्ध अनुसन्धान (Pure Research)

गुडे एवं **हॉट** ने सामाजिक अनुसन्धान के दो प्रकार बताए हैं- (1) विशुद्ध अनुसन्धान और (2) व्यावहारिक अनुसन्धान। यहाँ हम पहले विशुद्ध अनुसन्धान का वर्णन करेंगे। विशुद्ध अनुसन्धान ज्ञान का विस्तार तथा सिद्धान्तों के निर्माण के लिए किया जाता है। इस अनुसन्धान के द्वारा अवधारणाओं का स्पष्टीकरण, स्थापना तथा परिष्करण किया जाता है। विशुद्ध अनुसन्धान सैद्धान्तिक लक्ष्यों तथा विद्यमान ज्ञान के भण्डार में वृद्धि करने के लिए किया जाता है। विशुद्ध अनुसन्धान सिद्धान्त, ज्ञान, तथ्य-संकलन, अनुसन्धान की दिशा आदि के लिए किया जाता है। हैरिंग, गुडे एवं हॉट तथा अनेक वैज्ञानिकों ने इसकी चर्चा करते समय इन लक्षणों पर प्रकाश डाला है।

विशुद्ध अनुसन्धान का अर्थ तथा परिभाषा
(Meaning and Definition of Pure Research)

इसकी कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

1. **अमेरिका के राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान** के अनुसार, ''विशुद्ध या आधारभूत शोध में ज्ञान के विकास के लिए किए गए ऐसे मौलिक अन्वेषणों को शामिल किया जाता है जिनका विशिष्ट उद्देश्य अन्वेषण करवाने वाले प्रतिष्ठानों या संगठन की किन्हीं समस्याओं के उत्तर देना नहीं होता।'' इस परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि विशुद्ध अनुसन्धान का सम्बन्ध किसी समस्या के समाधान या हल ढूँढ़ने से नहीं होता। यह तो केवल ज्ञान और केवल ज्ञान के विकास के लिए किया गया शोध होता है।

2. **हैरिंग** के अनुसार, ''विशुद्ध अनुसन्धान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ज्ञान के विद्यमान भण्डार में वृद्धि करना है। इसके साथ ही इसका कार्य हमारे मस्तिष्क में विद्यमान शंकाओं और अव्यावहारिक सिद्धान्तों का निराकरण तथा परिष्करण करना है।'' इन्होंने इस अनुसन्धान की विस्तृत परिभाषा दी है। आपने लिखा है कि इस अनुसन्धान का कार्य ज्ञान के भण्डार का विकास करना है। मानव के बौद्धिक प्रश्नों, शंकाओं को हल करना है। जो ज्ञान तथा सिद्धान्त है उसे एकदम शुद्ध कर देना है। कुछ विद्वानों का कहना है कि विशुद्ध अनुसन्धान का कार्य 'ज्ञान के लिए ज्ञान' के उद्देश्य से वैज्ञानिक अध्ययन तथा शोध करना है।

विशुद्ध शोध में वैज्ञानिक तटस्थता अथवा वस्तु परकता का विशेष ध्यान रखा जाता है, इसीलिए इसको विशुद्ध अनुसन्धान, मौलिक अनुसन्धान अथवा आधारभूत अनुसन्धान कहा जाता है। इस अनुसन्धान का परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है, मानविकी दृष्टिकोण नहीं होता है, इसीलिए विशुद्ध अनुसन्धान का सीधा सम्बन्ध, किसी भी प्रकार की समाज की समस्याओं, कल्याणकारी योजनाओं, नीति-निर्माण तथा व्यावहारिक उपयोगिता से नहीं होता है।

विशुद्ध सामाजिक अनुसन्धान सामाजिक घटनाओं का अध्ययन ज्ञान-प्राप्ति के लिए कारण-प्रभाव, सम्बन्धों का अध्ययन वस्तुनिष्ठता के साथ आनुभविक तथ्यों का संकलन करके करता है तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का निर्माण करके विज्ञान के ज्ञान की वृद्धि करता है। इस अनुसन्धान में रहस्यों का पता लगाना, सत्य को मालूम करना, प्रकार्यात्मक सम्बन्धों को खोजना, नियमों को खोजना, नए सिद्धान्तों को प्रतिपादित करना तथा पुराने सिद्धान्तों का परिमार्जन, परिष्करण, परिवर्तन आदि करना है।

विशुद्ध अनुसन्धान के उद्देश्य - विशुद्ध अनुसन्धान के अनेक उद्देश्य वैज्ञानिक गुडे एवं हॉट ने दिए हैं-

1. **विषय की दिशा-निर्धारण** - गुडे एवं हॉट का कहना है कि सामाजिक विशुद्ध अनुसन्धान का प्रमुख उद्देश्य समाजशास्त्र विषय के अध्ययन के क्षेत्र, परिप्रेक्ष्य, विषय सामग्री आदि को निश्चित करना है। शुद्ध अनुसन्धान यह निश्चित करता है कि किस प्रकार के तथ्य विषय से सम्बन्धित कारक हैं और कौन-कौन से तथ्य विषय से सम्बन्धित नहीं हैं।

2. **संक्षिप्तीकरण** - शुद्ध अनुसन्धान का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य उस सब सामग्री का संक्षिप्तीकरण करना है जो किसी अध्ययन की वस्तु के सम्बन्ध में उपलब्ध है। इस ज्ञान का संक्षिप्तीकरण निम्न दो वर्गों में विभाजित किया गया है- (1) आनुभविक सामान्यीकरण और (2) विभिन्न प्रस्तावनाओं के सम्बन्धों की व्यवस्था। शुद्ध अनुसन्धान विषय के परिप्रेक्ष्य को निर्धारित करने के साथ-साथ तथ्यों का संक्षिप्तीकरण भी करता है।

3. **तथ्यों की भविष्यवाणी** - शुद्ध अनुसन्धान का तीसरा उद्देश्य विज्ञान के क्षेत्र के तथ्यों की भविष्यवाणी करना है। शुद्ध अनुसन्धान का प्रमुख कार्य यह स्पष्ट करना है कि कौन-कौन से तथ्यों के घटने तथा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। आलोच्य अनुसन्धान वैज्ञानिक को निर्देश देता है उसे कौन-कौन से तथ्यों का अध्ययन करना है तथा उन्हें एकत्र करना है।

4. **ज्ञान की कमी को बताना** - गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि जब शुद्ध अनुसन्धान उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है तो वह यह भी निर्देश देता है कि विज्ञान में तथ्यों को एकत्र करना है तथा किन-किन तथ्यों को एकत्र किया जा चुका है।

5. **तथ्यों का वर्गीकरण** - शुद्ध अनुसन्धान विज्ञान में उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों, सामग्री आदि का वर्गीकरण तथा सारणीयन करने में मार्ग-निर्देशन का कार्य करता है। तथ्यों का कारण-प्रभाव

सम्बन्ध शुद्ध अनुसन्धान प्रदान करता है। शुद्ध अनुसन्धान तथ्यों के वर्गीकरण का चर तथा आधार निश्चित करता है।

6. **ज्ञान पिपासा की तुष्टि** – शुद्ध अनुसन्धान का उद्देश्य मानव की आधारभूत इच्छा–ज्ञानार्जन–को तृप्त करना है। वैसे तो सभी प्रकार के शोध मानव के ज्ञान की इच्छा को पूर्ण करते हैं लेकिन शुद्ध अनुसन्धान मौलिक तथा आधारभूत नियमों की खोज करता है जो ज्ञान के विकास में सहायता करते हैं तथा अध्ययन को नई दिश प्रदान करते हैं। समाज परिवर्तनशील है इसलिए इससे सम्बन्धित सिद्धान्त भी समय सापेक्ष नहीं रह पाते हैं। इस कार्य को दिशा–निर्देश शुद्ध अनुसन्धान प्रदान करता है।

NOTES

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि शुद्ध अनुसन्धान के अनेक उद्देश्य–दिशा निर्धारण, संक्षिप्तीकरण, तथ्यों की भविष्यवाणी, तथ्यों का वर्गीकरण, ज्ञान–पिपासा की तुष्टि आदि हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो शुद्ध अनुसन्धान का समाज की समस्याओं, तथा समाज–कल्याण से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है परन्तु समाज सुधारक, योजनाकार आदि इसके द्वारा खोजों, नियमों, तथ्यों आदि का उपयोग समाज की समस्याओं के समाधान के लिए काम में लेते हैं। इस प्रकार से शुद्ध अनुसन्धान द्वारा प्रतिपादित विषयों तथा ज्ञान का उपयोग समाज कल्याण के लिए उपयोगी रहता है।

(5) व्यावहारिक अनुसन्धान (Applied Research)

गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि व्यावहारिक अनुसन्धान अनेक व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में योगदान देता है। सामाजिक विज्ञानों के विकास के लिए व्यावहारिक अनुसन्धान आवश्यक है। यह अनुसन्धान समाज की संरचना और उसके कार्यों की व्याख्या करता है। इसके अनेक लक्षण, कार्य, उद्देश्य आदि हैं। पहले हम इसके अर्थ का अध्ययन करेंगे।

व्यावहारिक अनुसन्धान का अर्थ तथा परिभाषा

व्यावहारिक अनुसन्धान की परिभाषा फेस्टिगर, काज, होर्टन, यंग आदि ने दी है, जो निम्न हैं–

1. फेस्टिंग तथा काज के अनुसार, ''जब तथ्यों का संकलन उद्योग या प्रशासन के सन्दर्भ में किसी उपयोगितावादी दृष्टिकोण से किया जाता है तथा जिसकी नीति–निर्माताओं को आवश्यकता होती है तब इसे व्यावहारिक अनुसन्धान कहा जा सकता है।''

2. होर्टन एवं हंट ने कहा है, ''जब वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग ऐसे ज्ञान की खोज के लिए किया जाता है जो व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में उपयोगी हो तो इसे व्यावहारिक अनुसन्धान कहते हैं।''

3. पी. वी. यंग के अनुसार, ''ज्ञान की खोज का लोगों की आवश्यकताओं और कल्याण के साथ एक निश्चित सम्बन्ध पाया जाता है। वैज्ञानिक यह मानकर चलता है कि समस्त ज्ञान मूलत: उपयोगी है, चाहे उसका उपयोग निष्कर्ष निकालने में या किसी क्रिया अथवा व्यवहार को कार्यान्वित करने में, एक सिद्धान्त के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में किया जाए। सिद्धान्त तथा व्यवहार अक्सर आगे चलकर एक–दूसरे में मिल जाते हैं।''

4. राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान, अमेरिका के अनुसार, ''व्यावहारिक अनुसन्धान में अन्वेषण करवाने वाली संस्थाओं तथ संगठनों द्वारा प्रस्तुत की गई समस्याओं से सम्बन्धित ऐसी अन्वेषण क्रियाएँ आती हैं जो इन समस्याओं के समाधान में योगदान करती हैं।''

NOTES

इन उपर्युक्त परिभाषाओं से व्यावहारिक अनुसन्धान की अनेक विशेषताएँ, उद्देश्य आदि स्पष्ट होते हैं। व्यावहारिक अनुसन्धान का परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण मानविकी होता है। व्यावहारिक शोध उपयोगितावादी होता हैं यह व्यावहारिक होता हैं जिससे अभिप्राय है कि इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान का उपयोग भी समस्याओं के समाधान में सीधा किया जाता है। यह समस्याओं के कारणों, लक्षणों, नियमों आदि को समझने में सहायक होता है क्योंकि इसका दृष्टिकोण मानविकी जैसा होता है इसलिए इसके द्वारा सामाजिक नियोजन, नीति निर्धारण, सामाजिक समस्याओं, व्याधिकीय लक्षणों आदि को समझने में सहायता प्रदान की जाती हैं।

व्यावहारिक अनुसन्धान का महत्व सामाजिक समस्याओं के साथ सीधा है। यह अनुसन्धान समस्याओं के कारणों का अध्ययन करके समाज की अनेक समस्याओं को नियन्त्रित करने में काफी सहायक होता है। इस अनुसन्धान के निष्कर्षों में भी अनुसन्धानकर्त्ता अनेक व्यावहारिक और उपयोगी सुझाव देता है जो कार्यान्वित होकर समाज की समस्याओं को हल करने में सहायक होते हैं।

व्यावहारिक अनुसन्धान के उद्देश्य – गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि विशुद्ध अनुसन्धान और व्यावहारिक अनुसन्धान एक–दूसरे के पूरक हैं तथा परस्पर घनिष्ठता सम्बन्धित हैं। इनके उद्देश्य भी एक–दूसरे से गुंफित है। व्यावहारिक शोध परिवर्तनशील मानव समाज का अध्ययन करता है। व्यावहारिक अनुसन्धान समय–समय पर तथ्य एकत्र करके अद्यतन जानकारी देता है। गुडे एवं हाट ने व्यावहारिक अनुसन्धान के चार निम्नलिखित उद्देश्य बताए हैं–

1. **ज्ञान का विकास** – व्यावहारिक अनुसन्धान का उद्देश्य ज्ञान का विकास करना हैं व्यावहारिक अनुसन्धान का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं, सामाजिक व्यवस्थाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में ज्ञान का विकास करना है। यह विशुद्ध शोध द्वारा प्रतिपादित नियमों तथा सिद्धान्तों का आनुभाविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करता है तथा उनकी सत्यता, प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता की जाँच करता है। संचयी ज्ञान के आधार पर आगे परीक्षण करता है, नवीन तथ्यों की खोज करता है।

2. **तथ्यों का प्रकार्यात्मक अध्ययन** – व्यावहारिक अनुसन्धान तथ्यों का परस्पर एक–दूसरे के साथ कारण–प्रभाव सम्बन्ध का पता लगता है। एक कारक या अन्य कारणों से, अन्य कारकों का एक कारक से तथा कारकों का परस्पर क्या गुण सम्बन्ध है? इसका अध्ययन ही प्रकार्यात्मक शोध कहा जाता है। यह व्यावहारिक अनुसन्धान का मुख्य कार्य है। व्यावहारिक अनुसन्धान सामाजिक व्यवस्था, संरचना, सम्बन्धों, संगठन आदि के विभिन्न तत्वों, लक्षणों, कारकों का अध्ययन करके उनके गुण–दोषों की व्याख्या करता है।

3. **सिद्धान्तों की खोज** – व्यावहारिक अनुसन्धान का एक उद्देश्य नवीन सिद्धान्तों की खोज करना हैं इस शोध में आनुभविक तथ्यों को एकत्र किया जाता है। नवीन तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों की खोज की जाती है तथा उसमें सफलता भी मिलती है। इस शोध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त वैज्ञानिक होते हैं। इसके द्वारा घटनाओं का अनुमान लगाना सुगम हो जाता है। व्यावहारिक शोध सिद्धान्तों की खोज करके सामाजिक संगठन की व्याख्या करता है।

4. **अवधारणाओं का विकास** – व्यावहारिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में एक चरण अवधारणाओं की व्याख्या, स्पष्टीकरण, संशोधन, संक्षिप्तीकरण आदि का होता है क्योंकि अवधारणाएँ तथ्यों की व्याख्या करती हैं और व्यावहारिक अनुसन्धान नवीन तथ्य एकत्र करता है तो उनका प्रभाव अवधारणाओं पर पड़ता है। नवीन तथ्यों की खोज का प्रभाव उनकी व्याख्या करने वाली

अवधारणाओं पर पड़ने के कारण शोध उनकी भी पुनः परीक्षा करता है तथा उनकी नूतन व्याख्या करता है या नई अवधारणा का निर्माण करता है। इस प्रकार व्यावहारिक अनुसन्धान का एक उद्देश्य पुरानी अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करना, स्पष्टीकरण करना, सुनिश्चित करना, परिष्कृत करना, तथा नवीन अवधारणाओं का निर्माण करना है।

व्यावहारिक अनुसन्धान की उपयोगिता

स्टाउफर ने व्यावहारिक अनुसन्धान की उपयागिताओं पर प्रकाश डाला है। आपका कहना है कि सामाजिक विज्ञानों का महत्व तभी बढ़ सकता है जब वे अनुसन्धान के व्यावहारिक पक्ष को प्रभावशाली बनाएँ। आपने व्यावहारिक अनुसन्धान की तीन उपयोगिताएँ बताई हैं, जो निम्नलिखित हैं-

1. व्यावहारिक अनुसन्धान प्रभावों द्वारा स्पष्ट करता है कि कौन से तथ्य समाज के लिए किस प्रकार उपयोगी हैं।
2. व्यावहारिक शोध ऐसी प्रविधियों का विकास करता है जो विशुद्ध शोध के लिए भी उपयोगी होती हैं।
3. यह ऐसे तथ्यों तथा विचारों को प्रदान करता है जो समाजीकरण की प्रक्रिया को आगे अग्रसर करते हैं।

उपर्युक्त उपयोगिताओं के अतिरिक्त भी व्यावहारिक शोध की निम्न उपयोगिताएँ है-

4. व्यावहारिक अनुसन्धान समाज के लिए अनेक प्रकार से उपयोगी है। समाज की समस्याओं का अध्ययन व्यावहारिक शोध के द्वारा किया जाता है तथा सुझावों के द्वारा समाधान किया जाता है।
5. व्यावहारिक अनुसन्धान समाज की वास्तविक समस्याओं का अध्ययन करता है। यह समाज के व्यावहारिक तथा वास्तविकता से सम्बन्धित होता है। व्यावहारिक अनुसन्धान मानव-व्यवहार, सामाजिक जीवन सम्बन्धों से सम्बन्धित प्रयोग-सिद्ध, आनुभविक सूचनाएँ तथा ज्ञान एकत्र करता है।

व्यावहारिक अनुसन्धान का योगदान - संक्षिप्त में यही निष्कर्ष निकलता है कि व्यावहारिक अनुसन्धान नवीन तथ्यों का संकलन तथा खोज करता है। उनके आधार पर पुराने सिद्धान्तों की जाँच करता है तथा नीवन सिद्धान्तों का निर्माण करता है। अवधारणाओं की व्याख्या तथा स्पष्टीकरण करता है। अनुसन्धान की प्रविधियों, उपकरणों आदि का निर्माण तथा जाँच करता है। सामाजिक अनुसन्धान में व्यावहारिक अनुसन्धान का अपना महत्व तथा स्थान है।

(6) क्रियात्मक अनुसन्धान (Action Research)

क्रियात्मक शोध व्यावहारिक शोध का एक प्रकार है। कोलियर, लेविन और कोरी का कहना है कि क्रियात्मक अनुसन्धान के द्वारा सामाजिक सम्बन्धों को अधिक अच्छा बनाया जा सकता है। इसी कारण इसे व्यावहारिक शोध का एक प्रकार माना जाता है।

क्रियात्मक अनुसन्धान का अर्थ एवं परिभाषा

क्रियात्मक शोध की निम्नलिखित परिभाषाएँ हैं-

NOTES

1. स्टेफन एम. कोरी के अनुसार, ''यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यावहारिक कार्यकर्त्ता अपनी समस्या का इस दृष्टि से वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करते हैं ताकि वे आवश्यकतानुसार अपने निर्णय एवं क्रियाओं को दिशा दे सकें, उनमें परिवर्तन एवं सुधार कर सकें, इनका मूल्यांकन कर सकें।''
2. मैंकग्रेथ तथा साथियों ने परिभाषा देते हुए लिखा है, ''क्रियात्मक शोध एक संगठित एवं खोजपूर्ण क्रिया है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों या समूहों से सम्बन्धित परिवर्तन तथा सुधार के उद्देश्य से उनका अध्ययन करना तथा रचनात्मक परिवर्तन लाना है।''
3. गुडे एवं हॉट के अनुसार, ''क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का एक भाग है जिसका कि लक्ष्य मौजूदा दशाओं को परिवर्तित करना होता है, चाहे वह गन्दी बस्ती की दशाएँ हों या प्रजातीय तनाव या पूर्वाग्रह हो या किसी संगठन की प्रभावशीलता हो।''

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि क्रियात्मक शोध सामाजिक घटना की तात्कालिक समस्याओं से सम्बन्धित होता है। यह सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके कारकों का पता लगाता है तथा उनको दूर करने के लिए उपचारात्मक उपाय बताता है। यह सामाजिक परिवर्तन, तथा समाज-कल्याण की भावना से प्रेरित होता है। समाज की विभिन्न समस्याओं-गरीबी, बन्धुआ मजदूर, बाल-अपराध, दलित-वर्ग, पिछड़ी जातियाँ आदि की समस्याओं का अध्ययन तथा समाधान क्रियात्मक शोध के द्वारा किया जाता है।

क्रियात्मक शोध के प्रमुख तीन प्रकार - (1) निदानात्मक क्रियात्मक शोध, (2) सहकारी क्रियात्मक शोध, (3) प्रयोगात्मक क्रियात्मक शोध हैं। इनके शोध के चरण वहीं है। जो सामाजिक अनुसन्धान के हैं। इन चरणों का विस्तार से वर्णन अगले अध्याय में किया गया है। क्रियात्मक शोध के अनेक महत्व हैं। मुख्य रूप से क्रियात्मक शोध वैज्ञानिक चेतना का विकास करता है, प्रजातंत्रात्मक मूल्यों की रक्षा करता है, सामाजिक नियोजन के कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करता है तथा सामाजिक कल्याण तथा सुधार योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहयोग करता है।

(7) मूल्यांकन अनुसन्धान

आगस्त काम्ट ने कहा था कि समाज स्वत: विकास करता है तथा अन्त में समाज ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ विकास की प्रक्रिया मानव स्वयं नियन्त्रित, निर्देशित तथा संचालित करेगा। आज यह काम्ट का पूर्वानुमान सत्य सिद्ध हो गया है। अब मानव अपने योजना कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना चाहता हैं इस उद्देश्य की पूर्ति मूल्यांकनात्मक अनुसन्धान करता है। अनेक सरकारी, अर्द्ध-सरकारी तथा गैर-सरकारी तथा निजी संस्थाएँ अपने कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन करवाती है कि जो लक्ष्य लेकर कार्यक्रम प्रारम्भ किए थे उनमें कितनी सफलता मिली? सफलता तथा असफलता के क्या-क्या कारण रहे? इन्हीं प्रश्नों तथा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही मूल्यांकनात्मक शोध समय-समय पर किए जाते हैं।

मूल्यांकनात्मक शोध का अर्थ तथा परिभाषा

1. **मानदीम** की परिभाषा, ''मूल्यांकनात्मक शोध इस प्रकार की शोध हेतु प्रयोग किया गया एक सामान्य पद है जो व्यक्तिगत कार्यक्रम के उद्देश्यों के सन्दर्भ में सामाजिक कार्यक्रमों के प्रभाव के मूल्यांकनों हेतु की जाती है।''

NOTES

2. **विलियमसन, कार्प और डालफिन** ने लिखा है, ''मूल्यांकनात्मक शोध वास्तविक संसार में सम्पादित की गई ऐसी गवेषण है जिसके द्वारा यह मूल्यांकन किया जाता है कि व्यक्तियों के किसी विशिष्ट समूह के जीवन में सुधार लाने के लिए जो कार्यक्रम बनाया गया, वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल रहा।''

मूल्यांकनात्मक अनुसन्धान के द्वारा कार्यक्रमों के लक्ष्यों का अध्ययन किया जाता है तथा अन्तर मालूम किया जाता है कि लक्ष्य तथा उपलब्धियों में अन्तर कितना रहा तथा अन्तर के कारण क्या रहे? उनको ध्यान में रखकर कार्यक्रम को और अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है।

सभी देशों में विकास कार्यक्रम चल रहे हैं, समाज-कल्याण कार्यक्रम चल रहे हैं। गरीबी-उन्मूलन, स्वास्थ्य सुधार तथा विकास कार्यक्रम, आवास विकास योजनाएँ, परिवार नियोजन, मद्य निषेध, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि का मूल्यांकन समय-समय पर किया जाता रहा है जो इसी शोध के द्वारा किया जाता है। मूल्यांकनात्म्क शोध अध्ययन करके कार्यक्रमों के प्रभावों के परिणाम का पता लगाता है। उन कारणों का पता लगाता है जो कार्यक्रम की सफलता तथा असफलता के लिए उत्तरदायी है। समाजशास्त्र में ऐसा अनुसन्धान श्यामा चरण दुबे ने शमीरपेट ग्राम का अध्ययन करके प्रस्तुत किया हैं सन् 1958 से समाजशास्त्र में इस प्रकार के मूल्यांकनात्मक अनुसन्धान प्रारम्भ हुए। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए भारत सरकार ने 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' की स्थापना की।

मूल्यांकनात्मक अनुसन्धान की प्रक्रिया - मूल्यांकनात्मक शोध में उन सभी चरणों का प्रयोग किया जाता है जो विशुद्ध अनुसन्धान में किए जाते हैं। इसकी विवेचना आगे की गई है। इस अनुसन्धान में लोगों के दृष्टिकोण, विचारों, विश्वासों, प्रतिक्रियाओं आदि का मापन करने के लिए समाजमिति तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इस अनुसन्धान की प्रक्रिया में समस्या की व्याख्या, प्राक्कल्पना का निर्माण, तथ्यों का अवलोकन तथा संकलन, तथ्यों का वर्गीकरण तथा सारणीयन और अन्तिम चरण निष्कर्ष, या मूल्यांकन आदि प्रमुख चरण है।

मूल्यांकनात्मक अनुसन्धान की समस्याएँ - मूल्यांकनात्मक शोध की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित है-

1. कार्यक्रम की परिवर्तनशील प्रकृति के कारण मूल्यांकन करने में सुनिश्चितता तथा निश्चितता नहीं आ पाती है।
2. कार्यक्रम को संचालन करने वाले तथा मूल्यांकनकर्त्ताओं में सम्बन्धों की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
3. शोध द्वारा परिणामों का मूल्यांकन किया जाता है लेकिन कार्यक्रम की संगठनात्मक संरचना का परिणामों पर जो प्रभाव पड़ता है, वे समस्या खड़ी कर देते हैं।

ऐतिहासिक अनुसन्धान (Historical Research)

सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जो अनुसन्धान ऐतिहासिक पद्धति पर आधारित होते है, उन्हीं को ऐतिहासिक अनुसन्धान कहा जाता है। ऐतिहसिक अनुसन्धानकर्त्ता का कार्य कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करना नहीं होता बल्कि जब वर्तमान सामाजिक घटनाओं से प्राप्त तथ्यों की तुलना अतीत की घटनाओं से करके किसी निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है, तब इसे हम ऐतिहासिक अनुसन्धान के नाम से सम्बेधित करते है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए

ऐतिहासिक अनुसन्धान बहुत पहले से होता आया है। आगस्त कॉम्ट ने मानव के बौद्धिक विकास की व्याख्या ऐतिहासिक आधार पर की। स्पेन्सर ने समाज के उद्‌विकास को तथा वेस्टरमार्क ने अपनी पुस्तक 'History of Human Marriage' में विवाह से सम्बन्धित विभिन्न रूपों को स्पष्ट करने के लिए ऐतिहासिक आधार को महत्व दिया। कार्ल मार्क्स ने साामजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की। सारोकिन ने सामाजिक गतिशीलता की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के ऐतिहासिक अध्ययन पर बल दिया। इसी तरह स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'Delcine of the West' (पश्चिमी का पतन) में ऐतिहासिक आधार पर उन दशाओं को स्पष्ट किया जो पश्चिमी सभ्यता के पतन का कारण है। इसके अतिरिक्त मैक्स वेबर, टायनबी, जी. एस. घुरिये तथा के. एम. कापड़िया जैसे विद्वानों ने भी सामाजिक संस्थाओं की विवेचना करने के लिए ऐतिहासिक अनुसन्धान को महत्वपूर्ण माना।

ऐतिहासिक अनुसन्धान का तात्पर्य किसी भी ऐसे वैाानिक अध्ययन से है जिसके द्वारा अतीत की घटनाओं के आधार पर वर्तमान सामाजिक तथ्यों की प्रामाणिकता को स्पष्ट किया जा सकता है। शाब्दिक रूप से History शब्द 'History' से बना है जिसका अर्थ है 'खोजकर कोई ज्ञान प्राप्त करना।' इसका तात्पर्य है कि जब अतीत की घटनाओं के सन्दर्भ में हम वर्तमान घटनाओं का विश्लेषण करके वास्तविक निष्कर्ष प्रस्तुत करते है तो इसी को ऐतिहासिक अनुसन्धान कहा जाता है। इस सम्बन्ध में रेडक्लिफ ब्राउन ने लिखा है कि जब वर्तमान में प्रयुक्त होने वाली घटनाओं को अतीत की घटनाओं के क्रमिक विकास की कड़ी के रूप में देखकर उनका अध्ययन किया जाता है, तब ऐसे अध्ययन को ऐतिहासिक अध्ययन अथवा ऐतिहासिक अनुसन्धान कहा जाता है। ऐतिहासिक अनुसन्धान की प्रकृति को एक उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन करके यह देखा कि आदिम साम्यवादी युग से लेकर सामन्तवादी युग तक तथा पूँजीवादी युग से लेकर समाजवादी युग तक, जब कभी भी उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन हुआ, तब लोगों के सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक संगठन संस्थाओं की प्रकृति और व्यक्तियों के व्यवहारों में भी परिवर्तन हुआ। इस आधार पर मार्क्स ने यह निष्कर्ष दिया कि उत्पादन की प्रणाली में होने वाला परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रमुख कारण हैं यह निष्कर्ष ऐतिहासिक अनुसन्धान की प्रकृति को स्पष्ट कर देता है।

स्पष्ट है कि ऐतिहासिक अनुसन्धान का आधार आगमन का सिद्धान्त है। आगमन का सिद्धान्त एक ऐसा तरीका है जो अतीत की कुछ विशेष घटनाओं के आधार पर वर्तमान घटनाओं के बारे में एक सामान्य निष्कर्ष देता है। उदाहरण के लिए यदि बाल अपराधियों का अध्ययन करने पर यह पाया जाय कि सोहन के परिवार का वातावरण अनैतिक होने के कारण उसने अपराधी व्यवहार करना आरम्भ किये, मोहन के परिवार में कलह करने के कारण उसमें अपराधी प्रवृत्तियाँ पैदा हुईं तथा बहुत-से दूसरे बच्चों ने विघटित परिवार के कारण अपराधी कार्य किये तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि "टूटे परिवार बाल अपराध का एक प्रमुख कारण है।" इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक घटनाओं की विवेचना ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर करके उनके कार्य-कारण सम्बन्धों को ज्ञात करना ऐतिहासिक अनुसन्धान का आधार है। ऐसे अनुसन्धान के लिए यह आवश्यक है कि शेधकर्ता द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं की सूक्ष्म रूप से जानकारी प्राप्त की जाय तथा उन दशाओं पर विशेष ध्यान दिया जाय जिनके अन्तर्गत कोई विशेष घटना घटित हुई।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए अनेक तथ्यों का उपयोग करना बहुत उपयोगी होता है। इनमें विभिन्न प्रकार की लिखित सामग्रियों, जैसे-शिलालेखों, प्राचीन पुस्तकों में दिये गये निष्कर्षों, पुरानी इमारतो

पर दिये गये विवरणों और पुराने सिक्कों आदि का विशेष महत्व है। इनके द्वारा अध्ययनकर्त्ता को यह पता चलता है कि अतीत में किसी समूह की संस्कृति, सामाजिक सम्बन्धी, कला और राज्य की नीतियों आदि का रूप क्या था। इसके अतिरिक्त पुरानी डायरियों, आत्मकथाओं और व्यापारिक समझौतों आदि से भी बहुत-से ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त हो जाते है। अतीत में विभिन्न शोधकार्यों से जो सूचनाएँ और तथ्य प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर भी अतीत की महत्वपूर्ण विशेषताओं और घटनाओं को समझा जा सकता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के महत्व को स्पष्ट करते हुए हॉबर्ड ने लिखा है, ''इतिहास अतीत का समाजशास्त्र है, जबकि समाजशास्त्र वर्तमान का इतिहास है।'' अनुसन्धान का यह प्रकार अनेक क्षेत्रों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है- (1) ऐतिहासिक अनुसन्धान के द्वारा अतीत की सहायता से वर्तमान को समझना सरल है। यदि किसी अनुसन्धान के द्वारा हम विभिन्न समाजों, संस्थाओं और सांस्कृतिक विशेषताओं की उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन को समझना चाहते है तो इनके बारे में अतीत की जानकारी जरूरी है। (2) एक प्राचीन संस्कृति वाले समाज को समझने के लिए ऐतिहासिक अनुसन्धान अधिक उपयोगी होता है। (3) ऐसा अनुसन्धान समाज की संरचना और संस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों को समझने में बहुत सहायक है। (4) अनेक सामाजिक तथ्य इस तरह के होते है कि उन्हें केवल अवलोकन के द्वारा नहीं समझा जा सकता, उनसे सम्बन्धित वास्तविकता को समझने के लिए उनके ऐतिहासिक रूप को देखना आवश्यक होता है। (5) ऐतिहासिक अनुसन्धान वृहत स्तर के अध्ययनों के लिए बहुत उपयोगी होते है। किसी बड़े समुदाय अथवा सम्पूर्ण समाज को समझने के लिए ऐसे अनुसन्धान को अधिक उपयोगी माना जाता है। (6) सामाजिक जीवन को अधिक संगठित बनाने और सामाजिक व्यवस्था को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ऐतिहासिक अनुसन्धान अधिक उपयोगी होते है। इसी आधार पर मर्टन (Merton) ने लिखा है कि ''ज्ञान का समाजशास्त्र वह महत्वपूर्ण शाखा है जिसकी विवेचना ऐतिहासिक अनुसन्धान के बिना नहीं की जा सकती।''

अनेक लाभों के बाद भी ऐतिहासिक अनुसन्धान की अनेक सीमाएँ हैं। (1) ऐतिहासिक अनुसन्धान जिन शिलालेखों, खुदाइयों से प्राप्त वस्तुओं अथवा प्रलेखों पर आधारित है, उनकी प्राचीनता और प्रमाणिकता बहुत सन्देहपूर्ण होती है। (2) ऐतिहासिक तथ्यों की विवेचना अलग-अलग शोधकर्ता भिन्न-भिन्न प्रकार से करते है। इससे किसी भी तथ्य की वास्तविकता को समझना कठिन हो जाता है। (3) दुर्खीम ने ऐतिहासिक अनुसन्धान की इसलिए आलोचना की है कि ऐतिहासिक तथ्यों का सत्यापन नहीं किया जा सकता। अधिकांश समाजशास्त्री यह मानते है कि अध्ययन के ऐतिहासिक स्रोत वास्तविकता की अपेक्षा कल्पना पर अधिक आधारित होते है। (4) ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर केवल एक सामान्य विवरण दिया जा सकता है क्योंकि ऐसे तथ्यों की माप या गणना करने के कोई निष्कर्ष नहीं दिये जा सकते। (5) आज के बदलते हुए समाजों में ऐतिहासिक अनुसन्धान का कोई महत्व नहीं है। दुर्खीम ने लिखा है, ''ऐतिहासिक अनुसन्धान के द्वारा सामाजिक विकास के विभिन्न स्तरों का एक सामान्य विवरण तो दिया जा सकता है लेकिन इसके द्वारा सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण की व्याख्या नहीं की जा सकती ।'

आनुभविक अनुसन्धान (Empirical Research)

सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अनुसन्धान करने के लिए बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से एक-दूसरे उपागम को महत्व दिया जाने लगा जिसे हम आनुभविक उपागम कहते है। अध्ययन के इस उपागम अथवा विधि की मौलिक मान्यता यह है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन केवल कुछ वैज्ञानिक

नियमों का कठोरता से पालन करके नहीं किया जा सकता। इसके लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न घटनाओं का इन्द्रियजनक अनुभव के आधार पर प्राप्त ज्ञान के आधार पर अनुसंधान किया जाता है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. अन्वेषणात्मक अनुसंधान से आप क्या समझते है? इसकी कार्य प्रणाली को समझाइए।
2. परीक्षणात्मक अनुसंधान का अर्थ स्पष्ट करते हुए, इसके प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
3. व्यावहारिक अनुसंधान से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी उपयोगिता बताइए।
4. ऐतिहासिक अनुसंधान पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. वर्णनात्मक अनुसंन्धान को स्पष्ट कीजिए।
2. विशुद्ध अनुसंन्धान से आप क्या समझते है?
3. क्रियात्मक अनुसंन्धान से आपका क्या अभिप्राय है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. अनुसन्धान के प्रकार हैं–

   (अ) सात (ब) आठ

   (स) पाँच (द) चार।

2. वर्णनात्मक अनुसंन्धान के चरण हैं–

   (अ) प्रतिवेदन लिखना (ब) निदर्शन का चुनाव

   (स) सामग्री का संकलन (द) ये सभी।

3. क्रियात्मक अनुसंन्धान के प्रवर्तक है–

   (अ) कोलियर (ब) लेविन

   (स) कोरी (द) ये सभी

4. स्टाउफर ने व्यावहारिक अनुसंन्धान की उपयोगिताएँ बतायी हैं–

   (अ) चार (ब) तीन

   (स) पाँच (द) चार।

उत्तर – (1) अ, (2) द, 3. (द), 4. (ब)।

6 सामाजिक सर्वेक्षण

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति एवं विशेषताएँ।
- सामाजिक सर्वेक्षण की विषयवस्तु।
- सामाजिक सर्वेक्षण के उद्‌देश्य।
- सामाजिक सर्वेक्षण की उपयोगिता।
- सर्वेक्षण विधि की सीमाएँ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्‌देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति एवं विशेषताएँ।
- सामाजिक सर्वेक्षण की विषयवस्तु।
- सामाजिक सर्वेक्षण के उद्‌देश्य।
- सामाजिक सर्वेक्षण की उपयोगिता।
- सर्वेक्षण विधि की सीमाएँ।

प्राक्कथन

सामाजिक सर्वेक्षण मानव के सामाजिक सम्बन्धों, व्यवहारों एवं घटनाओं का अध्ययन करने की एक प्रमुख व पूर्ण विधि कही जा सकती है अर्थात् सामाजिक समस्याओं के लिए व्यक्तिगत साक्षात्कार का प्रयोग, सामग्री-संकलन के अन्य साधनों का प्रयोग अथवा सम्पूर्ण जनसंख्या के कुछ ही लोगों से सामग्री का व्यवस्था-संकलन करने वाले अध्ययनों को सामाजिक सर्वेक्षण कहा जाता है। उदाहरण के लिए यदि हम ज्ञात करना चाहते हैं कि कॉलेज की कितनी लड़कियाँ व लड़के अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में हैं और कितने नहीं; कितने विद्यार्थी आरक्षण के पक्ष में हैं और कितने विरोध में, कितने विद्यार्थी टी. वी. प्रोग्राम देखते हैं और किस प्रकार के प्रोग्राम देखते हैं, अथवा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धियाँ कितनी हैं- आदि तो सभी विषयों की जानकारी के लिये हमें सूचनादाताओं से गहन साक्षात्कार करना पड़ेगा, प्रश्नावली व अनुसूची आदि का प्रयोग करना होगा, अवसर होने पर वैयक्तिक अध्ययन भी करना पड़ेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि जब किसी विस्तृत क्षेत्र से प्राथमिक तथ्यों को एकत्र करने की आवश्यकता पड़ती है, तब ऐसे अध्ययनों के लिए सामाजिक सर्वेक्षण विधि ही सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होती है। अर्थात् सामाजिक सर्वेक्षण एक प्रकार से सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की एक विधि है जिसमें अन्वेषण करने वाला घटनास्थल पर जाकर प्राथमिक सामग्री का संकलन करता है।

सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Social Survey)

सामाजिक सर्वेक्षण के अर्थ एवं परिभाषाओं पर ध्यान देने से पूर्व 'सर्वेक्षण' शब्द के अभिप्राय को समझ लेना अधिक उपयुक्त होगा। 'सर्वेक्षण शब्द अंग्रेजी के 'सर्वे' (Survey) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो दो शब्दों Sur या Sor = over तथा Veeir या Veoir = To See से मिलकर बना है; जिसका अर्थ है 'ऊपर देखना' 'निरीक्षण करना' अर्थात् किसी घटना अथवा स्थिति को ऊपर से देखकर अवलोकन करना है।

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सल कोश के अनुसार, ''सर्वेक्षण किसी प्रयोजन के लिए सूक्ष्म रूप से देखने, परखने अथवा निरीक्षण करने की प्रक्रिया है।

वेबस्टर कोश में सर्वेक्षण का अर्थ सही सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से किए गए आलोचनात्मक निरीक्षण को बताया गया है।

उपर्युक्त शब्दकोशीय परिभाषा के अनुसार सामाजिक सर्वेक्षण गवेषणा की एक ऐसी विधि कही जा सकती है जिसके द्वारा सामाजिक घटनाओं की प्रकृति, विभिन्न घटनाओं के बीच सम्बन्धों को जाना जा सकता है।

सर्वेक्षण की अनेक परिभाषाएँ समाजशास्त्रियों द्वारा दी गई हैं लेकिन इसकी एक सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन कार्य है क्योंकि प्रारम्भ में 18वीं सदी में सामाजिक सर्वेक्षण को व्याधिकीय समस्याओं के समाधान का साधन माना जाता था लेकिन वर्तमान समय में इसे सामाजिक शोध की एक विधि के रूप में स्वीकार किया जाता है इसी आधार पर परिभाषित किया जाता है तथा आजकल इसे

सामाजिक सर्वेक्षण की वैज्ञानिक पद्धति के रूप में माना जाता है। उसी आधार पर समाजशास्त्र में सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है- (1) उद्देश्यमूलक शास्त्रीय परिभाषाएँ, और (2) पद्धतिमूलक आधुनिक परिभाषाएँ। उद्देश्यमूलक शास्त्रीय परिभाषा को पुन: दो वर्गों में विभाजित किया गया है - (1) समस्यापरक परिभाषाएँ और (2) तथ्यपरक परिभाषाएँ।

NOTES

इन विभिन्न परिभाषाओं का वर्णन इस प्रकार है-

(1) **उद्देश्यमूलक शास्त्रीय परिभाषाएँ (Objective Oriented Classical Definitions)**- सर्वेक्षण के उद्देश्यों के सम्बन्ध में समाज वैज्ञानिकों में मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकों के मत में सर्वेक्षण ज्ञान-प्राप्ति के उद्देश्य से किए जाते हैं, उनके मतानुसार सर्वेक्षण का उद्देश्य किसी समुदाय की विशेषताओं, रीति-रिवाजों, कार्य-कलापों, रहन-सहन के तरीकों आदि की जानकारी प्राप्त करना होता है जबकि कुछ विद्वानों के मत में सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक समस्या के समाधान तथा सामाजिक कल्याण सम्बन्धी योजनाओं के निर्माण का एक साधन हैं। ये विद्वान सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य मात्र ज्ञान-प्राप्ति नहीं बल्कि उपयोगिता आदि भी मानते हैं। इस आधार पर उद्देश्य मूलक परिभाषाएँ पुन: दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं।

1. समस्यापरक परिभाषाएँ, 2. तथ्यपरक परिभाषाएँ।

1. **समस्यापरक परिभाषाएँ** - आधुनिक सर्वेक्षण अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सर्वेक्षणों से पूर्णतया सम्बन्धित हैं। उस समय सामाजिक सर्वेक्षण का प्रारम्भ सामाजिक समस्याओं के अध्ययन एवं उनके सुधार के रूप में हुआ था। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में मजदूर-वर्ग के रहन-सहन की दशाएँ दयनीय होती जा रही थीं, नई-नई समस्याएँ जन्म ले रही थीं जिनकी तरफ समाज वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित कर उनके सुधार के लिए नई-नई योजनाएँ बनाने के लिए समाज सुधारकों को प्रेरणा दी गई। मजदूर-वर्ग के स्वास्थ्य, रहने की दशाएँ, आय-व्यय के आँकड़े एकत्र करने तथा बेरोजगारी, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति आदि समस्याओं को लेकर अध्ययन किए गए। इसीलिए सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषाओं में सामाजिक समस्याओं के निदान, समाधान तथा नीति-निर्धारण के विचारों को प्रधानता दी गई। इनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) **बर्गेस** के अनुसार, ''सर्वेक्षण किसी समुदाय की दशाओं एवं आवश्यकताओं का एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो सामाजिक प्रगति का रचनात्मक कार्यक्रम बनाने के उद्देश्य से किया जाता है।''

(2) **पी. वी. यंग** के मत में, ''सामाजिक सर्वेक्षण किसी प्रचलित अथवा तात्कालिक समाज-व्याधिकीय प्रकृति की दशाओं में सुधार हेतु रचनात्मक कार्यक्रम बनाने के उद्देश्य से किए जाते हैं।''

(3) **थियोडोर्सन एवं थियोडोर्सन**, ''किसी सामाजिक समस्या के विश्लेषण एवं इसके समाधान हेतु सुझाव देने के उद्देश्य से किसी विशिष्ट समुदाय के व्यवस्थित एवं विस्तृत अध्ययन को सामाजिक सर्वेक्षण कहते हैं।''

(4) **पी. कैल्लाग** के अनुसार, ''सामाजिक सर्वेक्षण प्राय: सहकारी प्रयास माने गए हैं, जो सामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करते हैं, जो इतने गम्भीर होते हैं कि जनमत को तथा समस्या समाधान की इच्छा को जाग्रत करते हैं।''

(5) **फेयरचाइल्ड** के अनुसार, ''सर्वेक्षण एक सहकारी प्रयास है जिसमें वैज्ञानिक विधि का प्रयोग विशिष्ट भौगोलिक सीमाओं के आबद्ध तथा कार्यशील तात्कालिक सामाजिक समस्याओं एवं दशाओं के अध्ययन एवं समाधान हेतु किया जाता है।

2. **तथ्यपरक परिभाषाएँ (Fact Finding Definitions)** – अनेक विद्वान् सामाजिक सर्वेक्षण को सामान्य सामाजिक घटनाओं का अध्ययन मानते हैं अर्तात् उनके मत में सामाजिक सर्वेक्षण का प्रयोग समाज की असामान्य दशाओं के साथ-साथ सामान्य दशाओं के अध्ययन के लिए किया जा सकता हैं। तथ्यपरक परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) **ए. एफ. वैल्स** के अनुसार, ''साधारणत: सामाजिक सर्वेक्षण को किसी विशिष्ट प्रदेश में रहने वाले व्यक्तियों के समूह की सामाजिक संस्थाओं तथा क्रियाओं के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

(2) **मार्क अब्राम्स** के मत में, ''एक सामाजिक सर्वेक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समुदाय की संरचना एवं क्रियाओं के सामाजिक पक्ष के सम्बन्ध में परिमाणात्मक तथ्य एकत्र किए जाते हैं।''

(3) **सिन पाओ यंग** के मतानुसार, ''एक सामाजिक सर्वेक्षण प्राय: व्यक्तियों के एक समूह की रचना, क्रियाओं तथा रहन-सहन की दशाओं की एक खोज है।''

(4) **डी. सी. जोन्स** के अनुसार, ''एक सामाजिक सर्वेक्षण गवेषणा के लिए चुने गये समदुाय के किसी समस्यात्मक भाग की अपेक्षा समस्त संरचना का एक विस्तृत वर्णन है।''

सामाजिक सर्वेक्षण की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सर्वेक्षण का प्रयोग किसी भी समुदाय की जनसंख्यात्मक संरचना, मूल्य, विश्वास व रीति-रिवाज आदि को जानने के लिए किया जा सकता है। इसी कारण सर्वेक्षण का प्रयोग समस्याओं के साथ-साथ सामान्य दशाओं के अध्ययन के लिए भी किया जा सकता है। उपर्युक्त दोनों वर्गों की परिभाषाएँ सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य को अपना केन्द्र बिन्दु मानती हैं।

(2) पद्धतिमूलक आधुनिक परिभाषाएँ – जिस सामाजिक सर्वेक्षण को ए. एफ. वैल्स ने परिभाषित किया था, आज अधिकांश समाज वैज्ञानिक उसे अस्वीकार करते हैं। मोजर एवं कालटन ने अपनी पुस्तक ''सर्वे मैथड्स इन सोशियल इन्वेस्टिगेशन'' में वैल्स के विचारों को नकारते हुए लिखा है कि उनकी परिभाषा पुरातन समुदायों व गरीबी के अध्ययनों के लिए भले ही उपयुक्त हो सकती है किन्तु इसका प्रथम अंश अवश्य त्रुटिपूर्ण है।

अत: आधुनिक समय में सामाजिक सर्वेक्षण को एक वैज्ञानिक विधि के रूप में स्वीकार किया जाता है जिसका उद्देश्य विशुद्ध शोध तथा व्यावहारिक शोध होता है। सामाजिक सर्वेक्षण की वैज्ञानिक प्रकृति पर आधारित कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

NOTES

(1) **एफ. एल. व्हिटने** के अनुसार, ''सामाज विज्ञान की आधुनिक शब्दावली के अनुसार सर्वेक्षण एक ऐसा संगठित प्रयास है, जिसके द्वारा किसी सामाजिक संस्था समूह अथवा क्षेत्र की वर्तमान दशा का विश्लेषण, विवेचन तथा प्रकाशन किया जाता है।''

(2) **एच. एन. मोर्स** के अनुसार, ''सामाजिक सर्वेक्षण किसी सामाजिक दशा, समस्या, अथवा जनसंख्या के किसी निश्चित उद्देश्य हेतु वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रूप में विश्लेषण करने की पद्धति है।''

(3) **डैनिस चेपमैन** के मत में, ''सामाजिक सर्वेक्षण एक विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक अथवा प्रशासनिक क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित तथ्यों को एक व्यवस्थित रूप में संकलित किए जाने की विधि है।''

(4) **ओपने हाइम** के अनुसार, ''एक सर्वेक्षण तथ्यों को संकलित करने का एक ऐसा नियोजित तरीका है, जिसका प्रयोग तथ्यों के वर्णन करने अथवा भविष्योक्ति के उद्देश्य से किसी प्रक्रिया का मार्गदर्शन करने अथवा कुछ कारकों के मध्य समबन्धों को ज्ञात करने के लिए किया जाता है।''

(5) **नाइल्स कारपेन्टर** के मतानुसार, ''स्थूल रूप में, किसी चुने हुए समुदाय अथवा समूह की प्राथमिक गवेषणा करने या विश्लेषण करने अथवा उसके सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य पक्षों के बीच समन्वय स्थापित करने की विधि को सामाजिक सर्वेक्षण कहते हैं।''

अत: स्पष्ट है कि इन परिभाषाओं से सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति, क्षेत्र, उद्देश्य सभी प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण को सामाजिक शोध की एक वैज्ञानिक विधि माना जा सकता है जिसके द्वारा एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों के सम्बन्ध में सामाजिक तथ्यों को संकलित किया जाता है और उनकी सामाजिक समस्याओं की जानकारी कर उनका निदान व उपचार किया जाता है।

सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति एवं विशेषताएँ (Nature and Characteristics of Social Survey)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति एवं विशेषताएँ निश्चित भौगोलिक क्षेत्र, सामाजिक समस्याओं का अध्ययन व उपचार, वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग, परिमाणात्मक तथ्यों का अध्ययन, सहकारी प्रक्रिया आदि निश्चित किए जा सकते हैं।

(1) **निश्चित भौगोलिक क्षेत्र** – सामाजिक सर्वेक्षण का आयोजन एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में ही किया जा सकता है अर्थात् वे ही घटनाएँ सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा चुनी जा सकती हैं जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र, जैसे नगर, ग्राम, कस्बा, मोहल्ला तक ही सीमित हों क्योंकि इनमें रहने वाले निवासी जो नगरीय हों, ग्रामीण हों अथवा जनजातीय आदि हों, सामाजिक सर्वेक्षण की सामग्री समझे जाते हैं। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण क्षेत्र की भौगोलिक सीमाएँ अवश्य होती हैं।

(2) **सामाजिक समस्याओं का अध्ययन एवं उपचार** – सामाजिक सर्वेक्षणों में पुन: विघटनकारी तत्वों एवं घटनाओं तथा व्याधिकीय समस्याओं जैसे– निर्धनता, बेकारी, निरक्षरता, अपराध आदि का विशेष अध्ययन किया जाता है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन द्वारा लोगों के सामाजिक जीवन को भलीभाँति समझा जा सकता है। बर्गेस के अनुसार इन्हीं के आधार पर रचनात्मक कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाई जा सकती है। इन्हीं के अन्तर्गत निकाले गए निष्कर्षों एवं सामान्यीकरणों पर सुझाव आधारित होते हैं जो समस्या के निवारण तथा सामाजिक सुधार व प्रगति के लिए आवश्यक होते हैं।

(3) **वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग** – सामाजिक सर्वेक्षण में किसी समूह, समुदाय अथवा समस्या से सम्बन्धित तथ्यों को एक व्यवस्थित रूप में एकत्र किया जाता है। अर्थात् तथ्यों का प्रश्नावली, साक्षात्कार, अनुसूची आदि विधियों से संकलित करके, उनका विश्लेषण किया जाता है और उसके आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है जो प्राक्कल्पनाओं को निर्मित करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रक्रिया में सामाजिक घटनाओं के परिणामों को जानने के लिए वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता है।

(4) **परिमाणात्मक पक्ष** – सामाजिक सर्वेक्षणों द्वारा संकलित तथ्य परिमाणात्मक रूप में प्रकट किए जाते हैं इसी कारण इसके प्रयोग में आजकल वृद्धि हो रही है। सामाजिक समस्याओं को परिमाणात्मक रूप में प्रस्तुत किए जाने के कारण ही अब्राम्स ने सर्वेक्षण को विशेषकर केवल परिमाणात्मक तथ्यों से ही सम्बन्धित माना है।

(5) **तथ्यों की वस्तुनिष्ठता** – इसमें आवश्यक तथ्यों को एकत्रित करने के समय यथासम्भव पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण को दूर करने पर बल दिया जाता है तथा वस्तुनिष्ठ एवं तटस्थ निरीक्षण से तथ्यों को संकलित किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण की यह विशेषता होती है कि इसमें तथ्यों को पक्षपात रहित तरीकों से एकत्र किया जाता है।

(6) **सहकारी प्रक्रिया** – कुछ विद्वानों ने सामाजिक सर्वेक्षण को एक सहकारी प्रक्रिया माना हैं हैरिसन के अनुसार, ''सामाजिक सर्वेक्षण एक सहकारी प्रयास है जो निश्चित भौगोलिक सीमाओं एवं स्थिति रखने वाली सामयिक सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं तथा दशाओं के उपचार तथा अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है, साथ ही अपने तथ्यों, निष्कर्षों तथा सुझावों को इस तरह प्रसारित करता है कि वे यथासम्भव समुदाय के सामान्य ज्ञान तथा बुद्धिमतापूर्ण सहकारी क्रिया के लिए शक्ति बन सके।'' कहने का तात्पर्य यह है कि लघु क्षेत्र का अध्ययन तो एकांकी रूप से किया जा सकता है किन्तु बड़े पैमाने पर समस्याओं की जानकारी करनी होती है तो सामूहिक रूप से अनेक विशेषज्ञ मिलकर इसे पूरा करते हैं, इसीलिए इसे एक सहकारी प्रयास माना जाता है।

सामाजिक सर्वेक्षण का क्षेत्र एवं विषय वस्तु
(Scope and Content of Social Survey)

मोजर के अनुसार सामाजिक सर्वेक्षणों में सम्मिलित किए जाने वाले क्षेत्रों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं– (1) सामाजिक पर्यावरण, (2) सामाजिक क्रियाएँ, (3) जनसंख्यात्मक विशेषताएँ और (4) मत एवं मनोवृत्तियाँ।

(1) **सामाजिक पर्यावरण** - इसके अन्तर्गत समुदायों तथा अध्ययन समूहों के सामाजिक संगठन एवं उनकी संस्थाओं से सम्बन्धित समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक व्याधिकी से सम्बन्धित समस्याएँ, जैसे- निरक्षरता, मद्यपान, वेश्यावृत्ति, अपराध, भ्रष्टाचार आदि प्रवृत्तियाँ भी इसी क्षेत्र में आती हैं। इसके साथ ही विवाह व जाति से सम्बन्धित विघटनात्मक समस्याएँ (दहेज, बाल-विवाह, विधवा-विवाह की समस्या आदि) का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। लोगों के आय-व्यय का बजट व आर्थिक समस्याएँ, सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा व्यवहार आदि भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

(2) **सामाजिक क्रियाएँ** - लोगों की सामाजिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसमें विशेष रूप से 'व्यक्ति किस प्रकार रहते हैं?' अर्थात् 'क्या करते हैं?' यह जाना जाता है। इसमें ऐसे प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है, जैसे- 'खाली समय का उपयोग कैसे करते हैं', 'उनकी मनोरंजन सम्बन्धी आदतें कौन-कौन सी हैं।' उनके त्यौहार, गायन-वादन, नृत्य, धूम्रपान आदि का शौक, उनकी रुचियाँ, लोकाचार, कर्मकाण्ड, रेडियो व टी. वी. के कार्यक्रम आदि की जानकारी तथा सांस्कृतिक पक्ष से भी सम्बन्धित जानकारी है, इसके अन्तर्गत आती है।

(3) **जनसंख्यात्मक विशेषताएँ** - इसमें समुदायों की जनसंख्या रचना से सम्बन्धित समस्त पक्षों को सम्मिलित किया जाता है। उदाहरणार्थ- परिवार, उनकी रचना, उनमें रहने वाले सदस्यों की संख्या, उनकी वैवाहिक स्थिति, यौन-सम्बन्ध, जन्म व मृत्यु दर, परिवार नियोजन, औसत-आयु एवं जनसंख्या की गतिशीलता आदि इसी क्षेत्र में आते हैं। अर्थात् इस क्षेत्र में जनसंख्या रचना, विभाजन-अनुपात तथा घनत्व आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(4) **मत एवं मनोवृत्तियाँ** - इसमें उन सामाजिक सर्वेक्षण को सम्मिलित किया जाता है जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित लोगों की विचारधाराओं व मनोवृत्तियों को जानने के लिए आयोजित किए जाते हैं। जनमत-संग्रह, समाचार-पत्र सम्बन्धी मत, श्रोता-समूह के विचार, चुनाव सम्बन्धी विचार, रेडियो व बाजार सम्बन्धी विचार आदि इसी क्षेत्र के विषय हैं। इसके अतिरिक्त समाज की समस्याएँ, जैसे- परिवार नियोजन, सहशिक्षा, राष्ट्रीय एकता, प्रथाएँ और लोक-रीतियों के अध्ययन आदि मूल्यों की जानकारी के लिए तथा जागरूकता लाने के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षणों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हैं सामाजिक समस्याओं के विस्तार से इस प्रकार के अध्ययनों का भी विस्तार होता जा रहा है। इस रूप में सर्वेक्षण का कार्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य (Objectives of Social Survey)

सामाजिक सर्वेक्षणों का प्रमुख उद्देश्य तथ्यों का सही संकलन एवं प्रदर्शन होता है यह तथ्य-संकलन वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग द्वारा प्राप्त निष्कर्षों का परिणाम होता है। तथ्य संकलन में सर्वेक्षण के विभिन्न उद्देश्य हो सकते हैं। मोजर ने सामाजिक सर्वेक्षणों के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "सर्वेक्षण सामान्य जीवन के किसी पक्ष पर प्रशासन सम्बन्धी तथ्यों की आवश्यकता, किसी कारण-परिणाम सम्बन्ध की जानकारी अथवा समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के किसी पक्ष पर नवीन

प्रकाश डालने के उद्देश्य से किया जा सकता है।'' सामान्यत: सर्वेक्षण के उद्देश्य सामाजिक तथ्यों का संकलन, उनका कार्य-कारण सम्बन्ध, प्राक्कल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण, सामाजिक सिद्धान्तों की पुनर्परीक्षा, सामाजिक घटनाओं, समस्याओं, जीवन दशाओं आदि का अध्ययन करना इसका उद्देश्य होता है। ये उद्देश्य निम्नानुसार हैं-

1. **सामाजिक तथ्यों का संकलन** - वे बातें जो समाज के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की जानकारी प्रदान करती हैं, सामाजिक-तथ्य कहलाते हैं। सर्वेक्षणों का प्रमुख उद्देश्य प्राय: विभिन्न सामाजिक तथ्यों को एकत्र करना होता है। इसमें सामाजिक क्रियाओं तथा संगठन सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जाती है। अर्थात् जब सांख्यिकीय प्रलेखों तथा अन्य विधियों द्वारा आवश्यक तथ्य उपलब्ध नहीं हो पाते, तब सर्वेक्षण द्वारा उन तथ्यों का संकलन किया जाता है, जैसे- किसी समुदाय की सामाजिक संरचना, सामाजिक दशाओं, व्यक्तियों के विचारों व दृष्टिकोणों आदि को जानने के लिए यह विधि सर्वाधिक रूप से प्रयुक्त की जा सकती है। लोगों के रहन-सहन, आर्थिक-सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा व्यापार एवं उद्योग व वैवाहिक स्थिति आदि के विषय में सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा ही सूचनाएँ एकत्र की जा सकती हैं।

2. **कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज** - सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं के कारणों को ज्ञात करना है। दैनिक जीवन एवं व्यवहार की अनेक घटनाएँ प्राय: समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं। ये घटनाएँ किन परिस्थितियों में घटी? इनकी पुनरावृत्ति के क्या कारण रहे तथा ये समाज को किस रूप में प्रभावित कर रही हैं? आदि सभी बातों की खोज करना वर्तमान समय में महत्वपूर्ण हो गया है। उदाहरणार्थ- परिवार-नियोजन का विभिन्न समहों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? किन कारणों से ये अधिक प्रचलित हो रहा है? आदि महत्वपूर्ण अध्ययन हैं। अर्थात् सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य घटनाओं में निहित कार्य-कारणों की खोज करना है।

3. **प्राक्कल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण** - सर्वेक्षणों का उद्देश्य प्राक्कल्पनाओं का निर्माण तथा उनका परीक्षण करना भी है। जिस समुदाय का अध्ययन करना होता है उसका मुख्य सर्वेक्षण कार्य करने के पूर्व छोटे स्तर पर एक पूर्व-परीक्षण किया जाता है। इससे प्राप्त वास्तविक तथ्यों के आधार पर प्राक्कल्पनाओं का निर्माण किया जाता है तथा उनका परीक्षण और सत्यापन करने के लिए सर्वेक्षण का आयोजन किया जाता हैं इस प्रकार सर्वेक्षणों की द्विमुखी उपयोगिता है। मोजर तथा काल्टन ने इस सम्बन्ध में कहा है, ''सर्वेक्षणों में दोनों उपयोगिताएँ होती हैं। उनके द्वारा प्राक्कल्पनाओं की रचना तथा अत्यधिक उच्च स्तर पर इनका प्रयोग प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण के लिए भी किया जाता है।'' सभी सर्वेक्षण किसी प्राक्कल्पना को लेकर ही नहीं किए जाते। कुछ सर्वेक्षणों का उद्देश्य किसी विषय से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करना ही होता है।

4. **सामाजिक सिद्धान्तों की पुनर्परीक्षा** - समाजशास्त्र के क्षेत्र में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिस्थापित सिद्धान्तों की सत्यता का परीक्षण किया जाना आवश्यक होता है। मनुष्य व समाज दोनों ही परिवर्तनशील हैं इस परिवर्तन का कारण सामाजिक गतिशीलता व परिवर्तनीय दशाएँ हैं। सामाजिक व्यवहार के सिद्धान्त जो प्राचीनकाल में बनाए गए हैं, वे वर्तमान तथा भविष्य में भी

सही हों, यह आवश्यक नहीं हैं अतः समय-समय पर उनका पुनर्परीक्षण करना आवश्यक होता है। समय के परिवर्तन के साथ-साथ अनुसन्धान की प्रणालियों में अन्तर आता है। इस दृष्टि से भी पुराने सिद्धान्तों को नवीन विधियों के आधार पर पुनः परीक्षण करना आवश्यक होता है- इसलिए प्राचीन सिद्धान्तों का सत्यापन करने के लिए कई सर्वेक्षण आयोजित किए जाते हैं।

5. **सामाजिक घटनाओं का वर्णन** - सामाजिक पक्ष से सम्बन्धित किसी भी स्थिति का भौतिक रूप में घटित होना सामाजिक घटना कहा जा सकता है। मोजर के मत में, ''समाजशास्त्रियों के लिए सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य पूर्णतया वर्णनात्मक हो सकता है। जैसे- सामाजिक दशाओं, सम्बन्धों अथवा व्यवहार का अध्ययन।'' अनेक बार सर्वेक्षण किसी उद्देश्य को लेकर नहीं, अपितु सामाजिक घटनाओं के वर्णन-मात्र के लिए ही किया जाता है। जैसे- सरकारी अथवा अर्द्धसरकारी संगठनों के सर्वेक्षणों के उद्देश्य केवल किसी पक्ष से सम्बन्धित आँकड़ें एकत्र करना होता हैं इनके आधार पर सरकारी विभागों के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रतिवेदन प्रकाशित होते रहते है।। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षणों का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं का वर्णन करना होता है।

6. **सामाजिक समस्याओं का अध्ययन व समाधान** - सामाजिक सर्वेक्षण का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करना तथा उनका समाधान करना है। मार्क अब्राहम के अनुसार, ''यदा-कदा सर्वेक्षण समाज की संरचना तथा क्रियाशीलता के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से प्रेरित होते हैं, लेकिन अधिकांशतः किसी सामाजिक समस्या के आयामों को मापने, कारणों को जानने तथा उसके निदान के सम्बन्ध में निर्णय लेने के एक अपरिहार्य प्रथम कदम के रूप में सर्वेक्षण किए जाते हैं।''

   बर्गेस ने भी इसी प्रकार के सर्वेक्षणों को किये जाने का सुझाव दिया है। बाल-अपराध, गिरोह-प्रवृत्ति गन्दी बस्ती की समस्या, गरीबी, बेकारी, निरक्षरता तथा आत्महत्या आदि समस्याओं का अध्ययन तथा उनके समाधान सामाजिक सर्वेक्षण का एक उद्देश्य है।

7. **जीवन की दशाओं का अध्ययन** - सामाजिक सर्वेक्षण के उद्भव और विकास से ज्ञात होता है कि इंग्लैण्ड तथा अमरीका में किए गए अधिकांश सर्वेक्षण सामान्य समाज में जीवन की स्थिति, जनता को उपलब्ध सुख-सुविधाओं, व्यवसायों के अन्तर्गत कार्य की दशाओं आदि से सम्बन्धित हैं। सामाजिक सर्वेक्षणों द्वारा सामाजिक न्याय, सुरक्षा एवं सीमा, सरकारी सहायता, कर्मचारियों व अन्य वर्गों की रहन-सहन की स्थिति व उनके प्रति कल्याण कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है। चार्ल्स बूथ, राउण्टी तथा लीप्ले द्वारा किए गए सर्वेक्षणों का उद्देश्य सामान्यतः श्रमिक-वर्ग, उसके परिवारिक एवं सामाजिक जीवन तथा कार्य की दशाओं की जानकारी प्राप्त करना था। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य जीवन की दशाओं का अध्ययन करना हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण-विधि की उपयोगिता (महत्व) एवं गुण
(Utility and Merits of Social Survey Method)

सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में वर्तमान समय में सर्वेक्षण विधि एक महत्वपूर्ण विधि मानी जाती है। इसकी उपयोगिता एवं गुण निम्नलिखित हैं-

1. **शोध की सरल विधि** – प्रयोगशाला विधियों आदि की तुलना में सामाजिक सर्वेक्षण अनुसन्धान की सरलतम विधि कही जा सकती है। इसमें किसी तकनीकी ज्ञान व प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। अत: यह विधि सामाजिक शोध की सरल विधि कही जा सकती है।

2. **आनुभविक अध्ययन** – सर्वेक्षण विधि एक आनुभविक विधि है। इसमें ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर तथ्यों का संकलन किया जाता है अर्थात् अध्ययनकर्त्ता समस्या के प्रत्यक्षत: सम्पर्क में रहता है, वह क्षेत्र में जाता है, व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा तथ्यों का संकलन करता है, उनकी सत्यता की जाँच करता है, इस कारण सर्वेक्षण में सभी व्यक्तियों एवं परिस्थितियों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकता है, इस कारण निष्कर्ष भी विश्वसनीय होते हैं। अत: इस विधि के द्वारा अनुभविक अध्ययन किए जा सकते हैं यह इसकी उपयोगिता है।

3. **वस्तुनिष्ठ अध्ययन** – सर्वेक्षण में तथ्य–संकलन क्षेत्र में जाकर किया जाता है अत: सर्वेक्षण में व्यक्तिनिष्ठता अथवा पक्षपात की सम्भावना समाप्त हो जाती है और समस्या का तटस्थ एवं वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाता है। जहाँ व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनमें व्यक्तिनिष्ठता आ जाना स्वाभाविक है लेकिन इस विधि की सर्वाधिक उपयोगिता इसी बात में है कि इससे क्षेत्र में जाकर तथ्य–संकलन करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं अत: वे वस्तुनिष्ठ होते हैं।

4. **प्रामाणित एवं विश्वसनीयता निष्कर्ष** – इसमें अध्ययनकर्त्ता स्वयं क्षेत्र में जाकर अध्ययन करता है इससे निष्कर्ष अधिक प्रमाणित व विश्वसनीय होते हैं अत: यह कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण ही गहन शोध के लिए आगामी सर्वेक्षण का कार्य करते हैं। अर्थात् वैध प्राक्कल्पनाओं के आधार पर ही नवीन अनुसन्धानों का प्रारम्भ किया जा सकता है।

5. **वैज्ञानिक परिशुद्धता** – सामाजिक सर्वेक्षण में वैज्ञानिक विधियों, नियमों व यंत्रों का प्रयोग किया जाता हैं यही कारण है कि इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक कसौटी पर भी शुद्ध प्रतीत होते हैं। वैज्ञानिक विधि होने के कारण इसमें कल्पनाओं तथा पक्षपात के लिए भी कोई स्थान नहीं हैं सर्वेक्षणकर्त्ता घटनाओं का प्रत्यक्ष निरीक्षण करता है, सत्यता की जाँच करता है, और वैज्ञानिक विधि से ही सांख्यिकीय विधियों द्वारा इसके निष्कर्ष निकालता है, इस कारण यह विधि वैज्ञानिक दृष्टि से शुद्धता लिए होती है।

6. **स्वाभाविक अध्ययन** – एक सर्वेक्षण घटनाओं को स्वाभाविक रूप में देखता है उसे प्रायोगिक विधि की भाँति कृत्रिम संसार नहीं बनाना पड़ता। सर्वेक्षण तो जिस रूप में घटनाओं को देखता है उनका उसी रूप में वर्णन करता है, वर्णन यथावत् रहता हैं इसी कारण इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष यथार्थ, वास्तविक व स्वाभाविक होते हैं।

7. **वैज्ञानिक विकास में सहायक** – सर्वेक्षण वैज्ञानिक उन्नति में भी सहायक होता है। इसके द्वारा अनुसन्धान की विधियों को अधिक विश्वसनीय बनाया जा सकता है, अध्ययन विधियों में सुधार किए जा सकते हैं, उनमें परिवर्तन–परिवर्धन किए जा सकते हैं जिनसे वे विधियाँ अधिक वैज्ञानिक बन सकें। इस रूप में सर्वेक्षण वैज्ञानिक उन्नति में सहायक होता है।

8. **मनोवैज्ञानिक तथ्यों का अध्ययन** – व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं, मूल्यों, वृत्तियों, दृष्टिकोणों व मतों आदि मानसिक पक्षों का अध्ययन किसी प्रयोगशाला में करना कठिन होता है क्योंकि

इसके लिए व्यक्तियों से ही प्रत्यक्षत: जानकारी लेनी आवश्यक होती है, अत: ऐसी घटनाओं का सर्वेक्षण विधि द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है।

9. **सामाजिक समस्याओं का अध्ययन** – सामाजिक सर्वेक्षण के आधार पर किसी संख्या अथवा समूह की समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है। गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी, अशिक्षा, अपराध, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति व आत्महत्या जैसी समस्याएँ जो सामान्यतया मानव जीवन को अव्यवस्थित करती हैं, उनका अध्ययन इस विधि से किया जा सकता है तथा परिवार, विवाह, शिक्षा, मनोरंजन, रीति-रिवाज जैसी संरचनाओं का भी अध्ययन इसी सर्वेक्षण विधि से प्रामाणिक रूप से किया जा सकता है।

10. **समस्याओं का समाधान एवं सामाजिक पुनर्निर्माण** – सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा सामाजिक समस्याओं के अध्ययन किए जाते हैं, उनके कारणों को जाना जाता है तथा उनके समाधान के लिए सुझाव भी दिए जाते हैं जिससे उन सुझावों को समझकर समाज की बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया जा सके, इसके साथ ही सर्वेक्षणों के आधार पर ही समाज के रचनात्मक एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों की योजना तैयार की जा सकती है, कल्याणकारी कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाई जा सकती हैं जैसे- युद्ध, बाढ़, भूकम्प, महामारी एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण नष्ट हुए समूह की वास्तविक स्थिति का अवलोकन करके, उसके पुनर्निर्माण की योजना बनाई जा सकती हैं इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण के आधार पर सामाजिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

11. **व्यावहारिक उपयोगिता** – सामाजिक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग अनेक समस्याओं का समाधान करने के लिए भी किया जा सकता है, जैसे-

    (i) सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु।

    (ii) श्रमिकों की समस्याओं का अध्ययन कर उनका व्यावहारिक हल प्रस्तुत करने हेतु।

    (iii) चुनाव में उम्मीदवार के प्रति लोगों के रुख को जानने के लिए।

    (iv) सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समस्याओं के प्रति लोगों के विचारों को जानने हेतु।

    (v) औद्योगिक विकास की दर ज्ञात करने के लिए तथा

    (vi) विघटनकारी तत्वों का पता लगाने के लिए- सामाजिक सर्वेक्षणों की अति उपयोगिता हो सकती है।

सर्वेक्षण विधि की सीमाएँ (Limitations of Survey Method)

उपर्युक्त गुण व उपयोगिता के होते हुए भी इस विधि के कुछ दोष व सीमाएँ हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) **मूर्त घटनाओं का अध्ययन** – सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा उन घटनाओं का ही अध्ययन किया जा सकता है जो मूर्त होती हैं, जैसे- परिवार की संरचना, आकार, जनसंख्या, रहन-सहन, निर्धनता, बेकारी, आय-व्यय आदि का अध्ययन सामाजिक सर्वेक्षण विधि से हो सकता है लेकिन कुछ घटनाएँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता, जैसे- किसी नजदीकी रिश्तेदार की मृत्यु पर किस प्रकार के भाव जाग्रत होते हैं, उसका सही-सही

अध्ययन उस विधि द्वारा नहीं किया जा सकता है। बहुत-सी घटनाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें व्यक्ति न तो स्पष्ट बता सकता है न ही उन्हें देखा जा सकता है तथा अपनी भावनाओं आदि के सम्बन्ध में जो कुछ व्यक्ति बताता है- वे कहाँ तक सही हैं, इसका भी सही आकलन नहीं किया जा सकता है, केवल मनोवैज्ञानिक विधियों, व्यक्ति-अध्ययन आदि से इनका अध्ययन किया जा सकता है। अर्थात् सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा संख्यात्मक या परिमाणात्मक तथ्यों को ज्ञात किया जा सकता है, गुणात्मक तथ्यों को नहीं।

(2) **गहन अध्ययन असम्भव** - सर्वेक्षण विधि के द्वारा सूचनाओं की गहराई तक जाकर अध्ययन करना असम्भव होता हैं इसके द्वारा तो केवल सतही सूचनाएँ अथवा हाँ/नहीं वाली सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। अत: इस विधि की यह सीमा है कि यह विधि गहन अध्ययनों के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं।

(3) **सीमित अध्ययन-क्षेत्र** - सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा एक सीमित क्षेत्र में घटने वाली समस्याओं का ही अध्ययन किया जाता है। समस्या के व्यापक पक्षों का अध्ययन इस विधि से असम्भव हैं। साथ ही इसके द्वारा घटनाओं के एक रूप का ही अध्ययन सम्भव इस विधि से असम्भव हैं। साथ ही इसके द्वारा घटनाओं के एक रूप का ही अध्ययन सम्भव हो पाता है, जैसे-सर्वेक्षण विधि संख्यात्मक अध्ययन पर तो बल देती है लेकिन सामाजिक घटनाओं की प्रकृति यदि गुणात्मक है तो वह इस विधि के लिए अनुपयुक्त है। संख्यात्मक पक्ष पर अधिक आग्रह रहने के कारण व्यक्ति-विशेष के महत्वपूर्ण विचार, रुचि व दृष्टिकोण आदि का अध्ययन इस विधि से नहीं हो पाता।

(4) **तात्कालिक समस्याओं का अध्ययन** - सर्वेक्षण का प्रयोग केवल तत्कालिक सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के लिए ही किया जाता है, घटनाओं पर पड़ने वाले दीर्घकालीन प्रभाव अथवा दूरस्थ सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की इस विधि में उपेक्षा की जाती है। जबकि बहुत कम घटनाएँ ऐसी होती हैं जो किसी तत्कालीन कारण की उपज होती हैं इसलिए घटनाओं के कारणों को जानने के लिए उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखना भी आवश्यक हो जाता है- लेकिन इस विधि में केवल उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखना भी आवश्यक हो जाता है- लेकिन इस विधि में केवल तत्कालीन परिस्थितियों को ही देखा जाता है, घटनाओं पर पड़ने वाले दीर्घकालीन प्रभाव को नहीं। यह इस विधि का प्रमुख दोष है।

(5) **खर्चीली प्रणाली** - सर्वेक्षण विधि एक खर्चीली विधि है। प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण में बहुत समय एवं धन व्यय हो जाता है। सर्वेक्षण की प्रक्रिया भी जटिल होती है- अनेक बार कई वर्ष तक सर्वेक्षण चलता ही रहता है। निदर्शन निकालने, अनुसूची व प्रश्नावली बनाने, साक्षात्कार करने में भी अधिक समय लगता है। लोगों के वेतन, यात्रा भत्ता, मुद्रण, कागज, फाइलें, कैमरा, आदि अनेक मदों पर खर्च करना पड़ता है। अत: सर्वेक्षण कार्य तभी किया जा सकता है जब समय की पर्याप्तता हो और अधिक धन हो। साधनों की भी बहुलता हो।

(6) **अन्मय (कठोर) प्रणाली** - मानव का अध्ययन जड़ अथवा अचेतन भौतिक पदार्थों की भाँति नहीं किया जा सकता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से स्वभाव में भिन्न होता है अत: व्यक्तियों के अनुरूप ही प्रश्नों की अनुसूची की भाषा एवं साक्षात्कार आदि की विधियों में परिवर्तन करना आवश्यक होता है लेकिन सर्वेक्षण में इस प्रकार के फेर-बदल की स्वतन्त्रता

नहीं होती। परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण सूचनाओं से भी अनेक बार वंचित रह जाना पड़ता है। अत: इस प्रक्रिया का संचालन बुद्धिमान, कुशल एवं अनुभवी व्यक्ति ही कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सर्वेक्षण के अध्ययन की प्रक्रिया एक व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध प्रणाली है जिसकी कार्यप्रणाली में अमानवीयता पाई जाती है।

NOTES

(7) **सैद्धान्तीकरण का अभाव** – अधिकांश सर्वेक्षण किसी तत्कालीन समस्या के समाधान के उद्देश्य से किए जाते हैं इस कारण इनके द्वारा मानव जीवन के वास्तविक स्वभाव की जानकारी नहीं होने के कारण सिद्धान्तों का निर्माण नहीं किया जा सकता। साथ ही ये सर्वेक्षण क्षेत्र में आयोजित किए जाते हैं इस कारण भी इनसे प्राप्त निष्कर्षों के सिद्धान्तों का निर्माण करना कठिन होता है। यही नहीं, अधिकांश सर्वेक्षणों के विभिन्न तथ्यों के बीच भी कोई सम्बन्ध नहीं रह पाता, इस कारण भी किसी सिद्धान्त का निर्माण करना सम्भव नहीं हो पाता इसी कारण सर्वेक्षण विधि का प्रयोग प्रारम्भिक स्तर पर किसी घटना की जानकारी के लिए किया जाता है, सामाजिक–व्यवस्था से सम्बन्धित सिद्धान्तों के निर्माण के लिए नहीं।

(8) **पूर्वाग्रह की सम्भावना** – सर्वेक्षणकर्त्ता को एक सुनिश्चित प्रक्रिया से गुजरना होता है और इसके प्रत्येक चरण पर व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना हो सकती है। निदर्शन व साक्षात्कार दोनों स्थितियों में व्यक्तिगत रुचि–अरुचि के प्रभाव के कारण निष्कर्षों के दूषित होने की सम्भावना बनी रहती है। अध्ययनकर्त्ता का स्वयं का पूर्वाग्रह भी पक्षपातपूर्ण हो सकता है अथवा सम्पूर्ण प्रक्रिया से गुजरते समय सर्वेक्षणकर्त्ता की थोड़ी–सी भूल भी निष्कर्षों को विकृत कर सकती है क्योंकि सर्वेक्षण कार्य एक लम्बी व जटिल प्रक्रिया है।

(9) **संदिग्ध विश्वसनीयता** – सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त तथ्यों को पूर्णतया विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। इसमें प्रश्नावली व अनुसूची दोषपूर्ण हो सकती है, प्रश्नों की भाषा, उनका क्रम आदि सूचनादाता की मन:स्थिति को प्रभावित कर सकता है। आवश्यकता से अधिक लम्बे व जटिल प्रश्न भी सूचनादाता को अध्ययन के प्रति उदासीन बना सकते हैं।

इस प्रकार सर्वेक्षण के निष्कर्षों की प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता सर्वेक्षणकर्त्ता के व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं प्राय: सर्वेक्षण कार्य को एक खानापूर्ति मात्र समझकर, यथाशीघ्र उसे पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है तो अध्ययन के निष्कर्ष भी उससे प्रभावित होते हैं। ऐसी स्थिति में सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त तथ्य भी सन्देहास्पद होते हैं।

(10) **दल–अनुसन्धान की समस्याएँ** – जब किसी विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन किया जाता है तो उसके लिए अनेक कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रकार के कुशल कार्यकर्त्ताओं की खोज व उनको प्रशिक्षित कर उन्हें क्षेत्रीय कार्य के लिए तैयार करना दल–अनुसन्धान की प्रथम आवश्यकता है। सर्वेक्षण में विभिन्न स्तरों पर परस्पर तालमेल बनाए रखकर कार्यकर्त्ताओं के बीच समन्वय स्थापित करने में अनेक समस्याएँ आती हैं। जैसे– निदेशक, उपनिदेशक, अनुसन्धान अधिकारी, लिपिक, प्रगणक एवं अध्ययनकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनमें परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, तनाव आदि भी सर्वेक्षण कार्य को शिथिलता प्रदान करते हैं। इस प्रकार अध्ययन दल से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ सर्वेक्षण कार्य को कठिन बना देती हैं।

इस प्रकार सर्वेक्षण कार्य की और भी अनेक समस्याएँ हैं जो इसे सफलता प्रदान करने में अवरोध उत्पन्न करती हैं, जैसे- कुछ अध्ययनकर्त्ता निपुण, लगनशील व कार्यकुशल नहीं होते, उनके व्यक्तित्व में भी भिन्नता होती है वे आलसी, पक्षपाती, कम शिक्षित होते हैं, इससे अध्ययन के निष्कर्ष प्रभावित होते हैं। कभी-कभी सर्वेक्षण-यंत्र, जैसे- प्रश्नावली, अनुसूची आदि के दोषपूर्ण होने से भी सर्वेक्षण दोषपूर्ण हो जाते हैं। इसके पश्चात भी सामाजिक विज्ञानों में सर्वेक्षण विधि का प्रचलन अधिक होता जा रहा है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. सामाजिक सर्वेक्षण से आप क्या समझते है? इसकी विभिन्न परिभाषाएँ दीजिए।
2. सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
3. सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताएँ बताइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सामाजिक सर्वेक्षण की विषय वस्तु का उल्लेख कीजिए।
2. सामाजिक सर्वेक्षण की उपयोगिता बताइए।
3. सर्वेक्षण विधि की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. सर्वेक्षण शब्द अंग्रेजी के शब्द का हिन्दी रूपान्तर है–

   (अ) Survey (ब) Surrvery

   (स) Sugerty (द) इनमें से कोई नहीं

2. सर्वेक्षण का अर्थ होता है –

   (अ) मूल्यांकन करना (ब) निरीक्षण करना

   (स) परीक्षा करना (द) निर्देशित करना।

3. सर्वेक्षण की परिभाषाएँ हैं–

   (अ) समस्यापरक (ब) तथ्यपरक

   (स) उद्देश्य मूलक (द) ये सभी।

उत्तर- 1. (अ), 2. (ब), 3. (द)।

7 सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार, आयोजन एवं प्रमुख चरण

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य ।
- प्राक्कथन ।
- सामाजिक सर्वेक्षण के तीन उप-प्रकारों वाले वर्गीकरण ।
- सामाजिक सर्वेक्षण के द्वि-उप प्रकारों वाले वर्गीकरण ।
- सामाजिक सर्वेक्षण का अयोजन एवं प्रमुख चरण ।
- पूर्वगामी अध्ययन अथवा सर्वेक्षण ।
- सामाजिक अनुसंन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण ।
- सामाजिक अनुसंन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर
- सामाजिक अनुसंन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण में समानता ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न ।

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- सामाजिक सर्वेक्षण के तीन उप-प्रकारों वाले वर्गीकरण ।
- सामाजिक सर्वेक्षण के द्वि-उप प्रकारों वाले वर्गीकरण ।
- सामाजिक सर्वेक्षण का अयोजन एवं प्रमुख चरण ।
- पूर्वगामी अध्ययन अथवा सर्वेक्षण ।
- सामाजिक अनुसंन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण ।
- सामाजिक अनुसंन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर
- सामाजिक अनुसंन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण में समानता ।

प्राक्कथन

अनेक विद्वानों ने सामाजिक सर्वेक्षण के अपने-अपने अध्ययन के क्षेत्र, रुचि और दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न प्रकार बताइए हैं । कुछ ने आधारों के अनुसार सर्वेक्षण के तीन उप-प्रकार बताए हैं तथा कुछ ने दो उप-प्रकार बताए हैं- ये निम्नलिखित हैं-

सामाजिक सर्वेक्षण के तीन उप-प्रकारों वाले वर्गीकरण (Classification of Three Sub-Types of Social Survey)

विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक सर्वेक्षण के तीन उप-प्रकारों का वर्गीकरण-

(1) उद्देश्य, (2) आयोजक, (3) विधियाँ और (4) समुदाय अथवा क्षेत्र के आधार पर निम्न प्रकार बताए हैं-

इनका सविस्तार विवेचन इस प्रकार है-
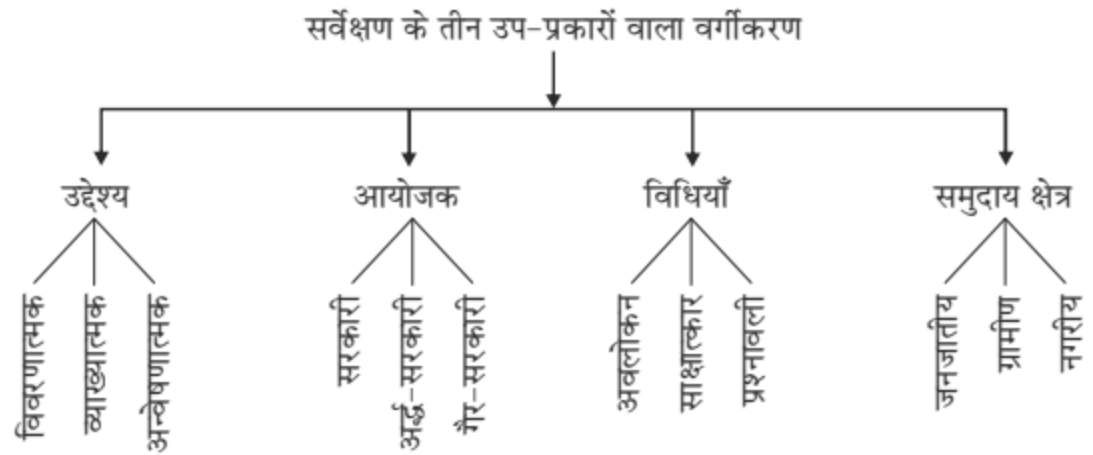
1. **उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण—** उद्देश्यों के आधार पर सर्वेक्षण के तीन प्रकार हो सकते हैं-

   1.1 **विवरणात्मक सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षणों में शोधकर्त्ता का उद्देश्य 'क्यों है?' की, अपेक्षा 'क्या है?' होता है । इस प्रकार के सर्वेक्षणों के द्वारा किसी सामाजिक दशा, सामाजिक व्यवहार अथवा सामाजिक प्रक्रिया आदि का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। जैसे- किसी जनसमुदाय में आयु. लिंग, आय, शिक्षा, व्यवसाय आदि के आधार पर व्यक्तियों का वितरण किस प्रकार हुआ है अर्थात् उस समुदाय में स्त्री, पुरुष, बालक आदि संख्या में कितने हैं-आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है । इस प्रकार के सर्वेक्षण से किसी समूह के व्यक्तियों, घटनाओं अथवा वस्तुओं के पक्षों का वास्तविक विवरण प्रस्तुत किया जाता है तथा इनसे परिवर्तन की प्रकृति एवं दिशा आदि को ज्ञात करने में भी सहायता मिलती है ।

   1.2 **व्याख्यात्मक सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षण 'क्या है?' के स्थान पर 'क्यों हैं?' के प्रश्न का उत्तर भी देते हैं । अर्थात् इनमें किसी घटना के कारणों को ज्ञात करके उनकी व्याख्या की जाती है । जैसे- भारत में आरक्षण का क्या औचित्य है? किसे

दिया जाए? कब तक दिया जाए? और क्यों दिया जाए? यदि की व्याख्या आदि व्याख्यात्मक सर्वेक्षण हैं । अर्थात् इसके अन्तर्गत घटना का पूर्ण व्याख्यात्मक अध्ययन किया जाता है ।

1.3 **अन्वेषणात्मक सर्वेक्षण—** अन्वेषणात्मक सर्वेक्षण का उद्देश्य विस्तृत आधार पर किए जाने वाले सर्वेक्षणों के नियोजन के लिए प्रारम्भिक जानकारी एकत्र करना होता है। इसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि सर्वेक्षण की योजना बनाते समय समस्या से सम्बन्धित कुछ विषय छूट तो नहीं पाए हैं जो सर्वेक्षण के लिए आवश्यक थे। अन्वेषणात्मक सर्वेक्षणों को 'पूर्वगामी सर्वेक्षण' भी कहा जाता है क्योंकि इनका उद्देश्य सर्वेक्षण योजना को निश्चित एवं कार्य करने योग्य बनाना होता है।

2. **आयोजकों के आधार पर वर्गीकरण—** सर्वेक्षण का आयोजन किसने किया है, इस आधार पर सर्वेक्षण के निम्न प्रकार हो सकते हैं-

2.1 **सरकारी सर्वेक्षण—** सरकारी सर्वेक्षणों का आयोजन एवं संचालन सरकार अथवा सरकार के ही किसी विभाग द्वारा किया जाता है ।

2.2 **अर्द्ध-सरकारी सर्वेक्षण—** जब किसी सर्वेक्षण का आयोजन एवं संचालन राज्य द्वारा सहायता प्राप्त विभागों द्वारा कराया जाता है तो वह अर्द्ध-सरकारी सर्वेक्षण कहा जाता है।

2.3 **गैर-सरकारी सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षण निजी स्तर पर किसी व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा आयोजित किए जाते है ।

3. **सर्वेक्षण विधियों के आधार पर वर्गीकरण—** सर्वेक्षण में प्रयोग की जाने वाली विधियों के आधार पर सर्वेक्षण के निम्न प्रकार हैं-

3.1 **अवलोकन सर्वेक्षण—** मोजर तथा कालटन ने अवलोकन सर्वेक्षण का उल्लेख किया है। इसमें अवलोकन के आधार पर किसी घटना की जानकारी की जाती है। अवलोकन विधि वर्तमान में एक स्वतन्त्र विधि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। अवलोकन का वर्णन पृथक् अध्याय में विस्तार से किया जा चुका है।

3.2 **साक्षात्कार सर्वेक्षण—** साक्षात्कार सर्वेक्षण में लोगों से प्रत्यक्षत: सम्पर्क स्थापित करके किसी विषय पर पारस्परिक वार्तालाप द्वारा तथ्यों का संकलन किया जाता है।

3.3 **प्रश्नावली सर्वेक्षण—** प्रश्नावली प्रश्नों की एक सूची होती है जिसमें किसी विषय के सम्बन्ध में प्रश्नों का निर्माण किया जाता है और जो डाक द्वारा सूचनादाताओं के समीन सूचना एकत्र करने के लिए भेजी जाती है । सूचनादाता पुन: इसे अध्ययकर्त्ता के पास भरकर भेज देता है । यही 'प्रश्नावली सर्वेक्षेण' कहलाता है।

4. **समुदाय एवं क्षेत्र के आधार पर वर्गीकरण—**इस आधार पर सर्वेक्षण तीन प्रकार के हैं-

4.1 **जनजातीय सर्वेक्षण—** आदिवासी अथवा जनजातियों से सम्बन्धित समस्याओं एवं समाधान हेतु इस प्रकार के सर्वेक्षणों का आयोजन किया जाता है।

4.2 **ग्रामीण सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षण ग्रामीणों की समस्याओं व उनके समाधानों के लिए आयोजित किए जाते हैं ।

4.3 **नगरीय सर्वेक्षण—** नगरों से सम्बन्धित समस्याओं को जानने अथवा उनके समाधान हेतु नगरीय सर्वेक्षण आयोजित किए जाते हैं ।

II. सामाजिक सर्वेक्षण के द्वि-उप प्रकारों वाले वर्गीकरण (Classifieation of Bi-Sub-Types of Social Survey)

सामाजिक सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने अध्ययन के समग्र सूचना-सोत, अन्वेषण का स्तर, समयावधि, आवश्यकता प्रवृत्ति महत्व, विषयवस्तु, प्रकृति विशिष्टता और समाधान आदि के आधार पर सर्वेक्षण के दो-दो प्रकारों को निर्धारित किया है । इन द्वि-उप-प्रकारों का विवेचना निम्नलिखित है-

1. **समग्र के आधार पर वर्गीकरण—**समग्र के आधार पर सर्वेक्षणों के दो प्रकार हैं-

1.1 **संगणना सर्वेक्षण—**इस प्रकार के सर्वेक्षणों में किसी समस्या अथवा विषय से सम्बन्धित तथ्यों को प्राप्त करने के लिए चुने गए समुदाय के सभी व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है। ये सर्वेक्षण दशाब्दिक जनगणना के रूप में किए जाते हैं । जिससे देश की जनसंख्या एकत्र करने के लिए किसी भी परिवार व व्यक्ति को छोड़ा नहीं जाता है। ऐसे सर्वेक्षण छोटे क्षेत्रों पर किए जाते हैं । संगणना सर्वेक्षणों में अत्यधिक धन, समय तथा कार्यक्षमता की आवश्यकता होती है ।

1.2 **निदर्शन सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षणों में अध्ययन किए जाने वाले समुदाय की सभी इकाइयों को अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया जाता बल्कि प्रतिदर्श विधियों द्वारा कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चयन करके उनका अध्ययन किया जाता है। इन अध्ययनों में परिणाम अनुमानात्मक होते हैं ।

2. **सूचनाओं के आधार पर वर्गीकरण—** इस आधार पर सर्वेक्षण के दो प्रकार हैं-

2.1 **गुणात्मक सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षणों में किसी समस्या के विषय में गुणात्मक जानकारी एकत्र की जाती है, जैसे-मूल्यों, विचारों, विश्वासों, भावनाओं, विचारधाराओं आदि का अध्ययन 'गुणात्मक सर्वेक्षण' कहलाता है। प्राय: मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण, प्रवृत्ति तथा मनोवृत्तियों का अध्ययन, जनमत संग्रह व सामान्य विचारधारा की जानकारी आदि गुणात्मक सर्वेक्षण हैं। सौन्दर्य, चरित्र बुद्धि, अच्छाई-बुराई आदि का माप गुणात्मक सर्वेक्षणों द्वारा किया जाता है।

2.2 **परिमाणात्मक सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षण ऐसी समस्याओं के अध्ययन के लिए आयोजित किए जाते हैं जिनमें विभिन्न सूचनाएँ सुलभ आँकड़ों के रूप में उपलब्ध हों तथा संकलन के बाद उनमें सांख्यिकीय पद्धतियों द्वारा निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकें। जैसे- आय-व्यय, रहन-सहन का स्तर, बेकारी, गरीबी, साक्षरता, जनसंख्या व यातायात के साधन आदि का अध्ययन परिमाणात्मक सर्वेक्षण कहलाता है।

3. **अन्वेषण के स्तर पर वर्गीकरण**—इस आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के हैं-

3.1 **पूर्वगामी सर्वेक्षण**— इस प्रकार के सर्वेक्षण प्रमुख सर्वेक्षण से पूर्व आयोजित किए जाते हैं। ये बड़े सर्वेक्षण के लघु रूप होते हैं जिनका उद्देश्य अध्ययन यंत्रों की पूर्व जाँच करना होता है। इस प्रकार ये सर्वेक्षण मार्गदर्शन का कार्य करते हैं । इनमें एकत्रित की गई सूचनाएँ अधिकांशत: मुख्य सर्वेक्षण के लिए उपयोगी होती हैं और ये एक सर्वेक्षण की जटिल प्रकृति को सुविधा पूर्ण बनाती हैं।

3.2 **मुख्य सर्वेक्षण**— पूर्वगामी सर्वेक्षण पूर्ण कर लेने के बाद समस्या के वास्तविक अध्ययन के लिए मुख्य सर्वेक्षण आयोजित किए जाते हैं । समस्या को अपने मुख्य तथा वास्तविक रूप में विस्तृत स्तर पर अध्ययन पूर्वगामी सर्वेक्षण के बाद ही सुविधाजनक तथा विश्वसनीय सम्भव हो सकता है।

4. **समयावधि के आधार पर वर्गीकरण**—इस आधार पर सर्वेक्षण के दो प्रकार हैं-

4.1 **लघुकालिक सर्वेक्षण**— इस प्रकार के सर्वेक्षण थोड़े समय में पूर्ण हो जाते हैं । इन सर्वेक्षणों में जनसंख्या के विभिन्न वर्गों का एक समय में एक बार ही अध्ययन किया जाता है और इनका उद्देश्य किसी तात्कालिक समस्या के विषय में लोगों की राय जानना होता है, जैसे-किसी जनसंख्या के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों से उनके चुनाव के प्रति मतों को एक ही समय पर मालूम किया जा सकता है । बेरोजगारी की दर भी इस प्रकार के सर्वेक्षण से ज्ञात की जा सकती है ।

4.2 **दीर्घकालिक सर्वेक्षण**— कुछ सर्वेक्षणों में एक लम्बे समय तक तथ्यों को एकत्र किया जाता है। यह लम्बी अवधि तक कुछ सप्ताह से लेकर कई वर्षों तक हो सकती है। इस विधि में तथ्यों का संकलन विभिन्न समय में किया जाता है। इस प्रकार से संकलित तथ्यों का प्रयोग परिवर्तनों का वर्णन करने के लिए तथा उनकी व्याख्या करने के लिए किया जाता है। जहाँ लघुकालिक अध्ययन का प्रयोग केवल वर्णन के लिए किया जाता है, वहीं दीर्घकालीन सर्वेक्षणों का प्रयोग वर्णन के साथ-साथ व्याख्या करने के लिए भी किया जाता है, जैसे-भारत में जाति व्यवस्था में आ रहे परिवर्तनों को जानने के लिए हर पाँच साल बाद सर्वेक्षण करा सकते हैं और 20 साल तक करवा सकते हैं।

5. **आवश्यकता के आधार पर वर्गीकरण**—इस आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के हैं ।

5.1 **नियमित सर्वेक्षण**— नियमित सर्वेक्षणों का आयोजन किसी समस्या की जानकारी के लिए नियमित रूप से कराया जाता है । इस कार्य के लिए एक पृथक विभाग की स्थापना की जाती है । भारत सरकार द्वारा जनगणना विभाग तथा रिजर्व बैंक द्वारा आय-व्यय, जन्म-दर, मृत्यु दर आदि से सम्बन्धित सर्वेक्षण नियमित रूप से होते हैं ।

5.2 **कार्यवाहक सर्वेक्षण**— किसी तात्कालिक आवश्यकता हेतु अथवा किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु जब कोई अस्थाई संगठन बनाकर सर्वेक्षण कराया जाता है तो उसे

NOTES

कार्यवाहक सर्वेक्षण कहा जाता है। किसी योजना को अन्तिम स्वरूप प्रदान करने के पूर्व महवपूर्ण प्रश्नों की जानकारी के लिए भी इस प्रकार का सर्वेक्षण कराया जाता है ।

6. **आवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण—** इस आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के हैं।-

6.1 **अन्तिम सर्वेक्षण**—कभी-कभी अध्ययन का विषय कम परिवर्तनशील व सीमित होता है जिसके विषय में एक बार के सर्वेक्षण के आधार पर ही निष्कर्ष निकाल लिए जाते हैं । ऐसे सर्वेक्षण को अन्तिम सर्वेक्षण कहा जाता है ।

6.2 **पुनरावर्तक सर्वेक्षण**—जब एक बार सर्वेक्षण करना पर्याप्त नहीं होता है तब किसी विषय के अन्तर्गत क्रम एवं प्रवृत्ति को जानने के लिए पुनः पुनः सर्वेक्षण आयोजित किए जाते हैं तो ऐसे सर्वेक्षणों को पुनरावर्तक सर्वेक्षण की संज्ञा दी जाती है।

7. **महत्व के आधार पर वर्गीकरण**—इस आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के होते हैं-

7.1 **प्राथमिक सर्वेक्षण—** जिन सर्वेक्षणकर्ता द्वारा प्रत्यक्ष सम्पर्क के आधार पर तथ्यों का संकलन किया जाता है, उन्हें प्राथमिक सर्वेक्षण कहा जाता है ।

7.2 **द्वैतीयक सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षणों में अध्ययनकर्त्ता स्वयं अथवा प्रत्यक्ष रूप से तथ्यों का संकलन न करके, अन्य साधनों द्वारा सूचनाओं को एकत्र करता है, इसलिए इन्हें द्वैतीयक सर्वेक्षण कहा जाता है ।

8. **विषय-वस्तु के आधार पर वर्गीकरण**—इस आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के हैं-

8.1 **जनमत सर्वेक्षण—** इन सर्वेक्षणों में विभिन्न विषयों पर लोगों की राय, विचार अथवा मनोवृत्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, इसी कारण इन्हें 'मनोवृत्यात्मक सर्वेक्षण' भी कहा जाता है ।

8.2 **तथ्यात्मक आधार पर सर्वेक्षण—** इन सर्वेक्षणों में निश्चित, वास्तविक में ठोस तथ्यों को संकलित किया जाता है।

9. **प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण**—प्रकृति के आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के हैं-

9.1 **सार्वजनिक अथवा खुले सर्वेक्षण—** इस प्रकार के सर्वेक्षणों जिनमें तथ्यों को छुपाया नहीं जाता, अपितु उनका प्रतिवेदन एवं निष्कर्ष जनता के सूचनार्थ प्रकाशित किया जाता है, खुले सर्वेक्षण कहलाते हैं।

9.2 **गुप्त, सर्वेक्षण—** जिन सर्वेक्षणों में निष्कर्षों का राष्ट्रीय अथवा प्रशासकीय हितों की दृष्टि से अप्रकाशित अथवा गुप्त रखा जाता है, उन्हें गुप्त सर्वेक्षण कहा जाता है।

10. **विशिष्ट के आधार पर वर्गीकरण (Classifieation Based on Distinetiveness) -** विशिष्टता के आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार हैं-

10.1 **सामान्य सर्वेक्षण—** सामान्य सर्वेक्षण का आशय ऐसे सर्वेक्षणों से है जिनके द्वारा समस्या के अनेक पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है, जैसे-किसी क्षेत्र की जनसंख्या, लोगों का रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा, संस्कृति, रीति-रिवाज, अर्थव्यवस्था आदि को जानने के लिए सामान्य सर्वेक्षणों का आयोजन होता है ।

10.2 विशिष्ट सर्वेक्षण— किसी समुदाय के जीवन के किसी विशिष्ट पक्ष, जैसे-शिक्षा, स्वास्थ्य, छूआछूत आदि को जानने के लिए विशिष्ट सर्वेक्षण आयोजित किए जाते हैं ।

11. **समाधान के आधार पर वर्गीकरण (Classification Based on Solution)** - समाधान के आधार पर सर्वेक्षण के दो प्रकार हैं-

11.1 मूल्यांकनात्मक सर्वेक्षण— किसी सामाजिक समस्या के कारणों के आधार पर समस्या को हल करने के लिए सुधारात्मक योजना बनाई जाती है, उसे मूल्यांकनात्मक सर्वेक्षण कहा जाता है ।

11.2 निदानात्मक सर्वेक्षण— निदानात्मक सर्वेक्षण किसी समस्या के कारणों को जानने के लिए किए जाते हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण का आयोजन एवं प्रमुख चरण (Planning of a Social Survey and Main Steps)

सामाजिक सर्वेक्षण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्ययन-विधि है जिसे सही ढंग से संचालित करने के लिए एक योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित आयोजन की आवश्यकता होती है। आयोजन के अभाव में सर्वेक्षण का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सकता। इसके लिए कुछ प्रारम्भिक तैयारियाँ करना आवश्यक हो जाता है, जिससे प्राप्य उद्देश्यों में सफलता प्राप्त हो सके। भारतीय योजना आयोग के मत में, ''किसी कार्य का नियोजन अथवा आयोजन, आवश्यक रूप से सामाजिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, साधनों के अधिकतम लाभ हेतु, संगठित करने तथा काम में लाने की एक विधि हैं।'' लुण्डवर्ग ने भी व्यवस्थित आयोजन को उत्तरदायित्वपूर्ण प्रक्रिया मानते हुए कहा, ''उत्साहपूर्वक आँकड़ों के अधिक संकलन कर लेने मात्र से ही अध्ययनकर्त्ता का कार्य पूरा हो जाना उसकी केवल अनुभवहीनता तथा निरर्थक परिश्रम का ही लक्षण है।'' अर्थात् सर्वेक्षण द्वारा विश्वसनीय तथ्यों व वैज्ञानिक निष्कर्षों को प्राप्त करना ही उसके सफल आयोजन का परिणाम है । पार्टन के अनुसार है, ''सर्वेक्षण का आयोजन, संगठन तथा संचालन किसी व्यापार को चलाने के समान है । दोनों के लिए तकनीकी ज्ञान तथा कुशलता, प्रशासकीय योग्यता तथा विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती।''

मोजर (Moser) के अनुसार भी, ''एक सामाजिक सर्वेक्षण का आयोजन तकनीकी तथा संगठनात्मक निर्णयों का समन्वय है।''

अत: कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण योजनाबद्ध तरीके से आदि से अन्त तक संचालित किए जाने पर ही विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त हो सकेंगे । अत: सर्वेक्षण की योजना अत्यन्त आवश्यक है । सर्वेक्षण के कुछ चरण निम्नलिखित हैं जिन पर प्रकाश डाला जा सकता है ।

सर्वेक्षण के प्रमुख चरण

सामाजिक सर्वेक्षण के आयोजन के प्रमुख चरणों के निर्धारण में सर्वेक्षण की समस्या, प्रकृति, उद्देश्यों, अध्ययन,क्षेत्र, प्रारम्भिक तैयारी, निदर्शन का चयन, बजट, समय-सूची, अध्ययन पद्धति, उपकरणों, कार्यकर्त्ताओं एवं संगठन के संगठन आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है। सर्वेक्षण के प्रमुख चरणों की विवेचना इस प्रकार है-

(1) समस्या का चयन— किसी सामाजिक सर्वेक्षण के आयोजन हेतु अध्ययन-समस्या का चुनाव सर्वप्रथम तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण होता है। यदि अध्ययन-विषय उपयुक्त होगा तो उसके अन्तर्गत किया गया सर्वेक्षण भी सन्तोषजनक होगा। अर्थात् सामाजिक सर्वेक्षण की सफलता व असफलता किसी सीमा तक विषय के चुनाव पर निर्भर करती है। अर्लोल्ड रोज के अनुसार ''एक अर्थपूर्ण वैज्ञानिक समस्या को देखने तथा निर्माण करने की योग्यता एक कलात्मक उपहार है।'' विषय के चुनाव के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

1.1 सर्वेक्षण का विषय इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें अनुसन्धानकर्त्ता की रुचि हो । जिससे वह पूर्ण लगन तथा परिश्रम के साथ गहन अध्ययन का कार्य कर सके ।

1.2 सर्वेक्षण का विषय इस प्रकार का हो जिसके सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्त्ता को कुछ पूर्व ज्ञान हो जिससे वह अपने सर्वेक्षण कार्यक्रम को विश्वासपूर्वक आगे बढ़ा सके । यदि विषय पूर्णतया नवीन होगा तो उसके प्रति अध्ययनकर्त्ता को जिज्ञासा अथवा उत्सुकता नहीं होगी, न ही वह विषय पर सही-सही विचार कर सकेगा ।

1.3 समस्या का सम्बन्ध सामयिक परिस्थितियों, समाज-सुधार, कल्याण, विघटनकारी तथ्यों आदि से होना चाहिए । जिससे उसके द्वारा ज्ञान में वृद्धि होने के साथ-साथ सार्वजनिक हित की भी पूर्ति हो सके ।

1.4 सर्वेक्षण-विषय का चयन करते समय यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि वह समय, साधन व धन की सीमा के अन्तर्गत हो। विषय-क्षेत्र इतना व्यापक भी न हो कि समय पर सर्वेक्षण कार्य पूर्ण न किया जा सके। साथ ही साधनों की अपर्याप्तता भी सर्वेक्षण की सफलता को संदिग्ध बना देगी। अत: समय, साधन व धन का भी ध्यान रखना आवश्यक है ।

2. समस्या की प्रकृति की जानकारी— विषय के चयन के बाद समस्या की प्रकृति को जानना आवश्यक है। समस्या की प्रकृति सामान्य है अथवा विशिष्ट? अर्थात् समस्या दिन-प्रतिदिन की सामान्य घटनाओं से सम्बद्ध हो सकती है और वह विशेष प्रकृति की जानकारी से सम्बन्धित भी हो सकती है। यदि समस्या व्यावहारिक होगी तो उसके परिणाम अधिक विश्वसनीय व आत्मनिर्भर होंगे और यदि अव्यवहारिक समस्या है, तो परिणाम अधिक विश्वसनीय नहीं होंगे। अत: उपयोगी प्रकृति की समस्याओं का चयन करना अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है।

3. उद्देश्यों का निर्धारण— समस्या का चुनाव करते समय उद्देश्यों का निर्धारण करना भी महत्वपूर्ण कार्य होता है। निरुद्देश्य कार्य सदैव धन प परिश्रम को व्यर्थ बनाता है अर्थात् जब तक सर्वेक्षण के उद्देश्य निश्चित नहीं होते तब तक सर्वेक्षणकत्ताओं की नियुक्ति, समय तथा धन आदि के विषय में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता । इसलिए यह विचार करना आवश्यक है कि सर्वेक्षण के उद्देश्य क्या होंगे, इसके विशिष्ट उद्देश्य क्या होंगे । जिससे सर्वेक्षण की एक समष्ट प्रारचना बनाई जा सके । इसलिए उद्देश्यों का निर्धारण सावधानीपूर्वक किया जाना आवश्यक है ।

4. **अध्ययन-क्षेत्र का निर्धारण—** उद्देश्यों के निर्धारण के बाद समस्या के विभिन्न पक्षों को यथासम्भव स्पष्ट और परिसीमित कर लेना चाहिए, जिससे सर्वेक्षण के कार्य में अनावश्यक रूप से भ्रमित न होना पड़े । स्थान की दूरी, जनसंख्या, भौगोलिक जानकारी, प्राप्त सुविधाएँ आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । अध्ययन-क्षेत्र के निर्धारण के प्रमुखरुप से निम्न आधार हो सकते हैं- (1) प्रशासकीय, (2) सामाजिक व सांस्कृतिक, (3) आर्थिक व (4) प्राकृतिक अथवा भौगोलिक।

   इसके साथ ही जिस विषय का सर्वेक्षण करना है उसकी विभिन्न इकाइयों को भी स्पष्ट करना आवश्यक है क्योंकि इकाई ही प्रस्तावित अध्ययन के केन्द्र की धुरी होती है जिसके द्वारा सूचनाएँ व्यक्त की जाती हैं, सन्देह का निवारण कर निष्कर्षो की विश्वसनीयता लाई जाती है । जैसे-यदि गन्दी बस्तियों का अध्ययन करना है तो सर्वप्रथम गन्दी बस्ती तथा उनमें रहने वाले व्यक्तियों का अर्थ स्पष्ट करना पड़ेगा तथा यह भी स्पष्ट करना होगा कि ये लोग किस स्तर का कार्य करते हैं तथा उनका भौगोलिक क्षेत्र क्या है आदि । जिसे तथ्यों को वस्तुनिष्ठ तरीके से संकलित किया जा सके ।

5. **प्रारम्भिक तैयारियाँ—** सर्वेक्षण-क्षेत्र को परिसीमित करने के उपरान्त सर्वेक्षणकर्त्ता को कुछ प्रारम्भिक तैयारियाँ करनी आवश्यक हैं। इनमें सर्वप्रथम (1) प्रारम्भिक अध्ययन करना आवश्यक है जिससे विषय का अधिकाधिक ज्ञान हो सके । इसके पश्चात् (2) अर्थव्यवस्था व बजट निर्माण को स्पष्ट रूपरेखा बनाना आवश्यक है। प्रारम्भिक तैयारियों में तीसरा कार्य (3) सर्वेक्षणकर्त्ता का विषय से सम्बन्धित अन्य विशेषज्ञों के विचारों व दृष्टिकोणों से परिचित होना है जिससे विषय के प्रति पर्याप्त अन्तर्दृष्टि प्राप्त की जा सके । इसके साथ ही (4) सर्वेक्षण के दौरान आने वाली कठिनाइयों का अनुमान कर उन्हें दूर करने के उपायों के बारे में विचार करना आवश्यक है, जिससे सर्वेक्षण के कार्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं हो।

6. **निदर्शन का चुनाव—** प्रारम्भिक तैयारियों के बाद निदर्शन का चुनाव करना आवश्यक है । निदर्शन का चुनाव उन सर्वोक्षणों में अत्यधिक आवश्यक है जहाँ अध्ययन-विषय एक बड़ा समूह, समुदाय अथवा वर्ग होता है । सर्वेक्षण में समय एवं साधन प्रायः सीमित होते है। अतः सीमित समय व साधनों को लेकर एक बड़े समुदाय की सभी इकाइयों का अध्ययन असम्भव होता है । इस कारण उन सभी इकाइयों में से बुद्धिमत्तापूर्वक कुछ ऐसी इकाइयों का चयन कर लिया जाता है, जो समग्र में सम्पूर्ण समुदाय का प्रतिनिधत्व कर सकें, यहाँ निदर्शन का चयन कहलाता है । हैमिल्टन के अनुसार ''सर्वेक्षण की बहुत कुछ सफलता बुद्धिमत्तापूर्वक चुने हुए निदर्शनों पर निर्भर करती है क्योंकि निदर्शन क्षेत्र को परिसीमित व सुस्पष्ट करता है, व्यय को घटाता है और परिश्रम व समय की बचत करके हमारा ध्यान केवल आवश्यक विषयों पर ही केन्द्रित करता है ।''

7. **बजट निर्धारण—**सर्वेक्षण-कार्य की सफलता के लिए बजट का निर्धारण आवश्यक होता है क्योंकि किसी भी सर्वेक्षण पर असीमित धन-व्यय नहीं किया जा सकता । एक सर्वोक्षण पर कितना धन व्यय होगा यह सर्वेक्षण-क्षेत्र की प्रकृति, उद्देश्य व उसमें लगने वाले समय पर निर्भर करता है । अतः धन की मात्रा का निश्चय करते समय इन सब बातों को ध्यान में रखना

आवश्यक है। पुस्तकों, स्टेशनरी, कर्मचारियों का चेतन आदि पर किए जाने वाले व्यय का अनुमान लगाते समय कम से कम 10 प्रतिशत धन आकस्मिक खर्च के लिए सुरक्षित रख लेना चाहिए ।

NOTES

पार्टेन ने सम्पूर्ण धन को मोटे रूप में तीन भागों में विभाजित किया है—(i) सर्वेक्षण की योजना बनाने, अनुसूची, प्रश्नावली और निर्देशों आदि का मुद्रण, (ii) अध्ययन-क्षेत्र की जाँच, आँकड़ों का संकलन तथा अनुसूची-सम्पादन कार्य आदि व (iii) वर्गीकरण, सारणीय, सामग्री-विश्लेषण तथा प्रतिवेदन तैयार करना । इस प्रकार प्रत्येक अवस्था में लागत का अनुमान सावधानीपूर्वक लगा लेना चाहिए ।

8. **समय-सूची का निर्धारण—** समय-सूची का निर्माण भी अनुसन्धान कार्य का महत्वपूर्ण पक्ष है। सर्वेक्षण में किस चरण में कितना समय लगेगा-यह पूर्व में ही स्पष्ट होना चाहिए । जिससे अनुसन्धान असीमित एवं अनिश्चित काल तक न चलता रहे । यदि सर्वेक्षण में समय अधिक लग जाता है तो सर्वेक्षणकर्त्ता में लगन व उत्साह कम हो जाता है इसलिए समय का अनुमान लगाते समय सम्पूर्ण सर्वेक्षण की एक समय-सारणी अवश्य बना लेनी चाहिए जिनमें सर्वेक्षण के प्रत्येक क्रम अथवा चरण में लगने वाले सम्भावित समय का उल्लेख होना चाहिए साथ ही बीमारी, थकावट, छुट्टियों, मौसम की परिवर्तनशीलता आदि के कारण कार्य में जो व्यवधान आता है उसको भी ध्यान में रखना चाहिए ।

9. **अध्ययन-पद्धति व उपकरणों का चयन—** सर्वेक्षण के दौरान आवश्यकतानुसार एक अथवा अधिक अध्ययन-पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है लेकिन किस सर्वेक्षण में किस पद्धति का प्रयोग किया जायेगा, यह अध्ययन की प्रकृति क्षेत्र, उपलब्ध धन एवं समय पर निर्भर करता है । साक्षात्कार, अवलोकन, अनुसूची एवं प्रश्नावली आदि किसी भी पद्धति का चयन अध्ययन की आवश्यकता के अनुसार किया जाना चाहिए लेकिन ऐसी अध्ययन-पद्धति का चयन किया जाना चाहिए जिसके द्वारा थोड़े-से धन एवं प्रयास से अधिक सूचनाएँ प्राप्त हो सकें ।

   अध्ययन-पद्धति के चयन के साथ-साथ अध्ययन-उपकरणों व प्रपत्रों का निर्माण करना भी आवश्यक हो जाता है । तथ्यों का संकलन अनुसूची एवं प्रश्नावली के माध्यम में करना हो तो उनका निर्माण करना आवश्यक होता है, इसी प्रकार साक्षात्कार करने के लिए साक्षात्कार निर्देशिका बनानी होती है । इनके निर्माण में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इनका निर्माण वैज्ञानिक ढंग से व सावधानीपूर्वक किया जाए जिससे तथ्य-संकलन का कार्य उचित चरणों पर किया जा सके ।

10. **कार्यकर्ताओं का चुनाव व प्रशिक्षण—** सर्वेक्षण-कार्य में अनेक कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होती है । सर्वेक्षण-कार्य की सफलता बहुत कुछ इन कार्यकर्त्ताओं की ईमानदारी, योग्यता, लगन व परिश्रम आदि पर निर्भर करती है । कार्यकर्त्ताओं को अध्ययन-क्षेत्र में जाकर सूचनाओं को एकत्र करने के लिए धैर्य, एवं कुशलता की भी आवश्यकता होती है अत: ऐसे कार्यकर्त्ताओं का चुनाव किया जाना चाहिए जिनमें ये गुण विद्यमान हों । कार्यकर्त्ताओं के चयन के बाद उनको प्रशिक्षित करना आवश्यक होता है क्योंकि कार्यकर्त्ता ही सूचना व आँकड़ों को एकत्रित करते हैं,

उनका सम्पादन, वर्गीकरण, सारणीयन तथा विश्लेषण करते हैं। अत: इस कार्य के लिए उनमें योग्यता से प्रशिक्षण करना चाहिए जिससे सर्वेक्षण की यथार्थता बनी रहे ।

NOTES

11. **सर्वेक्षण का संगठन—** सर्वेक्षण-कार्य को सुचारु रूपेण संचालित करने के लिए एक उचित संगठन की आवश्यकता होती है । एक बड़े सर्वेक्षण में एक केन्द्रीय कार्यालय स्थापित किया जाता है, जहाँ सर्वेक्षण सम्बन्धी नीति का निर्धारण होता है व सर्वेक्षण-कार्य का संचालन किया जाता है । सर्वेक्षण में विभिन्न प्रकार के कार्यकत्ताओं की सहायता लेनी पड़ती है जिनमें लिपिक से लेकर सारणीयन व विश्लेषणकर्त्ता तक सम्मिलित रहते हैं । इन सबका समुचित संगठन करना सर्वेक्षण की सफलता के लिए अनिवार्य होता है ।

सर्वेक्षण-कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ाने के लिए एक सर्वेक्षण-समिति का भी निर्माण किया जाता है जो सर्वेक्षण-कार्य के विभिन्न हितों का निर्धारण, संचालन एवं नियन्त्रण करती है। इस समिति का कार्य सम्बन्धित विभागों अथवा सरकार से आवश्यक सूचनाएँ, आर्थिक सहायता आदि प्राप्त करना तथा सर्वेक्षण-कार्य को प्रारम्भ से अन्त तक सुसंचालित करना होता है। इस समिति में एक सर्वेक्षण-निदेशक एक प्रमुख सर्वेक्षण तथा कुछ विभागीय प्रतिनिधि होते हैं। सर्वेक्षण-कार्य को भलीभाँति चलाने के लिए भिन्न-भिन्न उपसमितियाँ बनी होती हैं जिनमें सर्वेक्षण-कार्य के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया जाता है और कार्यक्रम को अन्तिम रूप दिया जाता है।

12. **पूर्व-परीक्षा एवं पूर्वगामी सर्वेक्षण—** सर्वेक्षण-कार्य में अधिकाधिक शुद्धता व सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उपकरणों की उपयुक्तता और कार्यकर्त्ताओं की योग्यता व सामर्थ्य की परीक्षा वास्तविक सर्वेक्षण-कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व ही की जाए जिससे आगे चलकर व बीच में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े । इस कार्य के लिए दो साधन हैं- (1) पूर्व-परीक्षण तथा (2)पूर्वगामी सर्वेक्षण ।

पूर्व-परीक्षण से इस बात की जानकारी होती है कि जिन अध्ययन उपकरणों का प्रयोग सर्वेक्षण-कार्य में किया जा रहा है, वास्तविक स्तर पर वे कितने उपयोगी है? अध्ययन-पद्धति में और कौन-कौन से सुधार किए जा सकते हैं अथवा अन्य कौनसी नई प्रविधियों का प्रयोग हमारे लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है? उसी भाँति पूर्वगामी सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन के समय आने वाली कठिनाइयों का अनुमान हो जाता है, निदर्शनों के चुनाव में सहायता मिलती है, सूचना के प्रकार तथा स्रोत का अनुमान हो जाता है, निदर्शनों के चुनाव में सहायता मिलती है, सूचना के प्रकार तथा स्रोत का अनुमान हो जाता है तथा अध्ययन की अवधि, आय-व्यय एवं अध्ययन विषय की सामान्य विशेषता का अनुमान लगाया जा सकता है ।

पूर्व-परीक्षण—बड़े स्तरीय सामाजिक सर्वेक्षणों में पूर्व-परीक्षण का अयोजन भी पूर्वगामी अध्ययन के समान ही इन सर्वेक्षणों की सफलता का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है । सभी बड़े-बड़े सर्वेक्षणों में, जहाँ अन्तिम अध्ययन-पद्धति अधिक महत्वपूर्ण होती है , पूर्व-परीक्षण की आवश्यकता होती है जिससे सर्वेक्षणाकर्त्ता अपने अध्ययन-यन्त्रों का पूर्व-परीक्षण कर सके और उनके दोषों का पता सके । एकाफ के अनुसार, ''पूर्व-परीक्षण विभिन्न अनुसन्धान-पक्षों,

NOTES

यन्त्रों अथवा योजनाओं के विकल्पों का नियन्त्रित अध्ययन है जिससे यह तय किया जा सके कि कौनसा विकल्प सर्वाधिक कुशल है।''

किसी बहुत बड़े क्षेत्र में अध्ययन करने के लिए सम्पूर्ण सर्वेक्षण न करके एक छोटे क्षेत्र में ही अपने यन्त्रों तथा पद्धतियों को पहले जाँच लिया जाता है। इसके लिए बड़े निदर्शन में से भी एक छोटा अथवा उपनिदर्शन छाँट लिया जाता है, जो बड़े निदर्शन के गुणों का यथासम्भव पूर्ण प्रतिनिधित्व कर सके। यदि इस जाँच के परिणामस्वरूप सर्वेक्षण की रूपरेखा अथवा यन्त्रों में अधिक संशोधन करना आवश्यक हो, तो ऐसे संशोधन की पुन: परीक्षा आवश्यक होती है। यदि अनेक विकल्पों में से किसी को पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से बदलना हो तो उसकी उपयुक्तता की भी पूर्व-जाँच करनी होगी।

इस प्रकार अध्ययन-यन्त्रों की परिशुद्धता अथवा उपयुक्तता की जाँच, उनके प्रयोग के पूर्व करना ही अत्यन्त आवश्यक होता है। साक्षात्कार के दौरान पूछे जाने वाले अथवा बाहर जाने वाली प्रश्नावलियों के प्रश्नों की पूर्व-जाँच में प्राय: इनका प्रयोग किया जाता है। एकाफ के अनुसार, ''पूर्व-परीक्षण एक ऐसी व्यवस्थित विधि है, जो अनुसन्धान की आयोजित रूपरेखा की आधारभूत एवं मौलिक जानकारी प्रदान करने की क्षमता रखती है।''

पूर्वगामी अध्ययन तथा सर्वेक्षण (Pilot Studies or Survey) – किसी विशाल कार्यक्रम को प्रारम्भ करने से पूर्व उसमें प्राप्त हो सकने वाली सफलता की जाँच कर लेना आवश्यक होता है उसके लिए पूर्वगामी सर्वेक्षण उपयुक्त विधि है। 'पूर्वगामी' अर्थात् 'आगे चलने वाला' अथवा 'मार्गदर्शक' शब्द अंग्रेजी के 'Pilot' शब्द का ही रूपान्तर है जिसका भी अर्थ आगे चलने वाला ही है। जैसे किसी बड़े उच्चाधिकारी के आगे विशेष पुलिस या फौज के व्यक्ति पाइलट बनकर चलते हैं उसी भाँति सामाजिक अध्ययनों में भी पूर्वगामी अध्ययन का कार्य मुख्य सर्वेक्षण अथवा अध्ययन की सफलता की पूर्व जाँच अथवा पूर्वानुमान कर लेना है। मोजर ने पूर्वगामी अध्ययन को मुख्य अध्ययन का एक छोटा रूप बताया है। भारत में सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों में इटावा का 'पाइलट प्रोजेक्ट' प्रसिद्ध है क्योंकि यह आग्रगामी योजना के रूप में एक प्रयोगात्मक कार्यक्रम था, जिसके सफल होने के पश्चात ही अन्य सामुदायिक कार्यक्रम किए गए थे।

किसी भी बड़े सर्वेक्षण को आयोजित करने के पूर्व एक लघुस्तरीय सर्वेक्षण आयोजित कर लेना ठीक रहता है जिससे किसी बड़े सर्वेक्षण की विषय-सामग्री, उसमें सम्मिलित जनसंख्या प्रश्नों के प्रति सूचनादाताओं की प्रतिक्रिया व उनके सम्भावित उत्तर, सर्वेक्षण का अनुमानित समय, साक्षात्कारकर्त्ताओं की संख्या, धन आदि की भलीभाँति जानकारी हो सके। पूर्वगामी सर्वेक्षण की उपयोगिता बड़े सामाजिक सर्वेक्षणों में इसी कारण अत्यधिक है। जैसे—यदि विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सभी कॉलेज के छात्र-छात्राओं का पहले ही सर्वेक्षण कर लिया जाएगा तब मुख्य सर्वेक्षण प्रारम्भ किया जायेगा। ऐसी स्थिति में छोटे स्तर का अध्ययन ही 'पूर्वगामी अध्ययन' होगा।

जॉन मैज के अनुसार, ''पूर्वगामी सर्वेक्षण का मुख्य सर्वेक्षण से बिल्कुल भिन्न प्रयोजन होता है। ये सर्वेक्षण मुख्यतया प्रश्न पूछने तथा उनके उत्तरों के उल्लेख की विधियों के अभ्यास-रूप में आयोजित किए जाने चाहिए ।

NOTES

13. समाज को तैयार करना— सर्वेक्षण से सम्बन्धित वास्तविक तथ्य एक समाज में रहने वाले लोगों से प्राप्त होते हैं। अत: सूचना लेने के लिए यह आवश्यक है कि उस समाज में रहने वाले लोगों को मानसिक रूप से तैयार किया जाए जिससे वे लोग सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित गुप्त तथ्यों को उद्घाटित कर सकें। प्राय: समाज के लोग एक अपरिचित को सूचना देने में संकोच का अनुभव करते हैं अत: इस संकोच को दूर करके उनमें विश्वास की भावना जाग्रत करना सर्वेक्षण की सफलता के लिए आवश्यक है। इसके लिए वास्तविक कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व समाचार-पत्रों, सिनेमा, प्रदर्शनी, सार्वजनिक सभा आदि के माध्यम से समुदाय में सर्वेक्षण के अनुकूल वातावरण बनाया जाना चाहिए। इसके साथ ही क्षेत्रीय नेताओं व अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों से मिलकर उन्हें सर्वेक्षण के उद्देश्यों से अवगत करा देना चाहिए जिससे सर्वेक्षण की सफलता सूचनादाताओं के सहयोग पर ही निर्भर होती है, इस सत्य को विस्मृत न करना चाहिए।

14. तथ्यों का संकलन— समुदाय को सर्वेक्षण कार्य के लिए तैयार करने के पश्चात वास्तविक सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ होता है। इस स्तर पर प्रथम कार्य, तथ्यों का संकलन करना है । तथ्य-संकलन प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, अवलोकन आदि विधियों द्वारा किया जाता है। सर्वेक्षणकर्त्ता को सही सूचना; प्राप्त हो, इसके लिए सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक है जिससे वे लोग सही तथ्यों को निष्पक्ष भाव से व्यक्त करते रहें। साथ ही सर्वेक्षक को समय-समय पर सूचनादाताओं पर इस प्रकार का रचनात्मक दबाव डालना चाहिए जिससे उनकी विश्वसनीयता की परीक्षा भी स्वत: ही हो सके। सर्वेक्षणकर्त्ताओं का कर्त्तव्य है कि वे प्राथमिक तथ्यों को एकत्र करने के साथ-साथ द्वैतीयक तथ्य, जैसे-सरकारी, गैर-सरकारी, व्यक्तिगत, प्रकाशित, अप्रकाशित पुस्तकों, रिकॉर्डों, डायरियों आदि से भी तथ्यों का संकलन करें ।

15. तथ्यों का सम्पादन— तथ्य संकलन के पश्चात तथ्यों का सम्पादन किया जाता है। सम्पादन से अभिप्राय एकत्रित तथ्यों व सूचनाओं का निरीक्षण कर उनमें पाई जाने वाली कमियों को पूरा करना, गलतियों को सुधारना एवं सभी तथ्य को क्रमबद्ध करना होता है । अर्थात इस स्तर पर सर्वेक्षणकर्त्ता तथ्यों की जाँच करता है, उनमें पाई वाली कमियों को पूर्ण करके अनावश्यक सूचनाओं को निकाल देते हैं और शेष सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप से जमा लेता है। सूचनादाता द्वारा प्राप्त उत्तरों को सार्थक श्रेणियों में विभाजित करने की प्रक्रिया को ही संकेतन कहा जाता है। सम्पादन कार्य के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किया जा सकता है-

(i) सूचनाओं को व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप में लगाना— सम्पादक का कार्य सूचनाओं को क्रम में लगाना है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि स्रोतों से सूचना आनी बाकी है । (ii) इसके बाद उत्तरों की जाँच की जाती है जिससे प्रश्नों के उत्तरों की जाँच, जोड़-बाकी का सही देखना, उचित खाने में सही उत्तर का लिखना, अंकों का क्रय सही है अथवा नहीं आदि का पता लगाया जाता है । (iii) इस क्रम में तीसरा कार्य अनावश्यक तथ्यों को हटा देने का होता है-जिससे अवांछित सामग्री का प्रवेश न हो सके । (iv) उसके बाद कोड नम्बर डालने का कार्य किया जाता है । इसके अन्तर्गत एक ही प्रश्न के चार-पाँच अथवा अधिक सम्भावित उत्तरों को क्रमश: 1,2,3,4 आदि संख्याओं में व्यक्त कर दिया जाता है । इस प्रकार सम्पादन कार्य का निर्धारण पहले से ही कर लेना उत्तम रहता हैं । इससे वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त करने में सुविधा रहती है ।

16. **तथ्यों का सारणीयन एवं विश्लेषण—** तथ्य-संकलन के पश्चात उनका सारणीयन एवं विश्लेषण किया जाता है। एकत्रित किए गए तथ्यों को समानता व भिन्नता के आधार पर कुछ निश्चित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है । इससे तथ्यों का आकार छोटा हो जाता है और समस्त तथ्य कुछ निश्चित श्रेणियों में विभाजित हो जाते हैं। उसके पश्चात् विभिन्न घटनाओं, दशाओं के बीच सहसम्बन्ध ज्ञात किया जाता है, कार्य-कारण सम्बन्धों को देखा जाता है तथा इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है कि किसी विशेष दशा अथवा घटना के लिए कौन से कारक उत्तरदायी हैं, अर्थात् इसी स्तर पर तथ्यों का सारणीयन किया जाता है । विभाजित तथ्यों को व परिणामों को संख्यात्मक तालिकाओं के रूप में संक्षिप्त करना ही सारणीयन है, जिसका उद्देश्य तथ्यों की तुलना तथा सम्बन्ध का ज्ञान करना होता है। सारणीयन के बाद तथ्यों की तुलना, उनका सहसम्बन्ध देखा जाता है तथा इस बात की विवेचना की जाती है कि किसी विशेष निष्कर्ष के लिए कौनसा कारण उत्तरदायी है इससे वैज्ञानिक निष्कर्ष व सामान्यीकरण किया जा सकता है ।

17. **प्रतिवेदन का निर्माण एवं प्रकाशन—** सर्वेक्षण-प्रक्रिया का अन्तिम चरण प्रतिवेदन का निर्माण करना व प्रकाशन करना है । सर्वेक्षण से प्राप्त सूचनाओं तथा उनके विश्लेषण पर आधारित निष्कर्षों को प्रतिवेदन के रूप में प्रकाशित किया जाता है जिससे सम्बन्धित व्यक्तियों को उसके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। प्रतिवेदन लिखते समय भाषा, विचारों की स्पष्टता, सरलता तथा शुद्धता का पूरा ध्यान रखना आवश्यक होता है। साथ ही सर्वेक्षणकर्त्ता को प्रतिवेदन में अपने व्यावहारिक, व्यवस्थित क्रम से प्रदर्शित करना चाहिए जिससे उसे बढ़कर सभी स्थितियों से भलीभाँति ज्ञान हो सके।

निष्कर्ष— सर्वेक्षण-कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व ही उपर्युक्त वर्णित प्रत्येक चरण की पूर्व-योजना बना लेनी चाहिए जिससे सर्वेक्षण-कार्य त्रुटिराहित, व्यावहारिक व सुविधाजनक रूप से सम्पन्न हो सके। योजना की कुशलता सर्वेक्षणकर्त्ता की बुद्धि, योग्यता, अनुभव व दूरदर्शिता पर निर्भर करती है। जितना योग्य एवं अनुभवी सर्वेक्षणकर्त्ता की बुद्धि, योग्यता, अनुभव व दूरदर्शिता पर निर्भर करती है। जितना योग्य एवं अनुभवी सर्वेक्षणकर्त्ता होगा, सर्वेक्षण कार्य भी उतना ही अधिक व्यवस्थित व क्रमबद्ध होगा। योजना बन जाने के बाद भी आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन किया जा सकता है अत: योजना लचीली हो जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। अत: कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है ।

सामाजिक अनुसन्धान एवं सामाजिक-सर्वेक्षण (Social Research and Social Survey)

सामाजिक अनुसन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण के अर्थ, उनकी प्रकृति, उनके उद्देश्य, उनकी विषय-सामग्री एवं पद्धतियों के स्पष्टीकरण के पश्चात यह देखना शेष है कि सामाजिक अनुसन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण-दोनों में क्या-क्या विशेषताएँ हैं और क्या-क्या अन्तर हैं? सामाजिक अनुसन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण की प्रणालियों एवं उद्देश्यों में पर्याप्त समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु फिर भी अनेक पहलुओं पर उनमें भिन्नता दिखाई देती है जिन्हें निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है ।

सामाजिक अनुसन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर

क्र.स.	आधार	सामाजिक अनुसन्धान	सामाजिक सर्वेक्षण
1.	वैज्ञानिक पद्धतियों एवं प्रणालियों का प्रयोग	सामाजिक अनुसन्धान में वैज्ञानिक प्रणाली के समस्त स्तरों एवं पहलुओं का उपयोग होता है, जैसे-प्राक्कल्पनाओं का निर्माण, अवलोकन, तथ्यों का संग्रहण, संगृहीन तथ्यों का वर्गीकरण व सामान्यीकरण आदि।	सामाजिक सर्वेक्षण में वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है लेकिन ऐसा उस समय होता है, जब सर्वेक्षणकर्त्ता अपने कार्य को पक्ष-पातरहित होकर, व्यवस्थित रूप से संगठित करता है। सामग्री का अवलोकन, वर्गीकरण व उनकी जाँच करता है।
2.	उपकल्पनाओं का निर्माण	इसमें सामाजिक घटना व वस्तु के बारे में उपकल्पना का निर्माण किया जाता है।	सामाजिक सर्वेक्षण में सामाजिक घटनाओं के विषय में किसी प्रकार की उपकल्पना का निर्माण नहीं किया जाता।
3.	भौगोलिक क्षेत्र	सामाजिक अनुसन्धान का सम्बन्ध अमूर्त समस्याओं से होता है, जो सामान्य प्रकृति की है।	सामाजिक सर्वेक्षण का सम्बन्ध किसी एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र से होता है।
4.	सामान्यीकरण	इसमें सामाजिक प्रक्रियाओं, प्रतिमानों व सामाजिक घटनाओं की समता व विषमता के लिए नये सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान का सम्बन्ध सम्पूर्ण जगत से है।	इसमें सामाजिक प्रक्रियाओं व घटनाओं एवं प्रतिमानों की समता एवं विषमता के विश्लेषण के लिए किसी प्रकार के सिद्धान्तों का निर्माण नहीं किया जाता है। अत: इसका क्षेत्र सीमित है।
5.	उद्देश्य	सामाजिक शोध नवीन ज्ञान-प्राप्ति, सामान्य ज्ञान को विकसित करने, संशोधन करने एवं उसका परिमार्जन करने के उद्देश्य से की जाती है। अर्थात् नवीन तथ्यों की खोज करना ही उद्देश्य है।	सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य समाज -सुधार व समाज-कल्याण है, अर्थात् समस्या के समाधान, निदान अथवा नीति-निर्माण के उद्देश्य से किया जाता है।
6.	विषय-वस्तु	सामाजिक शोध का विषय मानव का सामाजिक जीवन, व्यवहार, प्रत्येक प्रकार की सामाजिक	सामाजिक सर्वेक्षण का सम्बन्ध विशिष्ट लोगों, स्थानों, समस्याओं एवं परिस्थितियों से होने के कारण

NOTES

		घटना अथवा प्रक्रिया से सम्बन्धित हो सकता है। अत: इसका विषय विस्तृत है।	इसकी विषय-वस्तु सीमित होती है।
7.	प्रयोजन	सामाजिक शोध का मुख्य प्रयोजन 'ज्ञान के लिए ज्ञान' होता है। अर्थात् यह मानव के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान को विस्तृत करने तथा अध्ययन -विधियों को परिष्कृत करने के प्रयोजन से की जाती है।	सामाजिक सर्वेक्षण उपयोगितावादी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों को लेकर किए जाते हैं। तात्कालिक महत्त्व की समस्याएँ अथवा स्थान विशेष के लोगों की समस्याएँ इसके लिए उपयुक्त मानी
8.	प्रकृति	सामाजिक शोध की प्रकृति गहन एवं सूक्ष्म होती है। इसमें सामाजिक घटनाओं का बारीकी से अध्ययन किया जाता है।	सामाजिक सर्वेक्षण घटना की गहराई में नहीं जाता, अत: संकलित तथ्यों में सूक्ष्मता का अभाव पाया जाता है।
9.	गवेषण	सामाजिक शोध किसी प्राक्कल्पना से प्रारम्भ होता है और प्राक्कल्पना की पुष्टि के लिए आर्थिक तथ्यों का संकलन किया जाता है।	सर्वेक्षण के लिए प्राक्कल्पना का होना आवश्यक नहीं है। ये तो तथ्यों के विद्यमान भण्डार में वृद्धि के उद्देश्य से किए जाते हैं।
10.	संगठन	अनुसन्धान प्राय: व्यक्तिगत रूप से आयोजित किए जाते हैं क्योंकि इनका उद्देश्य व्यक्तिगत जिज्ञासा तथा ज्ञान-पिपासा को शान्त करना ही होता है।	सामाजिक सर्वेक्षण का संगठन एक अध्ययन दल द्वारा होता है। यह एक सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें एक निदेशक के अधीन अनेक विषय-विशेषज्ञ होते हैं।
11.	तकनीक	सामाजिक शोध में नियन्त्रित प्रयोगों से लेकर सभी क्षेत्र विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्राथमिक व द्वैतीयक दोनों स्रोतों से सामग्री संकलित की जाती है।	इसमें प्रश्नावली, अनुसूची व साक्षात्कार विधियों द्वारा तथ्य संकलित किए जाते हैं। प्रलेखीय सामग्री व दस्तावेज आदि का प्रयोग नहीं किया जाता है।
12.	सम्पूर्णता एवं अंश	अनुसंधान एक सम्पूर्णता है।	सर्वेक्षण उसका अंश है।

सामाजिक अनुसन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण में समानता

सामाजिक अनुसन्धान एवं सामाजिक सर्वेक्षण के बीच प्राप्त विभिन्नताओं के पश्चात दोनों में कुछ समानताएँ भी हैं जिनके कारण इन्हें मिला-जुला नाम 'सर्वेक्षण-अनुसन्धान' (Survey-Research) दिया जाने लगा है । वे समानताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) सामाजिक सर्वेक्षण एवं सामाजिक अनुसन्धान-दोनों ही सामाजिक प्रघटनाओं का अध्ययन करते हैं ।

(2) दोनों में ही वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है ।

(3) दोनों में सामाजिक व्यवहार और उसकी वास्तविकता को समझने का प्रयास किया जाता है जिससे सामाजिक जीवन पर नियन्त्रण किया जा सके ।

(4) सामाजिक सर्वेक्षण एवं सामाजिक शोध-दोनों ही सामाजिक शोध-दोनों ही सामाजिक तथ्यों की खोज करते हैं ।

(5) अध्ययन प्रविधियों की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त समानता है ।

(6) अध्ययन-पद्धति के अन्तर्गत दोनों में ही कार्य-कारण सम्बन्ध, प्राक्कल्पना, सामान्यीकरण आदि वैज्ञानिक सोपानों का प्रयोग किया जाता है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध एवं सामाजिक शोध एवं सामाजिक सर्वेक्षण-दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं । सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक तथ्यों का संकलन करता है, उन तथ्यों के आधार पर घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्धों को खोजता है, सामाजिक सिद्धान्तों की पुन: परीक्षा करता है- ये सभी सामाजिक शोध के महत्वपूर्ण व आवश्यक अंग हैं, जिनके बिना सामाजिक शोध असम्भव है । सामाजिक शोधकर्त्ता अपनी प्राक्कल्पनाओं की सत्यता की जाँच सामाजिक सर्वेक्षण की सहायता से ही करता है ।

इसी प्रकार सामाजिक शोध-तथ्य-संकलन की अनेक नवीन प्रविधियों को खोजता है और सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान का विस्तार करता है । ये दोनों ही सामाजिक सर्वेक्षण के लिए सहायक स्थितियाँ हैं । अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक सर्वेक्षण एवं सामाजिक शोध परस्पर घनिष्ठता सम्बन्धित एवं परस्पर अन्योन्याश्रित हैं ।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

1. सामाजिक सर्वेक्षण के तीन उप-प्रकारों वाले वर्गीकरण को समझाइए ।
2. सामाजिक सर्वेक्षण के प्रमुख चरणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए ।
3. पूर्वगामी अध्ययन अथवा सर्वेक्षण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए ।

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. सामाजिक सर्वेक्षण के द्वि-उप-प्रकारों वाले वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए ।
2. सामाजिक अनुसंन्धान तथा सर्वेक्षण में अन्तर बताइए ।
3. सामाजिक अनुसंन्धान तथा सर्वेक्षण में क्या समानता है? स्पष्ट कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

NOTES

1. सामाजिक सर्वेक्षण के तीन उप–प्रकार है –

(अ) आयोजक (ब) विधियाँ

(स) उद्देश्य (द) ये सभी

2. ''एक सामाजिक सर्वेक्षण का आयोजन तकनीकी तथा संगठनात्मक निर्णयों का समन्वय है।'' यह कथन किसका है ।

(अ) मोजर (ब) केबिन

(स) स्पेंन्सर (द) बोगार्डस

3. किसी समस्या के कारणों को जानने के लिए किया जाने वाला सर्वेक्षण होता है–

(अ) मूल्यांकनात्मक (ब) सामान्य

(स) निदानात्मक (द) विशिष्ट

4. आयोजकों के आधार पर सर्वेक्षण होते हैं–

(अ) सरकारी (ब) अर्द्ध सरकारी

(स) गैर–सरकारी (द) ये सभी

उत्तर– (1) द (2) अ (3) स (4) द

8 प्रतिदर्श

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- समष्टि, प्रतिदर्श एवं इकाई ।
- समष्टि ।
- प्रतिदर्श ।
- प्रतिदर्श इकाई ।
- प्राचलन आकलन तथा प्रतिदर्श चयन त्रुटि ।
- प्रतिदर्श चयन की विधियाँ ।
- निर्णयाधारित प्रतिदर्श चयन ।
- प्रायकिता प्रतिदर्श चयन: यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन ।
- यादृच्छिक प्रतिदर्श का आकार ।
- प्रतिदर्श चयन वितरण ।
- यादृच्छिक प्रतिदर्श के मध्यमानों का प्रतिदर्श चयन वितरण ।

प्राक्कथन

यहाँ अनुसंधान क्षेत्र में प्रवेश करने वाले छात्रों के समक्ष कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। समष्टि किसे कहते हैं? समष्टि की परिभाषा और किसी समष्टि की सीमा का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? प्रतिदर्श किसे कहते हैं? प्रतिदर्श का चयन किस विधि से किया जाता है? प्रतिदर्श में सम्मिलित होने वाली इकाइयाँ क्या हैं? उनकी पहचान कैसे की जाती है? किसी भी प्रतिदर्श में कम से कम कितनी इकाइयों को सम्मिलित होना आवश्यक है? प्रतिदर्श से प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर किस प्रकार के तर्क का सहारा लेकर सम्बन्धित विषय की समष्टि के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से अनुमान किया जाता है। विस्तार के साथ इन प्रश्नों का विवेचन करना आवश्यक है। प्रतिदर्श और प्रतिदर्श-चयन के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अथवा अनुप्रयुक्त पक्षों का परिचय प्राप्त किये बिना सामाजिक विज्ञानों में इंद्रियानुभविक अनुसंधान करना असम्भव है। इनकी पूर्ण जानकारी होने पर ही अनुसंधानकर्त्ता अनुसंधान के लिए प्रतिदर्श चयन कर सकता है और उपयुक्त अभिकल्प (design) का निर्माण कर तथ्य संग्रह और उसका विश्लेषण करने में समर्थ हो सकता है। साथ ही साथ इन प्रश्नों की पूरी जानकारी होने के बाद ही प्रतिदर्शों से प्राप्त तथ्यों में नवीनता दिखायी पड़ने पर अनुसन्धानकर्त्ता में आह्लादित और उत्साहित होने की प्रवृत्ति जागृत होती है। इस अध्याय में इन्हीं प्रश्नों का विवचेन किया गया है।

समष्टि, प्रतिदर्श एवं इकाई (Universe, Sample and Unit)

अनुसंधान में समष्टि, प्रतिदर्श और इकाई अपने अर्थ में स्पष्ट होते हुए भी, अनुसंधान पद्धति के तकनीकी पद होने के कारण विशेष अर्थ वाले हो जाते हैं । इसलिए इनके स्वरूप और इनकी सभी विशेषताओं की जानकारी आवश्यक है ।

समष्टि (Universe)

अनुसन्धान पद्धति में समष्टि और जनसंख्या शब्द एक-दूसरे के पर्याय की तरह उपयोग में लाये जाते हैं। समष्टि को वस्तुओं, व्यक्तियों या घटनाओं के उस साकल्य को कहा जाता है जिसके सम्बन्ध में, उसके कुछ व्यक्तियों, घटनाओं अथवा पदार्थों को प्रतिदर्श के रूप में लेकर तथ्य संग्रह किया जाता है और उन तथ्यों के आधार पर उस सम्पूर्ण संघात के बारे में अनुमान लगाया जाता है । पद्धति-विज्ञान में किसी भी गोचर के आधार पर किसी समष्टि को पहचानना और परिभाषित किया जा सकता है । उदाहरण के लिए यहाँ अनेक प्रकार की समष्टियों का उल्लेख किया जा सकता है । जैसे, उत्तर प्रदेश के आवासीय विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले पूर्वस्नातक छात्र, बंगाल की जूट मिलों में काम करने वाले श्रमिक, सरकारी दफ्तरों में नौकरी करने वाले छात्र या उसमें पढ़ने वाले अध्यापक, भारतवर्ष के सभी मतदाता, आदि इन उदाहरणों में जिन समष्टियों का उल्लेख किया गया है उनमें कुछ व्यक्ति-समूहों को ही समष्टि जनसंख्या के रूप में लिया गया है; लेकिन पद्धति-विज्ञान की भाषा में समष्टि किसी प्रकार के लोगों की समष्टि तक ही सीमित नहीं है । वस्तुत: किसी भी उल्लेखनीय गुण-धर्म या एक से अधिक गुण-धर्मों को लेकर ही विभिन्न समष्टियों को अलग किया गया है। समष्टि को परिभाषित करने के लिए परिवारों को लिया जा सकता है। जैसे भारतवर्ष के हरिजन परिवार, मातोविहीन परिवार, प्रति मास 2,000 रु. से ऊपर आय वाले परिवार अथवा अन्तर्जातीय विवाह वाले परिवार

समष्टि को घटनाओं की विशेषताओं के द्वारा भी अलग किया जा सकता है। जैसे उत्तर प्रदेश में गत दस वर्षों में हुई अपराधों की समष्टि, विश्वविद्यालयों या विद्यालयों का अनिश्चित काल तक बन्द करने की घटनाओं की समष्टि। इसी प्रकार लोगों अथवा किन्हीं प्रकार के जीवित प्राणियों के व्यवहारों की समष्टि का भी सम्भव सप्रत्ययन किया जा सकता है । वस्तु: किसी भी प्रकार के पृथक्करणीय गुण धर्म से युक्त व्यक्तियों, घटनाओं, पदार्थों एवं व्यवहारों की समष्टियों की कल्पना की जा सकती है । गुण-धर्म वह विशेषता है जो समष्टि के किसी सदस्य को सदस्यताविहीन लोगों, पदार्थों, घटनाओं अथवा क्रियाओं से पृथक करता है।

समष्टि और जनसंख्या शब्दों का उपयोग पद्धति विज्ञान में समानार्थी शब्दों के रूप में किया जाता है। प्राय: जब व्यक्तियों की जनसंख्या को परिभाषित किया जाता है तो उसे आयु-लिंग, शिक्षा, आर्थिक-सामजिक संख्यिति की परिभाषित करने वाले गुण-धर्म के रूप में लिया जाता है। पशुओं की समष्टियों का निर्धारण उनकी प्रजाति, आयु, नस्ल, अनुभव, अनुकूल प्रक्रिया पूर्वानुभव जैसे गुण-धर्मों में से किसी एक के आधार पर किया जाता है। वस्तुत: सामाजिक विज्ञानों में अलग किये जा सकने वाले किसी भी चर को एक समष्टि के रूप में माना जा सकता है । समष्टियों का निर्माण किन्हीं इकाइयों को एक साथ लेने से होता है। समष्टि को परिभाषित करने वाले गुण-धर्म की कोई निश्चित मात्रा प्रत्येक इकाई या तत्व में पायी जाती है। ये इकाइयाँ या तत्व के सदस्य मात्रात्मक रीति -दूसरे से भिन्न हो सकते हैं।

चाहे जिस प्रकार की समष्टि हो, समष्टियाँ परिमित या अपरिमित होती हैं, वैसे, संक्रियात्मक स्तर पर, अथवा यथार्थ में, सभी समष्टियों को परिमित माना जाता है। उदाहरण के लिए, जब हम मानव समष्टि को लेते हैं तो सभी देशों में रहने वाले लोगों की संख्या चाहे कितनी भी बड़ी हो निर्धारणीय होने के कारण यथार्थ के स्तर पर परिमित हो जाती है। मानव समष्टि को परिकल्पनात्मक स्तर पर अपरिमित माना जा सकता है क्योंकि किसी भी समय की गयी गणना में अशुद्धि होती रहती है और इस प्रकार वह अपरिमित बनी रहती है । इस प्रकार की अपरिमित समष्टियों को इंद्रियानुभविक समष्टियों के रूप में संप्रत्यायित किया जाता है। जैसे- मनुष्य की वृद्धि लब्धि की समष्टि को लिया जा सकता है। परिकल्पनात्मक स्तर पर इस समष्टि में अपरिमित संख्या में वृद्धिलाब्दियाँ निहित हैं, लेकिन बुद्धि के गुणधर्म के आधार पर परिभाषित की जाने वाली बुद्धि-लब्धि की समष्टि की सभी सम्भव इकाइयों को प्राकृत प्रायिकता के सैद्धान्तिक वितरण के रूप में लेकर इसे इंद्रियानुभविक समष्टि के रूप में ग्रहण किया जाता है।

जहाँ तक अनुसंधानकर्त्ता का सम्बन्ध है, समष्टि को वह अपने ढंग से परिभाषित कर सकता है। अगर वह चाहे तो किसी एक विश्वविद्यालय के छात्रावासों में रहने वाले छात्रों को समष्टि के रूप में ले सकता है और इससे प्रतिदर्श लेकर इसका वर्णनात्मक अध्ययन कर सकता है लेकिन ज्यों ही उसके अनुसन्धान का उद्देश्य व्याख्यात्मक हो जाता है और त्यों ही वह आवासीय, विश्वविद्यालय के छात्रों के किसी व्यवहार के वारे में सामान्य नियमों को ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है, उसके अनुसन्धान में अगमनात्मक तर्कना का प्रवेश हो जाता है और इस समष्टि को उपयुक्त नहीं माना जा सकता। वस्तु: व्यावहारिक स्तर पर सम्भव जितनी भी समष्टियाँ ली जाती हैं उनसे प्रतिदर्शन लेकर अनुसन्धान करने पर इस प्रकार की व्याख्यात्मक कठिनाई उपस्थित होती है । इसलिए सामाजिक विज्ञानों में अनुसन्धान

NOTES

के लिए आवश्यक है कि इस तरह ली गयी समष्टियों से ग्रहण किये गये प्रतिदर्शों के आधार पर प्राप्त परिणामों को अन्तिम रूप से निर्णयात्मक न माना जाये और उन परिणामों को परिकल्पना का आधार बनाकर उसी प्रकार से परिभाषित दूसरी समष्टियों से प्रतिदर्श लेकर अनुसंधान की पुनरावृत्ति की जाए ।

प्रतिदर्श (Sample)

समष्टि कितनी भी परिमित हो व्यावहारिक स्तर पर समष्टि के सभा सदस्यों का प्रेक्षण मापन किसी अनुसन्धान में करना श्रम, समय और शक्ति के दृषिकोण से सम्भव और उपोदय नहीं है। अत: अनुसंधानकर्ता समष्टि से कुछ सदस्यों को प्रतिदर्श के रूप में ग्रहण करता है और उसी प्रतिदर्श का अध्ययन करता है। प्रतिदर्श किसी समष्टि से लिये गये व्यक्तियों, घटना अथवा अनुक्रियाओं का वह समूह है जिसका चयन समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले समूह के रूप में किया जाता है। प्रतिनधित्व का तात्पर्य यह है कि प्रतिदर्श के सदस्यों के सदस्यों में परिभाषित करने वाले गुण–धर्म का वितरण छोटे स्तर पर उसी रूप में हो, जिस रूप में गुण–धर्म का वितरण समष्टि में है। प्रतिदर्श के इसी प्रतिनिधायक विशेषता पर बल देने के लिए कहा जाता है कि प्रतिदर्श सदस्यों अथवा इकाइयों का वह उपसमूह है जिसका चयन किसी समष्टि से किसी उपयुक्त विधि द्वारा किया जाता है। यहाँ चयन करने की विधि महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी विधि की उपयुक्तता पर प्रतिदर्श का प्रतिनिधायक होना निर्भर करता है।

तार्किक स्तर पर किसी भी समष्टि से किसी प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श का चयन करना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। मान लीजिए 1980 में लोकसभा के लिए हुए चुनाव में मतदाताओं का अध्ययन करना है। मतदाताओं की समष्टि वह है जिसने जनवरी 3 तथा 6,1980 को मतदान किया। यदि दिसम्बर के द्वितीय सप्ताह में मतदाताओं की समष्टि से प्रतिदर्श लेकर उनके मतदान व्यवहार का अध्ययन किया गया तो ऐसी स्थिति में इस प्रतिदर्श को प्रतिनिधायक इसलिए नहीं माना जा सकता है कि जनवरी 3 और 6 को मत देने वाली समष्टि अपने मतदान व्यवहार सम्बन्धी गुणधर्म के आधार पर दिसम्बर वाली समष्टि से भिन्न है । तार्किक दृष्टिकोण से भिन्न होते हुए भी इंद्रियानुभविक स्तर पर यह भिन्नता जान–बूझकर रखी है ताकि दोनों में समानता का अभिग्रह लेकर एक से लिये गये प्रतिदर्श के आधार पर दूसरे के बारे में पूर्वकथन किया जा सके। यदि प्रतिदर्श के आधार पर किये गये पूर्वकथन और मतदान परिणाम में भिन्नता पायी जाती है तो यही भिन्नता दोनों समष्टियों की भिन्नता का परिचायक होती है।

जब प्रतिदर्श को समष्टि का प्रतिनिधित्वकारी लघु रूप कहा जाता है तो इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि प्रतिदर्श सर्वदा प्रतिनिधियात्मक होने का अभिप्राय यह है कि समष्टि को परिभाषित करने वाला गुण–धर्म प्रतिदर्श की इकाइयों में उसी समानुपात में उपस्थित है जिस समानुपात में वह गुण–धर्म समष्टि में प्राप्त किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, लिंग और सामाजिक–आर्थिक संस्थिति को समष्टि के गुणधर्म के रूप में लेकर प्रतिदर्श का चयन किया जा सकता है। यह स्वत: स्पष्ट है कि प्रतिदर्श में लिए जाने वाले पुरुषों और स्त्रियों का वही समानुपात होना चाहिये जिसे समानुपात में वे समष्टि में वितरित है। यदि आर्थिक–सामाजिक संस्थिति को चार–निम्नतम्

निम्नमध्यवर्गीय, उच्चवर्गीय और उच्चतम वर्गों में बाँटा जाता है तो प्रतिदर्श में चारों वर्गों से लिए जाने वाले व्यक्तियों का वही समानुपात होना चाहिए जिस समानुपात में वे समष्टि में पाये जाते हैं। यदि समष्टि में 40% निम्नवर्गीय, 25% निम्नमध्यवर्गीय और 10% उच्च वर्गीय संस्थिति के लोग पाये जाते हैं तो प्रतिदर्श में भी विभिन्न वर्गों से लिये जाने वाले लोगों के ऐसे ही समानुपात होने चाहिए। ऐसा करने पर ही किसी प्रतिदर्श को प्रतिनिधायक रूप में स्वीकारा जा सकता है।

प्रतिदर्श केवल व्यक्तियों को लेकर नहीं बल्कि घटनाओं, विभिन्न परीक्षणों व्यवहारों, प्रेक्षणों अथवा किसी भी प्रकार की इकाइयों को लेकर बनाये जाते हैं, बुद्धि, अभियोग्यता, रुचि अभिव्यक्ति या व्यक्तित्व परीक्षण में से किसी को लेकर देखें तो उसमें अनेक एकांश अथवा इकाइयाँ होती हैं । ये एकांश जीवन की समस्त स्थितियों से कुछ स्थितियों को लेकर प्रतिदर्श के रूप में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। अनुसंधान के लिए हम परीक्षणों की समष्टि से एक या दो परीक्षणों को प्रतिदर्श के रूप में लेकर उपयोग में लाते हैं । इस प्रकार यह स्वत: है कि प्रतिदर्श में कितनी इकाइयाँ हैं । प्रतिदर्श की संख्या कोई भी हो सकती है । प्रतिदर्श की संख्या जितनी होती है उसमें उतनी ही इकाइयाँ होती हैं। प्रतिदर्श की संख्या N=1 अथवा N >1 हो सकती हैं। प्रतिदर्श में इकाइयों की संख्या का निर्धारण अनेक आधारों पर किया जाता है । इन आधारों का पूर्ण ज्ञान, पद्धति ज्ञान की सामान्य जानकारी के बाद स्वयं स्पष्ट हो जाता है । यहाँ इतना ही जान लेना आवश्यक है कि प्रतिदर्श की इकाइयों की संख्या उतनी अवश्य हो जो संख्या समष्टि का प्रतिनिधायक होने के लिए आवश्यक है।

प्रतिदर्श से प्राप्त प्रद्धत्तों का स्वयं में कोई महत्व नहीं है। प्रतिदर्श प्रद्धत्त इसलिए महत्वपूर्ण है कि उनके आधार पर किसी समष्टि में पाये जाने वाले गोचरों अथवा चरों के बारे में सामान्यीकरण किया जाता है । प्रतिदर्श का चयन इसीलिए किया जाता है और चयन की विशेष प्रक्रिया का उपयोग कर उसे समष्टि का प्रतिनिधात्मक रूप दिया जाता है ताकि उसका अध्ययन कर समष्टि के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सके ।

प्रतिदर्श इकाई या तत्व (Sample units or elements)

समष्टि और प्रतिदर्श का गठन विभिन्न प्रकार की इकाइयों के मेल से होता है। समष्टि को बहुधा अनेक भागों में विभाजित किया जाता है। इनको समष्टि का भाग या वर्ग कहा जाता है। उदाहरण के लिए, किसी नगर के लोगों की समष्टि को उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के आधार पर चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रत्येक भागों में एक या एक से अधिक इकाइयाँ हो सकती हैं । ऐसी ही इकाइयों से बने मार्गों के संघात का नाम जनसंख्या या समष्टि है। सामान्य स्थितियों में प्रतिदर्श इकाई और समष्टि इकाई में अन्तर नहीं होता है, जैसे अपराधी की समष्टि में प्रत्येक अपराध समष्टि की इकाई है और यदि प्रतिदर्श का चयन इन्हीं इकाइयों को लेकर किया जाता है तो ये प्रतिदर्श की भी इकाई है। कभी-कभी जनसंख्या या समष्टि की इकाई के रूप में व्यक्ति होने पर भी समष्टि का संप्रत्ययन भागों के रूप में किया जाता है। जैसे परिवारों की समष्टि, चौथी कक्षाओं की समष्टि, गाँवों की समष्टि, विद्यालयों की समष्टि। इनमें जनसंख्या की इकाई के रूप में व्यक्तियों को न लेकर भागों को लिया गया है। प्रतिदर्शन इकाई के रूप में इन भागों को लिया जा सकता है और कभी-कभी इन भागों से प्रतिदर्श इकाई के रूप में व्यक्तियों को लिया जा सकता है ।

NOTES

सामाजिक विज्ञान के अनुसन्धानों में प्रतिदर्श इकाइयों की कुछ विशेषताओं, या अनुसन्धानों का प्रेक्षण और मापन किया जाता है । प्रेक्षण और मापन के लिए भी निश्चित इकाइयों का उपयोग किया जाता है। जैसे- बुद्धि का मापन प्रत्येक गलत उत्तर को शून्य और सही उत्तर को । अंक देकर जोड़ लिया जाता है। व्यक्ति की प्रतिक्रिया काल का मापन मिली सेकण्ड में, अधिगम का मापन प्रत्येक व्यक्ति के सहमत होने, तटस्थ रह जाने, संवेग प्रकट करने, नये विचार सुझाने जैसी अनुक्रियाओं की आवृत्ति की गणना कर दी जाती है। प्रेक्षण किये जाने वाले या मापे गये परिणामों को प्रतिदर्श की इकाइयों का लब्धांक माना जाता है। ये लब्धांक ही अनुसन्धान में प्रदत्त के नाम से जाने जाते हैं । इन्हीं लब्धांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जताा है।

प्राचलन, आकलन और प्रतिदर्श चयन त्रुटि (Parameter, Estimate and Sampling Error)

पिछली पंक्तियों में समष्टि व प्रतिदर्श इकाई के स्वरूप का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि सामाजिक विज्ञानों में प्रतिदर्श इकाई का प्रेक्षण कर प्रदत्त प्राप्त किया जाता है। प्रदत्त लब्धाकों के रूप में प्राप्त किये जाते हैं और इन्हीं प्रतिदर्श लब्धांकों के आधार पर समष्टि के सम्बन्ध में सामान्यीकरण किया जाता है । इसका अभिप्राय यह हुआ कि प्रतिदर्श की विशेषताओं का मापन कर समष्टि की विशेषताओं का अनुमान किया जाता है । इस प्रकार यह स्वत: स्पष्ट है कि अध्ययन की जाने वाली विशेषता के माप समष्टि में भी हैं और प्रतिदर्श में भी । जैसे-हम समष्टि में बुद्धि और प्रतिदर्श में बुद्धि लब्धांक प्राप्त होते हैं । इन लब्धांकों का सांख्यिकीय वर्णन करने के लिए माध्यमान, मध्यांक, बहुलांक, प्रामाणिक विचलन, चतुर्थांस विचलन इत्यादि के मान ज्ञात किये जाते हैं । इन्हीं के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि सम्बन्धित समष्टि में आने वाले सभी लोगों की बुद्धि लब्धांक का मध्यमान, मध्यांक एवं प्रामाणिक विचलन इत्यादि के क्या मान हो सकते हैं । इस प्रकार अध्ययन की जाने वाली विशेषता के प्रतिदर्श मान होते हैं और इसी प्रकार समष्टि के भी मान होते हैं । बहुधा समष्टि के मान ज्ञात नहीं होते और इनका अनुमान प्रतिदर्श-मान के आधार पर किया जाता है । प्रतिदर्श मानों को आकलन का नाम दिया जाता है और समष्टि मानों को प्राचल का नाम । प्राचल गुणधर्म का यह मान है जिससे समष्टि का वर्णन होता है । आकलन प्रतिदर्श का वह मान है जिससे प्रतिदर्श के गुणधर्म का वर्णन होता है और आकलन को प्राचल का वर्णन करने के लिए ज्ञात किया जाता है । यदि भारतवर्ष में पाये जाने वाले सभी प्रौढ़ व्यक्तियों की लम्बाई के माप लेकर उसके मध्यमान की गणना की जाय तो वह मध्यमान प्राचलन होगा, लेकिन इस अपरिमित समष्टि से 200 प्रौढ़ों के प्रतिदर्श की लम्बाइयों का मध्यमान प्राचल का आकलन मात्र होगा । इस प्रकार प्राचल समष्टिगत तथ्य है जो समष्टि की सभी इकाइयों पर निर्भर करता है । सभी स्थितियों में सांख्यिकी की गणना प्रत्यक्ष रूप से की जाती है लेकिन अनेक स्थितियाँ में प्राचलों की गणना नहीं की जा सकती । प्राचलों की गणना न कर सकने के अनेक कारण हैं । पहला कारण है कि सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन की जाने वाली अधिकांश समष्टियाँ परमिति होने पर भी भौतिक रूप से अगणनीय और अपमानीय हैं । दूसरा कारण यह है कि अर्थ और श्रम की दृष्टि से प्राचल की गणना दु:साध्य है । तीसरा कारण यह है कि गणना करने के समय समष्टि की सभी सम्भावित इकाइयाँ अनुपलब्ध हो सकती हैं। अत: सांख्यिकीय आकलन के आधार पर प्राचल का अनुमान किया जाता है । इतना अवश्य है कि प्राचल के वास्तविक मान के अनुमान में त्रुटि होती है और यह त्रुटि

अधिआकलन की या अवआकलन की हो सकती है । अभिप्राय यह है कि प्राचल और आकल में सर्वदा भिन्नता होती है। आकलन और प्राचल की इस भिन्नता को प्रतिदर्श चयन की त्रुटि का नाम दिया जाता है । प्रतिदर्श चयन त्रुटि=प्राचल ऋण आकल के बराबर होता है। सांख्यिकी में प्राचलों के प्रतीकों का लेखन ग्रीक अक्षरों में किया जाता है जबकि आकल के प्रतीकों के लिए रोमन अक्षरों का उपयोग होता है। परम्परागत रूप से आकल को सर्वदा अधिआकलन माना जाता है और इसीलिए प्रतिदर्श चयन त्रुटि को निम्न सूत्र के रूप में व्यक्त किया जाता है।

प्रतिदर्श चयन त्रुटि = आकलन = प्राचलन

$$E = \text{Estimate} - \text{Parameter}$$

वैसे अनेक सांख्यिकीवेत्त इस परम्परा का अनुसरण करना आवश्यक नहीं मानते । जैसे- फर्ग्यूसन (1976) यह आवश्यक नहीं मानते कि प्रतिदर्श से प्राप्त आकल सर्वदा अधिआकलन होता है। अत: प्रतिदर्श चयन त्रुटि को ज्ञात करने के लिए प्राचल-आकल के रूप में लिखा जा सकता है। प्राचल में से आकल को घटाने से प्राप्त फल धनात्मक होने पर अधिकआकलन और ऋणात्मक होने पर अवआकलन का द्योतक होगा। चयन त्रुटि की बात प्रतिदर्श चयन के वितरण का विवचेन करते समय और अधिक स्पष्ट होगी।

प्रतिदर्श चयन की विधियाँ (Methods of Sampling Selection)

चूँकि प्रतिदर्श का अध्ययन समष्टि के बारे में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करता है, अत: प्रतिदर्श का चयन करते समय हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए कि प्रतिदर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व हो। इसका अभिप्राय यह है कि अध्ययन किया जाने गोचर जिस रूप और मात्रा में समष्टि के अन्तर्गत प्राप्त है, उसी रूप और मात्रा में प्रतिदर्श में भी प्रतिबिम्बित हो इसीलिए अनुसन्धानकर्त्ता यह प्रयास करते हैं कि प्रतिदर्श का चयन इस प्रकार हो कि वह समष्टि का प्रतिनिधायक हो। सामान्यत: प्रतिदर्श चयन में दो विधियों का उपयोग किया जाता है। इन विधियों को ब्लूमर्स एवं लिंडक्विस्ट (1960) ने निर्णयाधारित प्रतिदर्श और प्रायिकता प्रतिदर्श के नाम से उद्धत किया है । निर्णयाधारित प्रतिदर्श वह होता है जिसके चयन में अनुसन्धानकर्त्ता प्रतिदर्श में उन्हीं इकाइयों को शामिल करता है जिनको लेने से उसके निर्णय के अनुसार प्रतिदर्श प्रभावशाली रीति से प्रतिनिधायक बन सके। इसके विपरीत प्रायिकता-प्रतिदर्श चयन वह पद्धति है जिसमें उस योजना का चयन स्वत: हो जाता है इस योजना में किसी निश्चित समष्टि से किसी संख्या में प्रतिदर्श के चुने जाने की प्रायिकता ज्ञात रहती है जैसा कि आगे वाली पंक्तियों में स्पष्ट होगा, प्रायिकता प्रतिदर्श चयन वस्तुत: यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन होता है। निर्णयाधारित प्रतिदर्श चयन वास्तव में प्रतिदर्श चयन का अवैज्ञानिक तरीका है, तथापि अनेक मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय अनुसन्धानों में प्रतिदर्श चयन की इस विधि का बहुतायत से उपयोग होता है । इसके पहले कि यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन, जो वस्तुत: चयन की वैज्ञानिक विधि है, का विवेचन किया जाये, यह आवश्यक है कि निर्णयाधारित प्रतिदर्श चयन विधि के स्वरूप को स्पष्ट कर दिया जाये।

निर्णयाधारित प्रतिदर्श चयन

इस विधि से प्रतिदर्श चयन करने में भी अनुसन्धानकर्त्ता का उद्देश्य प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श का चयन करना होता है लेकिन इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह किसी वस्तुनिष्ठ प्रतिदर्श चयन प्रक्रिया का

उपयोग न कर प्रतिदर्श को प्रतिनिध्यात्मक बनाने के लिए आत्मनिष्ठ निष्कर्षों का उपयोग करता है । जैसे- हम एक परिकल्पनात्मक समाजशास्त्र अनुसंधान को लें । मान लीजिए कि बुनकरों के सामाजिक आर्थिक स्तर में सरकारी सहायता के कारण पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना है । स्पष्ट है कि बुनकरों की समष्टि उत्तर प्रदेश के ही अनेक नगरों एव गाँवों में बिखरी हुई है। यदि अनुसन्धानकर्त्ता बस्ती जिले में खलीलाबाद के दस मील व्यास में आने वाले गाँवों और कस्बों में रहने वाले बुनकरों को ही अपने प्रतिदर्श में लेता है क्योंकि ये बुनकर कई सदियों से पैतृक पैशे के रूप में कपड़ा बनाने का कार्य करते आ रहे हैं । अधिकांश बुनकरों की तरह वे गाँवों में रहते हैं, इनको सरकारी सहायता और प्रोत्साहन भी मिलता रहा है और अनुसंधानकर्त्ता के व्यक्तिगत अनुभवों के अनुसार इनके सामाजिक आर्थिक संस्थिति में परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है, तो इस प्रतिदर्श चयन विधि को निर्णय पर आधारित प्रतिदर्श माना जायेगा प्रतिदर्श चयन के लिए निर्णय के आधार रूप में दूसरे प्रकार के आत्मनिष्ठ निष्कर्षों का भी उपयोग किया जाता है । प्रतिदर्श चयन के निर्णय में आत्मनिष्ठ निष्कर्ष जो भी हों उनका उपयोग करने पर प्रतिदर्श चयन के अभिनत होने की सम्भावना बहुत अधिक होती है । वैसे तो अभिनत प्रतिदर्श चयन के दूसरे कारण भी हो सकते हैं लेकिन जाने या अनजाने आत्मनिष्ठ निर्णयानुसार प्रतिदर्श चयन अभिनत प्रतिदर्श चयन का मूल कारण है । अभिनत प्रतिदर्श वह है जिसमें क्रमबद्ध रीति से किसी विशेष प्रकार की इकाइयों को लेने की त्रुटि होती है जिसके कारण प्रतिदर्श चयन में कुछ सदस्यों को अन्य सदस्यों की तुलना में अधिक वरीयता मिल जाती है । अभिनत प्रतिदर्श लेने के लिए दूरभाष निदेशिका के कुछ लोगों को प्रतिदर्श में लिया जाये । यह स्वत: स्पष्ट है कि किसी भी नगर में दूरभाष रखने वाले लोग सामान्य लोगों की तुलना में उच्चतर सामाजिक आर्थिक स्तर के होते हैं और इस प्रकार ऐसे प्रतिदर्श में उच्चस्तरीय संस्थिति के लोगों को वरीयता प्राप्त हो जाती है । ऐसे अभिनत प्रतिदर्श चयन का एक ज्वलंत उदाहरण प्राय: उद्घृत किया जाता है जो संयुक्त राज्य अमेरिका में 1936 के राष्ट्रपति निर्वाचन के पहले लिटरेरी डाइजेस्ट द्वारा संचालित जनमत-अध्ययन में हुआ । अध्ययनकर्त्ताओं ने कई लाख मत पत्र पोस्टकार्ड के रूप में दूरभाष निदेशिकाओं और कारों की पंजीयन सूची के आधार पर लोगों को भेजा । जनमत से ज्ञात हुआ कि अमुक प्रत्याशी राष्ट्रपति निर्वाचित होगा लेकिन वास्तविक चुनाव में वह बुरी तरह हार गया । इस प्रकार यहाँ गलत पूर्वकथन इसलिए हुआ कि जनमत के लिए चुना गया प्रतिदर्श अभिनत था और इसके चयन में अध्ययनकर्त्ताओं ने आत्मनिष्ठ निष्कर्षों के आधार पर प्रतिदर्श इकाइयों को शामिल करने का निर्णय किया था ।

वैज्ञानिक अनुसंधानकर्त्ता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह अभिनत प्रतिदर्श चयन के प्रति निरन्तर सजग रहे। जैसा कि आगे चलकर देखेंगे, प्रायोगिक दशाओं में उत्कृष्ट और क्रमबद्ध रीति से प्रासंगिक चरों का नियन्त्रण किया जाता है ताकि प्रायोगिक समूह अभिनत प्रतिदर्श न होने पाये। इसके विपरीत, उन स्थितियों में जहाँ अनुसंधान में प्रकृतिगत प्रेक्षण आत्म कथन जैसी अनियन्त्रित विधियों का उपयोग कर प्रदत्त संग्रह किया जाता है, अभिनत प्रतिदर्श चयन से बच्चे के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनका चयन आत्मनिष्ठ निष्कर्षों के अनुसार किये गये निर्णयों पर किसी भी तरह आधारित न हो, अन्यथा प्रदत्त से पाये जाने वाले परिणाम वैज्ञानिक न हो पायेंगे। प्रतिदर्श की किसी भी इकाई को प्रतिदर्श में होने या न होने के निर्णय का अवसर देने से उत्पन्न होने वाली प्रतिदर्श चयन की अभिनति से बचने का प्रयास सभी अनुसन्धानकर्त्ता करते हैं, लेकिन आज भी प्रश्नावलियों और

साक्षात्कारों के माध्यम से किये जाने वाले अध्ययनों में इस प्रकार की अभिनति व्यापक रूप से पायी जाती है । इसीलिए अनुसन्धान निबन्धों में प्रतिदर्श चयन की विधि और दशा का विशद वर्णन आवश्यक समझा जाता है ताकि पढ़ने वाला इसका मूल्यांकन कर सके कि प्रतिदर्श के चयन में किसी प्रकार की अभिनति उत्पन्न करने वाले तत्वों का समावेश हुआ है या नहीं ।

NOTES

प्रायिकता प्रतिदर्श चयन: यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन (Probability sampling : random sampling)

यह स्वत: स्पष्ट है कि अनुसंधान परिणामों को वैज्ञानिक बनाने के लिए प्रतिदर्श चयन में, किसी वस्तुनिष्ठ तकनीक का उपयोग करना अति आवश्यक है । ग्रूत के अनुसार इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब प्रतिदर्श चयन में उस सिद्धान्त का उपयोग किया जाये तो किसी भी तरह अध्ययन की जाने वाली समस्या से सम्बन्धित चरों से सम्बद्ध नहीं है । इसके लिए एक ही सिद्धान्त उपयोगी है और वह है कि प्रतिदर्श का चयन पूरी तरह यादृच्छिक रीति से किया जाय । यादृच्छिक रीति से प्रतिदर्श चयन प्रायिकता के सिद्धान्त के आधार पर किया जा सकता है और अधिक स्पष्ट रीति से इस बात को यों कहा जा सकता है कि किसी समष्टि से निश्चित संख्या में प्रतिदर्श का चयन करने के लिए ऐसी प्रक्रिया का उपयोग करना चाहिए जिसमें कि समष्टि से उस संख्या की सभी सम्भव संयुक्तियों को प्रतिदर्श में लिए जाने की प्रायिकता एक समान हो । ऐसी ही स्थिति में प्रतिदर्श से प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर आनुमानिक सांख्यिकी तकनीकों के द्वारा समष्टि के बारग में बैज्ञानिक सामान्यीकरण किया जा सकता है ।

यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम समष्टि को स्पष्ट रीति से परिभाषित कर परिसीमित कर लिया जाये । इसके बाद यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन को दो मूलभूत तरीके हो सकते हैं । इसमें पहला है, पुनर्स्थापन के साथ प्रतिदर्श चयन । पुनर्स्थापन के साथ प्रतिदर्श चयन, वह है जिसमें समष्टि से एक इकाई या सदस्य को प्रतिदर्श में ले लेने के बाद उसे समष्टि में लौटा दिया जाता है और तब दूसरे सदस्य को प्रतिदर्श के लिए चुना जाता है । एक उदाहरण लेकर इस मूल विधि को स्पष्ट किया जा सकता है । मान लीजिये कि ताश के 52 पत्तों की समष्टि से 12 पत्तों का एक यादृच्छिक प्रतिदर्श लेना है । यह भी मान लीजिये कि ताश को अच्छी तरह फेंटने के बाद आँख बन्द कर गड्डी से एक पत्ता निकाला गया और उसकी पहचान को नोट कर लिया गया । प्रतिदर्श के लिए दूसरे कार्ड को निकालने से पहले, पहले कार्ड को गड्डी में मिला दिया जायेगा । उसके बाद प्रतिदर्श के दूसरे सदस्य के लिए अब दूसरा पत्ता खींचा जायेगा और उसकी पहचान नोट कर फिर गड्डी में वापस रख दिया जायेगा। इस प्रकार यह तब तक चलता रहेगा जब तक 12 पत्तों का प्रतिदर्श चुन लिया जाता। ऐसा क्रम इसलिए किया जाता है कि समष्टि के किसी पत्ते की प्रतिदर्श में सम्मिलित होने की प्रायिकता सर्वदा 1/52 अर्थात् 0192 बनी रहे है । यदि प्रतिदर्श के प्रत्येक सदस्य का चयन करने के बाद पत्तों को गड्डी में लैटाया नहीं जाता है तो किसी भी पत्ते के प्रतिदर्श में सम्मिलित होने की प्रयिकता 1/52 से घटकर 1/51,1/50, 1/49,...1/41 होती जायेगी और इस प्रकार पत्तों के प्रतिदर्श में आने की प्रायिकता समान नहीं रह पायेगी।

दूसरे तरीके में पुर्नस्थापन किये बिना ही निश्चित संख्या के प्रतिदर्श का चयन किया जाता है। वस्तुत: समाजशास्त्रीय, शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में पुर्नस्थापन सहित प्रतिदर्श चयन असंभव

और निरर्थक है, क्योंकि समष्टि से किसी भी इकाई को प्रतिदर्श में शामिल करके इसका अध्ययन कर लेने के बाद उसका उपयोग उसी प्रतिदर्श में पुनः नहीं किया जा सकता है। इसके कारण समष्टि के सदस्यों के प्रतिदर्श में सम्मिलित होने की सम-प्रायिकता अवश्य प्रभावित होती है लेकिन इन विज्ञानों में अध्ययन की जाने वाली समष्टियाँ परिमित होने पर भी इतनी वृहद् होती हैं कि पुनर्स्थापन रहित यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन से सम-प्रायिकता में प्रभावी अन्तर नहीं होता है और सभी प्रतिदर्श चयन पुनस्थपिनरहित यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन से सम-प्रायिकता में प्रभावी अन्तर नहीं होता है और सभी प्रतिदर्श चयन पुनर्स्थापनरहित रीति से किया जाता है ।

प्रायिकता पर आधारित प्रतिदर्श चयन प्रमुख रुप : यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन होता है। यहाँ पर यादृच्छिक का अभिप्राय असावधानी से जैसे-तैसे, तो भी उपलब्ध हो, उसे प्रतिदर्श में लेकर चयन करना नहीं है। वास्तव में यादृच्छिकीकरण की तकनीक का उपयोग कर प्रतिदर्श का चयन करना, प्रायिकता के सिद्धान्त को लागू करने का ठोस आधार प्रस्तुत करता है। यादृच्छिक चयन का अभिप्राय होता है समष्टि के सभी सदस्यों में से किसी भी सदस्य को लिये जाने की प्रायिकता का समान होना। यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन ही मुख्य रूप से प्रायिकता पर आधारित प्रतिदर्श चयन है। संख्या N के प्रतिदर्श को यादृच्छिक तब कहा जाता है जब इसका चयन इस प्रकार किया हो कि, उसी संख्या में उसी समष्टि से किसी दूसरे प्रतिदर्श के लिये जाने की प्रायिकता वही है जो प्रायिकता पहले प्रतिदर्श के लिये जाने की थी। कभी-कभी यह कहा जाता है कि यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन ऐसा होता है कि समष्टि के किसी भी सदस्य के प्रतिदर्श में शामिल होने की प्रायिकता समान होती है। ऐसा करना तभी सही होता है जब समष्टि से पुनर्स्थापन सहित प्रतिदर्श चयन किया जाता है। वास्तव में प्रायिकता पर आधारित प्रतिदर्श चयन में यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन एक ही समष्टि से किसी निश्चित संख्या वाले प्रतिदर्शो के सभी सम्भव समुच्चयों की प्रायिकता का एक समान होना आवश्यक है । जैसे- ताश के बावन पत्तों की समष्टि को लें। इस समष्टि से आठ पत्तों का एक प्रतिदर्श लेना है प्रतिदर्श का लेना यादृच्छिक तब माना जायेगा जबकि बावन पत्तों में से आठ पत्तों की सभी सम्भव संयुक्तियों में से किसी एक संयुक्ति के लेने की प्रायिकता वही हो जो अन्य किसी संयुक्ति के लेने की हो सकती है।

यह ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है । कि यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन का अभिप्राय यह नहीं है कि इस रीति से लिया गया कोई प्रतिदर्शसमष्टि का सफल प्रतिनिधत्व कर, समष्टि की विशेषताओं को छोटे स्तर पर सही प्रतिबिम्बन करने में सर्वदा सफल होता है। यादृच्छिक प्रतिदर्श में समष्टि का प्रतिनिधित्व करने की सम्भावना उतनी ही होती है जितनी किसी अन्य विधि से लिये गये प्रतिदर्श में किन्तु, यादृच्छिक रीति से लिये गये प्रतिदर्श चयन में समष्टि के प्रतिनिधित्व का भरोसा रहता है। समष्टि की विशेषताएँ वे होती है, जो बासर-बार प्रकट होती हैं और परिणामस्वरूप यादृच्छिक रीति से लिये गये प्रतिदर्श में उन विशेषताओं के पाये जाने की सम्भावना सर्वाधिक होती है। यहि एक ही समष्टि से यादृच्छिक रीति से अनेक प्रतिदर्श का चयन किया जाये तो भी भिन्न-भिन्न प्रतिदर्शो में अध्ययन की जाने वाली विशेषताएँ भिन्न-भिन्न मात्रा में उपलब्ध होगी। इस भिन्नता को, प्रतिदर्श चयन विचरणशीलता अथवा प्रतिदर्श चयन उच्चावचन कहा जाता है। इस प्रकार की विचरणशीलता एक विशेष प्रकार के संख्या का अनुसरण करती है और इसके ऐसे व्यवस्थित लक्षण होते हैं कि परिशुद्ध रूप से उनका वर्णन किया जा सकता है। प्रायिकता सिद्धान्त के आधार पर व्यवस्थित रूप से प्रकट होने वाले प्रतिदर्श उच्चावचनों का निर्धारण किया जा सकता है और उसका मात्रात्मक पदों में

वर्णन किया जा सकता है। इसीलिए प्रतिदर्श चयन के प्रतिनिध्यात्मक न होने पर भी उससे प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर सांख्यिकी के माध्यम से इस बात का निर्धारण किया जा सकता है कि प्रतिदर्श चयन विचरणशीलता में किसी निश्चित प्रतिदर्श की क्या स्थिति है।

NOTES

याद्च्छिक प्रतिदर्श चयन मुख्यत: पाँच प्रकार के होते हैं और इनमें से किसी का उपयोग अनुसन्धान की समस्या के स्वरूप पर निर्भर करता है। प्रतिदश्र चयन की इन पाँच प्रक्रियाओं को क्रमश: सरल याद्च्छिक प्रतिदर्श चयन, स्तरित प्रतिदर्श चयन, क्षेत्र प्रतिदर्श चयन, आनुपातिक यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन, गुच्छन प्रतिदर्श चयन कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक के स्वरूप, चयन प्रक्रिया और अनुप्रयोग की जानकारी आवश्यक है।

1. **सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन (Simple random sampling)**— सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन किसी भी समष्टि से एक निश्चित संख्या वाले प्रतिदर्श के चयन की उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके अनुसार उस संख्या में लिये जा सकने वाल सभी सम्भव प्रतिदर्शों के चयन की समान प्रायिकता होती है। किसी भी परिमित समष्टि ने सरल याद्च्छिक प्रतिदर्श चयन करना अत्यन्त सरल है। इस तरह की समष्टि से किसी प्रतिदर्श में किसी भी सदस्य के शामिल होने की प्रायिकता 1/N होती है। ऐसा प्रतिदर्श चयन करने के लिए सबसे सरल तरीका यह है कि समष्टि के सभी सदस्यों का नाम छोटे-छोटे कागजों पर लिखा जाये; किसी डिब्बे में रखकर उन्हीं पूरी तरह मिला दिया जाये और उसमें से बिना किसी अभिनति के जितनी संख्या में प्रतिदर्श की आवश्यकता है उतने कागज निकाल लिये जायें । सरल याद्च्छिक प्रतिदर्श चयन के लिए याद्च्छिक अंकों की तालिका में भी उपयोग किया जा सकता है। जैसे किसी विश्वविद्यालय के 10,000 छात्रों की समष्टि में 400 छात्रों के प्रतिदर्श का चयन करना है। प्रत्येक छात्र की एक निश्चित नामांकन संख्या है। यादृच्छिक अंकों की तालिका से प्रत्येक बार 10,000 (अर्थात् 5 अंकों की संख्या) लेते हुए 400 संख्याएँ ली जाती हैं। ये 400 अंक प्रतिदर्श में लिये जाने वाले छात्रों के नामांकन अंकों को दर्शायेंगे और इस प्रकार लिया गया प्रतिदर्श सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन माना जायेगा।

समष्टि के परिमित होने पर भी उपरोक्त चयन प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है। यदि समष्टि अपरिमित है ओर उसके सदस्यों की सूची या तो अनुपलब्ध है अथवा इतनी विशाल है कि व्यावहारिक स्तर पर उन सबसे सरल याद्च्छिक प्रतिदर्श चयन का उपयोग कर प्रतिदर्श चयन नहीं किया जा सकता तो ऐसी स्थति में सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श का चयन न कर जटिल प्रकार के यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन का उपयोग किया जाता है । कभी-कभी अपरिमित समष्टि के किसी परिमित भाग को ही समष्टि मानकर परिमित कर लिया जाता है और परिमित समष्टि से सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन की प्रक्रिया का उपयोग कर प्रतिदर्श ग्रहण किया जाता है। मान लीजिये कि अनुसंधान का विषय है, विश्वविद्यालयीय छात्रों में व्याप्त असन्तोष के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सहसम्बन्धी। विश्वविद्यालयीय छात्रों की समष्टि अपरिमित है और इससे सरल याद्च्छिक प्रतिदर्श का चयन भौतिक, कालिक, आर्थिक एवं प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण से असम्भव है। अत: हम किसी भी विश्वविद्यालय को इस अपरिमित समष्टि का परिमित रूप मान लेते हैं और उस विश्वविद्यालय से सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन प्रक्रिया का उपयोग कर मनचाही संख्या वाले प्रतिदर्श का चयन

NOTES

कर लेते हैं । किसी भी विश्वविद्यालय के छात्रों की अपरिमित समष्टि का लघु रूप मान लेते हैं । किसी भी विश्वविद्यालय के छात्रों की अपरिमित समष्टि का लघु रूप मान लेना सैद्धान्तिक एवं इंद्रियानुभविक रीति से सही है या नहीं एक अलग प्रश्न है । किसी तर्कसंगत आधार पर ही ऐसा माना जाता है; अन्यथा यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन की दूसरी प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है ।

2. **क्रमबद्ध यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन (Systematic random sampling) -** इस प्रकार का प्रतिदर्श सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन प्रक्रिया का ही दूसरा रूप है । यदि परिमित समष्टि के सदस्यों की सूची आंकिक आधार पर अथवा अक्षरों के आधार पर अथवा किसी अन्य क्रमबद्ध आधार पर व्यवस्थित कर ली गयी है तो क्रमबद्ध रीति से यादृच्छिक चयन किया जा सकता है। प्रतिदर्श की अभीष्ट संख्या और परिमित समष्टि की संख्या, के अनुपात को निकालकर क्रमिक रीति से, इस संख्या पर पड़ने वाले सदस्य को प्रतिदर्श में लिया जा सकता है। मान लीजिये, किसी नगर के मतदाताओं की सूची से हमें प्रतिदर्श लेना है और नगर के मतदाताओं की संख्या 10,000 है । इससे हमें 540 मतदाताओं का एक प्रतिदर्श लेना है। प्रतिदर्श की अभीष्ट संख्या और समष्टि की संख्या का अनुपात 1/20 हुआ। अब हम सूची से प्रत्येक 20वें नाम को लेकर प्रतिदर्श गठन कर सकते हैं। इस तरह प्रतिदर्श चयन क्रमबद्ध यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन कहा जाता है। यद्यपि सामान्यतः सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान स्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार का प्रतिदर्श यादृच्छिक माना जाता है। तथापि इस बात की सम्भावना रहती है कि अध्ययन किया जाने वाला व्यवहार अथवा गोचर सूची तो व्यवस्थित करने वाले आधार से स्वतन्त्र न हों जिसके परिणामस्वरूप लिया गया प्रतिदर्श अभिनत हो सकता है । कभी-कभी उपलब्ध सूचियाँ समष्टि का प्रतिनिधि मान लिया जा सकता है । कभी-कभी उपलब्ध सूचियाँ समष्टि के सभी सदस्यों का विवरण नहीं प्रस्तुत करतीं और गलती से ऐसी सूची को समष्टि का प्रतिनिधि मान लिया जा सकता है । किसी नगर की समष्टि का अध्ययन करने के लिए दूरभाष निदेशिका को समष्टि का प्रतिनिधि मान लेता इसी प्रकार की त्रुटि का परिचायक है । ऐसी निदेशिकाओं में एक विशेष स्तर के लोगों के ही नाम उपलब्ध होते हैं। अपरिमित समष्टि से क्रमबद्ध यादृच्छिक प्रतिदर्श लेने के लिए समष्टि के किसी परिमित भाग को ही समष्टि का लघु रूप मानकर उपरोक्त प्रकार से प्रदर्शन चयन किया जा सकता है।

क्रमबद्ध रीति से प्रतिदर्श ग्रहण को क्रमिक प्रतिदर्श चयन भी कहा जाता है। इसको यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन प्रक्रिया में इसलिए रखा जाता है कि क्रमिक रूप से किस संख्या पर पड़ने वाले सदस्यों को ही प्रतिदर्श में लिये जाने के नियम को माना जाता है अथवा यादृच्छिक अंको की तालिका के आधार पर प्रतिदिर्श चयन निर्धारित किया जाता है । कौन-कौन सदस्य लिये जायेंगे यह यादृच्छिक रीति से निधारित होता है, इसीलिए इसे यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन या प्रायिकता प्रतिदर्श चयन कहा जाता है । क्रमिक प्रतिदर्श चयन के अनेक लाभ हैं । इसके लिए समष्टि के सदस्यों को आंकिक पहचान देना आवश्यक नहीं होता । इसके अतिरिक्त समष्टि के सदस्यों की संख्या में परिवर्तन होने पर प्रतिदर्श की संख्या परिवर्तित हो जाती है लेकिन प्रतिदर्श की यादृच्छिकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । यह प्रक्रिया किसी एक समय से दूसरे समय, लोगों की संख्या, अधिक या कम हो जाने वाले क्षेत्र की जनसंख्या से प्रतिदर्श ग्रहण करने के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रक्रिया है ।

3. **स्तरित प्रतिदर्श चयन (Stratified random sampling)-** सामाजिक अथवा व्यवहार सम्बन्धी विज्ञानों में जिन समष्टियों का अध्ययन किया जाता है वे प्राय: अपरिमित होती हैं । वे समांगी और एक सूत्र में बँधा समूह न होकर बहुलांगी तथा कई उपसमूहों में विभाजित होती हैं। उपसमूहों में बँटे होने के अनेक आधार हो सकते हैं । आयु के आधार पर लोगों की अवस्था, लिंग, आवासीय स्थान, उद्‌गम स्रोत, जाति, वर्ण, वर्ग, सामाजिक-आर्थिक स्तर, शिक्षा, धर्म, संस्कृति, इत्यादि ही उपसमूहों में समष्टि के बँटने के आधार हो सकते हैं। ये आधार इन उपसमूहों के गुण धर्म होते हैं । सामाजिक एवं व्यवहार सम्बन्धी विज्ञानों में अध्ययन किये जाने वाले गोचर इन गुणधर्मो से सम्बन्धित होने के कारण प्रतिदर्श ग्रहण की प्रक्रिया में उसके प्रतिनिध्यात्मक स्वरूप को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण हो जाते हैं । इन आधारों पर बँटी समष्टि के सभी उपसमूहों की संख्या एक नहीं होती । अत: यह स्वत: स्पष्ट है कि ऐसी समष्टि से इन गुण-धर्मों की उपेक्षा कर सरल यादृच्छिक अथवा क्रमिक प्रतिदर्श ग्रहण की प्रक्रिया से प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए ऐसी स्थिति में स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन किया जाता है ।

स्तरित प्रतिदर्श चयन मुख्यत: तीन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है । पहला उद्देश्य है, समस्त समष्टि के लिए प्रतिदर्श परिणामों के प्रसारण को कम करना । यह स्वयं स्पष्ट है कि विभिन्न स्तरों वाली समष्टि के स्तरों की उपेक्षा कर किसी स्तर से अधिक और किसी स्तर से कम सदस्यों को लेकर प्रतिदर्श गठित करने से प्राप्त परिणामों में प्रतिदर्श चयन त्रुटि की मात्रा अधिक हो जायेगी । ऐसा इसलिए होगा कि स्तरों की उपेक्षा कर प्रतिदर्श चयन करने पर समष्टि का प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श नहीं हो पायेगा । इस तरह के प्रतिदर्श चयन का दूसरा उद्देश्य कभी-कभी यह होता है कि विभिन्न स्तरों में अलग-अलग प्रतिदर्श का चयन करने में यादृच्छिकीकरण की अलग-अलग प्रक्रियाओं का उपयोग किया जा सके । उदाहरण के लिए, किसी विद्यालय समष्टि के सदस्यों का अध्ययन करते समय अध्यापकों, कर्मचारियों और छात्रों के तीन स्तरों का उपयोग किया जा सकता है। इस अध्ययन में अध्यापकों में एक-एक अध्यापकों और कर्मचारियों का चयन व्यक्तित्व आधार पर यादृच्छिक रीति से किया जा सकता है और छात्रों में से विभिन्न कक्षा अनुभागों के आधार पर अनुभाग गुच्छनों के रूप में, तात्पर्य यह है कि छात्रों के स्तर से प्रतिदर्श ग्रहण में छात्रों की इकाई न मानकर विभिन्न अनुभागों को इकाई मान लिया गया। स्तरित प्रतिदर्श चयन का तीसरा उद्देश्य समष्टि के विभिन्न स्तरों के लिए अलग-अलग किन्तु अधिक परिशुद्ध सामान्यीकरण करने हेतु किया जाता है। ऐसे अध्ययन में स्तर को लोकप्रान्त कहा जाता है और अलग-अलग लोकप्रान्तों के बारे में अलग-अलग जानकारी प्राप्त करना अध्ययन का उद्देश्य होता है।

स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन करने के लिए समष्टि को विभिन्न स्तरों में विभाजित करते समय स्तरण के लिए गुणधर्मो के चयन में कुछ बातों का ध्यान में रखा जाता है। जिस गुणधर्म के आधार पर स्तरण करना हो उसके लिए आवश्यक है कि गुणधर्म अध्ययन किये जाने वाले गोचर से सम्बन्धित हो । साभ ही साथ गुणधर्म के लिए आवश्यक है कि उसके आधार पर स्वाभाविक और सहज रीति से समष्टि को विभन्न स्तरों में विभाजित किया जा सके । कौन से गुणधर्म किस गोचर से सम्बन्धित हैं एक जटिल प्रश्न है। इसके सम्बन्ध में प्रतिदर्श ग्रहण करने से पहले अधिक समय और श्रम लगाना आवश्यक है। मानव समष्टि का अध्ययन करने में आयु, शिक्षा, जाति, धर्म, लिंग आवास,

सामाजिक–आर्थिक स्तर स्तरण के प्रमुख आधार है। सजग अनुसंधानकर्त्ता को सम्बन्धित अनुसंधान सहित से परिचय हो जाने के बाद यह स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह के अध्ययन में किन गुण–धर्मों के आधार पर समष्टि का स्तरण किया जाये। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि समष्टि का कोई सदस्य एक से अधिक स्तरों में स्वाभाविक रूप से न रखा जा सके।

समष्टि को विभिन्न स्तरों में बाँट लेने के बाद प्रत्येक से आवश्यक संख्या में प्रतिदर्श चयन सरल यादृच्छिक प्रक्रिया का उपयोग कर लिया जा सकता है लेकिन बहुधा स्तरण का उद्देश्य प्रतिदर्श को प्रतिनिध्यात्मक बनाना होता है, अत: स्तर के आकार के आधार पर उस स्तर से लिये जाने वाले प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण होता है। इसीलिए प्राय: स्तरित प्रतिदर्श चयन को समानुपातिक स्तरित प्रतिदर्श चयन का नाम दिया जाता है। मान लीजिए कि किसी गाँव का अध्ययन करना है और गाँव के प्रौढ़ों की संख्या 1,500 है। इनमें से 300 का प्रतिदर्श लिया जाना है। यह भी मान लिया जाये कि अध्ययन किये जाने वाला गोचर प्रौढ़ों के वर्ण से प्रभावित होता है अत: गाँव की समष्टि का स्तरण उनके वर्ण के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अनुसूचित स्तरों में करने पर ज्ञात हुआ कि 200 ब्राह्मण, 450 क्षत्रिय, 380 वैश्य और 470 अनुसूचित जाति के हैं। समष्टि में इन वर्णों का जो समानुपात है वहीं समानुपात प्रतिदर्श में होना चाहिए । इसका निर्धारण नीचे दी गयी तालिका में है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ विभिन्न स्तरों से प्रतिदर्श के सदस्यों का चयन यादृच्छिक प्रक्रिया द्वारा किया जाता है ।

स्तर	संख्या	समानुपात	प्रतिदर्श संख्या
ब्राह्मण	200	13	36
क्षत्रिय	450	300	90
वैश्य	380	25	75
अनु. जाति	470	37	96
समष्टि	1500	1.00	300

इसलिए इस प्रकार का प्रतिदर्श चयन यादृच्छिक माना जाता है । प्रत्येक स्तर से आवश्यक प्रतिदर्श संख्या में सदस्यों का चयन सरल यादृच्छिक प्रक्रिया अथवा क्रमबद्ध यादृच्छिक प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है ।

अनेक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि प्राय: सदस्यों के असमानुपातिक प्रतिदर्श चयन से परिणामों में विशेष अन्तर नहीं पड़ता है । लेकिन कभी–कभी स्तरित प्रतिदर्श के अभाव में अध्ययन की वैधता और विश्वसनीयता को शंका की दृष्टि से देखा जाता है, इसलिए जहाँ तक सम्भव हो समानुपातिक स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन की प्रक्रिया का उपयोग करना सामाजिक विज्ञानों के उन अध्ययनों में आवश्यक है, जहाँ गोचर का अध्ययन नियन्त्रित दशाओं में न संचालित कर वास्तविक जीवन स्थितियों में प्रकृतिगत प्रेक्षण के द्वारा किया जाता है ।

(4) गुच्छन प्रतिदर्श चयन (Cluster sampling) - स्तरित प्रतिदर्श चयन का वर्णन करते समय गुच्छन–प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है । यह प्रक्रिया प्रतिदर्श चयन की उस विधि को कहते हैं जिसमें प्रतिदर्श इकाई के रूप में समष्टि के सदस्यों को अलग–अलग न लेकर कई सदस्यों

के गुच्छों को एक साथ लिया जाता है । जैसे- छात्रों के स्तर पर प्रतिदर्श में अलग-अलग छात्रों को न लेकर कक्षा के अनुभागों को प्रतिदर्श इकाई के रूप में ग्रहण किया जाय । कभी-कभी बड़े पैमाने पर किये जाने वाले सर्वेक्षण अध्ययनों में समष्टि से लिये जाने वाला पूरा प्रतिदर्श गुच्छनों के रूप में लिया जाता है । जैसे-उत्तर प्रदेश राज्य के किसी सामाजिक, आर्थिक अथवा मनोविज्ञान सर्वेक्षण में विकास खण्डों को समष्टि की ईकाई के रूप में लेकर प्रदेश के समस्त खण्डों से आवश्यक संख्या में खण्डों का प्रतिदर्श यादृच्छिक प्रक्रिया से लिया जा सकता है । यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक खण्ड के सभी व्यक्तियों का अध्ययन किया जाये । खण्ड के आकार के आधार पर समानुपातिक रूप से अथवा वैसे ही निर्धारित संख्या में लोगों का अध्ययन किया जा सकता है । सामाजिक विज्ञानों में गुच्छन प्रतिदर्श चयन का उपयोग बहुत कम किया जाता है । इसी को अनेक सामाजिक विज्ञान में क्षेत्र में प्रतिदर्श चयन का भी नाम दिया जाता है । क्योंकि किसी समष्टि से प्रतिदर्श के रूप में विभिन्न भू-भागों, आवासीय खण्डों, भौगोलिक क्षेत्रों, कार्यालय अनुभागों आदि के रूप में लेकर किया जाता है । जब प्रत्येक गुच्छन तथा स्तर से समानुपातिक रूप से प्रतिदर्श में इकाइयों को सम्मिलित किया जाता है तो कभी-कभी इस प्रक्रिया को कोटा प्रतिदर्श चयन के नाम से भी पुकारा जाता है । जनमत संग्रह में इस प्रतिदर्श चयन प्रक्रिया का उपयोग बहुतायत से किया जाता है ।

यादृच्छिक प्रतिदर्श का आकार (Size of Random Sample)

प्रतिदर्श से आकार का अभिप्राय समष्टि से यादृच्छिक रीति से चुनी गयी इकाइयों की संख्या से है। यह संख्या कितनी हो एक सामान्य प्रश्न है। प्रतिदर्श में इकाइयों की संख्या के निर्धारण के पीछे अनेक विचारणीय तथ्य होते हैं । प्रतिदर्श की संख्या का प्रमुख निर्धारक, अध्ययन किये जाने वाले गोचर की समष्टि में पायी जाने वाली विचरणशीलता है। यदि अध्ययन किये जाने वाला गोचर अपेक्षाकृत रीति से अधिक विचरणशील है तो प्रतिदर्श की संख्या जितनी बड़ी हो उतनी ही उत्कृष्टि मानी जायेगी। यदि गोचर कम विचरणशील है, तो छोटी संख्या वाला प्रतिदर्श भी उत्कृष्ट होगा। यदि गोचर में विचरणशीलता की मात्रा शून्य है तो प्रतिदर्श में मात्रा एक इकाई ही पर्याप्त होगी। यह संयोग की बात है कि सामान्यत: सामाजिक विज्ञानों में और विशेष रूप से मनोविज्ञान में, अध्ययन किये जाने वाले गोचरों, व्यवहारों अथवा प्रवृत्तियों में बहु विचरणशीलता पायी जाती है और इसलिए सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धित अनुसंधानों में बड़ी संख्या वाला प्रतिदर्श सर्वथा आवश्यक माना जाता है।

प्रतिदर्श में इकाइयों की संख्या के निर्धारण में दूसरा विचारणीय प्रश्न है अध्ययन किये जाने वाले गोचरों की उपलब्धता। अध्ययन किये जाने वाला गोचर जितना ही दुष्प्राय होता है उसके अध्ययन के लिए उतने ही बड़े प्रतिदर्श की आवश्यकता पड़ती है। जैसे- उत्कृष्ट सृजनशीलता का व्यवहार दुष्प्राय है और इसके अध्ययन के लिए प्रतिदर्श की संख्या जितनी बड़ी हो उतना ही अच्छा होगा। प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण स्तरित प्रतिदर्श में इस बात पर भी निर्भर करता है विभिन्न स्तरों में अध्ययन किये जाने वाले गोचरों के बीच में कितना भिन्नता है, यदि यह भिन्नता अधिक है तो दोनों स्तरों से प्रतिदर्श लाने पर भी भिन्नता स्पष्ट हो जायेगी। यदि भिन्नता कम है तो दोनों स्तरों से बड़ी संख्या वाले प्रतिदर्श का होना अनिवार्य है। सामान्यत: यह माना जाता है कि यादृच्छिक प्रतिदर्श का

आकार जितना बड़ा हो, जब प्रतिदर्श चयन की प्रक्रिया में किसी सदस्य के लिए जाने की प्रायिकता वही है जो प्रायिकता समष्टि में उस व्यक्ति के होने की है। किसी अनुसंधान मं लिये जाने वाले प्रतिदर्श की संख्या दो और बातों से भी निर्धारित होती है। पहली बात यह है कि किस प्रकार का अनुसंधान किया जा रहा है और उस अनुसंधान का उद्देश्य क्या है। दूसरी बात यह है कि अनुसंधान में किस प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक प्रकार के अनुसंधान की अलग-अलग आवश्यकता होती है और अलग-अलग संख्या में चरों को उनके प्रकार्यात्मक सम्बन्ध का पता लगाने के लिए लिया जाता है। अनुसंधान के प्रकारों का विवचेन करते समय प्रतिदर्श की अभीष्ट संख्या का स्वत: संकेत प्राप्त हो जायेगा। अनुसंधान प्रकार के अतिरिक्त उनका अभिकल्प भी प्रतिदर्श की संख्या को निर्धारित करता है। अनुसंधान अभिकल्प से सम्बन्धित अनुभाग में विभिन्न अभिकल्पों में अपेक्षित प्रतिदर्श संख्या का संकेत किया गया है।

अभिकल्प से ही यह निर्धारित होता है कि प्राप्त प्रदत्तों में मात्रात्मक विश्लेषण के लिए किन सांख्यिकीयों का उपयोग आवश्यक है । प्रत्येक सांख्यिकी के उपयोग के पीछे कुछ अभिगृह जुड़े होते हैं। इन अभिग्रहों की पूर्ति होने पर ही आवश्यक सांख्यिकी का उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए क्रांतिक अनुपात का उपयोग दो मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। क्रांतिक अनुपात के उपयोग से यह अभिगृह सन्निहित है कि सांख्यकीय रीति से विश्लेषण किये जाने वाले प्रदत्त को प्राकृत रूप से वितरित होना चाहिए। प्राकृत रूप से वितरित होने के लिए प्रदत्तों की आवृत्ति का योग 100 या उससे अधिक होना आवश्यक है। 100 से संख्या जितनी अधिक होगी सामान्यत: आवृत्ति वितरण से प्राकृत होने की प्रायिकता उतनी ही अधिक होगी। वैसे अधिकांश अनुसंधान स्थितियों में प्रतिदर्श संख्या का अभीष्ट न्यूनतम होना अनिवार्य नहीं क्योंकि एक ही अनुसंधान स्थिति में प्रतिदर्श संख्या के कम होने पर एक प्रकार की सांख्यिकी और अधिक होने पर दूसरे प्रकार की सांख्यिकी का उपयोग किया जा सकता है । ऐसा करना इसलिए सम्भव है कि प्रतिदर्श से प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर समष्टि के बारे में सामान्यीकरण करने के लिए जिस प्रकार के सांख्यिकी अनुमान किये जाते हैं उन सभी सांख्यिकीयों प्रतिदर्श चयन वितरण की जानकारी प्राप्त की जा चुकी है। इन वितरणों का विवेचन करने पर प्रतिदर्श की संख्या का प्रश्न स्वयं और स्पष्ट हो जायेगा।

प्रतिदर्श चयन वितरण (Distribution of Sample Selection)

पूर्व में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यादृच्छिक रूप से प्रतिदर्श ग्रहण करने पर अथवा प्रायिकता सिद्धान्त के आधार पर प्रतिदर्श चयन करने पर प्रतिदर्श से प्राप्त प्रदत्तों पर आधारित आकलों के वितरण की संख्या ज्ञात होती है। इन्हीं वितरणों के आधार पर समष्टि के बारे में प्रायिकतापरक कथन किया जाता है। प्रायिकतापरक कथन के लिए हम आकलों के आधार पर प्राचलों का अनुमान लगाते है और यह निर्धारित करते हैं कि अनुमान के सही होने की क्या प्रायिकता है? ऐसा इसलिए करना पड़ता है कि प्रतिदर्शों का चयन करने में प्रतिदर्श चयन त्रुटियाँ होती हैं और प्रतिदर्श चयन वितरण के आधार पर किसी प्रतिदर्श से प्राप्त आकल में होने वाली त्रुटि की निर्धारण किया जाता है। प्रतिदर्श चयन त्रुटि को और अधिक स्पष्ट करने तथा प्रतिदर्श चयन वितरणों के मूल स्वरूप का विवेचन करने के लिए यह आवश्यक है कि सामान्यत: सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधान और विशेषत:

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में प्रयुक्त होने वाली सांख्यिकीयों के प्रतिदर्श चयन वितरण को ज्ञात करने की विधि और उसमें निहित तर्कों का विवचेन कर लिया जाये।

प्रतिदर्श चयन वितरण के स्वरूप को समझने के लिए उसके प्रति दो उपागमों को अपनाया जा सकता है- पहला प्रायोगिक और दूसरा सैद्धान्तिक उपागम। पहले उपयोग में किसी भी समष्टि से एक निश्चित संख्या वाले अनेक प्रतिदर्शों को लेकर उनसे प्राप्त प्रदत्तों के अलग-अलग सांख्यिकीय मान, जैसे मध्य, मध्यांक बहुलांक, प्रामाणिक विचलन, समानुपात इत्यादि की गणना कर ली जाती है और पुनः इन सांख्यिकीयों का अवृत्ति वितरण बनाया जाता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक परिमित समष्टि है जिसके सदस्यों की संख्या 12 है। इस 12 से पुनर्स्थापन रहित रीति में 5 सदस्यों के 100 प्रतिदर्श लिये गये । इन 100 प्रतिदर्शों से प्राप्त प्रदत्तों के अलग-अलग मध्यमान निकाल लिये गये । इन मध्यमानों का वितरण ''प्रायोगिक प्रतिदर्श चयन वितरण'' कहलायेगा और इस वितरण का प्रमाणिक विचलन एक प्रतिदर्श से दूसरे प्रतिदर्श के मध्यमानों के उच्चावचन का माप माना जायेगा ।

प्रायोगिक उपागम के विपरीत सैद्धान्ति उपागम के अनुसार किसी समष्टि से किसी निश्चित संख्या वाले सभी सम्भव प्रतिदर्श से प्राप्त प्रदत्तों की सांख्यिकीयों के वितरण को सैद्धान्तिक प्रतिदर्श चयन वितरण का नाम दिया जायेगा । मान लीजिए कि मात्र 12 सदस्यों वाली कोई परिमित समष्टि हैं । यह भी मान लीजिए कि इन सदस्यों के अध्ययन किये जाने वाले चर का मूल्य । से लेकर 12 तक है। इस समष्टि से 5 सदस्यों वाले प्रतिदर्श को लेकर सैद्धान्तिक प्रतिदर्श चयन वितरण तैयार करना है। इस 12 सदस्यों वाली परिमित समष्टि से 5 सदस्यों वाले प्रतिदर्श की सभी सम्भव संख्या का पता संयुक्ति सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है। संयुक्ति-सूत्र और उसके आधार पर इस उदाहरण के सभी सम्भव प्रतिदर्शो की संख्या 792 होगी। इस सूत्र से यह भी स्पष्ट है कि सभी सम्भव प्रतिदर्शों की गणना

$$\text{संयुक्ति सूत्र} = C^n_r > \frac{n!}{r!(n\,.\;r)!}$$

C^n_r = Combination of n units when r units are taken at a time

$n!$ = n factorial

$r!$ = r factorial

हिन्दी रूपान्तर

एन वस्तुओं से आर संख्या में एक साथ लेने पर संयुक्तियों की संख्या

एन फैक्टोरियल

आर फैक्टोरियल

एन ऋण आर फैक्टोरियल

प्रस्तुत उदाहरण में,

$$C_5^{12} = \frac{12!}{5!(12\ .\ 5)!}$$

$$= \frac{12 \propto 11 \propto 10 \propto 9 \propto 8 \propto 7 \propto 6 \propto 5 \propto 4 \propto 3 \propto 2 \propto 1}{(5 \propto 4 \propto 3 \propto 2 \propto 1)7 \propto 6 \propto 5 \propto 4 \propto 3 \propto 2 \propto 1}$$

$$= 11 \times 9 \times 8$$

$$= 792$$

प्रायिकता के नियम पर अधारित है। इसमें वास्तविक रूप से कोई प्रतिदर्श नहीं निकाला गया है। केवल द्विनामित वितरण में काम आने वाले सूत्र का उपयोग किया गया है। सभी सम्भव प्रतिदर्शों के मध्यमानों की भी गणना कर इनका आवृत्ति वितरण तैयार किया जा सकता है। इस वितरण का प्रामाणिक विचलन भी एक प्रतिदर्श से दूसरे प्रतिदर्श में मध्यमान के उच्चावचन का माप प्रस्तुत करता है।

प्रायोगिक उपागम और सैद्धान्तिक उपागम उपरिमित समष्टि से किसी भी संख्या में लिये जाने वाले प्रतिदर्शों के लिए लागू होता है । जब समष्टि अपरिमित रूप से बड़ी होती है तो उस समष्टि के मध्यमानों का सैद्धान्तिक प्रतिदर्श चयन वितरण उस समष्टि से अपरिमित संख्या में लिये जाने वाले निश्चित संख्या के प्रतिदर्शों का आवृत्ति वितरण होता है । सौभाग्य से अनुसन्धान में प्रयुक्त होने वाली सभी वर्णनात्मक सांख्यिकियों के सैद्धान्तिक प्रतिदर्श चयन वितरण ज्ञात है। इन्हीं प्रतिदर्श चयन वितरणों के प्रामणिक विचलन को प्रमाणिक त्रुटि का नाम दिया जाता है और जिसका उपयोग वर्णनात्मक सांख्यिकियों की विश्वसनीयता तथा टी–परीक्षण में किया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि बार–बार प्रतिदर्श ग्रहण करने पर आकलों में जो उच्चावचन पाया जाता है उसी उच्चावचन के प्रामाणिक विचलन का वर्णन प्रामाणिक त्रुटि करता है। इस प्रकार प्रामाणिक त्रुटि वस्तुत: समष्टि प्राचल है । इसकी गणना भी एक ही प्रतिदर्श से प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर कर ली जाती है। प्रत्येक सांख्यिकी की प्रामाणिक त्रुटि को ज्ञात करने के लिए सांयिकीविदों ने सूत्रों का निर्माण किया है।

अपरिमित रूप से वृहद समष्टियों से 30 से कम संख्या वाले प्रतिदर्शों के मध्यमानों के सैद्धान्तिक प्रतिदर्श चयन वितरण को टी–वितरण और 30 से अधिक संख्या वाले प्रतिदर्शो के मध्यमानों का वितरण प्रवशत–वितरण बन जाता है। इसी प्रकार प्रामाणिक विचलनों के भी सैद्धान्तिक प्रतिदर्श चयन वितरण ज्ञात हैं। इसे एफ–वितरण कहा जाता है । काई–वर्ग का वितरण भी ज्ञात है। यहाँ पर कुछ सांख्यिकियों के प्रतिदर्श चयन वितरण के स्वरूप और उनकी विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

यादृच्छिक प्रतिदर्श के मध्यमानों का प्रतिदर्श चयन वितरण

सामान्यत: समष्टि में सामाजिक विज्ञानों से और विशेषत: मनोविज्ञान से सम्बन्धित गोचरों का वितरण प्रकृत होता है। सांख्यिकी का प्रत्येक विद्यार्थी प्राकृत वितरण वक्र के गुण–धर्मों से परिचित है। गणितीय सांख्यिकीविदों ने निर्विवाद रूप से यह प्रदर्शित किया है कि अपरिमित रूप से अनेक

NOTES

प्रतिदर्शों के मध्यमानों को लेकर आवृत्ति वितरण तैयार करने पर प्राप्त वितरण प्राकृत प्रायिकता वक्र का रूप ग्रहण करता है। थोड़ा-सा भी विचार करने पर यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि किसी समष्टि से अनेक यादृच्छिक प्रतिदर्शों के मध्यमानों में पायी जाने वाली विचारणशीलता दो बातों पर निर्भर करती है । पहली बात तो यह है कि जिन लब्धांकों से मध्यमान निकाला गया है, समष्टि में उन लब्धांकों की विचरणशीलता कितनी है। दूसरी बात यह है कि प्रतिदर्श का आकार अर्थात् प्रतिदर्श में लिये गये इकाइयों की संख्या (N) क्या है सांख्यिकीविदों ने प्रदर्शित किया है कि समष्टि में पाये जाने वाले लब्धांकों में पायी जाने वाली विचरणशीलता जितनी अधिक होती है उस समष्टि से लिये गये प्रतिदर्श लब्धांकों के मध्यमानों में भी उतनी ही अधिक विचरणशीलता पायी जाती है। दूसरी ओर समष्टि से लिये जाने वाले प्रतिदर्शो का आकार अथवा इकाइयों की संख्या जितनी अधिक होती है प्रतिदर्शो के मध्यमान मूल्यों की विचरणशीलता उतनी ही कम होती है। इसी बात को अधिक परिशुद्ध भाषा में इस प्रकार से कहा जाता है; प्रतिदर्शों से प्राप्त मध्यमान मूल्यों की विचरणशीलता समष्टि में पायी जाने वाली विचरणशीलता की मात्रा से प्रत्यक्ष रूप से अनुपात तथा प्रतिदर्श आकार के विलोमी अनुपात में होती है । यही बात प्रसरण के लिए लागू होती है । मध्यमानों के प्रतिदर्श चयन वितरण का प्रसरण समष्टि में पाये जाने वाले प्रसरण का प्रत्यक्ष अनुपात और प्रतिदर्श आकार का विलोमी आकार होता है । मध्यमानों के प्रतिदर्श चयन वितरण की इस विशेषता को एक सामान्य नियम के रूप में व्यक्त किया है । इसी सूत्र के आधार पर

नियम-1 - म्यू (u) मध्यमान और सिग्मा वर्ग (Q^2) प्रसरण वाली प्रकृत रूप से वितरित समष्टि से N इकाई वाले यादृच्छिक प्रतिदर्शों के मध्यमानों का प्रतिदर्श चयन वितरण प्रकृत रूप से वितरित होता है । इस नियम को सूत्र रूप में अधोलिखित प्रकार से लिया जाता है-

$$= \tau_{x}^{2} > \frac{\tau^{2}}{N}$$

τ_{x}^{2} = मध्यमानों के प्रतिदर्श वितरण का प्रसारण

(सिग्मा स्क्वेयर्ड विद सबस्क्रिप्ट एक्स बार)

σ^2 = समष्टि में लब्धाकों का प्रसरण

N = प्रतिदर्श का आकार अथवा इकाइयों की संख्या मध्यमानों के प्रतिदर्श

चयन वितरण का प्रामाणिक विचलन अधोलिखित सूत्र से ज्ञात हो सकता है ।

$$= \tau_{\bar{x}} > \frac{\tau}{\sqrt{N}}$$

मध्यमानों के प्रतिदर्श चयन वितरण के मध्यमान और प्रामाणिक विचलन का आकलन करने के लिए सांख्यिकीविदों ने बताया है कि, प्रतिदर्श चयन वितरण का मध्यमान समष्टि मध्यमान के बराबर होता है और प्रतिदर्श चयन वितरण का उपरोक्त सूत्र के द्वारा व्यक्त होता है।

यदि यह जानकारी हो कि समष्टि में अध्ययन किये जाने वाले गोचर का वितरण प्रकृत है तो यह मान लिया जाता है कि मध्यमानों का प्रतिदर्श चयन वितरण भी प्रकृत होगा। सामाजिक विज्ञानों में अनेक

स्थितियाँ ऐसी आती है जिनमें इस मान्यता के ठोस आधार होते हैं कि प्राकृत में अध्ययन किये जाने वाले गोचर अथवा चर का वितरण प्राकृत प्रायिकता वक्र से भिन्न है। इन स्थितियों में भी सांख्यिकीविदों ने प्रदर्शित किया है कि मध्यमानों का प्रतिदर्श चयन वितरण का प्रसरण जैसे-जैसे प्रतिदर्श की इकाइयों की संख्या बढ़ती जाती है समष्टि प्रसरण के प्रतिदर्श संख्या के भजनफल के बराबर हो जाता है यही बात उपरोक्त नियम में स्पष्ट गयी है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. समष्टि, प्रतिदर्श तथा इकाई की सविस्तार व्याख्या कीजिए ।
2. प्रायिकता प्रतिदर्श चयन की विस्तृत विवेचना कीजिए ।
3. प्रतिदर्श चयन वितरण से आप क्या समझते है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सरल यादृच्छिक प्रतिदर्श से आप क्या समझते है?
2. स्तरित प्रतिदर्श चयन को स्पष्ट कीजिए ।
3. यादृच्छिक प्रतिदर्श के माध्यमानों के चयन वितरण को स्पष्ट कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. प्रतिदर्श चयन की विधियाँ हैं-

   (अ) चार (ब) छः

   (स) पाँच (द) सात ।

2. यादृच्छिक प्रतिदर्श मुख्यत: प्रकार के होते है-

   (अ) 8 (ब) 5

   (स) 9 (द) 6

3. अनुसंन्धान पद्धति के तकनीकी पद हैं-

   (अ) समष्टि (ब) प्रतिदर्श

   (स) इकाई (द) ये सभी ।

उत्तर- (1) अ (2) ब (3) द

9 प्रश्नावली एवं अनुसूची

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य ।
- प्राक्कथन ।
- प्रश्नावली के प्रकार ।
- प्रश्नावली की विशेषताएँ ।
- प्रश्नावली की रचना ।
- प्रश्नों की प्रकृति ।
- प्रश्नावली का बाह्य तथा भौतिक पक्ष ।
- प्रश्नावली का प्रयोग ।
- प्रश्नावली की विश्वसनीयता ।
- प्रश्नावली के गुण ।
- प्रश्नावली की सीमाएँ ।
- अनुसूची की प्रस्तावना ।
- अनुसूचियों के प्रकार ।
- अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया ।
- अनुसूची की अन्तरवस्तु ।
- प्रश्नों की विशेषताएँ ।
- अनुसूची द्वारा सूचना प्राप्त करना ।
- अनुसूची का सम्पादन ।
- अनुसूची के गुण ।
- अनुसूची के दोष
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- प्रश्नावली के प्रकार ।
- प्रश्नावली की विशेषताएँ ।
- प्रश्नावली की रचना ।
- प्रश्नों की प्रकृति ।
- प्रश्नावली का बाह्य तथा भौतिक पक्ष ।
- प्रश्नावली का प्रयोग ।
- प्रश्नावली की विश्वसनीयता ।
- प्रश्नावली के गुण ।
- प्रश्नावली की सीमाएँ ।

NOTES

- अनुसूची की प्रस्तावना ।
- अनुसूचियों के प्रकार ।
- अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया ।
- अनुसूची की अन्तरवस्तु ।
- प्रश्नों की विशेषताएँ ।
- अनुसूची द्वारा सूचना प्राप्त करना ।
- अनुसूची का सम्पादन ।
- अनुसूची के गुण ।
- अनुसूची के दोष ।

प्राक्कथन

सामाजिक अनुसंधान में तथ्यों के संकलन की विभिन्न प्रवधियों के अन्तर्गत प्रश्नावली एक महत्वपूर्ण प्रविधि है । प्रश्नावली ऐसा प्रपत्र है, जिसमें विषय से सम्बन्धित प्रश्न क्रमानुसार लिखे हुए होते हैं। अध्ययनकर्त्ता को डाक अथवा अन्य किसी साधन से उत्तरदाता इस प्रपत्र को भरकर वापस अध्यनकर्त्ता को लौटा देता है । जब अध्ययन विषय, विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है और जिसमें प्रत्यक्षत: सम्पर्क द्वारा सूचनाएँ प्राप्त करना कठिन कार्य होता है तो, ऐसी स्थिति में प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है। गुडे एवं हॉट ''मैथड्स इन सोशियल रिसर्च'' के अनुसार, ''सामान्यत: प्रश्नावली शब्द एक ऐसी विधि की ओर संकेत देता है जिसमें एक सूची (फर्म) के प्रयोग द्वारा प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जाते हैं, जिसे सूचनादाता स्वयं भरता है।'' ई. बोगार्डस: ''सोशियोलोजी'' के अनुसार, ''प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए प्रेषित की एक सूची है।''

प्रश्नावली डाक से भेजी जाती है, इसलिए इसे 'डाक प्रश्नावली' भी कहा जाता है । इसे भेजने के लिए तीन तरीके हैं–

- डाक में,
- किसी अन्य माध्यम, जैसे व्यक्ति द्वारा, तथा
- अनुसंधानकर्त्ता स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर प्रश्नावली वितरित कर सकता है। तथापि व्यक्तिश: उपस्थित होने के बावजूद भी, वह उत्तरदाता की कोई सहायता नहीं करता है।

प्रश्नावली उन अध्ययनों में काम आती है जिनका विषय स्पष्ट: परिसीमित है तथा उत्तरदाता शिक्षित होने के साथ ही दूर-दूर तक बिखरे हुए होते हैं । इस प्रकार मुख्य रूप से, प्रश्नावली प्राथमिक समकों तथा जानकारियों के संकलन की एक अप्रत्यक्ष, प्रविधि है, अर्थात् इसके माध्यम से सम्बन्धित उत्तरदाताओं से अप्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा वांक्षित जानकारियाँ संकलित की जाती है ।

प्रश्नावली के प्रकार

प्रश्नावली की रचना, विषय-वस्तु, प्रश्नों की प्रकृति आदि के आधार पर प्रश्नावली को विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जाता है । जी.ए. लुण्डबर्ग ''सोशियल रिसर्च'' ने मुख्य रूप से प्रश्नावली के दो प्रकार बताइए हैं-

1. **तथ्य सम्बन्धी प्रश्नावली**-इस प्रश्नावली का उपयोग किसी समूह की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों से सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह करने के लिए किया जाता है । किसी व्यक्ति की आय, आयु, जाति, शिक्षा, विवाह, व्यवसाय, पारिवारिक रचना आदि के बारे में सूचना संकलित करने के लिए इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है । उदाहरण के लिये-

   (अ) वैवाहिक प्रस्थिति / विवाहित/ अविवाहित/विधवा/विधुर/ तलाकशुदा

   (ब) पारिवारिक रचना-एकल/संयुक्त

2. **मत एवं मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली**- किसी विषय पर सूचनादाता की रुचि, राय, मत, विचारधारा, विश्वास एवं दृष्टिकोण जानना चाहते हैं तो इस प्रकार प्रश्नावली का प्रयोग होता है ।

   उदाहरणार्थ

   (अ) आप दूरदर्शन पर कौन से कार्यक्रम देखना पंसद करते हैं ?

   (ब) क्या आप विधवा पुर्नविवाह के पक्ष में हैं ?

पी.वी.यंग ''साइन्टिफिक सोशियल सर्वे एण्ड रिसर्च'' में प्रश्नावली के दो प्रकार बताये हैं-

1. **संरचित प्रश्नावली**- इसकी रचना अनुसंधान प्रारम्भ करने से पूर्व कर ली जाती है । इसमें प्रश्नों की भाषा, शब्द, वाक्य, आदि पहले से ही तय कर लिये जाते हैं, जिसमें अनुसंधानकर्त्ता को अनुसंधान के समय परिवर्तन करने की कोई छूट नहीं होती है ।

2. **असंरचित प्रश्नावली**- इसके अन्तर्गत प्रश्नों को पहले से नहीं बनाया जाता है, बल्कि मात्रा अध्ययन विषय, क्षेत्र आदि के सम्बन्ध में उल्लेख होता है, जिनके बारे में सूचनाएँ संकलित करनी होती हैं । इस आधार से असंरचित प्रश्नावली साक्षात्कार-पथ प्रदर्शिका के समान होती है। अंतर यह है कि जहाँ साक्षात्कार निर्देशिका साक्षात्कार का मार्गदर्शन करता है। असंरचित प्रश्नावली उत्तरदाता को मार्गदर्शन प्रदान करती है ।

इसके अतिरिक्त प्रश्नावली के कुछ और भी प्रकार हैं-

1. **बन्द प्रश्नावली**- इस प्रश्नावली में, प्रश्नों के सामने ही कुछ पूर्व निश्चित वैकल्पिक उत्तर करते समय यह देखना चाहिए कि वह विषय के बारे में सूचना संकलित करने में कितना सहायक होगा। समग्र रूप में, प्रश्नों के निर्माण के समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

   (1) प्रश्न की स्पष्टता एवं विशिष्ट - प्रश्नावली को उत्तरदाता द्वारा बिना किसी प्रगणक की सहायता के स्वयं ही भरना होता है। अत: प्रश्न स्पष्ट एवं सरल होने चाहिए, जिन्हें

उत्तरदाता उसी अर्थ में समझे जिस अर्थ में वे पूछे गये हैं। अप्रचलित, भावात्मक, सापेक्षिक, दोषपूर्ण एवं बहुअर्थक शब्दों से बचना चाहिए । जैसे यह प्रश्न पूछना, ''क्या आप निम्न, धनी वर्ग के हैं?'' उत्तरदाता के लिये अनेकार्थी होगा । यह पूछना सही होगा कि ''आपकी मासिक पारिवारिक आय क्या है ?''

(2) **इकाईयों की स्पष्ट परिभाषा** – ऐसा न होने पर प्रत्येक उत्तरदाता इनका भिन्न-भिन्न अर्थ लगा सकता है, और उनके उत्तर भी अलग-अलग हो सकते हैं। जैसे, यह प्रश्न करना कि ''आपके परिवार में प्रौढ़ व्यक्ति कितने हैं?'' इसके स्थान पर यह प्रश्न किया जाना चाहिए कि ''आपके परिवार में अमुक आयु के व्यक्ति कितने है?''

(3) **सही सूचना प्राप्त करने योग्य प्रश्न** – उत्तम प्रश्न वे होते हैं जो सही एवं स्पष्ट सूचना प्राप्त करने में सहायक होते हैं। प्रश्न ऐसे हो जिनसे कि व्यक्ति सही स्थिति को छिपा नहीं सके। जैसे- ''आपने कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है ?''

(4) **संक्षिप्त एवं श्रेणीबद्ध उत्तर** – प्रश्नावली में प्रश्न इस प्रकार के होने चाहिए जिनका उत्तर संक्षिप्त एवं श्रैणीबद्ध रूप में प्राप्त किया जा सके। उदाहरण के लिए, व्यक्ति की वैवाहिक प्रस्थित को ज्ञात करने के लिए सामान्यत: संभावित विकल्पों, विवाहित, परित्यक्त, तलाकशुदा, पुन: विवाहित, विधवा तथा विधुर में से उत्तरदाता को किसी एक के आगे निशान लगाना होता है।

(5) **कम प्रश्न** – प्रश्नों की संख्या यथा संभव, कम होनी चाहिए। अधिक प्रश्नों वाली प्रश्नावालियों के भरकर लौट आने की सम्भावना कम होती है, क्योंकि उन्हें भरने में उत्तरदाता बोरियत महसूस करता है। साथ ही, लम्बी प्रश्नावलियों में समय, श्रम एवं धन भी अधिक खर्च होता है ।

(6) **गणना** – प्रश्नावली में इस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनकी गणना वर्गीकरण एवं सारणीयन सरलता से किया जा सके । अधिकाशत: प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में होने पर इन संदर्भो में आसानी रहती है ।

(7) **गुप्त सूचनाएं** – प्रश्नावली में सूचनादाता से सम्बन्धित गुप्त सूचनाओं को जानने वाले प्रश्न सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिए, क्योंकि ऐसे प्रश्नों का उत्तर वह नहीं देना चाहेगा। यौन व्यवहार, अपराधी प्रवृत्ति, व्यापारिक रहस्यों आदि से सम्बन्धित प्रश्न इसी प्रकार के होते हैं ।

(8) **अत्यधिक गहन सूचनाएँ** – प्रश्नावली के अन्तर्गत इस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए जो व्यक्ति के बारे में गहन सूचना प्राप्त करने वाले हों। इससे व्यक्ति के नाराज होने की सम्भावना रहती है। उदाहरण के लिए, व्यक्ति से उसके पारिवारिक कलह, पत्नी से सम्बन्ध, रिश्वत आदि के बारे में प्रश्न करने पर उसके क्रोधित होने की सम्भावना रहती है।

(9) **पथ-प्रदर्शक प्रश्नों के बचाव** – प्रश्नावली में ऐसे प्रश्नों से बचा जाना चाहिए जो स्वयं उत्तरों की ओर संकेत करते हों। जैसे ''क्या आप दहेज प्रथा के पक्ष में हैं?''

''क्या आप अंतरजातीय विवाह के पक्ष में हैं? इन प्रश्नों में अन्तनिहित सकारात्मक पक्ष उत्तरदाता को सहज ही प्रभावित कर सकता है ।

NOTES

(10) कल्पनात्मक प्रश्न – प्रश्नावली में ऐसे प्रश्नों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए जिनका सम्बन्ध वास्तविकता से न होकर कल्पना से हो। जैसे ''आप अमेरिका के राष्ट्रपति बनना चाहते हैं।''

(11) व्यंग्यात्मक प्रश्नों से बचाव – प्रश्नावली में इस प्रकार के प्रश्न नहीं होने चाहिए जो लिखे हुए होते हैं, और उत्तरदाता को उनमें से ही उत्तर छाँटकर लिखने होते हैं । उत्तरदाता को स्वतन्त्र मत देने की पूर्ण छूट नहीं होती है । अक्सर ही, इस प्रश्नावली में उत्तरदाता को हाँ या नहीं में उत्तर देने होते हैं । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

(अ) क्या आप इन्टरनेट के बारे में जानते हैं ? हाँ / नहीं

(ब) आप इन्टरनेट का कितना प्रयोग करते हैं ?

नियमित रूप से / कभी–कभी/ शायद ही कभी / कभी नहीं

(12) खुली (मुक्त) प्रश्नावली – जिन प्रश्नावलियों में उत्तरदाताओं को अपना उत्तर व्यक्त करने में पूर्ण स्वतन्त्रता हो, उसे खुली प्रश्नावली कहते हैं । वह अपनी स्वेच्छा से उत्तर दे सकता है, उस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता है जैसे–

(अ) दहेज प्रथा की समाप्ति कैसे की जा सकती है ?

(ब) भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम के असफल होने के क्या कारण हैं ?

(13) चित्रमय प्रश्नावली – इस प्रश्नावली में समस्त या कुछ प्रश्नों के सम्भावित उत्तर चित्रों के रूप में छाप दिये जाते हैं। सूचनादाता इनमें से किसी एक पर निशान लगाकर अपना उत्तर व्यक्त कर देता है । ये प्रश्नावलियाँ बड़ी आकर्षक होती हैं, तथा अशिक्षित व बच्चे भी अपने उत्तर अंकित कर सकते हैं ।

(14) मिश्रित प्रश्नावली – इसमें प्रश्नावलियों के विभिन्न प्रकारों को सम्मिलित किया जाता है। कुछ सामाजिक प्रघटनाएं इतनी जटिल होती हैं कि उनके बारे में जानकारी किसी एक निश्चित प्रश्नावली द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती है, अतः सुविधा व उपयोगिता की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की प्रश्नावलियोंको सम्मिलित किया जाना आवश्यक हो जाता है ।

प्रश्नावली की विशेषताएँ

1. प्रश्नों की संख्या आवश्यकता से अधिक नहीं होनी चाहिए ।
2. यथासम्भव तौर पर, प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जा सकता है।
3. प्रश्न, सरल, स्पष्ट और निश्चित अर्थ वाले होने चाहिए ।

4. व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना न हो, ऐसे प्रश्नों की रचना होनी चाहिए।

5. प्रश्न अशिष्ट नहीं होने चाहिए।

6. प्रश्न इस प्रकार के होने चाहिए जिनसे सूचनाएं स्पष्ट रूप में हो सके।

प्रश्नावली की रचना

प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर सूचनादाता बिना अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता के देता है, इसलिए प्रश्नावली के निर्माण में अधिक सावधानी व सतर्कता की आवश्यकता होती है । वर्गीकरण में सुविधा हो, इस दृष्टि से भी प्रश्नावली को सरल एवं स्पष्ट बनाया जाना चाहिए । प्रश्नावली की रचना में तीन बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए : 1. अध्ययन की समस्या 2. प्रश्नों की उपयुक्तता, प्रकृति एवं शब्दावली 3. प्रश्नावली की ब्राह्य आकृति अथवा भौतिक पक्ष । इन्हें इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है ।

अध्ययन की समस्या

प्रश्नों की रचना करने से पूर्व यह आवश्यक है कि 1. समस्या के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया जाए जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि समस्या के किन पक्षों से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त की जानी हैं। 2. अनुसन्धानकर्ता के पूर्व अनुभवों का उपयोग प्रश्नों के निर्माण में करना चाहिए जिससे कि उपयुक्त प्रश्नों के सम्मिलित होने की सम्भावना रहे । 3. प्रश्नावली की रचना करते समय अध्ययन क्षेत्र को भौतिक सीमाओं के साथ ही सूचनादाता के विस्तार को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

प्रश्नों की उपयुक्तता, प्रकृति एवं शब्दावली

प्रश्नावली में किसी भी प्रश्न को सम्मिलित सूचनादाता पर व्यंग्य करते हों । ऐसी स्थिति में प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना सम्भव नहीं रहता है ।

प्रश्नों को क्रमबद्ध करना

1. प्रश्नों को समूह, अध्ययन के अन्तर्गत विषय से सम्बद्ध होना चाहिए । जैसे– ''वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कमियाँ'' विषय होने पर प्रश्न होने पर प्रश्न हो सकता है– अध्यापकों के कक्षाओं में पढ़ाने में नियमितता से आप कितने संतुष्ट हैं, (पूर्ण संतुष्ट/संतुष्ट/असंतुष्ट/ पूर्णतया असंतुष्ट) उत्तरदाता जब एक बार अध्ययन के उद्देश्यों के विषय में निश्चित हो जाये तो वे अन्य प्रश्नों का जवाब भी देंगे ।

2. प्रश्न सर्वाधिक परिचित विषय से, कम परिचित विषय की ओर अग्रसर होने चाहिए । सबसे पहले उत्तरदाता की स्वयं की भावनाओं के बारे में प्रश्न पूछे जाने चाहिए बाद में अन्य जैसे छात्रों, अध्यापकों, प्रशासकों आदि की भावनाओं के विषय में।

3. बहुत सामान्य प्रश्नों को टोलें, इस प्रकार के प्रश्न ''आपने कम्प्यूटर पर काम करना कब से प्रारम्भ किया ?'' एक बहुत सामान्य प्रश्न है । उचित प्रश्न होगा, ''जब आप दसवीं कक्षा में थे तब क्या आपको कम्प्यूटर पर काम करने में रुचि थी ?''

4. सरलता से उत्तर दिये जाने योग्य प्रश्नों को पहले रखें– जब प्रारम्भ में ही कठिन प्रश्न पूछे जाते हैं तो उत्तरदाता थकान महसूस करता है, हो सकता है वह गम्भीरता से प्रश्नों के उत्तर न दे। आयु आय, व्यवसाय, जाति, शिक्षा, वैवाहिक स्थिति, निवास, पृष्ठभूमि आदि से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर आसानी से दिये जा सकते हैं ।

5. संवेदनशील प्रश्नों को मध्य में रखा जाये, राजनैतिक भ्रष्टाचार के प्रति दृष्टिकोण, सरकार की शिक्षा नीति, व्यवसायिक शिक्षा की गुणवत्ता के सुधार के लिये प्रोत्साहन, आरक्षण नीति का पुनरावलोकन आदि से सम्बन्धित प्रश्न मध्य में रखे जाने चाहिए, जिससे उत्तरदाता इन पर अधिक ध्यान देने का इच्छुक हो और ठीक के प्रश्नों के उत्तर देने में थकान महसूस न करे ।

6. एक से दिखाई देने वाले प्रश्नों को एक स्थान पर रखने से बचें ।

7. प्रश्नों को तर्कसंगत क्रय में रखें। जैसे परिवार पर प्रश्न पूछने के बाद देश की ज्वलंत समस्याओं पर, उत्तरदाताओं की व्यावसायिक आकांक्षाओं पर, राज्य में साम्प्रदायिक दंगों पर, राजनैतिक अभिजात वर्ग की कार्यप्रणाली आदि, यह प्रश्नों का तर्क संगत क्रम नहीं है ।

प्रश्नावली का बाह्य अथवा भौतिक पक्ष

प्रश्नावली की सफलता केवल प्रश्नों की भाषा एवं शब्दों पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि उसकी भौतिक बनावट पर भी निर्भर करती है। चूंकि प्रश्नावली भरते समय अनुसन्धानकर्त्ता उपस्थित नहीं होता है, अत: सूचनादाता का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रश्नावली की भौतिक बनावट जैसे उसका कागज, आकार छपाई, रूपरंग, लम्बाई आदि आकर्षक होनी चाहिए। प्रश्नावली के भौतिक पक्ष में निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

1. **आकार** – सामान्यत: प्रश्नावली बनाने के लिए कागज का आकार 8"X12 अथवा 9"X11" का होना चाहिए जिन्हें सरलता से मोड़कर लम्बे लिफाफों में रखा जा सके, किन्तु वर्तमान में छोटे आकार की प्रश्नावली जो कि पोस्टकार्ड साइज में होती है, का प्रचलन भी बढ़ा है । कम पृष्ठों की प्रश्नावली होने पर उसका डाक व्यय भी कम लगता है तथा उसके भरकर लौट आने की सम्भावना भी अधिक रहती है ।

2. **कागज** – प्रश्नावली के लिए प्रयोग किए जाने वाला कागज भी कड़ा, चिकना, मजबूत एवं टिकाऊ होना चाहिए । जहाँ तक हो कागज रंगीन तथा ध्यान आकर्षित करने वाला होना चाहिए। विभिन्न प्रकार के विषयों से सम्बन्धित प्रश्नावलियों में भिन्न–भिन्न रंगों के कागज का प्रयोग करने से उनकी छंटाई आसानी से हो जाती है । कागज पतला होने पर डाक व्यय भी कम लगता है।

3. **छपाई** – प्रश्नावलियों को छपाया जा सकता है अथवा साइक्लास्टाइल कराया जा सकता है। छपाई स्पष्ट व शुद्ध होनी चाहिए जिससे उन्हें आसानी से पढ़ा जा सके। आकर्षक छपाई सूचनादाता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती है।

4. **प्रश्नावली की लम्बाई** – प्रश्नावली अत्यधिक लम्बी भी नहीं होनी चाहिए जिसे भरने में उत्तरदाता को ऊब और नीरसता महसूस हो सामान्यत: आधे घण्टे में भरी जाने वाली प्रश्नावलियाँ उपयुक्त मानी जाती हैं।

5. **हाशिया एवं जगह छोड़ना** - प्रश्नावली का निर्माण करते समय बाई और 3/8'' एवं दायीं और 1/5'' अथवा 1/6'' हाशिए का छोड़ना आवश्यक है । इससे प्रश्नावली आकर्षक बन जाती है और आवश्यकता पड़ने पर हाशिए में टिप्पणी भी अंकित की जा सकती है, इसमें कागज को पंच कर फाइल करने में भी सुविधा होती है । प्रश्नावली को छापते समय अक्षरों तथा प्रश्नों के मध्य पर्याप्त जगह छोड़नी चाहिए ताकि पढ़ने में सुविधा हो तथा मुक्त प्रश्नों के उत्तर लिखे जा सकें ।

6. **प्रसंगों (मदों) की व्यवस्था** - एक विषय से सम्बन्धित सभी प्रश्नों को एक साथ एक क्रम में लिखा जाना चाहिए, और यदि प्रश्नों की संख्या अधिक हो तो उन्हें व्यवस्थित करके विभिन्न समूहों में विभाजित कर देना चाहिए ताकि उनके सम्पादन में अधिक समय, श्रम व धन नहीं लगाना पड़े ।

प्रश्नावली का प्रयोग

प्रश्नावली के प्रयोग की समस्त प्रक्रिया को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है- 1. पूर्व-परीक्षण, 2. सहगामी-पत्र 3. डाक द्वारा प्रेषण, तथा 4. अनुगामी - पत्र ।

पूर्व परीक्षण

प्रश्नावली का निर्माण हो जाने के पश्चात तथा डाक द्वारा इसे भेजने के पूर्व इसकी जाँच एक छोटे निदर्शन को मानकर कर लेनी चाहिए जिससे इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के संदेह की स्थिति न रहे। पूर्व परीक्षण में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं-

(i) परीक्षण प्रणाली वास्तविक प्रणाली से पूर्णतया मिलती-जुलती होनी चाहिए ।

(ii) इसे समग्र के प्रतिनिधियों अथवा निदर्शन-समूह के सदस्यों को भेजा जाना चाहिए ।

(iii) इसे कम संख्या में छपवाया जाना चाहिए ।

(iv) लघुकार निदर्शन-समूह के उत्तरों एवं कठिनाइयों के आधार पर इसमें सुधार किया जाना चाहिए ।

(v) यदि इसमें अधिक परिवर्तन किए गए हैं तो इसका पुन: पूर्व परीक्षण कर लिया जाना चाहिए। पूर्व परीक्षण द्वारा ऐसे प्रश्नों की जानकारी हो जायेगी जिनके विषय में उत्तरदाता ''मैं नहीं जानता'' अथवा ''पता नहीं'' आदि लिखते हैं। उत्तरदाता की योग्यता व उत्सुकता का ज्ञान हो जाता है तथा विश्वसनीयता व प्रमाणिकता में वृद्धि होती है।

सहगामी-पत्र

प्रत्येक प्रश्नावली के साथ एक छपा हुआ सहगामी-पत्र संलग्न कर देना चाहिए । इस पत्र में आयोजित अध्ययन के उद्देश्य तथा सूचनादाता के सहयोग पर प्रकाश डाला जाना चाहिए। प्रश्नावली को यथाशीघ्र भरकर लौटा देने का भी अनुरोध किया जाना चाहिए। इस पत्र में अध्ययनकर्त्ता का नाम,

उसका विभाग, सम्बन्धित व्यक्तियों का उल्लेख, अध्ययन के उद्देश्य, आदि का विवरण देना चाहिए। साथ ही यह भी लिखा जाना चाहिए कि प्राप्त सूचनाएँ गुप्त रखी जाएंगी। इस प्रकार सहभागी पत्र में निम्नलिखित बिन्दु होते हैं–

1. अनुसंधानकर्त्ता व अनुसंधान प्रायोजक की पहचान ।
2. अध्ययन के सामाजिक महत्व को दर्शाया जाना ।
3. अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य बताना ।
4. अज्ञानता तथा गोपनीयता के प्रति आश्वस्त करना ।
5. प्रश्नावली भरने के लिये अनुमानित आवश्यक समय बिताना ।

पत्र के अंत में उत्तरदाता के सहयोग के प्रति आभार प्रकट किया जाना चाहिए । पत्र छोटा, आकर्षक तथा प्रभावशाली होना चाहिए ।

- सूचनादाताओं के पतें पूरे ....
- प्रश्नावलियाँ ऐसे समय उनके पास पहुँचे जब वे ....
- अपना पता लिखा व टिकट लगा लिफाफा साथ में संलग्न करना चाहिए ।

अनुगामी–पत्र

अनुगामी पत्रों का प्रयोग उत्तरदाता को उत्तर देने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से किया जाता है । प्राय: ऐसा देखने में आता है कि सामाजिक सर्वेक्षणों में सूचनादाता प्रश्नावलियों को भरकर नहीं लौटाते हैं । अनुगामी पत्र भेजने की आवृत्ति इस प्रकार बताई गयी है– (i) प्रथम अनुगामी पत्र 18 दिन पश्चात (ii) द्वितीय अनुगामी–पत्र प्रथम अनुगामी–पत्र के एक सप्ताह बाद, (iii) तृतीय अनुगामी–पत्र द्वितीय पत्र के दो सप्ताह के बाद भेजना चाहिए । इस पर भी सूचना न मिले तो सूचनादाता का नाम ही सूची से हटा देना चाहिए ।

प्रश्नावली की विश्वसनीयता

उत्तरदाताओं ने जो कुछ सूचनाएँ दी है, वे कहाँ तक विश्वसनीय हैं, इस प्रश्न पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । विश्वसनीयता का पता तभी लग जाता है जब अधिकतर प्रश्नों के अर्थ अलग–अलग लगाए गए हों, ऐसी स्थिति में शंका उत्पन्न होती है ।

अविश्सनीयता की समस्या निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती हैं–

1. **गलत एवं असंगत प्रश्न** – जब गलत और असंगत प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित किया जाता है, तो उनके उत्तर भी उत्तरदाता अपने अपने दृष्टिकोण से देते हैं। ऐसी स्थिति में उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचनाएँ विश्वसनीय नहीं हो सकतीं।
2. **पक्षपात पूर्ण निदर्शन** – निदर्शन का चयन करते समय यदि सावधानी रखी गई तो, उसके परिणामों में विश्वसनीयता नहीं आ सकती है। यदि सूचनादाताओं के चयन में अनुसंधानकर्त्ता प्रभावित हुआ है, तो निश्चित रूप से प्राप्त सूचना प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकती है ।

3. **नियंत्रित व पक्षपातपर्ण उत्तर** – प्रश्नावली प्रणाली द्वारा प्राप्त उत्तर अधिकांशत: कम सही होते हैं क्योंकि कुछ लोग गोपनीय एवं व्यक्तिगत सूचनाएँ, देने से संकोच करते हैं, और अपने अर्थ से लिखकर देने से डरते हैं । अत: उनके उत्तरों में पक्षपात की भावना होती है । उनके उत्तरों में या तो तीव्र आलोचना मिलेगी या पूर्ण सहमति ।

4. **विश्वसनीयता की जाँच** – प्रश्नावलियों में दिए गए उत्तरों में विश्वसनीयता प्राय: कम पाई जाती है इसलिए उनकी जाँच कर लेनी चाहिए । इसके तरीके निम्नवत हैं–

   (i) **प्रश्नावलियों को पुन: भेजना** – विश्वसनीयता की जाँच के लिए प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के पास पुन: भेज देना चाहिए। यदि उनके स्तर इस बार भी पहले की तरह मेल खाते हैं तो प्राप्त सूचना पर विश्वास किया जा सकता है। यह जाँच तभी उपयोगी सिद्ध हो सकती है जब उत्तरदाता की सामाजिक, आर्थिक या मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन न हुआ हो।

   (ii) **समान वर्गों का अध्ययन** – विश्वसनीयता की जाँच के लिए वही प्रश्नावली अन्य समान वर्गो के पास भेजी जाये। यदि उनसे प्राप्त उत्तरों और पहले वाले वर्गों द्वारा दिए गए उत्तरों में समानता है तो दी गई सूचना पर विश्वास किया जा सकता है । यदि दोनों में काफी अन्तर है तो विश्वास नहीं किया जा सकता ।

   (iii) **उपनिदर्शन का प्रयोग करना** – यह भी जाँच करने की एक महत्वपूर्ण विधि है । प्रमुख निदर्शन में से एक उपनिदर्शन का चयन, कर प्रश्नावली की जाँच की जा सकती है। उपनिदर्शन से प्राप्त सूचनाओं और प्रमुख निदर्शन से प्राप्त सूचनाओं में यदि काफी अन्तर पाया जाता है तो इसे विश्वसनीय समझा जाएगा ।

   (iv) **अन्य तरीकें** – प्रश्न पद्धतियों में साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रत्यक्ष निरीक्षण को सम्मिलित किया जा सकता है। इन विधियों द्वारा प्रश्नों के उत्तर समान हों तो प्रश्नावली को विश्वसनीय समझा जाएगा, अन्यथा नहीं ।

प्रश्नावली के गुण

प्राथमिक तथ्यों को प्राप्त करने में प्रश्नावली – प्रणाली बहुत उपयोगी है । इसके गुणों के कारण तथ्यों को आसानी से एकत्र किया जा सकता है । इसके प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

   (i) **विशाल अध्ययन** – इस पद्धति द्वारा विशाल जनसंख्या का अध्ययन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। अन्य प्रणालियों में विशाल समूह के अध्ययन के लिए धन, समय और परिश्रम अधिक खर्च होता है और साथ–साथ सूचनादाताओं के पास भटकना पड़ता है। इन सभी बुराइयों से यह प्रणाली दूर है।

   (ii) **कम व्यय** – इस प्रणाली में क्षेत्रीय – कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। अत: व्यय की बचत होती है, केवल छपाई और डाक खर्च ही होता है या फिर एक या दो अन्वेषक प्रश्नावली को हाथ से बांटने के लिए नियुक्त किये जा सकते हैं।

(iii) **सुविधाजनक** – इस प्रणाली की सबसे प्रमुख सुविधा यह है कि सूचनाओं को कम समय के अन्दर प्राप्त कर लिया जाता है। प्रश्नावलियों को उत्तदाताओं के पास भेज दिया जाता है और कुछ ही समय के भीतर इनको उत्तरदाता सूचना सहित भेज देते हैं। अनुसूची, साक्षात्कार आदि प्रणालियों में अध्ययनकर्त्ता स्वयं को व्यक्तिगत रूप से जाना पड़ता है और सूचना एकत्र करनी पड़ती है । अत: इस समस्या से बचने के लिए प्रश्नावली प्रणाली बड़ी सुविधाजनक है।

(iv) **पुनरावृत्ति की संभावना** – अलग-अलग समय में प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण का पता लगाने के लिए भेज दिया जाता है या कुछ ऐसे अनुसंधान होते हैं, जिनमें निश्चित समय के बाद कई बार सूचना प्राप्त करनी होती है तो उसके लिए प्रश्नावली पद्धति बड़ी उपयोगी है ।

(v) **स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सूचना** – प्रश्नों के उत्तर देने में उत्तरदाताओं को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है । इस प्रणाली में अनुसंधानकर्त्ता को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदाता के समक्ष नहीं आना पड़ता। अत: उत्तरदाता बिना संकोच के स्वतंत्र और निष्पक्ष सूचना देने का प्रयत्न करता है। साक्षात्कारकर्त्ता की अनुपस्थिति उत्तरदाता को एकान्तता का अहसास देती है और इसलिए वे उन सभी घटनाओं का विवरण देते हैं, जिन्हें अन्यथा वे प्रकट नहीं कर पाते हैं। अत: इस पद्धति द्वारा प्राप्त सूचना अधिक विश्वसनीय होती है ।

प्रश्नावली की सीमाएँ

प्रश्नावली की सीमाएँ निम्नांकित हैं-

(i) **प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की सम्भावना नहीं** – चूँकि प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित व्यक्तियों से तथ्य सामग्री प्राप्त करने के लिए किया जाता है, अत: प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शनों का चयन नहीं हो सकता है । अत: इस पद्धति में उत्तरदाता छूट जाते हैं, इसलिए चयनित प्रतिदर्श को कई बार पक्षपातपूर्ण कहा जाता है ।

(ii) **गहन अध्ययन के लिए अनुपयुक्त** – प्रश्नावली द्वारा केवल मोटे-मोटे तथ्यों को एकत्र किया जाता है । प्रश्न की गहराईयों तक नहीं पहुँचा जा सकता। साक्षात्कार द्वारा मनुष्य के मनोभाव, प्रवृत्तियों आवेगों तथा आंतरिक मूल्यों का गहराई से अध्ययन हो सकता है, जबकि प्रश्नावली द्वारा केवल सहायक सूचनाएँ प्राप्त हो सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सर्वोत्तम प्रश्नावली की अपेक्षा उत्तम साक्षात्कार द्वारा अधिक गहन अध्ययन किया जा सकता है ।

(iii) **पूर्ण सूचना की कम सम्भावना** – प्रश्नावली के सम्बन्ध में यह कटु अनुभव है कि उत्तरदाता अधिकांशत: अधिक दिलचस्पी नहीं लेते क्योंकि पहली बात तो उनका अनुसंधानकर्त्ता से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता और दूसरी बात उनका स्वयं का कोई प्रयोजन हल नहीं होता। अत: वे लापरवाही से जवाब देते हैं । आंशिक उत्तर विश्लेषण को प्रभावित करते हैं। शब्दों का अर्थ अलग-अलग लगाया जाता है, परिणाम स्वरुप उनके उत्तर विश्वसनीय नहीं होते ।

(iv) **उत्तर प्राप्ति की समस्या** – प्रश्नावलियों के उत्तर न तो समय पर आते हैं और न उनके उत्तर ही सही आते हैं । बार-बार याद दिलाने पर भी वे समय पर नहीं लौटाई जाती। आमतौर पर

30 या 40 प्रतिशत प्रश्नावलियाँ ही वापस आती हैं। अत: कई बार अनुसंधानकर्त्ता का पता नहीं लग सकता ।

अनुसूची प्रस्तावना

अनुसूची तथा प्रश्नावली की लगभग समान प्रकृति है । प्रत्येक घटना के घटित होते समय शोधकर्त्ता स्वयं उपस्थित नहीं रह सकता । अत: यह आवश्यक है कि वह सम्बन्धित व्यक्तियों से सम्पर्क कर, वांछित सूचना एवं तथ्य एकत्रित करें । यह सम्पर्क प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही तरह से सम्भव हैं । इनमें से, प्रत्यक्ष सम्पर्क साक्षात्कार करते समय अनुसूची को एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इसी भांति, अवलोकन प्रविधि को काम में लेते समय अथवा किसी द्वितीयक स्त्रोत से द्वितीयक संमक या तथ्य संकलन के लिए भी अनुसूची को प्रयुक्त किया जाता है । भौतिक रूप में, अनुसूची अध्ययन विषय से सम्बन्धित प्रश्नों का समुच्चय है । इसी कारण अक्सर ही, अनुसूची और प्रश्नावली अध्ययन विषय से सम्बन्धित प्रश्नों का समुच्चय है । इसी कारण अक्सर ही, अनुसूची और प्रश्नावली में समानता का भ्रम पैदा होता रहता है लेकिन, वस्तुत: जहाँ अनुसूची एक शोध उपकरण है वहीं वस्तुत: प्रश्नावली तथ्य संकलन की एक अप्रत्यक्ष प्रविधि है । वर्तमान में, सामाजिक सर्वेक्षणों एवं अनुसंधानों में अनुसूची का प्रयोग बढ़ता जा रहा है । गुडे एवं हॉट के अनुसार ''अनुसूची उन प्रश्नों का समुच्चय है, जिन्हें साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति से आमने-सामने की स्थिति में पूछा और भरा जाता है । बोगार्डस ने इसे तथ्यों को प्राप्त करने का एक औपचारिक, वस्तुपरक तथा सरल माध्यम माना है । अनुसूची की सफलता प्रश्नों तथा उत्तरों पर निर्भर होती है क्योंकि अनुसूची, प्रश्नों के उत्तरों के रूप में प्राप्त सूचनाओं को एकत्रित करने का साधन होती है। साक्षात्कार प्रविधि के संदर्भ में एक उत्तम अनुसूची की दो विशेषताएं होती है । 1. सही संदेशवाहन 2. सही प्रत्तयुत्तर । अत: अनुसूची प्रश्नों की एक औपचारिक तालिका होती है, जिसका प्रयोग साक्षात्कारकर्त्ता प्रत्यक्ष साक्षात्कार की स्थिति में शोध सूचनाएं एकत्रित करने के लिये करता है ।

अनुसूचियों के प्रकार

विभिन्न विद्वानों ने अनुसूचियों को अनेक प्रकार से विभाजित किया है । यंग ने इन्हें चार प्रकारों में रखा है , (i) अवलोकन अनुसूची, (ii) मूल्यांकनपरक, (iii) प्रलेखीय तथा, (iv) संस्था – सर्वेक्षण अनुसूची । लुण्डवर्ग ने उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया है : (क) वस्तुपरक तथ्यों से सम्बन्धित, (ख) सम्मति तथा दृष्टिकोण के मापन से सम्बन्धित, तथा (ग) संस्थाओं एवं संगठनों के अध्ययन से सम्बन्धित । मुख्य रूप से, अनुसूची के निम्न प्रकार हो सकते हैं–

1. **अवलोकन अनुसूची** – इस अनुसूची का प्रयोग 'अवलोकन-कार्य' को क्रमबद्ध, व्यवस्थित एवं प्रभावी बनाने के लिए किया जाता है । इसमें प्रश्नों के स्थान पर कुछ प्रमुख बातों का उल्लेख होता है, जो अवलोकन के समय सामने आ सकती है । यह सूची प्राय: सारणी के रूप में होती है, जो शोध विषय के अनुसार कई शीर्षक तथा उपशीर्षक में विभाजित किये जाने हेतु किया जाता है ।

अवलोकन सूची के कुछ प्रमुख कार्य निम्न हैं-

(i) यह शोध विषय की याद दिलाने का कार्य करती है ।

(ii) यह अवलोकन शक्ति को विस्तृत बनाने में सहायता करती है ।

(iii) यह अध्ययन क्षेत्र को परिमित कर शोधकर्त्ता के ध्यान को मुद्दों पर केन्द्रित करने में सहायता करती है ।

(iv) यह अन्वेषक द्वारा स्वेच्छानुसार अवलोकन पर अंकुश का कार्य करती है ।

2. **प्रमापन या मूल्यांकन अनुसूची** – इसमें किसी घटना, समस्या या विषय से सम्बन्धित मामलों में सूचनादाता की पंसद, राय मनोवृत्ति विश्वास आदि का प्रमापन या मूल्यांकन किया जाता है । ऐसा करके इन्हें सांख्यिकीय आंकड़ों में व्यक्त किया जा सकता है। मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र के क्षेत्रों में इस अनुसूची का काफी प्रयोग किया है।

3. **संस्था सर्वेक्षण अनुसूची** – ऐसी अनुसूची के द्वारा किसी संस्था, दल या समुदाय से सम्बन्धित समस्याओं को ज्ञात किया जा सकता है । सभी विभिन्न पक्षों को जानने का प्रयास करने वाली अनुसूची काफी लम्बी होती है। लेकिन किसी सीमित पक्ष या समस्याओं के सम्बन्ध में अनुसूची अपेक्षाकृत छोटी भी बनायी जा सकती है। संस्थागत अनुसूचियों का प्रयोग संस्थाओं की कार्य प्रणाली तथा समाज में उनकी प्रस्थिति की तुलना के लिये किया जाता है।

4. **साक्षात्कार अनुसूची** – ये अनुसूचियों साक्षात्कार को व्यस्थित तथा क्रमबद्ध बनाने के लिए होती हैं। साक्षात्कारकर्त्ता, सूचनादाताओं के पास व्यक्तिगत रूप से जाता है, तथा प्रश्न पूछकर स्वयं उत्तर लिखता जाता है। ये उत्तर उसके लिए तथ्य बन जाते हैं । साक्षात्कार अनुसूची के लाभ इस प्रकार हैं-

(i) इसके द्वारा विश्वसनीय एवं प्रमाणिक सूचनाएं प्राप्त होती हैं ।

(ii) व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण इसमें अनुसंधानकर्त्ता, सूचनादाता को सूचना देने के लिए प्रेरित कर सकता है ।

(iii) इसके द्वारा अशिक्षित उत्तरदाताओं से भी सूचनाऐं प्राप्त की जा सकती हैं ।

5. **प्रलेखीय अनुसूची** – यह अनुसूची लिखित स्त्रोतों से सूचनाएँ एकत्रित करने के उपयोग में आती हैं । ये स्त्रोत आत्मकथा, डायरी, सरकारी तथा गैर–सरकारी अभिलेख, पुस्तकें, प्रतिवेदन, आदि हो सकते हैं । विषय से सम्बन्धित अध्ययन–इकाईयों के विषय में प्रारम्भिक जानकारी एकत्रित करने के लिए अत्यन्त उपयोग सिद्ध होती है। जैसे- किसी अपराधी का अध्ययन करते समय, जेल के दस्तावेजों से उसके अपराध के रूप में अपराधों की संख्या, आयु, शिक्षा, व्यवसाय, आदि के सम्बन्ध में जानकारी एकत्रित करने के लिये प्रलेखनीय अनुसूची की रचना की जा सकती है ।

अनुसूची के निर्माण की प्रक्रिया

अनुसूची की रचना करते समय निम्न बातों का ध्यान दिया रखना चाहिए-

(i) प्रश्नों की विषय वस्तु,

(ii) प्रश्नों की शब्द रचना या भाषा,

(iii) प्रश्नों का क्रम,

(iv) प्रत्युत्तर के रूप/विकल्प, तथा

(v) अनुसूची की भौतिक बनावट

अनुसूची के दो प्रमुख भाग होते हैं : (i) भौतिक पक्ष, (ii) आंतरिक पक्ष । अनुसूची की रचना के समय किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए, इसी का यहाँ हम उल्लेख करेंगे ।

अनुसूची का भौतिक या बाह्य पक्ष

अनुसूची निर्माण के भौतिक पक्षों या बाह्य पक्षों में भी उन्हीं बातों का ध्यान रखना चाहिए जिनका उल्लेख प्रश्नावली के निर्माण के संदर्भ में किया गया है। इस संदर्भ में प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं:

1. अनुसूची का आकार 8" × 11" से अधिक बड़ा न हो ।
2. अनुसूची हेतु प्रयुक्त कागज चिकना व साफ हो रंगीन कागज का प्रयोग आकर्षक होता है ।
3. सूचनाएं लिखने के लिए प्रर्याप्त खाली स्थान छोड़ा जाये ।
4. हांशिया छोड़ा जाये ।
5. अनुसूची में कागज के एक तरफ ही लिखना श्रेष्ठ होता है ।
6. कॉलम, शीर्षक तथा उप-शीर्षक द्वारा मदों को व्यवस्थित कर दिया जाये ।

अनुसूची की अन्तर वस्तु

अनुसूची की अन्तरवस्तु में दो प्रकार की बातें होती हैं : (i) उत्तरदाता के बारे में प्रारम्भिक जानकारी-इसमें उत्तरदाता का नाम, पता, आयु, लिंग, शिक्षा, जाति, धर्म, व्यवसाय, आय, आदि के बारे में सूचनाए एकत्रित करनी होती हैं । (ii) दूसरे भाग में समस्या से सम्बन्धित प्रश्न एवं सारणियाँ होती हैं । साथ ही अनुसूची भरने के लिए अनुसंधानकर्त्ता के लिए आवश्यक निर्देश भी होते हैं । इसी में अनुसंधान विषय तथा अनुसंधान करने वाले संस्थान या व्यक्ति का परिचय भी होता है ।

प्रश्नों का निर्माण

अनुसूची में प्रश्नों को शामिल करने से पूर्व प्रश्नों को भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए । विभिन्न प्रश्नों के अलग-अलग उद्देश्य होते हैं तथा उनके निर्माण करने की शैलियाँ भी विशेष होती हैं-

1. **खुले प्रश्न** - ये प्रश्न सूचनादाता के अपने विचारों, भावनाओं, विश्वासों आदि को जानने के लिए किये जाते हैं । इसके उत्तर अलग-अलग प्रकार के होते हैं। जैसे-दल-बदल का भारतीय

राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ता है? या आपकी सम्मति में संसदीय प्रणाली में क्या-क्या बुराइयाँ हैं? जाति प्रथा की समाप्ति के क्या कारण हैं? भारत में अर्न्जजातीय विवाह को अच्छा क्यो नहीं माना जाता है?

2. **संरचित या आयोजित प्रश्न** – इस प्रश्नों में उनके संभावित उत्तरों को भी प्रश्न के सामने रख दिया जाता है । सूचनादाता को उनमे से किसी एक उत्तर को चुनने के लिए कहा जाता है । ये उत्तर, वाक्यांश या वाक्य के रूप में हो सकते हैं। जैसे भारत में एक/द्वि बहुदलीय व्यवस्था पायी जाती है । आपके परिवार के कितने सदस्य शिक्षत हैं ? एक/दो/तीन/ सभी ।

3. **दोहरे प्रश्न** – किसी प्रश्न के केवल दो ही उत्तर-सकरात्मक या नकारात्मक हो सकते हैं। उत्तरदाता द्वारा किसी एक को चुन लिया जाता है। जैसे, क्या आप समाचार पत्र रोज पढ़ते हैं? हाँ/नहीं। आप धूम्रपान को कैसा समझते हैं? अच्छा/बुरा। क्या आप सहशिक्षा के पक्ष में हैं? हाँ/नहीं।

4. **बहुवैकल्पिक प्रश्न** – इन प्रश्नों में प्रत्येक प्रश्न के अनेक सम्भावित उत्तर दिये हुए रहते हैं । इनमें से सूचनादाता कोई एक अथवा एकाधिकार उत्तर छांट लेता है। अंत में एक अन्य उत्तर को भी जोड़ दिया जाता है। जैसे–

   (i) आप श्रमिक संघ के सदस्य बनाना क्यों पंसद करते हैं? संगठन में पद ग्रहण करने के लिए/अधिक वेतन तथा सुविधाएं हासिल करने के लिए/भाई-चारा बढ़ाने के लिए/प्रबन्धकों से टक्कर लेने के लिए/अन्य कोई..........।

   (ii) आपको अध्यापक की नौकरी क्यों पंसद है ? छुट्टियाँ अधिक होती हैं /ट्यूशन मिल जाता है/अपनी बौद्धिक क्षमता की वृद्धि के लिये/ भावी पीढ़ी को संस्कारित करने के अवसर मिलते हैं/ अन्य कोई ।

5. **निर्देशन प्रश्न** – ऐसे प्रश्न में उत्तर का संकेत दिया हुआ रहता है । प्राय: उत्तरदाता उसी संकेत के अनुसार ही उत्तर देता है । जब ऐसे प्रश्न में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत भी दिया हुआ रहता है, तो प्रश्न पूछने का प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है । ये प्रश्न पक्षपात को प्रोत्साहन देते हैं। अत: ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए, जैसे – क्या चुनावों में राजनैतिक दलों द्वारा प्राइवेट कम्पनियों से चंदा लेना भ्रष्टाचार का कारण नहीं है ? क्या आजकल का संगीत विद्यार्थियों को पाश्चात्य संस्कृति की ओर नहीं ले जा रहा है ?

6. **अनेकार्थक प्रश्न** – जब प्रश्न की भाषा या विषयवस्तु ऐसी होती है कि विभिन्न सूचनादाता उसके अपने-अपने ढंग से अनेक अर्थ लगा लेते हैं तो ऐसे प्रश्न अनेकार्थक बन जाते हैं । जैसे-क्या आप किसी राजनैतिक विचारधारा में विश्वास करते हैं ? इसमें 'राजनैतिक विचारधारा' के अनेक अर्थ लगाये जायेंगे । आप कहाँ के निवासी हैं? इस प्रश्न में यह स्पष्ट नहीं है कि घर, गाँव, प्रान्त देश, आदि में से क्या लिखना है ।

7. **स्पष्ट प्रश्न** – ऐसे प्रश्न किसी सुनिश्चित उत्तर को प्राप्त करने में असमर्थ हैं । इनका अनेक अस्पष्ट तरीकों से उत्तर दिया जा सकता है । जैसे-क्या आप सुशिक्षित हैं ? अथवा क्या आप एक योग्य नागरिक हैं ? इन प्रश्नों में सुशिक्षित व योग्य नागरिक के अर्थ स्पष्ट नहीं हैं ।

क्रमसूचक प्रश्न - ऐसे प्रश्न के अनेक उत्तर दिए हुए होते हैं । सूचनादाता को उन उत्तरों को क्रम से बताना होता है। यह कार्य 1,2,3 व 4 लगाकर किया जाता है । जैसे-आप कौन सा व्यवसाय पंसद करते हैं? (क) भारतीय प्रशासनिक सेवा (ख) पुलिस सेवा (ग) व्यापर (घ) वकालत (ङ) डॉक्टर (च) इंजीनियर (छ) प्रोफेसर ।

प्रश्नों की विशेषताएँ

अनुसूची में प्रश्न आमने-सामने बैठकर पूछे जाते हैं। उनका निर्माण करते समय अपने अध्ययन-विषय के उद्देश्य एवं क्षेत्र आंचलिक आवश्यकताओं, क्षेत्र के कार्यकर्त्ताओं की योग्यता तथा उपलब्ध सुविधाओं का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। इसके लिए उनमें निम्न विशेषताओं का होना आवश्यक है -

1. वे छोटे, सुगम, सरल तथा समस्या एवं सूचनादाता से सम्बन्धित हों ।

2. वे सूचनादाता के बौद्धिक स्तर के अनुसार बनाए जाएँ । प्रश्न अधिक कठिन या अति सरल नहीं होने चाहिए ।

3. प्रश्नों में वैयक्तिकता होनी चाहिए । उन्हें अनुभवपरक उत्तर देने की दृष्टि से बनाया जाना चाहिए। इससे वर्गीकरण, सारणीयन, आदि करने में सुविधा प्राप्त होगी ।

4. केवल आवश्यक प्रश्न ही पूछे जायें । अनावश्यक प्रश्नों को अनुसूची में शामिल करने से वह लम्बी हो जाती है, तथा सूचनादाता पर बुरा प्रभाव डालती है ।

5. यदि प्रत्यक्ष प्रश्नों से सूचना प्राप्त करने में कठिनाई होती है तो अप्रत्यक्ष प्रश्न पूछे जाने चाहिए । जैसे किसी को, क्या आप दल-बदलू हैं ? पूछने के बजाय, पहले आप किस दल में थे ? तथा, अब आप किस दल में हैं? ये दो प्रश्न पूछे जाने चाहिए ।

6. प्रश्न प्रतिबद्ध तथा परस्पर सम्बद्ध होने चाहिए । एक ही विषय या उप विषय से सम्बन्धित प्रश्न बार-बार विभिन्न स्थानों पर नहीं पूछने चाहिए । जैसे, श्रमिक संघ की आय से सम्बद्ध बार-बार तथा विभिन्न स्थानों पर नहीं पूछने चाहिए । जैसे, श्रमिक संघ की आय से सम्बद्ध प्रश्न एक ही स्थान पर होने चाहिए । उन्हें नेताओं के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ नहीं पूछना चाहिए ।

7. ऐसे प्रश्न भी पूछे जाने चाहिए जिनसे उत्तरों की सत्यता, प्रामणिकता, आदि की जाँ हो सके । किसी एक प्रश्न के उत्तर की अन्य प्रश्नों या उत्तरों के संदर्भ से जाँच की जा सकती है । जैसे-दलीय निष्ठा तथा कानून के प्रतिनिष्ठा से सम्बन्धित प्रश्न एक दूसरे के उत्तरों की जाँच कर सकते हैं ।

8. गुप्त जीवन अथवा निषिद्ध क्षेत्र से सम्बन्धित प्रश्न नहीं पूछने चाहिए । ऐसे प्रश्नों का या तो उत्तर ही नहीं दिया जायेगा या गलत उत्तर दिया जायेगा ।

9. प्रश्न ऐसे होने चाहिए कि उनके उत्तर लिखने में कम समय लगे । इसके लिए विभिन्न चिन्हों ( ) या संख्या का उपयोग किया जा सकता है ।

10. विचारात्मक प्रश्नों को गहनता के साथ पूछना चाहिए, उनको पूछते समय क्यों, कब, कैसे आदि प्रश्नों को भी जोड़ा जा सकता है ।

11. प्रश्न एकार्थक होने चाहिए । उन्हें अस्पष्ट, कर्णकटु बोली में नहीं पूछा जाना चाहिए । तकनीकी भावात्मक शब्दों के प्रयोग से भी बचना चाहिए ।

12. प्रश्नों में प्रयोग किये गये शब्दों और वाक्यांशों को निश्चित एवं विशिष्ट बनाने के लिए स्पष्ट कर देना चाहिए । जैसे–युवा शक्ति के संगठन का राजनैतिक दलों के स्वरूप पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इस प्रश्न में 'युवा' शब्द को स्पष्ट करना आवश्यक है ।

NOTES

ऐसे प्रश्न नहीं किये जाने चाहिए जिनके अनेक अर्थ निकलते हों, अथवा अस्पष्ट हों सर्वविदित तथा सर्वस्वीकृत ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न करना भी उचित नहीं है, जैसे–क्या आप समझते हैं कि भारत जनसंख्या की दृष्टि से एक बड़ा देश है ? इसी तरह, गुप्त जीवन जटिल और लम्बे प्रश्न भी नहीं पूछने चाहिए। किसी के ज्ञान की परीक्षा लेने वाले प्रश्न भी पूछना उचित नहीं होता। उससे सूचनादाता के आत्मसम्मान को चोट पहुँचती है ।

अनुसूची द्वारा सूचना प्राप्ति

अनुसूची द्वारा सामग्री प्राप्त करने के लिए कुछ आवश्यक स्तरों से गुजरना पड़ता है, जिन्हें हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

1. **उत्तरदाताओं का चयन** – अनुसूची के प्रयोग करने में सर्वप्रथम उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है जिनसे कि सूचना एकत्र करनी है । इसमें दो प्रकार की प्रणालियों को अपनाया जा सकता है– संगणना विधि और निर्दशन विधि ।

2. **जाँचकर्ताओं का चयन एवं प्रशिक्षण** – जहाँ कुछ लोगों का साक्षात्कार करना है, वहाँ अनुसंधानकर्त्ता स्वयं जाकर उनसे अभीष्ट सूचना प्राप्त कर उसे अनुसूची में भर सकता है । यदि साक्षात्कारदाताओं की संख्या अधिक हो तो अनुसंधानकर्त्ता कुछ ऐसे क्षेत्रीय अणवेशकों का चयन कर सकता है जो कुशलता, सूझ–बूझ, धैर्य और होशियारी से साक्षात्कार द्वारा अनुसूची को भर सकता हो । उनके चयन में अनुसंधानकर्त्ता को बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है । चयनित अणवेशकों को उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए । उन्हें अध्ययन की प्रकृति, क्षेत्र, उद्देश्य, अनुसूचियों को भरने के तरीके, साक्षात्कार के तरीके आदि के सम्बन्ध में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ।

3. **तथ्य–सामग्री का संकलन** – अनुसूची के द्वारा तथ्य सामग्री के संकलन के लिए एक क्रमिक प्रक्रिया अपनानी पड़ती है, जो इस प्रकार है–

   अ. **सूचनादाताओं से सम्पर्क** – साक्षात्कार द्वारा सूचना प्राप्त करने के लिए पूर्व सूचनादाताओं से सम्पर्क करना होता है। सम्पर्क स्थापित करने में क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं को कुशलता, चतुरता, धैर्य और शालीनता से काम लेना पड़ता है। यदि प्रारम्भ में ही कार्यकर्त्ता सूचनादाता

को प्रभावित नहीं कर पाया तो उससे सूचना प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। अत: ऐसी स्थिति उत्पन्न की जानी चाहिए कि सूचनादाता स्वयं उत्साहित होकर सूचना दे।

NOTES

ब. साक्षात्कार – सूचनादाता से सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात साक्षात्कार का कार्य शुरू किया जाता है। साक्षात्कार करना भी उतना ही कठिन है जितना कि सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करना। उसका उद्देश्य साक्षात्कारदाता से अधिक से विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करना होता है, यह तभी संभव हो सकता है जब अनुसंधानकर्त्ता एक स्वाभाविक वातावरण में सूचनादाता के मनोभावों को ध्यान में रखते हुए, सूचना प्राप्त करता है, बीच में थोड़ा रुककर कुछ इधर-उधर की बातें करनी चाहिए ताकि सूचनादाता की अभिरुचि बनी रहे। साक्षात्कार को रोचक बनाने के लिए कुछ हँसी-मजाक की बात भी कर लेनी चाहिए या कोई उपर्युक्त दुष्टान्त दे देना चाहिए, ताकि सूचनादाता, साक्षात्कार को कोई बोझ न समझकर एक 'रुचिपूर्ण भेंट' समझे।

स. सूचना प्राप्त करना – साक्षात्कार करते समय पैदा हो जाती है कि सूचनादाता से किसी प्रकार विश्वसनीय सूचनाएँ प्राप्त की जाये। साक्षात्कारकर्त्ता को अनुसूची में से एक-एक करके प्रश्न कर सूचना प्राप्त करनी चाहिए, लेकिन साक्षात्कारदाता के दिमाग में ये आशंका उत्पन्न न हो कि अनुसंधानकर्त्ता उससे कोई गुप्त जानकारी प्राप्त कर रहा है या उसे किसी उलझन में डाल रहा है। यदि उत्तरदाता सूचना देते समय मुख्य विषय से भटक जाता है तो ऐसी स्थिति में बड़ी सावधानीपूर्वक उसका ध्यान मुख्य विषय की ओर केन्द्रित करना चाहिए या उसे साक्षात्कार के बीच में कुछ अन्य बातें करके, बन्द कर देना चाहिए। यह भी संभव हो सकता है कि प्रश्नों के स्पष्ट न होने के कारण सूचनादाता उसका कुछ और ही अर्थ समझ बैठे जिसके परिणाम स्वरुप वह मुख्य विषय से विचलित हो जाता है ।

अनुसूची का सम्पादन

जब जाँचकर्त्ताओं से सब अनुसूचियाँ प्राप्त हो जाती हैं तो उनका सम्पादन किया जाता है जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है-

1. **अनुसूचियों की जाँच** – सर्वप्रथम कार्यकर्त्ताओं द्वारा भेजी हुई अनुसूचियों की जाँच की जाती है। वहाँ यह ध्यान रखा जाता है कि सभी अनुसूचियाँ प्राप्त हुई अथवा नहीं। इसके बाद सूचियों का वर्गीकरण किया जाता है। प्रत्येक जाँचकर्त्ता द्वारा भेजी गई अनुसूचियों की अलग-अलग फाइल तैयार की जाती है और उस फाइल पर चिट लगाकर कार्यकर्त्ता का नाम क्षेत्र सूचनादाताओं की संख्या आदि लिख दी जाती है:

2. **प्रविष्टियों की जाँच** – अनुसंधानकर्त्ता सभी प्रविष्टियों की जाँच करता है। यदि कोई खाना नहीं भरा गया हो या गलत खाने में उत्तर लिख दिया गया हो तो उनके कारण का पता लगाकर उस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न करता है। यदि वह स्वयं गलती को ठीक कर सकता है तो उसे उसी समय ठीक कर देता है, अन्यथा अनुसूची को कार्यकर्त्ता से पुन: मिलकर सही सूचना प्राप्त करता है।

3. **गंदी अनुसूचियाँ** – अनुसंधानकर्त्ता, गंदी अनुसूचियों को अलग कर देता है जो पढ़ने योग्य नह हों या फट गई हों या अन्य किसी कारण से सूचना देने योग्य नहों, उन्हें कार्यकर्त्ता के पास भेज दी जाती हैं ताकि यर्थात सूचना प्राप्त की जा सके।

NOTES

4. **संकेतन** – अनुसंधानकर्त्ता सारणीयन के कार्य में असुविधा दूर करने के लिए संकेतन का कार्य करता है। वह सभी उत्तरों का निश्चित भागों में वर्गीकरण कर देता है, प्रत्येक वर्ग को संकेत संख्या प्रदान की जाती है। इसके बाद निष्कर्ष निकाला जाता है और अध्ययन का प्रतिवेदन तैयार किया जाता है।

अनुसूची के गुण

अनुसूची तथा प्रश्नावली दोनों लिखित प्रश्न–उत्तर पर आधारित प्रश्न तालिकाएँ हैं अतः कुछ सीमा तक दोनों के गुणों तथा अवगुणों में समानता है लेकिन दोनों के प्रयोग की विधि में अन्तर होने के कारण दोनों के अपने –अपने विशिष्ट दोष तथा उपयोगिताएँ भी हैं। अनुसूची के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1. **सभी प्रकार के लोगों के लिए उपयुक्त** – प्रश्नावली विधि की भाँति इसका उपयोग साक्षर व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है । एक कुशल अन्वेषण अनुसूची का प्रयोग साक्षर–निरक्षर, बालक युवा, वृद्ध अन्धे सभी लोगों में समान रूप से कर सकता है ।

2. **व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा संकोचों का निवारण** – शोधकर्त्ता या क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं के व्यक्तिगत रूप में उपस्थित रहने के कारण कई समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाता है, सूचनादाता कई कारणों से प्रत्युत्तर देने में संकोच या हिचकिचाहट प्रकट कर सकता है। साक्षात्कारकर्त्ता के उपस्थिति होने के कारण इन समस्याओं का निवारण तत्काल हो जाता है। व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा जहाँ स्पष्ट एवं वास्तविक उत्तर पाने में आसानी रहती है, वहाँ इसके प्रत्युत्तर की दर में भी वृद्धि हो जाती है । सूचनादाता के व्यक्तित्व की विशेषताएँ उसे प्रत्युत्तर देने की लिए प्रेरित कर सकती है ।

3. **प्राप्त सूचनाओं का सत्यापन संभव** – सामान्यतः अनुसूची का प्रयोग करते समय सभी साक्षत्कारकर्त्ताओं में आवश्यक समानता बनाये रखने के लिए वे ही प्रश्न पूछे जाते हैं, जो अनुसूची में दिए होते हैं लेकिन फिर भी उत्तरों की वास्तविकता का पता लगाने के लिए साक्षात्कारकर्त्ता कुछ अतिरिक्त प्रश्न कर सकता है। इन अतिरिक्त प्रश्नों से अतिरिक्त सूचनाएँ मिलने की भी संभावना रहती है जो शोध के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

4. **सूचनाओं का अवलोकन द्वारा प्रमाणीकरण** – अनुसूची की यह विशेषता होती है कि इसमें उत्तरदाता से सूचनाएं एकत्रित करने के साथ–साथ अध्ययनकर्त्ता घटनाओं का स्वयं भी अध्ययन कर सकता है। इससे कम समय में अधिक तथ्यों का संकलन विश्वसनीय ढंग से हो जाता है क्योंकि कोई भी वैज्ञानिक ज्ञान, अवलोकन के बिना संभव नहीं होता है।

5. **अध्ययन क्षेत्र का परिसीमन** – जिन साक्षात्कार में अनुसूचियों का प्रयोग नहीं किया जाता है, उनमें साक्षात्कारकर्त्ता के भटक जाने या विषय–क्षेत्र से बाहर जाने का खतरा रहता है। अनुसूची

साक्षात्कारकर्त्ता के मार्ग को प्रदेर्शत कर सही एवं सार्थक तथ्यों के संकलन में साक्षात्कारकर्त्ता की सहायता करती है। अनुसूची साक्षात्कारकर्त्ता के अन्तर्गत वार्तालाप पर भी अंकुश लगाती है।

NOTES

6. **परिमाणात्मक विश्लेषण में सहायक** – अनुसूची द्वारा प्राप्त सभी तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीयन करना आसान होता है क्योंकि प्रश्नों को पूछने के पूर्व उनका पर्याप्त मानकीकरण कर दिया जाता है। किसी प्रश्न के उत्तर में कितने लोगों ने पक्ष में और कितने लोगों ने विपक्ष में अपनी राय जाहिर की है, इसका अनुमान सूची के प्रश्न के सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा लगाया जा सकता है।

7. **स्मरणशक्ति की विकृतियों से सुरक्षा** – अनुसूची में सूचनाओं को तत्काल लेखनीबद्ध कर लिया जाता है। अनुसूची के स्थान पर जब स्मरण शक्ति का प्रयोग किया जाता है, तब किन्हीं सूचनाओं के भूल जाने और किन्हीं में विकृति उत्पन्न होने की आशंका रहती है।

8. **मानवीय तत्व के लाभ** – अनुसूची में मानवीय तत्व प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित रहता है, अत: सूचना संकलन की प्रक्रिया रोचक आकर्षक एवं सरल हो जाती है। व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा जो पारस्परिक आदान–प्रदान में मधुरता उत्पन्न होती है, वह कार्य निर्जीव प्रश्नावली कठिनत: ही कर पाती है।

अनुसूची के दोष-

अनेक गुण होने के बाद भी अनुसूची विधि के निम्नलिखित दोष हैं-

1. विस्तृत के सूचनादाताओं से अनुसूचियों द्वारा सूचनाएँ एकत्र करने में काफी साक्षात्कारकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ती है, जिससे उनके वेतन, प्रशिक्षण, यात्रा–व्यय आदि पर काफी खर्चा आता है । अत: इस विधि का प्रयोग वहीं सम्भव होता है जहाँ पर्याप्त मात्रा में अधिक संसाधन उपलब्ध होते हैं ।

2. प्रश्नावली की भांति अनुसूची का प्रयोग विशाल क्षेत्र में नहीं किया जा सकता । प्रत्येक सूचनादाता के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क में काफी समय लगता है । अत: यह विधि सीमित क्षेत्र के सीमित सूचनादाताओं के अध्ययन के लिए ही उपयोगी विधि है ।

3. व्यक्तिगत सम्पर्क से जहाँ साक्षात्कार प्रक्रिया सुगम हो जाती है, वहाँ साक्षात्कारकर्ता की अभिनति की समस्या का सामना करना पड़ता है। साक्षात्कारकर्ता के व्यक्तित्व का कुछ न कुछ प्रभाव सूचनादाता पर अवश्य पड़ता है, जिसके कारण उत्तरों में अभिनति के समावेश होने का भय बना रहता है। साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों को पूछते समय कभी–कभी अन्जाने में सूचनादाता को उत्तर भी सुझा देता है, जिससे वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं। साक्षात्कारकर्ता द्वारा उत्तरों को सुनने, समझने और लिखने की थोड़ी सी गलती सूचनाओं में अभिनति उत्पन्न कर सकती है।

4. अनुसूची एवं प्रश्नावली दोनों शोध के उपकरणों से सभी वास्तविक यथार्थ एवं प्रमाणिक सूचनाओं के संकलन की आशा की जा सकती है जब ये उपकरण सही सम्प्रेषण करने में समर्थ हों। यदि प्रश्नों की बनावट या शैली में कोई भी ऐसा दोष रहा है जिसके कारण प्रत्येक सूचनादाता एक ही प्रश्न का अलग-अलग अर्थ लगाता हो तो ऐसे प्रश्नों के द्वारा यथार्थ सूचनाएँ कैसे प्राप्त की जा सकती हैं। सभी उत्तरदाताओं की शैक्षणिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि समान नहीं होती इसलिए सभी से एक सी सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो पाती। सार्वभौमिक प्रश्नों की समस्या उत्पन्न होती है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. प्रश्नावली से आप क्या समझते है ? इसके प्रकार बताइए ।
2. प्रश्नावली की विश्वसनीयता को स्पष्ट करते हुए, इसके गुणों का वर्णन कीजिए ।
3. अनुसूची से आपका क्या अभिप्राय है ? इसके प्रकारों का उल्लेख कीजिए ।
4. अनुसूची की अन्तर वस्तु की सविस्तार व्याख्या कीजिए ।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. प्रश्नों की उपयुक्तता तथा प्रकृति का वर्णन कीजिए ।
2. प्रश्नावली के बाह्य तथा भौतिक पक्ष पर प्रकाश डालिए ।
3. प्रश्नावली की सीमाएँ बताइए ।
4. अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया को समझाइए ।
5. अनुसूची के गुणों का वर्णन कीजिए ।
6. अनुसूची के दोष बताइए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. डाक प्रश्नावली को भेजने के तरीके हैं-

   (अ) तीन (ब) चार

   (स) छः (द) सात ।

2. प्रश्नावली प्रकार की होती है-

   (अ) डाक प्रश्नावली (ब) बन्द प्रश्नावली

   (स) मिश्रित प्रश्नावली (द) ये सभी ।

NOTES

3. सूचनाएँ एकत्रित करने के प्रयोग में आने वाली अनुसूची है-

(अ) साक्षात्कार (ब) प्रलेखीय

(स) संस्था सर्वेक्षण (द) अवलोकन

4. प्रश्नावली के गुण हैं-

(अ) कम व्यय (ब) सुविधा जनक

(स) विशाल अध्ययन (द) ये सभी ।

उत्तर- (1) अ (2) द (3) ब (4) द।

10 साक्षात्कार निर्देशिका

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य ।
- प्राक्कथन ।
- साक्षात्कार का अर्थ तथा परिभाषाएँ ।
- साक्षात्कार के उद्देश्य ।
- साक्षात्कार के विभिन्न प्रकार ।
- साक्षात्कार की प्रक्रिया के चरण ।
- साक्षात्कारकर्त्ता की भूमिका ।
- साक्षात्कार के लाभ ।
- साक्षात्कार के दोष ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न ।

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- साक्षात्कार का अर्थ तथा परिभाषाएँ ।
- साक्षात्कार के उद्देश्य ।
- साक्षात्कार के विभिन्न प्रकार ।
- साक्षात्कार की प्रक्रिया के चरण ।
- साक्षात्कारकर्त्ता की भूमिका ।
- साक्षात्कार के लाभ ।
- साक्षात्कार के दोष ।

NOTES

प्राक्कथन

प्राथमिक तथ्यों का संकलन करने के लिए साक्षात्कार एक अत्यधिक लोकप्रिय और बहु-प्रचलित विधि है । वास्तविकता यह है कि अवलोकन में अनेक ऐसे दोष हैं जिनके कारण केवल अवलोकन के द्वारा ही सामाजिक घटनाओं के सभी पक्षों का अध्ययन नहीं किया जा सकता । इस स्थिति में साक्षात्कार ही ऐसी उपयोगी विधि है जिसके द्वारा गुणात्मक तथा परिणात्मक-सभी तथ्यों को ज्ञात करके सामाजिक अनुसन्धान को वस्तुनिष्ठ बनाया जा सकता है । साक्षात्कार सामग्री का संकलन करने वाली एक मौखिक विधि है जो मूल रूप से इस मान्यता पर आधारित है कि ''व्यवहारों का सबसे स्पष्ट आधार है।'' आल्पोर्ट (G.W.Allport) ने सामग्री के संकलन में साक्षात्कार की व्यावहारिकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि यदि आप यह जानना चाहते हैं कि उनके संवेग और प्रेरणाएँ क्या हैं तथा एक विशेष प्रकार से व्यवहार करने के कारण क्या है- तो आप उनसे स्वयं ही क्यों नहीं पूछ लेते ? इस कथन से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार एक ऐसी पद्धति है जिसमें अध्ययनकर्ता किसी समस्या अथवा विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से आमने-सामने का सम्बन्ध स्थापित करके उनकी भावनाओं, अनुभव तथा कुछ विशेष प्रकार के व्यवहारों को उन्हीं के शब्दों में जानने का प्रयत्न करता है । साक्षात्कार व्यवस्थित रूप से करने के लिए शोधकर्ता द्वारा पहले से ही विभिन्न प्रश्नों का संयोजन इस तरह कर लिया जाता है जिससे उत्तरदाता द्वारा उनका उत्तर स्वाभाविक ढंग से दिया जा सके । साक्षात्कार के लिए प्रश्नों के इसी व्यवस्थित संयोजन को हम साक्षात्कार निर्देशिक कहते है ।

साक्षात्कार का अर्थ तथा परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Interview)

हमारे दैनिक जीवन में 'साक्षात्कार' शब्द का प्रचलन इतना अधिक बढ़ चुका है कि कोई भी अनुभव प्राप्त करने संस्थाओं में प्रवेश पाने, नौकरी प्राप्त करने अथवा किसी विशेष अधिकारी अथवा नेता से मिलने के लिए हमें साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है लेकिन दैनिक जीवन में हम साक्षात्कार शब्द का उपयोग जिस अर्थ में करते है, वह अनुसन्धान की एक प्रविधि के रूप में किये जाने वाले साक्षात्कार से बिल्कुल भिन्न है। सामाजिक अध्ययन के सन्दर्भ में साक्षात्कार का अभिप्राय केवल किसी से सम्पर्क स्थापित करना अथवा विचारों का आदान-प्रदान करना नहीं होता बल्कि नियोजित ढंग से कुछ तथ्यों अथवा घटनाओं की आन्तरिक विशेषताओं को ज्ञात करके उनके बीच पाये जाने वाले कार्य-कारण के सम्बन्ध को मालूम करना होता है। इस प्रकार बाह्य रूप से साक्षात्कार का उद्देश्य एक विशेष समूह के जीवन में प्रवेश करके व्यक्तियों से अन्तक्रिया करना होता है लेकिन आन्तरिक रूप से यह एक ऐसी प्रविधि है जिसका उपयोग प्राथमिक सामग्री का संकलन करके उसके आधार पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करना होता है। संक्षेप में साक्षात्कार घटनाओं को उनके आन्तरिक और वास्तविक रूप में देखने की एक विधि है।

विभिन्न व्रिद्वानों ने साक्षात्कार को भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है। गुडे तथा हाट ने लिखा है कि 'मौलिक रूप से साक्षात्कार सामाजिक अन्तक्रिया की एक प्रक्रिया है।' इसका तात्पर्य है कि साक्षात्कार का अभिप्राय केवल अध्ययनकर्ता और उत्तरदाता के पारस्परिक सम्पर्क से ही नहीं होता बल्कि जब इन दोनों पक्षों के बीच एक अर्थपूर्ण अथवा उद्देश्यपूर्ण अन्तक्रिया होती है तब इसी अन्तक्रिया को हम साक्षात्कार कह सकते हैं।

NOTES

पी.वी.यंग (P.V.Young) के अनुसार, ''साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में बहुत कुछ कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है जो उसके लिए साधारणतया एक अपरिचित व्यक्ति होता है ।'' इस परिभाषा में यंग ने किसी व्यक्ति के जीवन में 'कल्पनात्मक रूप से प्रवेश' करने की जो बात की है, वह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है क्योंकि साक्षात्कार कभी कल्पनात्मक न होकर अत्यधिक नियोजित उद्देश्यपूर्ण होता है ।

सिन पायो येंग के अनुसार ''साक्षात्कार क्षेत्र-कार्य की एक विशेष प्रविधि है जिसका उपयोग किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के व्यवहार को देखने, उनके कथन को लिखने तथा सामाजिक अथवा समूह-अन्तक्रिया के स्पष्ट परिणामों का अध्ययन करने के लिए किया जाता है ।'' इस परिभाषा में योग साक्षात्कार को इसके विभिन्न उद्देश्यों के आधार पर स्पष्ट किया है ।

पामर ने लिखा है कि ''साक्षात्कार दो व्यक्तियों के बीच पायी जाने वाली एक विशेष सामाजिक परिस्थिति है जिसमें एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों व्यक्ति परस्पर उत्तर-प्रतिउत्तर करते हैं ।'' यह परिभाषा यद्यपि पूर्णतया स्पष्ट नहीं है लेकिन इससे इस तथ्य पर प्रकाश अवश्य पड़ता है कि साक्षात्कार एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है तथा साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता तथा उत्तरदाता के बीच अन्तक्रिया होते रहना आवश्यक है ।

इन सभी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार सामग्री-संकलन की वह मौखिक प्रविति है जिसमें एक अध्ययनकर्ता अध्ययन-क्षेत्र से सम्बन्धित व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, अनुभवों और विचारों को पारस्परिक अन्तक्रिया के द्वारा देखने और समझने का प्रयत्न करता है । इस दृष्टिकोण से साक्षात्कार की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) साक्षात्कार प्राथमिक तथ्यों के संकलन की एक महत्वपूर्ण प्रविधि है ।

(2) इस प्रविधि के उपयोग में दो पक्षों का समावेश होता है—प्रथम, साक्षात्कारकर्ता तथा दूसरा, उत्तरदाता

(3) साक्षात्कार प्रविधि इन दोनों पक्षों के बीच होने वाली एक उद्देश्य पूर्ण अन्तक्रिया को स्पष्ट करती है ।

(4) यह अन्तक्रिया दोनों पक्षों के आमने-सामने के सम्बन्धों द्वारा संचालित होती है, सद्यपि इन दोनों पक्षों के बीच सम्बन्धों का प्राथमिक होना आवश्यक नहीं होता। साधारणतया यह सम्बन्ध ऊपर से प्राथमिक दिखायी देते हैं लेकिन आन्तरिक रूप से ऐसे सम्बन्ध पूर्णतया औपचारिक और उद्देश्यपूर्ण होते हैं।

(5) साक्षात्कार एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत अनेक मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा उत्तरदाता से उसके जीवन की आन्तरिक विशेषताओं को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता है।

(6) एक प्रविधि के रूप में साक्षात्कार का उपयोग अनेक रूपों में किया जा सकता है लेकिन इसका आधारभूत उद्देश्य प्राप्त तथ्यों की सहायता से किसी परिकल्पना का सत्यापन करना होता है ।

NOTES

साक्षात्कार के उद्देश्य (Objectives of Interview)

आधुनिक समाजों में द्वैतीयक सम्बन्धों की प्रधानता के कारण यह बहुत कठिन है कि किसी व्यक्ति के व्यवहारों का अवलोकन करके ही उनका सही अनुमान लगाया जा सके । साक्षात्कार की प्रविधि अध्ययनकर्ता को यह अवसर प्रदान करती है कि वह किसी भी व्यक्ति के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर उपयोगी तथ्यों का संकलन कर सके । यह एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा अध्ययनकर्ता उत्तरदाता के अतीत की घटनाओं, उसकी निजी भावनाओं अथवा प्रतिक्रियाओं को समझकर सामाजिक घटनाओं में पायी जाने वाली नियमितता की खोज करता है । इस दृष्टिकोण से साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

(1) **नई परिकल्पनाओं का निर्माण—** साक्षात्कार का एक प्रमुख उद्देश्य किसी अध्ययन से सम्बन्धित वह सभी तथ्य प्राप्त करना होता है जिनके आधार पर नई परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सके। साक्षात्कार के समय उत्तरदाता अपने विशिष्ट व्यवहारों और उनके कारणों की विवेचना करता है। इसकी सहायता से अध्ययनकर्ता को अनेक ऐसी नवीन और उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं जिनके द्वारा नयी परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है। अत: कहा जा सकता है कि किसी भी सर्वेक्षण अथवा अनुसन्धान का वास्तविक आयोजन करने से पूर्व अध्ययन-विषय से सम्बन्धित कुछ व्यक्तियों का साक्षात्कार करना इसलिए आवश्यक होता है जिससे आरम्भिक सूचनाओं के आधार पर अध्ययन की वास्तविक दिशा का निर्धारण किया जा सके।

(2) **प्राथमिक सामग्री का संकलन—** साक्षात्कार का एक अन्य प्रयोजन कुछ व्यक्तियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके प्राथमिक सामग्री का संकलन करना होता है। इस प्रविधि के द्वारा यह सम्भव है कि विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित आन्तरिक और व्यक्तिगत सूचनाएँ एकत्रित की जा सके। जिन अनेक प्राथमिक तथ्यों का सम्बन्ध व्यक्ति के निजी जीवन अथवा गोपनीय पक्ष से होता है, उनके बारे में ज्ञान प्राप्त करना केवल साक्षात्कार के द्वारा ही सम्भव है।

(3) **गुणात्मक तथ्यों की जानकारी—** अनेक साक्षात्कार इसलिए आयोजित किये जाते हैं कि अध्ययन किए जाने वाले समूह के सामाजिक मूल्यों, आदर्श नियमों, व्यवहार प्रतिमानों, रुचियों तथा विश्वासों आदि से सम्बन्धित गुणात्मक तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जा सके । इन गुणात्मक विशेषताओं को केवल अवलोकन अथवा प्रश्नावली विधि के द्वारा ही ज्ञात कर पाना बहुत कठिन होता है ।

(4) **सामाजिक घटनाओं का अवलोकन—** साक्षात्कार की प्रकृति अवलोकन से भिन्न होने के बाद भी यह प्रविधि अवलोकन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। एक अध्ययन कर्ता जब साक्षात्कार के लिए उत्तरदाता के पास पहुँचता है तो अनेक प्रश्न करने के साथ ही वह उसके वातावरण, जीवन-स्तर, क्रिया-कलापों, सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा अभिरुचियों का स्वयं भी अवलोकन करने का अवसर प्राप्त कर लेता है। इस दृष्टिकोण से साक्षात्कार एक दोहरी प्रविधि है जिसके अन्तर्गत विभिन्न उत्तर प्राप्त करने के साथ ही अध्ययनकर्ता घटनाओं का अवलोकन भी करता है। इसी आधार पर पॉल (Paul) ने साक्षात्कार और अवलोकन को एक-दूसरे की पूरक प्रविधि के रूप में स्वीकार किया हैं-

(5) निदानों की खोज— साक्षात्कार का एक अन्य उद्देश्य एक क्षेत्र में कुछ व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में आकर उनसे इस प्रकार सूचनाएँ प्राप्त करना है जिससे किसी विशेष समस्या के लिए उत्तरदायी मूल कारणों को ज्ञात किया जा सके तथा उन्हीं लोगों की आकांक्षाओं के अनुसार समस्या का समाधान करने के लिए उपयोगी सुझाव प्राप्त किए जा सकें। साक्षात्कार का यह उद्देश्य इतना महत्वपूर्ण है कि जटिल समाजों अथवा महानगरों में अधिकांश साक्षात्कार किसी–न–किसी सीमा तक इसी उद्देश्य से आयोजित किये जाते हैं।

(6) तथ्यों का सत्यापन— साक्षात्कार का उद्देश्य केवल नए तथ्यों को ज्ञात करना ही नहीं है बल्कि अतीत में दिए गए निष्कर्षो अथवा विचारों का नई परिस्थितियों के सन्दर्भ में सत्यापन करना भी है। इस कार्य के लिए अनुसन्धानकर्ता किसी अध्ययन–विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों अथवा विशेषज्ञों से साक्षात्कार करके निष्कर्षो का सत्यापन करने का प्रयत्न करता है।

साक्षात्कार के विभिन्न प्रकार (Various Types of Interview)

विभिन्न आधारों पर साक्षात्कार अनेक प्रकार का हो सकता है । उदाहरण के लिए, अध्ययन प्रविधि के आधार पर साक्षात्कार संरचित तथा असंरचित हो सकता है, जबकि अध्ययन के उद्देश्यों के आधार पर यह निरूपण सम्बन्धी, उपचारात्मक तथा अनुसन्धान सम्बन्धी हो सकता है। सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर इसे हम 'व्यक्तिगत' तथा 'सामूहिक' जैसे दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, जबकि उत्तरदाताओं से स्थापित सम्पर्क की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए इसे औपचारिक जैसे भागों में बाँटा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, साक्षात्कार की अवधि और आवृत्ति के आधार पर भी इसका अनेक प्रकार से वर्गीकरण करना सम्भव है। प्रस्तुत विवेचन द्वारा हम कुछ प्रमुख आधारों पर साक्षात्कार के विभिन्न प्रकारों को निम्नांकित रूप से समझ सकते हैं–

अध्ययन–प्रविधि के आधार पर वर्गीकरण (Classification on the Basis of Technique)

साक्षात्कार किस उपागम अथवा दृष्टिकोण को आधार मानकर किया जाता है,यह किसी भी साक्षात्कार को आरम्भ करने से पहले निर्धारित कर लेना अत्यधिक आवश्यक होता है । इस उपागम के आधार पर सभी साक्षात्कारों को दो मुख्य भागों तथा अनेक उप–भागों में बाँटा जा सकता है–

(1) संरचित साक्षात्कार— संरचित साक्षात्कार को नियन्त्रित साक्षात्कार तथा औपचारिक साक्षात्कार भी कहा जाता है। यह साक्षात्कार की वह प्रविधि है जिसमें पहले से ही निर्धारित प्रश्नों को एक निश्चित सूची की सहायता से उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करके उनका साक्षात्कार किया जाता है तथा प्राप्त उत्तरों का उसी स्थान पर आलेखन भी कर लिया जाता है। ऐसे साक्षात्कार का उद्देश्य सभी उत्तरदाताओं से समान प्रश्न करना होता है। साधारणतया संरचित साक्षात्कार में वैकल्पिक प्रश्न अथवा बन्द प्रकृति के प्रश्न के सामने पहले से ही कुछ उत्तरों का उल्लेख कर दिया जाता है तथा उत्तरदाता इन्हीं में से जिस उत्तर को ठीक समझता है; उसके ऊपर सही का निशान ( ) अंकित कर देता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में संरचित साक्षात्कार में उत्तरदाता को अपनी इच्छानुसार भी प्रश्न का उत्तर देने की छूट हो सकती है लेकिन साक्षात्कार में पूछे गये प्रश्नों में एक निश्चित व्यवस्था का होना अत्यधिक आवश्यक होता है। यदि किसी प्रश्न का

NOTES

उत्तर स्पष्ट नहीं होता तो साक्षात्कार की इस प्रविधि में प्रश्न को पुन: दोहराया जा सकता है। अध्ययनकर्ता को पूर्व-निर्धारित प्रश्नों में किसी तरह का परिवर्तन करने की छूट नहीं होती यद्यपि विभिन्न प्रश्नों से प्राप्त उत्तरों में कुछ भ्रम होने पर उनकी परीक्षा के दृष्टिकोण से वह प्रश्नों के क्रम से कुछ परिवर्तन अवश्यक कर सकता है। ऐसे साक्षात्कार का उद्देश्य सम्पूर्ण अध्ययन में एकरूपता बनाए रखना तथा प्राप्त उत्तरों का वैज्ञानिक आधार पर सारणीयन करके निष्कर्ष प्रस्तुत करना होता है।

(2) **असंरचित साक्षात्कार—** संरचित साक्षात्कार के विपरीत असंरचित साक्षात्कार वह प्रविधि है जिसमें उत्तरदाताओं से विभिन्न प्रकार के प्रश्न करने के लिए अध्ययनकर्ता को काफी स्वतन्त्रता मिली होती है, इसलिए ऐसे साक्षात्कार को हम अनौपचारिक साक्षात्कार भी कहते हैं। ऐसे साक्षात्कार में प्रश्नों की क्रमबद्धता, प्रश्न करने का तरीका तथा साक्षात्कार की प्रक्रिया से सम्बन्धित नियम बहुत अधिक सुनिश्चित नहीं होते। परिस्थिति तथा उत्तरदाता के स्तर को देखते हुए साक्षात्कार की प्रक्रिया में किसी भी प्रकार का परिवर्तन किया जा सकता है । ऐसे साक्षात्कार में सभी प्रश्न पहले से ही सुनिश्चित नहीं होते। उत्तरदाताओं को यह स्वतन्त्रता होती है कि साक्षात्कारकर्ता से बिना कोई विशेष निर्देश लिए हुए अपने अनुभवों को विस्तार के साथ प्रस्तुत कर सकें। किसी विषय पर उत्तरदाताओं को जो भी घटनाएँ अथवा तथ्य महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं, उन्हें वे अध्ययनकर्ता के समक्ष स्पष्ट कर सकते हैं। इसके साथ ही, ऐसे साक्षात्कार में उत्तरदाताओं को एक विशेष सामाजिक परिस्थिति का अपने ढंग से विवेचन करने तथा उस स्थिति में से सम्बन्धित अपने विचारों और मनोवृत्तियों को प्रस्तुत करने की भी पूरी स्वतन्त्रता होती है। इसके परिणाम स्वरुप अध्ययनकर्ता के सामने ऐसे अनेक तथ्य आ जाने की सम्भावना रहती है जिनकी वह पहले कल्पना नहीं कर सका था। गालटंग के अनुसार ''असंरचित साक्षात्कार का सबसे मुख्य लाभ उत्तरों का विस्तृत होना तथा इसके माध्यम से अप्रत्याशित लेकिन महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करना है।'' इसके पश्चात् भी ऐसे साक्षात्कार की सफलता बहुत-कुछ साक्षात्कारकर्ता की वैयक्तिक कुशलता तथा ईमानदारी पर निर्भर होती है । असंरचित साक्षात्कार को भी सुविधा के दृष्टिकोण से निम्नांकित चार प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है-

(क) **केन्द्रित साक्षात्कार—**ऐसे साक्षात्कार को हम केन्द्रित साक्षात्कार इसलिए कहते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत अध्ययनकर्ता को किसी पूर्व-निर्धारित विषय पर केन्द्रित रहकर ही विभिन्न प्रकार के प्रश्न करने पड़ते हैं । साक्षात्कारकर्ता अनेक समाजशास्त्रीय अथवा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर जिन परिकल्पनाओं का निर्माण करता है, उनसे सम्बन्धित अध्ययन के पक्षों को वह अच्छी तरह जानता है । साक्षात्कार की प्रक्रिया में वह अध्ययन-विषय से सम्बन्धित उन पक्षों को ध्यान से रखते हुए किसी भी क्रम में और किसी भी ढंग से प्रश्न करने के लिए स्वतन्त्र होता है । ऐसे साक्षात्कार में उत्तरदाता को अपने विचारों को एक विशेष ढंग से व्यक्त करने की पूरी स्वतन्त्रता होती है लेकिन प्रश्नकर्ता का प्रयास यह रहता है कि उत्तरदाता अध्ययन-विषय पर केन्द्रित रहते हुए ही प्रश्नों का उत्तर दे । इस दृष्टिकोण से केन्द्रित साक्षात्कार के उद्देश्य उत्तरदाताओं के अनुभवों के सन्दर्भ में परिकल्पनाओं को विकसित करना अथवा अध्ययन में कुछ नये पहलुओं का समावेश करने का अवसर प्राप्त करना होता है ।

स्वाभाविक है कि अपनी परिकल्पना तथा अध्ययन-विषय के बारे में अनुसन्धानकर्ता का ज्ञान जितना अधिक होता है, केन्द्रित साक्षात्कार के द्वारा वह उतनी ही महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कर लेता है। जैसे, एक अध्ययनकर्ता किसी ग्रामीण समूह पर रेडियों, चलचित्र अथवा दूरदर्शन के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है तो यह आवश्यक है कि उसने स्वयं भी रेडियों तथा दूरदर्शन के प्रसारण सुने अथवा देखे हों केवल तभी वह इस सम्बन्ध में ग्रामीणों के विचारों, भावनाओं तथा मनोवृत्तियों को समझ सकता है।

(ख) **उपचार सम्बन्धी साक्षात्कार—** साक्षात्कार की यह प्रविधि केन्द्रित साक्षात्कार से बहुत मिलती-जुलती प्रतीत होती है लेकिन वास्तव में यह एक भिन्न प्रविधि है। केन्द्रित साक्षात्कार में अध्ययनकर्ता द्वारा जहाँ एक विशेष दशा से उत्पन्न होने वाले प्रभावों का अध्ययन करने का प्रयास किया जाता है, वहीं उपचारात्मक साक्षात्कार का उद्देश्य प्रमुख रूप से उत्तरदाताओं के जीवन के अनुभवों को जानना होता है। इस साक्षात्कार में भी अध्ययनकर्ता इस बारे में सावधान रहता है कि उसके अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न पक्ष हैं लेकिन उत्तरदाताओं के अनुभवों की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसे किसी भी ढंग से प्रश्न करने की स्वतन्त्रता मिली रहती हैं। साधारणतया किसी व्यक्ति के जीवन इतिहास को जानने, मानसिक रोगियों से वार्तालाप करने तथा जेल सुधार के बारे में कैदियों के विचार समझने के लिए इसी प्रकार के साक्षात्कार का आयोजन किया जाता है। ऐसे साक्षात्कार का उपचार सम्बन्धी साक्षात्कार इसलिए कहा जाता है कि इसके द्वारा अनेक ऐसे विचारों और अनुभवों को समझा जा सकता है जिनकी सहायता से किसी व्यवस्था में सुधार किया जा सके।

(ग) **अनिर्देशित साक्षात्कार—** यद्यपि कुछ व्यक्ति अनिर्देशित साक्षात्कार को ही असंरचित साक्षात्कार कह देते हैं लेकिन वास्त्व में यह असंरचित साक्षात्कार के अन्तर्गत एक विशेष प्रविधि है । अनिर्देशित साक्षात्कार एक ऐसी स्थिति को स्पष्ट करता है जिसमें किसी विशेष सूचना के स्पष्टीकरण में अध्ययनकर्ता की अपेक्षा उत्तरदाता का स्थान अधिक महत्वपूर्ण होता है। 'अनिर्देशित' शब्द मानसिक चिकित्सा की उस प्रणाली से सम्बन्धित है जिससे किसी चिकित्सक द्वारा रोगी को कोई निर्देश दिए बिना उसे अपने विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस दृष्टिकोण से अनिर्देशित साक्षात्कार में अध्ययनकर्ता एक विशेष विषय पर उत्तरदाता से प्रश्न तो करता है लेकिन वह किसी रूप में उसके द्वारा दिये गये उत्तर को प्रभावित करने का प्रयास नहीं करता। प्रश्नकर्ता का कार्य उत्तरदाता को केवल किसी विषय पर बोलने के लिए प्रोत्साहित करना होता है। इस कार्य के लिए साक्षात्कारकर्ता एक ऐसे स्वतन्त्र वातावरण को तैयार करता है जिसमें उत्तरदाता अपने विचारों को किसी भी तरह की असहमति अथवा आलोचना की चिन्ता किए बिना स्वतन्त्रतापूर्वक स्पष्ट कर सके। अक्सर ऐसे साक्षात्कार में अध्ययनकर्ता द्वारा एक पूर्व-निर्धारित प्रश्न अनुसूची का भी उपयोग नहीं किया जाता। उत्तरदाता किसी विषय पर अपने लम्बे कथन में जिन विचारों को व्यक्त करता है, अध्ययकर्ता उन्हीं में से उपयोग और उपयुक्त सूचनाओं का चुनाव कर लेता है।

NOTES

(घ) पुनरावृत्ति साक्षात्कार— असंरचित साक्षात्कार की एक प्रमुख समस्या यह है कि प्रश्न करने तथा उत्तर देने में अध्ययनकर्ता और उत्तरदाता दोनों को ही काफी स्वतन्त्रता होने के कारण अक्सर कुछ सूचनाओं को याद रख पाना कठिन हो जाता है । इस प्रकार पुनरावृत्ति की जाये जिससे विस्मृत तथ्यों से सम्बन्धित जानकारी पुनः प्राप्त की जा सके। इस प्रकार जब साक्षात्कारकर्ता किसी समस्या के विषय में उत्तरदाता से एक से अधिक बार सम्पर्क करके तथ्यों की जानकारी करता है तो ऐसे साक्षात्कार को पुनरावृत्ति साक्षात्कार कहा जाता है।

सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर

अधिकांश विषय ऐसे होते हैं जिनसे सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करने के लिए सभी उत्तरदाताओं से साक्षात्कार करना आवश्यक होता है, जबकि कुछ अध्ययनों में अनेक व्यक्तियों का सामूहिक रूप से साक्षात्कार करना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इस दृष्टिकोण से साक्षात्कार प्रकारों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा जा सकता है-

(क) व्यक्तिगत साक्षात्कार— साक्षात्कारकर्ता जब एक समय में एक ही व्यक्ति से साक्षात्कार करता है तो इसे व्यक्तिगत साक्षात्कार कहा जाता है। ऐसे साक्षात्कार के अनेक गुण हैं—सर्वप्रथम, इसके द्वारा साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण अधिक यथार्थ और आन्तरिक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है। गोपनीय तथ्यों को ज्ञात करने में यह साक्षात्कार विशेष रूप से सहायक होता है। इसके द्वारा अधिक सवंदेनशील प्रश्नों का भी उत्तर प्राप्त किया जा सकता है। अन्त में ऐसे साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाओं का सत्यापन करना भी अधिक सरल होता है। बोगार्डस के अनुसार ''व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा लोगों की मनोवृत्तियों तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों को सर्वोत्तम रूप से समझा जा सकता है।'' इसके प्रश्चात भी साक्षात्कार की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। उदाहरण के लिए, उत्तरदाता के घनिष्ठ सम्पर्क में आ जाने के कारण सूचनाओं में वैयक्तिक अभिनति की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त, ऐसा साक्षात्कार अधिक खर्चीला और थकाने वाला भी होता है।

(ख) सामूहिक साक्षात्कार— यह वह प्रविधि है जिसमें अध्ययनकर्ता द्वारा एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों का साथ-साथ साक्षात्कार किया जाता है । इसमें अध्ययनकर्ता एक स्थान पर अध्ययन-समूह के विभिन्न व्यक्तियों से सामूहिक रूप से मिलता है और प्रत्येक प्रश्न के उत्तर के लिए सभी व्यक्तियों को प्रेरित करता है । व्यावहारिक रूप से प्रश्न समूह के नेता से किया जाता है तथा यदि उसके उत्तर को अन्य व्यक्तियों की भी मौन स्वीकृति प्राप्त होती है तो उस उत्तर को पूरे समूह का उत्तर मान लिया जाता है । वर्तमान समय में इस प्रकार के साक्षात्कार अत्यधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं क्योंकि इनके द्वारा बहुत कम समय में अधिक-से-अधिक व्यक्तियों के विचार जानना सम्भव हो जाता है । यह सच है कि सामूहिक साक्षात्कार में गोपनीयता का अभाव रहता है तथा अक्सर समूह के नेता द्वारा दिये गये गलत उत्तर को भी अन्य लोगों की मौन स्वीकृति प्राप्त हो जाती है लेकिन सामूहिक साक्षात्कार के यह दोष इसके लाभों की तुलना में बहुत कम है । विद्यार्थियों में उत्पन्न अनुशासनहीनता के कारणों

को जानने अथवा किसी प्राकृतिक विपत्ति के समय प्रभावित व्यक्तियों के सुझावों को समझने में ऐसे साक्षात्कार विशेष रूप से उपयोगी होते है ।

NOTES

अध्ययन-उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण (Classification on the Basis of Purpose)

सभी साक्षात्कारों के उद्देश्य समान नहीं होते । इस प्रकार अध्ययन के उद्देश्य की भिन्नता के आधार पर साक्षात्कार के तीन प्रमुख प्रकारों का उल्लेख किया जा सकता है-

(क) **निदान सम्बन्धी साक्षात्कार—** जब साक्षात्कार के उद्देश्य किसी विशेष सामाजिक घटना अथवा समस्या के कारणों की खोज करना होता है तो ऐसे साक्षात्कार को हम निदान सम्बन्धी साक्षात्कार कहते है । साधारणतया साक्षात्कार की इस प्रविधि का उपयोग किसी व्यापक सर्वेक्षण का आयोजन करने के लिए किया जाता है ।

(ख) **उपचार सम्बन्धी साक्षात्कार—** यह वह साक्षात्कार है जिसमें साक्षात्कार के द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों से ऐसे सुझाव प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है जिनकी सहायता से समाज में व्याप्त किन्हीं जटिल समस्याओं का उपचार किया जा सके। साधारणतया, व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं के बारे में व्यक्तियों के विचार जानना तथा किन्हीं मनोवैज्ञानिक व्याधियों का उपचार करना इस साक्षात्कार का प्रमुख उद्देश्य होता है ।

(ग) **अनुसन्धान सम्बन्धी साक्षात्कार—** इस प्रकार के साक्षात्कार सामाजिक घटनाओं में व्याप्त कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज के उद्देश्य से आयोजित किये जाते हैं । यही कारण है कि अनुसन्धान सम्बन्धी साक्षात्कार को परिकल्पनाओं की परीक्षा की एक प्रमुख प्रविधि के रूप में देखा जाता है। कभी-कभी ऐसे साक्षात्कार का उद्देश्य कुछ प्रमुख व्यक्तियों अथवा समूहों की मनोवृत्तियों, सामाजिक मूल्यों तथा परिवर्तनशील विचारों का अध्ययन करना भी होता है।

आयोजन की प्रकृति के आधार पर

(क) **पूर्व-व्यवसायिक साक्षात्कार—** यह साक्षात्कार अपनी प्रकृति से अत्यधिक व्यवस्थित और योजनाबद्ध होता है। साक्षात्कार आरम्भ करने से पूर्व ही इसमें विभिन्न प्रश्नों की प्रकृति, संख्या तथा उनके क्रम का निर्धारण कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त, साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाताओं की विशेषताओं तथा साक्षात्कार के स्थान का भी समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिससे कम से कम समय में अधिक से अधिक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

(ख) **आकस्मिक साक्षात्कार—** इस प्रकार के साक्षात्कार में अध्ययनकर्ता को ऐसे व्यक्तियों के विषय में कोई पूर्व जानकारी नहीं होती जिनका साक्षात्कार किया जाना है। अध्ययनकर्ता किसी भी समय से यह साक्षात्कार यात्रा करते हुए अथवा किसी सार्वजनिक स्थान पर आकस्मिक रूप से कभी भी किया जा सकता है। किसी विषय के बारे में जनमत को ज्ञात करने के लिए ऐसा साक्षात्कार बहुत उपयोगी होता है। चुनाव के समय अनेक संवाददाता रेलवे प्लेटफार्म रेस्टोरेन्ट,कॉफी हाउस अथवा ट्रेन या बस में व्यक्तियों का अनौपचारिक रूप से साक्षात्कार करके अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकते है जो चुनाव के परिणामों के बारे में अक्सर बहुत सही सिद्ध होते हैं ।

साक्षात्कार के प्रकारों की उपर्युक्त सूची भी अन्तिम नहीं है। अवधि के आधार पर कुछ साक्षात्कार बहुत कम समय वाले हो सकते हैं, जबकि अनेक साक्षात्कार बहुत दीर्घ समय तक चलने वाले होते हैं। साक्षात्कार की आवृत्ति के आधार पर अनेक साक्षात्कार ऐसे होते हैं जिनकी पुनरावृत्ति की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत अनेक अध्ययन-विषय इस प्रकार के होते हैं जिनसे सम्बन्धित उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए बार-बार साक्षात्कार आयोजित करना पड़ता है। इसका अभिप्राय यह है कि साक्षात्कार की प्रविधि अथवा उसका स्वरूप क्या होगा, इसका निर्धारण अध्ययन-विषय तथा अध्ययन-क्षेत्र की प्रकृति के अनुसार ही करना आवश्यक होता है।

साक्षात्कार की प्रक्रिया के चरण (Steps in the Process of Interview)

गुडे तथा **हाट** ने लिखा है कि साक्षात्कार का व्यवस्थित संचालन स्वयं में एक कला है। अत: वैध और विश्वसनीय निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए साक्षात्कार का व्यवस्थित आयोजन करना अति आवश्यक होता है। गुडे और हाट के इस कथन से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न चरणों के द्वारा इसे इस प्रकार व्यवस्थित किया जाये जिससे अध्ययनकर्ता अपने प्रमुख उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए तथ्यों का कुशलतापूर्वक संकलन कर सके। साक्षात्कार के इन चरणों अथवा सोपानों की संख्या का उल्लेख करते हुए जान मैज ने कहा है कि ''साक्षात्कार की प्रक्रिया साधारणतया तीन चरणों अथवा स्तरों में से होकर गुजरती है जिनमें से प्रत्येक स्तर एक विशेष उद्देश्य की ओर संकेत करता है'' वास्तविकता यह है कि साक्षात्कार की प्रक्रिया के किन्हीं निश्चित चरणों का उल्लेख कर सकना अत्यधिक कठिन है। साधारणतया इनका निर्धारण अध्ययन-विषय की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए।

(I) साक्षात्कार की तैयारी

साक्षात्कार की सफलता के लिए आवश्यक है कि अध्ययनकर्ता साक्षात्कार की प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व ही साक्षात्कार की योजना का स्पष्ट रूप से निर्धारण कर ले। इसके लिए सबसे पहले अध्ययनकर्ता को अध्ययन-विषय का पूर्ण रूप से ज्ञान करना आवश्यक है। इसी स्तर में उसका दूसरा कार्य उन उत्तरदाताओं का चयन करना होता है जो अपने समूह का प्रतिनिधित्व करते हों तथा जिनका साक्षात्कार करके उपयोगी सूचनाओं का संकलन किया जा सकता हो। साक्षात्कार की तैयारी के स्तर पर ही चुने गये उत्तरदातों के सम्बन्ध में भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है। उत्तरदाताओं की प्रकृति, व्यवसाय, दिनचर्या और सांस्कृतिक विशेषताओं को समझे बिना साक्षात्कार का आयोजन कुशलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। साक्षात्कार आरम्भ करने से पूर्व ही यह भी निर्धारण कर लेना आवश्यक होता है कि अध्ययन-विषय की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कार का कौन-सा प्रकार सबसे अधिक उपयोगी होगा। इससे विश्वसनीय और यथार्थ सूचनाओं का संग्रह करने में आसानी हो जाती है। इस स्तर पर साक्षात्कार में प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरणों का निर्धारण करना तथा उनका निर्माण करना भी आवश्यक होता है। यह उपकरण साक्षात्कार निर्देशिका तथा साक्षात्कार अनुसूची अथवा किसी भी अन्य रूप में हो सकते हैं। साक्षात्कार निर्देशिका का उपयोग इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होता है कि इसी के आधार बाद में उत्तरदाताओं से निर्धारित प्रश्न करके सामग्री की संकलन किया जा

सकता है। इसके अतिरिक्त, साक्षात्कार की तैयारी के स्तर पर साक्षात्कार के समय और स्थान का निर्धारण कर लेना भी आवश्यक समझा जाता है ।

NOTES

(II) साक्षात्कार का संचालन

यह कहा जाता है कि ''साक्षात्कार की सफलता उसकी संचालन-प्रक्रिया पर ही सबसे अधिक निर्भर होती है।'' अत: साक्षात्कार की सम्पूर्ण प्रक्रिया में यह चरण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसी स्तर पर साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित होता है तथा अध्ययनकर्ता की कुशलता पर ही साक्षात्कार की सम्पूर्ण सफलता निर्भर होती है। इस दृष्टिकोण में साक्षात्कार के इस चरण से सम्बन्धित उन सभी दशाओं को जानना आवश्यक है जिनकी सहायता से ही अध्ययनकर्ता साक्षात्कार का संचालन सफलतापूर्वक कर सकता है-

(1) उत्तरदाताओं से सम्पर्क— अध्ययनकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि साक्षात्कार के संचालन के लिए सर्वप्रथम वह उत्तरदाताओं से पूर्व-निर्धारित समय एवं स्थान पर सम्पर्क स्थापित करे। इस कार्य में उत्तरदाताओं के सम्बन्धियों, मित्रों अथवा परिचितों का सहयोग लेना बहुत उपयोगी रहता है। उत्तरदाता यदि शिक्षित हो तो उसे अपना इस प्रकार परिचय देना चाहिए जिससे वह अध्ययनकर्ता में विश्वास कर सके। पहली बार उत्तरदाता से मिलने के समय ही अध्ययनकर्ता उस पर अपना जो प्रभाव छोड़ता है, वह अन्त तक साक्षात्कार की प्रक्रिया को प्रभावित करता रहता है।

(2) प्रयोजन का स्पष्टीकरण— अध्ययनकर्ता द्वारा अपना परिचय देने के बाद उत्तरदाता को साक्षात्कार के उद्देश्य को बहुत सरल, स्पष्ट और मधुर भाषा में स्पष्ट कर देना चाहिए। उत्तरदाता को यह सन्देह हो सकता है कि उसी का साक्षात्कार क्यों किया जा रहा है, ऐसे सन्देह से पहले ही उत्तरदाता के सामने यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि प्रतिचयन में जिन व्यक्तियों का चुनाव हुआ है, उन्हीं का साक्षात्कार किया जा रहा है। यदि अध्ययन विषय किसी समूह के लिए अथवा सार्वजनिक दृष्टिकोण से उपयोगी हो तो उत्तरदाता के समूह को उस अध्ययन की उपयोगिता को स्पष्ट करना भी महत्वपूर्ण होता है। इसमें साक्षात्कार के प्रति उत्तरदाता की रुचि स्वयं ही बढ़ जाती है।

(3) सहयोग की प्रार्थना— साक्षात्कार के उद्देश्य को स्पष्ट करने के पश्चात् अध्ययनकर्ता द्वारा सम्बन्धित व्यक्ति से साक्षात्कार में सहयोग देने की एक नम्र अपील की जानी चाहिए । ऐसी अपील तभी प्रभावपूर्ण है जब अध्ययनकर्ता उत्तरदाता को यह विश्वास दिला सके कि वह जो भी सूचनाएँ अथवा उत्तर देगा उन्हें पूर्णतया गुप्त रखा जायेगा । उत्तरदाता को यह विश्वास होना भी आवश्यक है कि उसके सहयोग के बिना अध्ययन-कार्य सफल नहीं हो सकता ।

(4) साक्षात्कार का प्रारम्भ— साक्षात्कार के संचालन में सबसे अधिक सावधानी प्रमुख साक्षात्कार को आरम्भ करते समय रखी जानी चाहिए । साक्षात्कार के आरम्भिक स्तर पर उत्तरमाला की आयु, व्यवसाय, शिक्षा, परिवार के सदस्यों की संख्या आदि से सम्बन्धित परिचयात्मक प्रश्न ही किए जाने चाहिए । आरम्भ में ही उत्तरदाता का नाम, पता अथवा उसकी मासिक आय सम्बन्धी प्रश्न पूछने से व्यर्थ में ही अनेक शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

इसके बाद अध्ययन-विषय से सम्बन्धित ऐसे प्रश्न करने चाहिए जो बहुत सामान्य और सरल प्रकृति के हों। साक्षात्कार के प्रति उत्तरदाता की रुचि जैसे-जैसे बढ़ती जाये, उससे कुछ जटिल प्रकार के प्रश्न पूछे जाने चाहिए। वैयक्तिक जीवन तथा भावनात्मक पक्ष से सम्बन्धित प्रश्न साक्षात्कार के अन्त में करने चाहिए। साक्षात्कार के समय यह आवश्यक है कि अध्ययनकर्ता धैर्यपूर्वक उत्तरदाता द्वारा दिये जाने वाले सम्पूर्ण विवरण को सुनता रहे तथा बीच-बीच में कम-से-कम बोलने का प्रयास करे। ऐसा प्रदर्शित करना चाहिए कि उत्तरदाता की प्रत्येक बात महत्वपूर्ण है, चाहे वह बिल्कुल ही व्यर्थ और अनुपयोगी बातें कर रहा हो। यह सावधानी रखना आवश्यक है कि प्रश्नों की भाषा इस प्रकार की हो जो उत्तरदाता को नाराज हो जाने का अवसर न दे। जैसे एक समूह में सामाजिक बुराइयों का अध्ययन करने के लिए यदि हम किसी उत्तरदाता से यह पूछे कि ''क्या तुम रोज शराब पीते हो'' अथवा यह कि क्या आपको रिश्वत देने अथवा लेने का अनुभव है'' तो इससे उत्तरदाता तुरन्त अप्रसन्न हो सकता है। यह प्रश्न इस प्रकार भी किए जा सकते है'' आपके विचार से सप्ताह में कितनी बार मद्यपान करना हानिकारक नहीं हो सकता'' अथवा यह कि ''रिश्वत लेने या देने को आप किस सीमा तक एक समाज-विरोधी कार्य नहीं होते हैं तो उनके सही उत्तर मिलने की अधिक सम्भावना रहती है। साक्षात्कार के समय प्रश्न इस प्रकार व्यवस्थित होने चाहिए कि उत्तरदाता क्रमबद्ध रूप से उनका उत्तर दे सके। जब अध्ययन के एक पक्ष से सम्बन्धित प्रश्न समाप्त हो जाय केवल तभी दूसरे पक्ष से सम्बन्धित प्रश्न आरम्भ किए जाने चाहिए। यदि उत्तरदाता किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता तो उसे इसके लिए बाध्य नहीं करना चाहिए बल्कि कुछ समय बाद घुमा-फिराकर बात को इस तरह प्रस्तुत करना चाहिए जिससे अपने द्वारा दिये गये विवरण में उत्तरदाता उस प्रश्न का भी उत्तर देने के लिए स्वयं ही बाध्य हो जाये।

(5) **उत्तर के लिए प्रोत्साहन—** साक्षात्कार के सफल संचालन के लिए यह भी आवश्यक है कि साक्षात्कार के बीच-बीच में उत्तरदाता को इस प्रकार प्रोत्साहन मिलता रहे कि वह उत्तर देने में थकान अनुभव न करे। जैसे-यदि अध्ययनकर्ता साक्षात्कार के दौरान दो-तीन बार ऐसे वाक्य कह देता है कि ''आपने विषय को जिस ढंग से प्रस्तुत किया, ऐसा बहुत कम लोग कर पाते हैं'', ''ऐसे सूचनाओं से आपने तो विषय के बारे में मेरा दृष्टिकोण ही बदल दिया'' आदि तो उत्तरदाता निरन्तर नयी से नयी सूचनाएँ देने के लिए प्रोत्साहित होता रहता है। इसके बाद भी अध्ययनकर्ता को प्रशंसा सम्बन्धी वाक्य सम्बन्धी वाक्य कहते समय यह निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि प्रशंसा इतनी अधिक अथवा ऐसी भाषा में न हो जाय कि उसे उत्तरदाता अपनी चापलूसी समझने लगे।

(6) **पुनः स्मरण—** साक्षात्कार की प्रक्रिया में उत्तरदाता कभी-कभी अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों का वर्णन करते समय मूल विषय से इतना भटक जाता है कि उसे पुनः मुख्य प्रश्न अथवा विषय पर लाना आवश्यक होता है । ऐसी स्थिति में उत्तरदाता से वह कभी नहीं कहना चाहिए कि ''आप प्रश्न तक ही सीमित रहिए'' अथवा ''आपके द्वारा दिया जाने वाला विवरण हमारे प्रश्न से सम्बन्धित नहीं है'' आदि। पुनःस्मरण एक ऐसी मनोवैज्ञानिक विधि है जिसमें अध्ययनकर्ता उत्तरदाता की बात सुनते हुए बीच में स्वयं इस प्रकार की बात

करने लगता है जो उत्तरदाता को मूल प्रश्न की याद दिला दे । जैसे–अध्ययनकर्ता द्वारा यह कहना कि "अभी आप अमुक बात कह रहे थे, उस सम्बन्ध में कुछ और प्रकाश डालिए" तो सम्भव है उत्तरदाता पुन: मूल प्रश्न पर लौट आए । इसके बाद भी उत्तरदाता को किसी प्रश्न का स्मरण कराने में इतनी सावधानी रखनी चाहिए कि उत्तरदाता स्वयं को उपेक्षित महसूस न करे ।

(7) **सूचनाओं का आलेखन–** साक्षात्कार के समय विभिन्न उत्तरों तथा तथ्यों को नोट करना एक उपयोगी लेकिन कठिन कार्य है क्योंकि इससे अक्सर साक्षात्कार में व्यवधान उत्पन्न हो जाने की सम्भावना रहती है। उत्तरदाता जब साक्षात्कारकर्ता को दी गयी सूचनाओं को लिखने में व्यस्त देखता है तो साधारणतया उसका उत्साह कम होने लगता है। इस स्थिति में यह आवश्यक है कि या तो अध्ययनकर्ता आलेखन का कार्य साथ में लाये या किसी सहयोगी व्यक्ति को सौंप दे अथवा सूचनाओं को संकेत–लिपि या संक्षिप्त शब्दों में इस प्रकार नोट करे जिससे इस कार्य में कम से कम समय लगे। सूचनाओं के आलेखन के लिए टेप–रिकार्डर का उपयोग भी एक उपयोगी विधि हो सकती है लेकिन इसके लिए उत्तरदाता की पूर्व–अनुमति ले लेना आवश्यक होता है। सूचनाएँ यदि व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हैं तो किसी भी स्थिति में टेप रिकार्डर का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

(III) साक्षात्कार का समापन

अध्ययन–विषय से सम्बन्धित सभी प्रश्नों पर उत्तरदाता के विचारों और प्रक्रियाओं को समझ लेने के बाद साक्षात्कार का समापन करना भी एक कला है। इस स्तर पर साक्षात्कारकर्ता को अनेक सावधानियाँ रखना आवश्यक होता है। सर्वप्रथम, विषय से सम्बन्धित सभी प्रश्नों के उत्तर ले लेने के बाद भी यदि उत्तरदाता रुचि के साथ किसी वैयक्तिक अथवा सार्वजनिक विषय पर कोई बात कह रहा हो तो उसकी बात को धैर्यपूर्वक सुनना चाहिए। यदि उत्तरदाता विभिन्न विवरण देते हुए काफी थकान अनुभव करने लगे तो इस स्थिति में साक्षात्कार बन्द कर देना चाहिए। इससे भविष्य में उत्तरदाता से पुन: सम्पर्क स्थापित करने का एक और अवसर मिल जाता है। कभी–कभी उत्तरदाता अपनी सम्पूर्ण बात कह चुकने के बाद खिन्नता अथवा ग्लानि का अनुभव करने लगता है। उसे सम्भवत: यह महसूस होता है कि स्वयं अपने बारे में अथवा समूह के बारे में उसने जो सूचनाएं दी है वह उसे नहीं देनी चाहिए थी। अध्ययनकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि इस स्थिति में उत्तरदाता को आश्वस्त कर दिया जाय कि उसने जो भी सूचनाएँ दी है, वे सम्पूर्ण समाज के हित में है तथा इन सभी सूचनाओं को पूर्णतया गुप्त रखा जायगा। साक्षात्कार के समापन के लिए यह भी आवश्यक है कि निर्धारित प्रश्नों का उत्तर ले चुकने के पश्चात् सामान्य जन–जीवन से सम्बन्धित अथवा कुछ मनोरंजन विषयों पर दो–तीन मिनटों तक सामान्य चर्चा अवश्य की जाय। इससे उत्तरदाता की थकान और भारीपन दूर हो जाता है। इन सभी सावधानियों का अभिप्राय उत्तरदाता के इस प्रकार निकट सम्पर्क में आना है कि आवश्यकता पड़ने पर उससे पुन: सम्पर्क स्थापित किया जा सके। अन्त: में उत्तरदाता को उसके सहयोग के लिए धन्यवाद देते हुए सामान्य शिष्टाचार और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के द्वारा साक्षात्कार समाप्त कर देना चाहिए।

NOTES

(IV) आलेखन अथवा प्रतिवेदन

साक्षात्कारकर्ता सामग्री का संकलन चाहे व्यक्तिगत अनुसन्धान के लिए कर रहा हो अथवा यह कार्य किसी अन्य एजेन्सी के लिए किया जा रहा हो, साक्षात्कार की समप्ति के तुरन्त बाद प्राप्त तथ्यों का आलेखन करना आवश्यक होता है। साक्षात्कार की प्रक्रिया के बीच सूचनाओं के नोट्स इतने संक्षिप्त होते है। कि यदि उनके विस्तृत आलेखन में विलम्ब हो जाय तो उसमें गलतियाँ होने अथवा तथ्यों के छूट जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। संक्षिप्त नोट्स को विस्तर से लिखते समय सूचनाओं का सत्यापन भी करते जाना चाहिए। यदि किसी विशेष प्रश्न का उत्तर रह गया है अथवा अपूर्ण है तो उसे इस प्रकार चिन्हित कर देना चाहिए जिससे उत्तरदाता से पुन: मिलने पर आवश्यक जानकारी प्राप्त की जा सके। यदि साक्षात्कार प्रतिवेदन को तैयार कर लेना आवश्यक होता है। प्रतिवेदन की भाषा बहत सरल और स्पष्ट होनी चाहिए। वास्तव में साक्षात्कार के बाद किया गया आलेखन अथवा तैयार की गयी रिपोर्ट में जितनी स्पष्ट और विश्वसनीय होती है, उससे उतने ही अधिक पक्षपातरहित निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।

साक्षात्कारकर्ता की भूमिका अथवा उसके गुण (Role of Interviewer or his Qualities)

साक्षात्कार की सम्पूर्ण प्रक्रिया में साक्षात्कारकर्ता की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है । किसी साक्षात्कार का आयोजन चाहे कितनी भी कुशलतापूर्वक क्यों न कर लिया जाय लेकिन साक्षात्कार के संचालन का सम्पूर्ण भार अध्ययनकर्ता पर ही होता है। साक्षात्कारकर्ता ही अपनी कुशलता और प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व से उत्तरदाता को साक्षात्कार के लिए तैयार करता है और प्रत्येक सरल और जटिल प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करके वास्तविक तथ्यों को ज्ञात करने का प्रयास करता है। इस भूमिका का कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए साक्षात्कारकर्ता में कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है। एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लुण्डबर्ग ने कहा है कि ''कितनी ही प्रारम्भिक तैयारी क्यों न कर ली जाए, वह अध्ययनकर्ता के बुद्धि-बूझ का स्थान नहीं ले सकती।'' प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता के बीच आमने-सामने के प्रश्नों द्वारा अन्तक्रिया होती है, इसलिए साक्षात्कारकर्ता के व्यक्तित्व अथवा गुणों का साक्षात्कार की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ना बहुत स्वाभाविक है।

एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता में किन गुणों का होना आवश्यक है ? यह एक बहुत तुलनात्मक स्थिति है। इसके बाद भी साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति के कुछ ऐसे गुणों का उल्लेख अवश्य किया जा सकता है जिनकी आवश्यकता सभी प्रकार के साक्षात्कारों में होती है । सर्वप्रथम साक्षात्कारकर्ता को एक अच्छा अनुसन्धानकर्ता होने के साथ ही अपने विषय का विशेषज्ञ होना आवश्यक है । इन्हीं गुणों की सहायता से वह अध्ययन का कुशल आयोजन करके साक्षात्कार के लिए उपयोगी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सकता है । इसके अतिरिक्त, व्यवहारकुशलता, वाक्चातुर्थ करने की क्षमता आदि वे प्रमुख गुण है जिनके बिना साक्षात्कार का समुचित ढंग से संचालन नहीं किया जा सकता । अध्ययनकर्ता यदि आवश्यकता से अधिक चतुर अथवा धूर्त प्रकृति का होता तो एक-दो व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने के बाद इसे अन्य उत्तरदाताओं का सहयोग नहीं मिल पाता । केवल अपने ही विचारों को महत्व देने वाले और मन्द बुद्धि के अध्ययनकर्ता किसी न किसी स्तर पर उत्तरदाता को इस प्रकार क्षुब्ध कर देते हैं कि वह शीघ्र ही साक्षात्कार के प्रति उदासीनता दिखाने लगता है । इसके विपरीत, साक्षात्कारकर्ता यदि विनम्र

व्यवहार तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध प्रदर्शित करता है तो उसे उत्तरदाता का कहीं अधिक सहयोग मिल जाता है। उत्तरदाता बहुत अधिक चुप और गम्भीर रहने वाले व्यक्ति, बातों को बढ़ा-चढ़ाकर कहने वाले लोगों अथवा अति-आदर्श बात करने वाले व्यक्ति को पसन्द नहीं करते। इस दृष्टिकोण से साक्षात्कारकर्ता में सन्तुलित रूप से वार्तालाप करने और वातावरण को सौहार्द्रपूर्ण बनाने की कुशलता का होना आवश्यक है। इन गुण के पश्चात् भी साक्षात्कारकर्ता को जब तक अपने विषय का पूरी तरह ज्ञान न हो, वह उत्तरदाताओं से व्यवस्थित ढंग से वार्तालाप नहीं कर सकता।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि केवल प्रशिक्षण के द्वारा ही इन सभी गुणों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। साक्षात्कारकर्ता के गुण बहुत कुछ उसके अपने व्यक्तित्व से सम्बन्धित होते हैं। प्रशिक्षण तो इन गुणों को विकसित करने की एक सामान्य प्रणाली मात्र है। इसको स्पष्ट होता है कि एक विशेष अध्ययन के लिए अच्छे साक्षात्कारकर्ता का समुचित चुनाव करना भी उतना ही अधिक आवश्यक है जितना कि वैज्ञानिक निष्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए व्यवस्थित रूप से साक्षात्कार का आयोजन करना आवश्यक होता है।

सफल साक्षात्कार की आवश्यक दशाएँ (Essential Conditions for Successful Interview)

साक्षात्कार की सफलता के लिए इसका व्यवस्थित आयोजन और साक्षात्कारकर्ता के व्यक्ति तत्व सम्बन्धी गुणों का होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इसकी सफलता बहुत बड़ी सीमा तक कुछ अन्य दशाओं पर निर्भर होती है। इन दशाओं का मुख्य सम्बन्ध अध्ययन के प्रारूप साक्षात्कार की कला, प्रश्नों की प्रकृति तथा प्रश्नकर्ता द्वारा साक्षात्कार को संचालित करने के ढंग आदि से है । इन सभी दशाओं को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है-

(1) सर्वप्रथम, साक्षात्कार की सफलता एक समुचित और व्यवस्थित अध्ययन प्रारूप पर आधारित होती है। यदि प्रश्नों की अनुसूची त्रुटिपूर्ण हो तो कुशल से कुशल साक्षात्कारकर्ता भी उसके द्वारा उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त नहीं कर सकता है।

(2) साक्षात्कार करने की कला स्वयं इसकी सफलता का एक मुख्य आधार है । यह कल्पना कुछ निश्चित वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होती है। सर्वप्रथम, सिद्धान्त यह है कि साक्षात्कार के लिए एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण किया जाय जिसमें उत्तरदाता स्वयं ही प्रामाणिक और विश्वसनीय सूचनाएँ प्रदान करने लगे। इसके पश्चात् भी यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रश्न इतना स्पष्ट भाषा में पूछा जाय कि उत्तरदाता प्रश्न को सही रूप में समझकर उसका सही उत्तर दे सके। किसी भी दशा में साक्षात्कारकर्ता को प्रश्न के उत्तर से सम्बन्धित कोई निर्देशक-सूचक विवेचना नहीं देनी चाहिए।

(3) साक्षात्कार केवल तभी सफल हो सकता है जब इसके लिए एक मित्रतापूर्वक और उन्मुक्त वातावरण तैयार कर लिया जाय। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि उत्तरदाता: तुरन्त ही प्रश्न पूछने की प्रक्रिया आरम्भ नहीं करके शुरू में कुछ समय तक मौसम, परिवार बच्चों की कुशल और स्थानीय दशाओं आदि के बारे में बात-चीत की जाये। इस प्रकार उत्तरदाता का विश्वास मिलने के बाद ही प्रमुख प्रश्न किये जाने चाहिए।

(4) साक्षात्कार की सफलता के लिए साक्षात्कारकर्ता का व्यवहार बहत मित्रतापूर्ण, विनम्र और पक्षपातरहित होना आवश्यक है। साक्षात्कारकर्ता का कार्य मूल रूप से एक संवाददाता के रूप में कार्य करना होता है। इस दृष्टिकोण से साक्षात्कार के समय उसे किसी भी दशा में एक सलाहकार, प्रचारक, नीति विज्ञानी अथवा बहस करने वाले व्यक्ति के रूप में व्यवहार नहीं करना चाहिए और न ही उसे उत्तरदाता द्वारा दिये गये किसी उत्तर के प्रति आश्चर्य अथवा असहमति प्रदर्शित करनी चाहिए।

(5) साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार को केवल तभी सफल बन सकता है जब उसे अनुसूची से सम्बन्धित सभी प्रश्नों की पूर्ण जानकारी हो जो साक्षात्कारकर्ता अनुसूची को बार-बार पढ़कर विभिन्न प्रश्न करते हैं, वे उत्तरदाता का सहयोग प्राप्त नहीं कर पाते। प्रश्नों के समुचित ज्ञान से प्रश्नकर्ता यह जानता है कि आगे उसे किन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हैं। ऐसी स्थिति में वह सामान्य बातचीत के द्वारा ही एक साथ अनेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर लेता है। साधारणतया अधिकांश उत्तरदाता अनेक प्रश्नों के उत्तर में अपनी अज्ञानता प्रदर्शित करते हैं। विषय और प्रश्नों के समुचित ज्ञान से ही उस समस्या का समाधान करके साक्षात्कार को सफल बनाया जा सकता है।

(6) साक्षात्कार की प्रक्रिया का एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष उत्तरदाता से प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के साथ ही उसकी **मुख-मुद्रा** का अवलोकन करके कथन की वास्तविकता को समझना है । इस कार्य के लिए अध्ययनकर्ता का अत्यधिक प्रशिक्षित और क्षेत्र-कार्य में प्रवीण होना आवश्यक होता है लेकिन तो भी अनेक बार मुख-मुद्रा के सामान्य अवलोकन से भी कही गयी बातों की सत्यता को काफी सीमा तक ज्ञात किया जा सकता है।

(7) एक सफल साक्षात्कार के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है कि स्वयं साक्षात्कारकर्ता द्वारा उत्पन्न **अभिनति की सम्भावना का समाधान** करने के प्रयत्न किये जाये। साक्षात्कार में पक्षपात अथवा एक विशेष तरह के झुकाव की समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि उत्तरदाता अध्ययनकर्ता के बारे में पहले से ही एक धारणा बना लेता है और साक्षात्कारकर्ता अक्सर यह मानकर चलता है कि उत्तरदाता तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करेगा। इसके परिणामस्वरूप प्राप्त सूचनाओं का आलेखन कभी-कभी बहुत गलत हो जाता है। इस स्थिति का सर्वोत्तम समाधान यह है कि जिस वर्ग के उत्तरदाताओं से सूचनाएँ प्राप्त करनी हों तो प्रयास यह करना चाहिए कि साक्षात्कारकर्ता भी उस वर्ग की विशेषताओं से सम्बन्धित हो। जिन अध्ययनों में ऐसा करना सम्भव न हो वहाँ साक्षात्कारकर्ता को मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं को उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुरूप मानकर साक्षात्कार करना आवश्यक होता है।

(8) साक्षात्कार की सफलता इस तथ्य पर भी निर्भर है कि प्राप्त सूचनाओं का आलेखन कितना सही और पूर्ण रूप से किया जाता है। जहाँ तक सम्भव हो, आलेखन के संक्षिप्त नोट्स साक्षात्कार की प्रक्रिया के दौरान ही पूरे कर लिये जाने चाहिए।

(9) अन्त में, साक्षात्कार की सफलता के लिए एक बहुत सामान्य लेकिन महत्वपूर्ण शर्त यह है कि साक्षात्कारकर्ता की वेशभूषा इस प्रकार की न हो कि अनेक श्रेणी के उत्तरदाताओं में तिरस्कार अथवा विरोध की भावना उत्पन्न कर सके ।

साक्षात्कार के लाभ

प्राथमिक सामग्री के संकलन में साक्षात्कार किसी भी दूसरी प्रविधि की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । यही सच है कि अवलोकन के द्वारा भी अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं को ज्ञात किया जा सकता है लेकिन व्यक्तियों की भावनाओं, विचारों और मनोवृत्तियों से सम्बन्धित अनेक गुणात्मक तथ्यों को साक्षात्कार के द्वारा ही अधिक अच्छी तरह ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रविधि की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए गुडे तथा हाट ने कहा है कि ''गुणात्मक साक्षात्कार की आवश्यकता के पुनर्मूल्यांकन के कारण समकालीन अनुसन्धान में साक्षात्कार का महत्व पहले से भी अधिक होता गया है । अनेक दूसरे क्षेत्रों में साक्षात्कार की उपयोगिता अथवा इसके महत्व को निम्नांकित से स्पष्ट किया जा सकता है-

(1) उत्तरदाताओं का अधिक सहयोग— सामग्री संकलन की अन्य प्रविधियों की तुलना में साक्षात्कार एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा उत्तरदाताओं से अधिक से अधिक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। प्रश्नावली के द्वारा बहुत बड़ी संख्या में उत्तरदाता या तो सूचनाएँ भेजने के लिए समय नहीं निकाल पाते अथवा इनके प्रति अपनी उदासीनता दिखाते हैं। साक्षात्कार के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता और उत्तरदाता के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क हो जाने के कारण ऐसी कोई कठिनाई सामने नहीं आती। अध्ययनकर्ता को भी सूचनाओं की प्राप्ति के लिए अनिश्चित समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है।

(2) सम्पूर्ण निदर्शन के लिए उपयोगी— साक्षात्कार विधि की सहायता से एक ओर अध्ययन के लिए उपयुक्त निदर्शन अथवा प्रतिचयन (sample) प्राप्त किया जा सकता है तो दूसरी ओर इसके द्वारा प्रतिचयन के अन्तर्गत आने वाले सभी व्यक्तियों से सूचनाएँ प्राप्त करना सम्भव होता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रश्नावली के द्वारा सभी श्रेणियों के लोगों से सूचनाएँ एकत्रित नहीं की जा सकतीं। इसके विपरीत, साक्षात्कार के द्वारा सभी तरह के उत्तरदाताओं से सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है।

(3) विश्वसनीयता— अन्य प्रविधियों की तुलना में इस प्रविधि द्वारा एकत्रित तथ्य और सूचनाओं में विश्वसनीयता भी अधिक होती है। इसका कारण यह है कि अध्ययनकर्ता साक्षात्कार की प्रक्रिया के दौरान गलत प्रतीत होने वाले उत्तरों को अपने प्रश्न का स्पष्टीकरण करके न केवल ठीक करने का प्रयत्न करता है बल्कि उत्तरदाता पर भी इस प्रकार नियन्त्रण रखता है जिससे वह अधिक से अधिक सही उत्तर दे सके। इसके फलस्वरूव तथ्यों के सत्यापन तथा सारणीय में विशेष कठिनाई उत्पन्न नहीं होती।

(4) सत्यापन की क्षमता— साक्षात्कार तुलनात्मक रूप से एक लोचपूर्ण प्रविधि है जिसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं में वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना को कम किया जा सकता है। साक्षात्कारकर्ता यह जानता है कि किसी व्यक्ति से प्रश्न किस क्रम में किये जाये तथा इन प्रश्नों को किस प्रकार विस्तृत किया जाय? साक्षात्कार में उत्तरदाता की व्यक्तिगत विशेषताओं और उसके पर्यावरण का ज्ञान हो जाने से भी प्रश्नों को अधिक व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके पश्चात् भी यदि सूचनादाता द्वारा दिया गया कोई उत्तर सन्देहपूर्ण प्रतीत होता है तो इसका उसी

समय सत्यापन भी किया जा सकता है। यही कारण है कि साक्षात्कार प्रविधि द्वारा किए गए अध्ययन में तथ्यों की पुनर्परीक्षा की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

(5) **अवलोकन का समावेश—** साक्षात्कार प्रविधि में अवलोकन प्रविधि के गुणों का भी समावेश पाया जाता है । साक्षात्कारकर्ता जब उत्तरदाता से प्रश्न करके विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त करता है तो उसे उत्तरदाता और उसकी पर्यावरण सम्बन्धी विशेषताओं का अवलोकन करने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रश्नों के उत्तर में यदि उत्तरदाता किसी प्रकार का संकोच, पूर्वाग्रह अथवा विरोध प्रदर्शित करता है तो अवलोकन के द्वारा भी सूचनाओं की वास्तविकता को समझा जा सकता है। साक्षात्कार के अन्तर्गत जिन विषयों से सम्बन्धित प्रश्न करना उचित अथवा सम्भव नहीं होता, सामान्य अवलोकन के द्वारा उनसे सम्बन्धित जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है।

(6) **गहन अध्ययन की सम्भावना—** साक्षात्कार के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता तथा उत्तरदाता के बीच काफी समय के प्रत्यक्ष सम्बन्ध बना रहने के कारण उत्तरदाता अध्ययन-विषय में धीरे-धीरे रुचि लेने लगता है। इस स्थिति में उसके द्वारा दी गई सूचनाओं की सहायता से विषय का बहुत गहन अध्ययन करना सम्भव हो जाता है। साक्षात्कार से अध्ययनकर्ता को अक्सर ऐसे नवीन तथ्य प्राप्त हो जाते हैं जिनकी वह पहले कल्पना नहीं कर सकता था। इसके परिणामस्वरुप अध्ययनकर्ता को अक्सर अपनी प्रश्न अनुसूची में भी सुधार करने का अवसर प्राप्त हो जाता है तथा अध्ययन का क्षेत्र अधिक व्यापक और गहन बन जाने की सम्भावना रहती है।

(7) **अध्ययन में सामंजस्य—** साक्षात्कार एकमात्र ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा उत्तरदाताओं और परिस्थितियों को देखते हुए अध्ययन की योजना में सामंजस्य स्थापित करना सम्भव है। उदाहरण के लिए, जिन प्रश्नों से उत्तरदाता की भावना को आघात पहुँचता है उन्हें प्रश्न-अनुसूची से निकाला जा सकता है। उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर अध्ययन के किसी विशेष पक्ष में परिवर्तन करना अथवा किसी नये पक्ष का समावेश करना भी साक्षात्कार के द्वारा ही सम्भव हो पाता है। इसका अभिप्राय यह है कि साक्षात्कार की सहायता से न केवल कुछ जटिल परिस्थितियों का समाधान किया जा सकता है बल्कि अध्ययन में आवश्यकतानुसार संशोधन करना भी सम्भव हो सकता है।

(8) **भाषा-दोष का निराकरण—** सामग्री का संकलन करने के लिए यदि उत्तरदाताओं के पास प्रश्नावली प्रेषित की जाती है तो प्रश्नों की भाषा तनिक भी अस्पष्ट अथवा कठिन होने से प्राप्त उत्तर गलत हो जाते हैं। इसके विपरीत, साक्षात्कार की प्रक्रिया में साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता की शैक्षणिक पृष्ठभूमि और उसके विवेक को ध्यान में रखते हुए प्रश्नों को सरल से सरल रूप में प्रस्तुत करता है। इसके बाद भी यदि कोई प्रश्न स्पष्ट नहीं होता तो उत्तरदाता तत्काल अपनी जिज्ञासा का समाधान करके सही उत्तर दे सकता है। इस प्रकार प्राप्त की गयी सूचनाएँ कहीं अधिक विश्वसनीय होती हैं।

साक्षात्कार के उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त इस प्रविधि को इसलिए भी उपयोगी समझा जाता है कि इसके द्वारा अध्ययनकर्ता को स्वयं अपनी अभिनति को दूर करने का भी अवसर मिल जाता है। साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाएँ अधिक आत्मिक और स्वाभाविक होती है।

साक्षात्कार के दोष अथवा सीमाएँ

साक्षात्कार प्रविधि में कुछ ऐसे दोष भी है जिनके कारण कभी-कभी इसके द्वारा विश्वसनीय और यथार्थ तथ्यों को संकलित करना बहुत कठिन प्रतीत होता है । यह दोष रूप में साक्षात्कार की प्रक्रिया तथा अध्ययनकर्ता और उत्तरदाता के बीच होने वाली अन्तक्रिया से सम्बन्धित हैं । इन दोषों अथवा सीमाओं का ध्यान रखे बिना साक्षात्कार प्रविधि का कुशलतापूर्वक उपयोग नहीं किया जा सकता ।

(1) **एक महँगी विधि—** अन्य प्रविधियों की तुलना में साक्षात्कार के द्वारा तथ्यों का संग्रह करने के लिए बहुत अधिक धन, शक्ति और समय की आवश्यकता होती है । एक ओर उत्तरदाताओं के पते और उनसे मिलने का समय जानने में ही बहुत अधिक समय लग जाता है तो दूसरी ओर साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्ता का चुनाव करना और उसे प्रशिक्षित करना भी एक जटिल प्रक्रिया है । एक-एक उत्तरदाता से मिलने के लिए यात्रा में नष्ट होने वाला समय ही इस प्रविधि की एक सीमा नहीं है बल्कि इसके पश्चात् भी यह समझ सकना बहुत कठिन है कि उत्तरदाता से सम्पर्क हो भी सकेगा अथवा नहीं । जिन अध्ययनों में साक्षात्कार के लिए वातावरण को कुछ सीमा तक सौहार्द्रपूर्ण बनाने अथवा नहीं। जिन अध्ययनों में साक्षात्कार के लिए वातावरण को कुछ सीमा तक सौहार्द्रपूर्ण बनाने अथवा नियन्त्रित करने की आवश्यकता है। (जैसे-जनजातियों में साक्षात्कार से पहले बच्चों में मिठाइयाँ, खिलौने अथवा टॉफियाँ वितरित करना), वहाँ यह प्रविधि और अधिक महँगी हो जाती है। एक वैयक्तिक साक्षात्कारकर्ता के लिए साधारणतया इतना धन और समय लगा सकना बहुत कठिन होता है।

(2) **व्यक्तिगत अभिनति की समस्या—** साक्षात्कार प्रविधि के अन्तर्गत साक्षात्कारकर्ता तथा उत्तरदाता दोनों की ओर से ही अभिनति पैदा हो जाने की सम्भावना सदैव बनी रहती है। अध्ययनकर्ता अक्सर साक्षात्कार के लिए प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार कर लेता है जिससे प्राप्त उत्तरों की सहायता से वह अपने विचारों को ही प्रमाणित कर सके। कभी-कभी साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता के इतने निकट सम्पर्क में आ जाता है कि उत्तरदाता केवल अपनी सूचनाओं को रुचिकर बनाने के लिए ही बिल्कुल काल्पनिक बातें कहने लगता है। अनेक तथ्य इस प्रकार के होते हैं जिन्हें अध्ययन से सम्बन्धित व्यक्तियों की जानकारी में लाए बिना केवल अवलोकन के द्वारा उनका अधिक यथार्थ आलेखन किया जाता है। इन्हीं तथ्यों के बारे में जब उत्तरदाता से प्रश्न किए जाते हैं तो उनकी विश्वसनीयता बहुत सन्देहपूर्ण बन जाती है। इसके अतिरिक्त, अध्ययनकर्ता के पास ऐसा भी कोई निश्चित उपकरण नहीं होता जिसके द्वारा दी गई सूचनाओं की प्रमाणिकता को ज्ञात कर सके।

(3) **कुशल साक्षात्कारकर्ता की समस्या—** साक्षात्कार की सफलता वास्तव में इसके कुशल संचालन पर निर्भर होती है। इसका अभिप्राय यह है कि जब तक साक्षात्कारकर्ता बहुत व्यवहार-कुशल योग्य और अनुभवी न हो तब तक वह साक्षात्कार के द्वारा उपयोगी सामग्री का संकलन नहीं कर सकता। ऐसी दशा में यह समस्या उत्पन्न होती है कि एक कुशल साक्षात्कारकर्ता का चुनाव किस प्रकार किया जाय तथा प्रशिक्षण के द्वारा उसकी कुशलता में किस प्रकार वृद्धि की जाय। साधारणातया यह एक कठिन कार्य है लेकिन फिर भी इस पर ध्यान दिये बिना साक्षात्कार की सम्पूर्ण प्रक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है।

(4) बड़े अध्ययन-क्षेत्र में अनुपयुक्त—साक्षात्कार प्रविधि का उपयोग केवल एक छोटे क्षेत्र अथवा सीमित व्यक्तियों के अध्ययन के लिए ही किया जा सकता है। अध्ययन का क्षेत्र यदि बड़ा होता है तो साक्षात्कार के लिए चुने गये सभी व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप से मिलकर सूचनाएँ एकत्रित कर सकना बहुत कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्ता साधारणतया उत्तरदाताओं से मिले बिना ही कागजी कार्यवाही करने का प्रयास करता है । बड़े अध्ययन-क्षेत्र में साक्षात्कारकर्ता की गतिविधियों की जाँच कर सकना भी सरल कार्य नहीं होता ।

(5) उपलब्ध समय की कमी— साक्षात्कार की प्रविधि व्यावहारिक उपयोग के दृष्टिकोण से भी दोषपूर्ण है । उदाहरण के लिए साक्षात्कार यदि दिन में किसी समय किया जाना हो, तो घर पर केवल गृहिणियाँ ही उपलब्ध होती है । साक्षात्कार यदि केवल परिवार के मुखिया अथवा किसी पुरुष सदस्य का किया जाना हो तो साक्षात्कार केवल सन्ध्या के समय छुट्टियों के दिन ही किया जा सकता है । इसका अभिप्राय यह है कि साक्षात्कार के लिए सप्ताह में केवल कुछ घण्टों का ही उपयोग किया जा सकता है। साधारणतया उत्तरदाता भी अपने खाली समय का उपयोग किसी अन्य कार्य अथवा मनोरंजन के लिए करना चाहते हैं । इसके परिणामस्वरूप साक्षात्कार के प्रति उनमें कोई उत्साह नहीं होता।

(6) अपूर्ण तथ्यों का संकलन— साक्षात्कार प्रविधि में उत्तरदाता पर कोई नियन्त्रण रख सकना अत्यधिक कठिन होता है । उनके उत्साह को बनाये रखने के लिए अध्ययनकर्ता उनकी प्रत्येक बात में अपनी रुचि प्रदर्शित करता रहता है। इसके परिणामस्वरूप उत्तरदाता अध्ययन विषय से सम्बन्धित किसी एक पक्ष को ही इतने विस्तार से स्पष्ट करता रहता है कि एक ही अवसर पर सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर सकना साधारणतया सम्भव नहीं हो पाता। इसका अभिप्राय यह है कि अधिकांश साक्षात्कारों से प्राप्त सूचनाएँ अक्सर एकपक्षीय अथवा अपूर्ण होती हैं।

(7) स्मरण शक्ति पर निर्भरता— यह प्रविधि बहुत बड़ी सीमा तक साक्षात्कारकर्ता की स्मरण-शक्ति पर भी निर्भर होती है । साक्षात्कार के समय ही सूचनाओं को लिखने अथवा टेप करने से प्रश्नों और उनके उत्तरों का क्रम टूट जाने की सम्भावना रहती है । ऐसी स्थिति में साक्षात्कारकर्ता जब घर लौटकर विभिन्न सूचनाओं को विस्तार से लिखता है तो या तो बहुत-सी उपयोगी सूचनाएँ लिखने से छूट जाती है अथवा उनका आलेखन गलत ढंग से हो जाता है । इसके अतिरिक्त, विभिन्न प्रश्नों के उत्तर से उत्तरदाता भी जो सूचनाएँ देता है । वह उसकी स्मृति से ही सम्बन्धित होती है । वास्तव में, स्मृति स्वयं में एक दोषपूर्ण आधार है तथा इस पर आधारित तथ्यों से सम्पूर्ण अध्ययन के दोषपूर्ण हो जाने की सम्भावना रहती है ।

(8) उत्तरदाताओं द्वारा उत्पन्न समस्याएँ— साधारणतया साक्षात्कारकर्ता के प्रति उत्तरदाताओं का व्यवहार अधिक सहयोग पूर्ण नहीं होता। विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए अध्ययनकर्ता को उत्तरदाताओं की चापलूसी करने के साथ ही उन्हें प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न करने का प्रयास करना पड़ता है। इससे अध्ययनकर्ता में अक्सर हीनता की एक ऐसी भावना उत्पन्न हो जाती है कि कुछ समय के बाद वह उत्साह के साथ तथ्यों को एकत्रित करने में रुचि नहीं ले पाता। उत्तरदाताओं के दोष को स्पष्ट करते हुए पी.वी.यंग ने लिखा है, ''समझदार होने के बाद भी उत्तरदाताओं में अक्सर घटनाओं के दोषपूर्ण बोध, दोषपूर्ण स्मृति, अर्न्तदृष्टि के अभाव तथा अपनी बात को

स्पष्ट रूप से कह सकने की आयोग्यता होती है।'' यह सभी वही परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण साक्षात्कार की प्रक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है।

NOTES

अत: साक्षात्कार निश्चय ही एक उपयोगी प्रविधि है लेकिन इसे व्यवहार में लाना अत्यधिक कठिन और सूझ–बूझ का कार्य है। साधारणतया कोई भी व्यक्ति बिना किसी लाभ के एक अपरिचित व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित बातें बताने के लिए तैयार नहीं होता। इस स्थिति में साक्षात्कार की सफलता के लिए केवल एक वैज्ञानिक योजना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही काफी नहीं होता बल्कि एक अत्यधिक कुशल साक्षात्कारकर्ता की भी आवश्यकता होती है । सम्भवत: उसी कारण पी.वी.यंग ने लिखा है कि ''साक्षात्कार प्रमुख रूप से एक कला है, न कि एक विज्ञान।'' एक कला के रूप में साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है तथा उसी की कुशलता, बौद्धिक ईमानदारी एवं परिस्थितियों से अनुकूलन कर सकने की क्षमता के द्वारा साक्षात्कार के दोषों का निराकरण किया जा सकता है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. साक्षात्कार निर्देशिका से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्य बताइए ।
2. साक्षात्कार के प्रकारों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए ।
3. साक्षात्कार की प्रक्रिया को समझाइए ।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. साक्षात्कार की भूमिका बताइए ।
2. सफल साक्षात्कार की आवश्यक दशाओं का उल्लेख कीजिए ।
3. साक्षात्कार के लाभों का वर्णन कीजिए ।
4. साक्षात्कार के दोष बताइए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ''मौलिक रुप से साक्षात्कार सामाजिक अर्न्तक्रिया की एक प्रक्रिया है ।'' यह कथन है–

   (अ) पामर (ब) गुडे एवं हॉट

   (स) पी.वी.यंग (द) पायो येंग ।

2. साक्षात्कार के उद्देश्य हैं–

   (अ) प्राथमिक समग्री का संकलन (ब) निदानों की खोज

   (स) गुणात्मक तथ्यों की जानकारी (द) ये सभी ।

3. साक्षात्कार की प्रक्रिया के चरण –

(अ) चार (ब) पाँच

(स) छः (द) सात ।

4. साक्षात्कार के दोष हैं–

(अ) एक मँहगी विधि (ब) उपलब्ध समय की कमी

(स) अपूर्ण तथ्यों का संकलन (द) ये सभी ।

उत्तर– (1) ब (2) द (3) अ (4) द

11 तथ्यों का रेखीय एवं चित्रीय प्रस्तुतीकरण

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य ।
- प्राक्कथन ।
- बिन्दु रेखाओं के गुण ।
- बिन्दु रेखाओं के दोष ।
- बिन्दु रेखा रचना ।
- आवृत्ति बिन्दु रेखा ।
- कालिक चित्र ।
- निरपेक्ष कालिक चित्र ।
- आवृत्ति चित्र ।
- आवृत्ति बहुभुज ।
- परिमाणात्मक चित्र ।
- एक परिमाणात्मक चित्र ।
- दो परिमाणात्मक चित्र ।
- पाई चार्ट या वृत्त चित्र ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न ।

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- बिन्दु रेखाओं के गुण ।
- बिन्दु रेखाओं के दोष ।
- बिन्दु रेखा रचना ।
- आवृत्ति बिन्दु रेखा ।
- कालिक चित्र ।
- निरपेक्ष कालिक चित्र ।
- आवृत्ति चित्र ।
- आवृत्ति बहुभुज ।
- परिमाणात्मक चित्र ।
- एक परिमाणात्मक चित्र ।
- दो परिमाणात्मक चित्र ।
- पाई चार्ट या वृत्त चित्र ।

NOTES

प्राक्कथन

सांख्यिकीय आँकड़े इतने विशाल व कठिन होते हैं कि जनसामान्य के लिए उनका समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है। वर्गीकरण व सारणीयन समंकों को व्यवस्थित व सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं, लेकिन इनके द्वारा आँकड़ों की विशेषताओं को ठीक प्रकार ही प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है लेकिन एक बात यह भी है कि वे समंकों को संक्षिप्तता प्रदान करने में असमर्थ होते हैं, इसलिए रेखाओं, चित्रों आदि का सहारा लिया जाता है। सांख्यिकीय तथ्यों का बिन्दु रेखीय प्रदर्शन उन्हें समझने योग्य बनाने की सरल एवं प्रभावी विधि है। बिन्दु रेखा समंकों को केवल प्रस्तुत ही नहीं करते, बल्कि चिन्तन व विश्लेषण के आधार पर उनको संक्षिप्तता प्रदान करते हैं।

सांख्यिकी में बिन्दु रेखा का बहुत अधिक महत्व है। गणित की दृष्टि से बिन्दु रेखा को 'बीजगणित ज्यामिति की वर्णमाला' कहा गया है। चित्र का प्रयोग विशेष रूप से स्थान सम्बन्धी मालाओं में होता है। काल मालाओं और आवृत्ति वितरण को प्रकट करने के लिए बिन्दु रेखा सर्वोत्तम है।

बिन्दु रेखाओं के गुण

बिन्दु रेखीय प्रदर्शन अपने कुछ विशेष गुणों के कारण अधिक व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा है । इसके गुण निम्नांकित हैं-

(1) **आकर्षक व प्रभावशाली** – बिन्दु रेखा बहुत आकर्षक होते हैं। यदि वे सुन्दर ढंग से बनाकर प्रस्तुत किये जायें तो वे अत्यन्त प्रभावी मालूम पड़ते हैं। इनका अध्ययन गहन अध्ययन का आभास कराता है।

(2) **समझने में सरल** – समंकों की अव्यवस्थित व विशाल राशि बिन्दु रेखा के द्वारा सुबोध बन जाती है तथा जनसामान्य को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है। परिवर्तन गति एक दृष्टि में स्पष्ट हो जाती है।

(3) **समय व श्रम की बचत** – इस रीति द्वारा आँकड़ों को प्रस्तुत करने के लिए दोनों में ही बचत हो जाती है, जो आँकड़ों का अध्ययन करते हैं, उनका भी विचार करते हैं। जैसे- किसी भी रोगी के तापमान के बिन्दु रेखा को देखकर हम एक तल में रोगी की दशा में परिवर्तन का अनुमान लगा सकते हैं।

(4) **परिवर्तन बताना** – समय-समय पर सामाजिक व आर्थिक तथ्यों एवं दशाओं में होने वाले परिवर्तन तथा उनमें वृद्धि अथवा कमी का सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अधिकांश सरकारी प्रतिवेदनों तथा योजना आयोग के वितरणों में रेखाचित्र प्रदर्शन परिवर्तन का प्रस्तुतीकरण करने में सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं ।

(5) **तुलनात्मक अध्ययन में सरलता** – रेखाचित्रों द्वारा दो प्रकार के समंकों की तुलना सरलता से हो जाती है। दोनों प्रकार के समंकों की दिशा का ठीक-ठीक ज्ञान सरलता से हो जाता है तथा तुलना भी बहुत सरल और वैज्ञानिक हो जाती है।

(6) **पूर्वानुमान या भविष्यवाणी सरल** – बिन्दु रेखाओं का यह प्रमुख लाभ है इनके द्वारा सांख्यिकीय तथ्यों का न केवल अन्तरगणन तथा बाह्य गणन ही करते हैं, बल्कि किसी

घटनाक्रम के सम्भावित भावी प्रकृति की ओर भी पर्याप्त संकेत प्राप्त करते हैं । जनसंख्या, साक्षरता, राष्ट्रीय आय इत्यादि के बारे में भविष्य का ज्ञान प्राप्त करना सरल हो जाता है ।

(7) **सह-सम्बन्ध का अनुमान लगाना** - बिन्दु रेखाओं की सहायता से सह-सम्बन्ध का बहुत अंशों में अनुमान लगाया जा सकता है । वक्रों की गति इसे स्पष्ट रूप से प्रकट करती है।

NOTES

बिन्दु रेखाओं के दोष

रेखाचित्रों द्वारा प्रदर्शित तथ्य पूर्ण रूप से दोषरहित नहीं होते हैं। वैसेलों के अनुसार, ''उद्देश्यपूर्ण रेखाचित्र रचयिता जिन विशेषताओं को सर्वोपरि समझता है, उचित महत्व दे सकता है तथा जिन्हें व्यर्थ समझता है, कम महत्वपूर्ण रूप में प्रदर्शित कर सकता है।'' स्पष्ट है कि बिन्दु रेखाओं को प्रयोग करने तथा समझने में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। बिन्दुरेखीय प्रदर्शनों के अग्रलिखित दोष दिये जा सकते हैं-

(1) **शुद्धता की जाँच न होना** - वक्रों के द्वारा गति का प्रदर्शन होता है, लेकिन वास्तविक मूल्य का अनुमान नहीं हो पाता है, इसलिए शुद्धता की जाँच नहीं हो पाती है।

(2) **सीमित प्रचलन** - प्राय: सामान्य व्यक्ति रेखाचित्रों से अनभिज्ञ होता है, इसलिए वह इन्हें विशेष महत्व नहीं देता है। इनकी अपेक्षा वे आकर्षक चित्रों द्वारा सूचना प्रदर्शन पर अधिक ध्यान देते हैं।

(3) **तर्कसंगत न होना** - बिन्दु का प्रभाव कभी-कभी आँखों तक ही होता है । यह तर्कसंगत न होने के कारण अधिक प्रभावी नहीं हो पाती है।

(4) **पक्षपात सम्भव** - विभिन्न मानदण्डों को थोड़े-थोड़े परिवर्तन के साथ प्रयोग करने से समंकों के अंक भी बदल सकते हैं। उनके रूप तथा आकार में परिवर्तन के बिन्दु रेखा रचियता की अभिमत पक्षपात अथवा त्रुटि की ओर संकेत करती है।

(5) **उद्धरण देना असम्भव** - किन्हीं तथ्यों की दृष्टि में बिन्दु रेखाओं को उद्धरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। रेखाचित्रों का वर्णात्मक पक्ष कुछ भी नहीं होता।

बिन्दु रेखा की रचना

बिन्दु रेखाओं की रचना सामान्यत: बिन्दु रेखीय पत्र पर अंकित किये जाने वाले बिन्दुओं को आपस में मिला देने से होती है। सर्वप्रथम आँकड़ों के आकार व प्रकार को ध्यान में रखते हुए इस पत्र के किसी भी कटान बिन्दु को मूल बिन्दु या शून्य बिन्दु मान लिया जाता है और उस बिन्दु पर एक-दूसरे को लम्बवत् काटने वाली उदग्र और क्षैतिक रेखाओं पर स्याही या पेन्सिल फेरकर उन्हें मोटी या स्पष्ट कर देते हैं । इस उग्र रेखा को उदयमापी श्रेणी (Y-axis) और क्षैतिक रेखा को क्षैतिजमानी श्रेणी (X-axis) कहते हैं । X-axis पर XX' तथा Y-axis पर YY' संकेतों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार Graph paper चार भागों में बँट जाता है, जिसमें से प्रत्येक भाग को चरण कहते हैं। बिन्दु रेखीय पत्र पर बिन्दु को अंकित करते समय उदग्र एवं क्षैतिज श्रेणियों का अध्ययन करके उसे निश्चित करते हैं।

NOTES

मूल बिन्दु के दाहिनी ओर ऊपर की ओर धनात्मक राशियाँ (+) अंकित की जाती हैं । इसलिए O-X तक दाहिनी ओर +1,+2,+3,+4 आदि और बायीं ओर O-X तक ऋणात्मक (–) राशियाँ जैसे– –1, –2, –3,–4, आदि संकेत की जाती हैं । इसी प्रकार O-Y अक्ष पर धनात्मक (+) राशियाँ तथा O-Y अक्ष पर ऋणात्मक (–) राशियाँ अंकित की जाती हैं । निम्नलिखित उदाहरण से इस प्रकार की रचना स्पष्ट की जा सकती है–

उदाहरण 1.

	X-axis	Y-axis
A	+ 2	+ 3
B	– 3	+ 2
C	– 2	– 3
D	+ 3	– 2

सामान्यत: व्यवसायिक व आर्थिक क्षेत्र के समंक धनात्मक होते हैं, इसलिए सांख्यिकीय में व्यावहारिक दृष्टि से प्राय: प्रथम चरण का ही प्रयोग होता है ।

आवृत्ति बिन्दु रेखा (Frequeny Graphs)

सामाजिक सर्वेक्षणकर्त्ता की दृष्टि से समाजशास्त्रीय तथ्यों के विश्लेषण और परिवर्तन की विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रदर्शन के लिए आवृत्ति रेखा ही सर्वाधिक माने जाते हैं । इन चित्रों में प्राय: तथ्यों की आवृत्तियों का वितरण दिखाया गया है । इसे निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

आवृत्ति बिन्दु रेखा
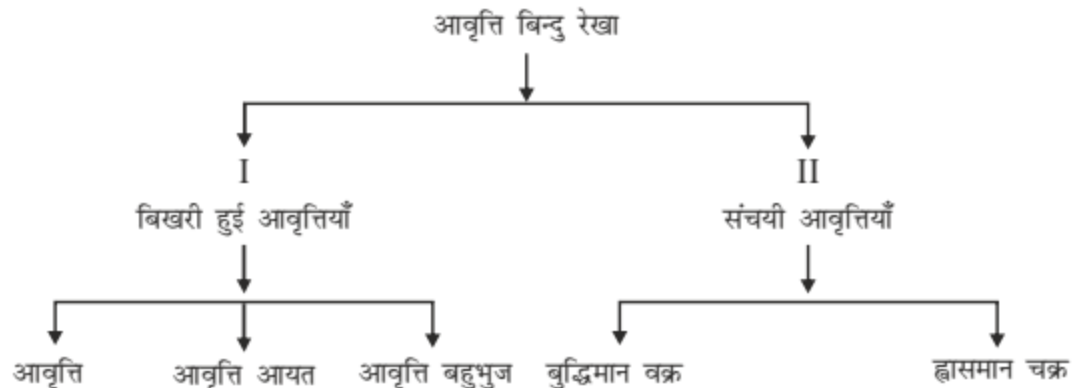
इनके वितरण प्रमुख रूप से दो आधार के हो सकते हैं–

(1) **बिखरी हुई आवृत्तियाँ** – इनके अन्तर्गत तीन प्रकार के बिन्दु रेखीय चित्रों का प्रदर्शन किया जाता है– (a) आवृत्ति बहुभुज वक्र ।

(2) **संचयी आवृत्तियाँ** – संचयी आवृत्तियों के अन्तर्गत दो प्रकार के वक्र बनाये जाते हैं – (A) वृद्धिमान वक्र, (B) ह्रासमान वक्र ।

(I) विच्छिन्न श्रेणी- जिसमें संख्याएँ पूर्णतया स्वतन्त्र या फुटकर रूप में होती हैं । इनमें पिछली या आगामी आवृत्तियों से कोई सह-सम्बन्ध नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर इस कस्बे में 1,2,3,4 कमरों तक के मान लिये जाते हैं।

(II) अविच्छिन्न श्रेणी- इसमें सूचना समूहों या वर्ग अन्तरालों (Class Intervals) के आधार पर आवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इस प्रकार के समंक समूहों में निरन्तरता (Continuity) तथा आत्मनिर्भरता बनी रहती है। अधिकांश इसी रूप में आवृत्तियों को प्रस्तुत किया जाता है। जैसे-5-10, 10-15, 15-20, 20-25 इत्यादि वर्ग अन्तराल होते हैं-

बिन्दु रेखीय वक्रों के प्रयोग दो प्रकार के होते हैं-

(i) काल माला के प्रदर्शन के लिए ।

(ii) आवृत्ति वितरण के प्रदर्शन के लिए ।

कालिक चित्र (Histograms)

काल मालाओं की संतत वक्रों को कालिक चित्र कहते हैं । काल माला को बिन्दु रेखा द्वारा प्रदर्शित करने में हमें या तो किसी अवधि के अन्तर्गत एक चल में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करते हैं या दो अथवा दो से अधिक चक्रों के परिवर्तनों का कालिक चित्र दो प्रकार के होते हैं-

(A) निरपेक्ष कालिक चित्र, (B) देशनांक कालिक चित्र ।

निरपेक्ष कालिक चित्र (Absolute Histograms)

निरपेक्ष कालिक चित्र की रचना निरपेक्ष राशियों को लेकर की जाती है । ये चित्र या तो एक चल पर विचार करते हैं या एक से अधिक चलों पर । जैसे- जब 10 वर्ष की अवधि में भारत में हुआ आयात को बिन्दु रेखा पर प्रदर्शित करना है तो एक चल के कालिक चित्रों की रचना की जाती है । किसी रोगी के तापमान का एक कालिक चित्र उदाहरण के तौर पर दिया जा रहा है ।

उदाहरण 2. निम्नलिखित आँकड़ों से निरपेक्ष कालिक चित्र बनाइए-

March	Morning	Evening
18th	100°	103.8°
19th	99.8°	102°
20th	100°	102.5°
21th	99°	101°
22th	98.8°	100°
23th	98°	99°
24th	97.5°	94.4°
25th	97°	98°

District Hospital Temperature Chart

संकेत - M = Morning, E = Evening.

Scale : ½ cm = 1°, temp. & 1/c = 1 Day.

एक से अधिक चलों का कालिक चित्र प्रदर्शित किये जाने वाले दो से अधिक चलों की इकाइयाँ सजातीय भी हो सकती हैं और विजातीय भी। सजातीय एकक पदों का समान उदग्र और क्षैतिज पैमानों पर दिखाया जाता है, जबकि विजातीय एक पदों को समान उदग्र पैमानों पर दिखाना होता है। यद्यपि क्षैतिज पैमाना एक ही रहता है।

उदाहरण 3. निम्नलिखित आँकड़ों का कालिक चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए-

Months	Export (in Millions)	Import	Balance
April	28	25	+ 3
May	32	30	+ 2
June	30	32	– 2
July	35	31	+ 4
Aug.	29	33	– 4
Sept.	23	26	– 3
Oct.	27	32	– 5
Nov.	27	25	+ 2
Dec.	32	29	+ 3
Jan.	30	28	+ 2
Feb.	31	33	– 2
March	37	36	+ 1

आवृत्ति चित्र (Histograms)

आवृत्ति चित्र को Block diagram भी कहते हैं। इसकी रचना क्षैतिज अक्ष पर प्रत्येक वर्गान्तर के ऊपर एक आयत बनाकर की जाती है। प्रत्येक आयत का क्षेत्रफल उस वर्ग की आवृत्ति के बराबर होता है, जिसके ऊपर वह बना है। विभिन्न आयतों की ऊँचाई वर्ग की आवृत्तियों का आभास कराती है।

उदाहरण 4. निम्नलिखित आँकड़ों की सहायता से आवृत्ति आयत चित्र तथा आवृत्ति बहुभुज की रचना कीजिए ।

प्राप्तांक	विद्यार्थियों की संख्या
10-20	8
20-30	25

30-40	35
40-50	45
50-60	32
60-70	20
70-80	20
80-90	10
80-90	5

NOTES

आवृत्ति बहुभुज (Frequency Polygon)

आवृत्ति बहुभुज बनाने के लिए आवृत्ति चित्र के आयतों के सिरों के बीच बिन्दुओं को मिलाना होता है । इस प्रकार बने हुए बहुभुज क्षेत्र का क्षेत्रफल आवृत्ति चित्र के क्षेत्रफल के समान होता है । आयत के सिरों के मध्य बिन्दुओं को इस मान्यता पर मिलाते हैं कि एक वर्गान्तर में आवृत्तियों का वितरण सम होता है और परिणामतया बीच बिन्दु प्रत्येक वर्गान्तर का प्रतिनिधित्व करता है ।

एक परिमाणात्मक चित्र (One Dimensional Diagrams)

एक परिमाणात्मक चित्रों को खड़ी अथवा बड़ी रेखाओं अथवा दण्डों के रूप में बनाया जा सकता है। इसमें केवल दण्डों एवं रेखाओं की ऊँचाई अथवा लम्बाई की ही तुलना की जाती है। इसमें चौड़ाई का उपयोग केवल चित्रों को अकर्षक बनानेके लिए किया जाता है। इन दण्डों एवं रेखाओं की लम्बाई अंकों के आकार के अनुपात में होती है। चित्र में केवल एक ही पक्ष (लम्बाई अथवा चौड़ाई) को लेने के कारण इसे एक परिमाणात्मक चित्र कहते हैं। इस आधार पर जो दण्ड बनाये जायेंगे, उनकी चौड़ाई कितनी ही आकार में हो सकती है, उसके लिए कोई कठिन नियम नहीं है। ऐसा करने से चित्रों पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, लेकिन इसमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि दण्ड चित्रों को इतना चौड़ा न बना लिया जाय कि वे आयताकार चित्र दिखाई देने लगें।

(1) **सरल दण्ड चित्र**- सरल दण्ड चित्र परिमाणात्मक चित्रों को एक प्रकार होने के कारण इनमें भी केवल लम्बाई अथवा चौड़ाई अथवा ऊँचाई की ही तुलना होती है। खण्डित माला के अंकों को साधारणतया दण्ड चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यदि खण्डितमाला में कई बातों की तुलना करनी हो तथा उसके विभिन्न अंकों का अन्तर बहुत अधिक है तो उसके सरल दण्ड चित्र खींच दिये जायेंगे। इसके साथ-साथ ये दण्ड चित्र एक विशिष्ट प्रकार के तथ्यों का प्रतिनिधत्व करते हैं। उदाहरणार्थ, इन चित्रों द्वारा किसी विश्वविद्यालय में विभिन्न वर्षों में परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों की संख्या को दिखाया जा सकता है। प्रत्येक दण्ड किसी विशिष्ट वर्ष में परीक्षा में बैठने वाले छात्रों का प्रतिनधित्व करेगा। प्रत्येक दण्ड की लम्बाई उस अंक के अनुपात में होगी, जिसका पह प्रतिनिधित्व करता है।

दण्ड खींचने के लिए सबसे बड़े दण्ड की लम्बाई कागज के अनुसार निश्चित कर लेनी चाहिए, जिस पर कि यह चित्र खींचा जा रहा है। यह लम्बाई सबसे बड़े अंक की लम्बाई होगी, फिर उसी अनुपात में अन्य सभी दण्डों की लम्बाई मालूम कर लेनी चाहिए।

NOTES

उदाहरण 1. एक कक्षा के पाँच विद्यार्थियों की उम्र निम्नलिखित प्रकार है-

छात्रों के नाम	A	B	C	D	E
उम्र (वर्ष में)	14	16	20	22	24

रचना विधि- सर्वप्रथम प्रश्न में अंकित सर्वाधिक अंक को देखकर उसी अंक के आकार के अनुसार पैमाना निर्धारित कीजिए साथ ही ग्राम पेपर पर भी उसका आकार आ जाये। अधिक बड़ा या छोटा पैमाना निर्धारित करने पर या तो चित्र इतना बड़ा बनेगा कि ग्राफ पर छोटा पड़ जायेगा या चित्र इतना छोटा बनेगा कि ग्राफ पेपर पर चित्र समझ में भी नहीं आयेगा। अत: सबसे अधिक सावधानी पैमाना निर्धारित करने में रखनी चाहिए । प्रस्तत उदाहरण में छात्रों की सर्वाधिक उम्र 24 वर्ष है, अत: इसमें पैमाना 1 सेमी. = 4 छात्र उचित रहेगा, क्यों यदि 1 सेमी. = 1 छात्र मानेंगे तो 24 छात्रों के लिए 24 सेमी. का स्थान चाहिए, जबकि कापी पर इतना स्थान नहीं होता है, अत: चित्र अत्यधिक बड़ा हो जायेगा। अत: उचित पैमाना 1 सेमी. = 4 छात्र पर्याप्त है। इसमें 24 सेमी. प्रदर्शित करने के लिए 6 सेमी. की लम्बाई कापी के अनुसार उचित है। सर्वप्रथम आयु के लिए 4-4 के अन्तर से 24 वर्ष तक का पैमाना बनाया। इसके बाद विभिन्न छात्रों की उम्र हेतु ABCDE समान दूरी पर आरेख खींचे। यही अभीष्ट सरल दण्ड आरेख है।

(2) बहुगुणीय दण्ड चित्र- सरल दण्ड चित्र के द्वारा केवल एक ही प्रकार की संख्याओं के बारे में सूचनाएँ दिखाई जाती हैं । इसके विपरीत बहुदण्ड चित्र के द्वारा एक से अधिक प्रकार की संख्याओं (जैसे आयात तथा निर्यात) के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी दिखायी जाती हैं । भिन्न-भिन्न प्रकार की संख्याओं के लिए अलग-अलग परन्तु एक-दूसरे से मिले हुए दण्ड बनाये जाते हैं।

उदाहरण 2. निम्नांकित आँकड़ों बहुगुणी दण्ड चित्र की रचना कीजिए, जिसमें विभिन्न संकायों के विभिन्न वर्षो के छात्रों की संख्या दी गयी है-

छात्रों की संख्या

संकाय	**1995-96**	**1996-97**	**1997-98**
कला	500	700	600
विज्ञान	400	400	350
कॉमर्स	600	800	950
कृषि	300	300	350
	1,800	2,200	2,250

रचना विधि - प्रस्तुत आँकड़ों से सर्वाधिक छात्रों की संख्या 950 है । अत: पैमाना । सेमी. = 100 छात्र उचित रहेगा अर्थात् 950 छात्रों के लिए 9.5 छात्रों के लिए 9.5 सेमी. की ऊँचाई होगी । अत: इससे ग्राफ पेपर पर चित्र का आकार भी सही रहेगा । अत: इसी आधार पर सर्वप्रथम OX आधार रेखा खींची, तत्पश्चात् OY रेखा पर 10 सेमी. ऊँची रेखा खींचकर एक-एक सेमी. के 10 भाग काट लिये, जिनको छात्रों की संख्या मानकर 100 से 1000 तक पैमाना बनाया । अब OY रेखा पर अलग-अलग

वर्षों के छात्रों की संख्या के आधार पर दण्ड चित्र बनाये। विभिन्न संकायों को प्रदर्शित करने के लिए संकेतक बनाया, जिसमें प्रत्येक संकाय के लिए अलग-अलग डिजायन निर्धारित की। इन डिजायनों के अनुसार ही विभिन्न संकायों के स्तम्भ में डिजायनें अंकित की। इससे इस दण्ड चित्र को छात्रों की संख्या वर्ष तक संकाय तीनों एक साथ प्रदर्शित हैं। यही अभीष्ट बहुगुणी दण्ड चित्र है।

NOTES

इसको बहुदण्ड चित्रों की मदद से बनाना उचित है, लेकिन चित्रों को आकर्षक दिखाने के लिए प्रत्येक Faculty के आँकड़े आरोही क्रम में दिखाये जाने चाहिए।

(3) अर्न्तविभक्त अथवा उप-विभाजित दण्ड चित्र-जब एक राशि को कई भागों में विभाजित किया जाता है तो उसके लिए अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र बनाया जाता है।

रचना विधि - सर्वप्रथम आँकड़ों के आधार पर पैमाना 1 सेमी. =10 छात्र निर्धारित किया। तत्पश्चात् प्रत्येक कॉलेज के सभी संकायों के छात्रों की संख्या का योग किया। प्रत्येक कॉलेज के योग के बराबर अ ब स कॉलेजों के दण्ड चित्र खींचे तथा पैमाने के अनुसार इन्हें संकाय के अनुसार विभक्त किया तथा प्रत्येक संकाय के लिए संकेतन के अनुसार डिजायन से भर दिया। यही अभीष्ट अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र है।

उदाहरण 3. निम्नलिखित आँकड़ों की सहायता से अन्तर्विभक्त या उप-विभाजित दण्ड चित्र का निर्माण कीजिए-

कॉलेज	परीक्षाफल			
	बी.ए.	बी.एस-सी.	बी.कॉम	योग
अ	30	25	20	75
ब	25	20	15	60
स	20	25	10	55
	75	70	45	190

4. **प्रतिशत अर्न्तविभक्त दण्ड चित्र**- एक तथ्य के विभिन्न विभागों से हाने वाले समंकों परिवर्तनों की आपस में तुलना करने के लिए प्रतिशत आधार पर अन्तर्विभक्त चित्र बनाये जाते हैं । इन्हें बनाने के लिए पहले जोड़ को 100 मानकर सभी विभागों को प्रतिशत के रूप में परिवर्तित लिया जाता है और फिर संचयी प्रतिशत निकाल ली जाती है । इसके बाद उचित मापदण्ड (जैसे-1 सेमी.=100) के अनुसार 100% के बराबर विभाग काट लिये जाते हैं । विभिन्न विभागों को अलग चिन्हों द्वारा वर्गीकृत कर दिया जाता है । साधारणतया जब विभन्न पदों की संख्याएँ एक-दूसरे से बहुत भिन्न हों तो उनका प्रदर्शन करने के लिए प्रतिशत दण्ड चित्र का निर्माण करना अधिक उपयुक्त समझा जाता है ।

दो परिमाणात्मक चित्र

एक परिमाणात्मक चित्रों में दण्ड की लम्बाई मोटाई की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, उनमें केवल लम्बाई को महत्व दिया जाता है। लेकिन दो परिमाणात्मक चित्रों में केवल लम्बाई को ही महत्व नहीं

दिया जाता है। दण्ड के बनाने के कारण इनको परिमाणात्मक अथवा क्षेत्रफलीय चित्र कहा जाता है। इसमें प्रमुख आयत, वर्ग एवं वर्तुल चित्र हैं।

NOTES

(1) आयताकार चित्र- क्षेत्रफलीय चित्रों में आयताकार चित्र बनाना सबसे सरल है । आयाताकार चित्रों में दो दिशाएँ लम्बाई एचं चौड़ाई में होती हैं। आयताकार चित्रों का प्रयोग वहीं किया जाता है, जहाँ दो या अधिक संख्याओं की तुलना करनी हो। अन्य शब्दों में, जब दो या दो से अधिक परिणामों जिनके विभिन्न हैं, की तुलना की जाती है, उस समय आयताकार चित्रों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार दोनों प्रणालियों में आयत का क्षेत्र अंकों के आकार के अनुपात में ही होगा। सामान्यतया आयत की लम्बाई बराबर रखी जाती है तथा पदों के आकार के अनुपात में चौड़ाई निश्चित की जाती है।

(2) वर्ग चित्र- वर्ग चित्र उस समय बनाये जाते हैं, जब ऐसे दो पद मूल्यों की तुलना करनी हो, जो आकार व संख्या में एक-दूसरे से बहुत अधिक भिन्न हों; जैसे-यदि दो मूल्यों में 1 : 100 का अनुपात है तो हम इन दोनों दण्ड चित्र (Bars) किसी भी पैमाने (Scale) से बनाये एक-दूसरे से सौ गुना कम या अधिक होगा । वर्ग चित्र बनाने के लिए विभिन्न पद-मूल्यों के वर्गमूल प्राप्त करते हैं और फिर वर्गमूलों के अनुपात में वर्ग चित्र बनाते हैं ।

(3) वर्तुल चित्र- दो परिमाणात्मक चित्रों में वर्तुल चित्र का भी महत्व है। इसका प्रमुख कारण यही है कि ये सरलता से बनाये जा सकते हैं। ये देखने में भी आकर्षक होते हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि ये सरलता से बनाये जा सकते हैं। ये देखने में भी आकर्षण होते हैं। वर्तुल का अर्द्धव्यास (Radius) अंकों के वर्गमूल निकाल लिया जाता है। इसके बाद अनुपात में ही वर्तुलों का अर्द्धव्यास मालूम किया जाता है। एक वर्तुल का क्षेत्रफल उसके अर्द्धव्यासों के वर्ग के ठीक अनुपात में होगा। जैसे यदि एक वर्तुल का अर्द्धव्यास दूसरे व्यास के अर्धवर्तुल से 4 गुना है तो पहले वर्तुल का क्षेत्रफल दूसरे से सोलह गुना बड़ा होगा।

सांख्यिकीय तथ्यों को प्रदर्शित करने के लिए विभिन्न प्रकार के चित्रों का विवरण ऊपर दिया जा चुका है। किसी विशिष्ट प्रकार के अंकों को प्रदर्शित करने के लिए किस प्रकार के चित्र का चुनाव किया जाय? इस प्रश्न का उत्तर देना आसान कार्य नहीं है। अत: चित्रों के चुनाव में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

पाई चार्ट या वृत्त चित्र

वर्तमान समय में वृत्तों के द्वारा समंकों का प्रदर्शन कुछ अधिक ही प्रचलित होता जा रहा है । वृत्ताकार देखने में अधिक सुन्दर और आकर्षक होते हैं और सूचनाओं का अनुमान लगाने में अधिक सुलभ होते हैं । वृत्तों को मुख्यत: दो प्रकार से विभाजित किया जा सकता है-

(1) साधारण वृत्त तथा

(2) उप-विभाजित वृत्त या पाई चित्र

(1) साधारण वृत्त- ये वृत्त इने-गिने स्वतन्त्र पदों के मान दर्शाने के लिए साधारण वर्गों की ही भाँति प्रयोग किये जाते हैं। इन्हें साधारण वर्गों की स्थापना विधि के रूप में समझा जा सकता है। यदि

संख्याओं में सजातीयता हो तो इनमें पारस्परिक दूरी या अन्तर अधिक हो, इनका प्रयोग उपयुक्त होता है। जिस प्रकार वर्गमूल से निकालकर किसी वर्गाकार की भुजा निश्चित की जाती है, वर्गमूल वृत्त का व्यास निर्धारित किया जाता है। वृत्तों में इस वर्गमूल के आधार माप को अर्द्धव्यास या त्रिज्या मानकर विभिन्न गोले खींचे जाते हैं।

(2) **उप-विभाजित वृत्त**- इसे कोणीय (Angular) या पाई (Pie) चित्र के नाम से जाना जाता है। एक से अधिक सजातीय तथ्यों का कुल योग तथा उप-विभाजनों के रूप में सरलता से आनुपातिक आकार के वृत्तों द्वारा दिखाया जा सकता है । यदि एक ही समंकमाला के विभिन्न विभाजन दिखाने हैं, तब किसी अर्द्धव्यास का वृत्त बनाया जा सकता है । यदि एक से अधिक समंकमालाओं के योग, उनके उप-विभाजन दिखाने हैं तो पहले उनके योग का अनुपात निकालकर उनके वर्गमूल का व्यास मान लेंगे। उनके आधे करके अर्द्धव्यासों में वृत्तों की रचना कर देंगे ।

प्रत्येक उप-विभाजन को श्रेणी के योग का प्रतिशत निकालने के बजाय कोणों को डिग्री में बदल लेगें । इसके लिए प्रत्येक उपभाग की सूचनाओं को योग से भाग देंगे तथा 3.6 से गुणा करेंगे; जैसे-प्रतिशत विभाजनों का कुल योग कभी 100 से अधिक नहीं होता वैसे ही कोणीय विभाजनों की डिग्री 360^0 से अधिक नहीं होती है। कभी-कभी वृत्तों के चारों ओर अर्द्धव्यास कुछ बढ़ाकर एक बाहरी वृत्त और बना देते हैं। अधिक कोणों के उप-विभाजन तथा दो वृत्त बनाने से चित्र की आकृति पहिए जैसी हो जाती है। अत: इसे व्हील (Wheel) चित्र भी कहा जाता है। ऐसे उप-विभाजन वृत्तों के द्वारा दो-तीन या अधिक सूचनाओं की तुलना करना अधिक सुविधापूर्ण होता है।

उदाहरण- एक नगर की जनसंख्या में धर्मानुसार विभाजन निम्नलिखित प्रकार था-हिन्दू 1,44,000 मुसलमान 64,000 ईसाई 36,000 तथा अन्य 16,000 इन संख्याओं को साधारण वृत्तों के द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

नोट- यदि हजार के तीन अन्तिम शून्य (000) प्रत्येक संख्या में से निकाल दें तो सामान्य अनुपात 144 : 64 : 36 : 16 होता है । उसके वर्गमूल 12 : 8 : 6 : 4 के आधे माप ही अर्द्धवास माने जा सकते हैं । अर्द्धव्यासों के लिए कोई उपयुक्त पैमाना मानकर वृत्त बनाये जा सकते है ।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

1. बिन्दु रेखा से आप क्या समझते है? इसके गुण तथा दोषों की व्याख्या कीजिए ।
2. परिमाणात्मक चित्र किसे कहते है? एक परिमाणात्मक चित्रों की विवचेना कीजिए ।
3. दो परिमाणात्मक चित्रों की व्याख्या कीजिए ।

NOTES

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. बिन्दु रेखा की रचना से आप क्या समझते है ?
2. आवृत्ति बिन्दु रेखा को स्पष्ट कीजिए ।
3. निरपेक्ष कालिक चित्र से आपका क्या अभिप्राय है
4. आवृत्ति चित्र तथा आवृत्ति बहुभुज की व्याख्या कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. बिन्दु रेखाओं के दोष हैं-

(अ) सीमित प्रचलन (ब) पक्षपात सम्भव

(स) तर्कसंगत न होना (द) से सभी ।

2. कालिक चित्र प्रकार के होते हैं-

(अ) दो (ब) चार

(स) पाँच (द) तीन ।

3. आवृत्ति चित्र को भी कहते हैं-

(अ) Black Digree (ब) Black Dide

(स) Black Diagram (द) इनमें से कोई नहीं ।

4. बिन्दु रेखाओं के गुण हैं-

(अ) समझने में सरल (ब) श्रम की बचत

(स) परिवर्तन बताना (द) ये सभी ।

उत्तर- (1) द (2) अ (3) स (4) द

NOTES

12 सांख्यिकीय माध्य, समान्तर माध्य, बहुलक तथा माध्यिका

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य ।
- प्राक्कथन ।
- माध्य का अर्थ एवं परिभाषाएँ ।
- माध्यों की उपयोगिता एवं उद्देश्य ।
- एक आदर्श माध्य के आवश्यक तत्व ।
- माध्यों की सीमाएँ ।
- माध्यों के प्रकार ।
- समान्तर माध्य ।
- समान्तर माध्य की विशेषताएँ ।
- समान्तर माध्य की गणना ।
- समान्तर माध्य के दोष ।
- बहुलक ।
- बहुलक की विशेषताएँ ।
- बहुलक की गणना ।
- बहुलक के गुण ।
- बहुलक के दोष ।
- माध्यिका ।
- माध्यिका की विशेषताएँ ।
- माध्यिका का परिकलन ।
- माध्यिका के गुण ।
- माध्यिका के दोष ।
- बहुलक, माध्यिका तथा समान्तर माध्य की तुलनात्मक उपयोगिता ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- माध्य का अर्थ एवं परिभाषाएँ ।
- माध्यों की उपयोगिता एवं उद्देश्य ।
- एक आदर्श माध्य के आवश्यक तत्व ।
- माध्यों की सीमाएँ ।
- माध्यों के प्रकार ।

- समान्तर माध्य ।
- समान्तर माध्य की विशेषताएँ ।
- समान्तर माध्य की गणना ।
- समान्तर माध्य के दोष ।
- बहुलक ।
- बहुलक की विशेषताएँ ।
- बहुलक की गणना ।
- बहुलक के गुण ।
- बहुलक के दोष ।
- माध्यिका ।
- माध्यिका की विशेषताएँ ।
- माध्यिका का परिकलन ।
- माध्यिका के गुण ।
- माध्यिका के दोष ।
- बहुलक, माध्यिका तथा समान्तर माध्य की तुलनात्मक उपयोगिता ।

प्राक्कथन

सभी क्षेत्रों में ज्ञान का निरन्तर विकास हो रहा है । सामाजिक विज्ञानों में गुणात्मक तथा परिमाणात्मक अध्ययनों द्वारा सामाजिक नियम सामान्यीकरण तथा सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है । परिमाणात्मक या संख्यात्मक अध्ययनों में विशाल तथ्यों तथा आँकड़ों को एकत्र किया जाता है । इन विशाल तथ्यों तथा आँकड़ों का विश्लेषण और विवेचन करने के लिए सांख्यिकीय प्रणालियों की सहायता ली जाती है । संख्यात्मक अध्ययनों में इकाइयों का अध्ययन किया जाता है । जब अध्ययन में इकाइयाँ बहुत अधिक हो जाती हैं तो प्रत्येक इकाई का वर्णन तथा व्याख्या करके निष्कर्ष निकालना तथा नियम बनाना बहुत कठिन हो जाता है ।इन विशाल इकाइयों का वर्गीकरण, सारणीयन विश्लेषण तथा संक्षप्तीकरण करने के लिए सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है । जैसे–जैसे सामाजिक अनुसन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में संख्यात्मक अध्ययन का विकास और विस्तार हो रहा है वैसे–वैसे इनके विश्लेषण तथा निष्कर्षों के लिए सांख्यिकीय प्रणालियों का प्रयोग तथा महत्व भी बढ़ता जा रहा है।

सामाजिक विज्ञानों के संख्यात्मक अध्ययनों को भौतिक विज्ञानों की तरह स्पष्टता, सुनिश्चितता, सत्यता तथा प्रामणिकता प्रदान करने में सांख्यिकीय पद्धतियाँ सहायता प्रदान करती हैं। सांख्यिकीय पद्धतियाँ विभिन्न एकत्र तथ्यों का वर्गीकरण तथा सारणीयन करने के बाद उनकी केन्द्रीय प्रवृत्ति, परिवर्तन की दिशा तथा दशा को ज्ञात करने के लिए संक्षिप्तीकरण भी करती हैं। सांख्यिकीय

पद्धतियों द्वारा उनकी क्रमवद्ध तथा व्यवस्थित तुलना करके प्रामाणिक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। निष्कर्ष कितने विश्वसनीय तथा प्रमाणिक हैं इसका विभिन्न सांख्यिकी विधियों द्वारा पता लगाया जाता है। सांख्यिकीय माध्य एक ऐसी ही सांख्यिकीय प्रणाली है जो सामाजिक विज्ञानों तथा अनुसन्धानों में तथ्यों तथा आँकड़ों की केन्द्रीय प्रवृत्ति, परिवर्तन की दिशा तथा दशा की तुलना सार्थकता आदि का पता लगाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। परिमाणात्मक अध्ययनों में तथ्यों तथा आँकड़ों का विशाल समूह होता है। उन्हें सारणीयन के द्वारा काफी संक्षिप्त कर दिया जाता है। उसे और अधिक सरल, बोधगम्य, संक्षिप्त तथा तुलनात्मक बनाने के लिए सांख्यिकीय माध्य का प्रयोग करके ऐसा निष्कर्ष, अंक या परिणाम निकाला जाता है जो सभी इकाइयों का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है। यह संख्या या मूल्य जो भी इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती है माध्य कहलाती है। इसे उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक छात्र को तीन विषयों में क्रमशः 55, 60, 65 अंक प्राप्त हुए है। देखने से पता चलता है कि उसके तीनों विषयों में भिन्न-भिन्न अंक आए हैं । सांख्यिकीय माध्य के दृष्टिकोण से देखने से पता चलता है कि 60 अंक ऐसा है जो मध्य में है न तो न्यूनतम अंक है और न ही अधिकतम अंक है बल्कि यह अंक इन दोनों सीमाओं के बीच के अंक के मूल्य हैं, जहाँ तीनों अंक मिल जाते हैं। ऐसे अंक को केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप अथवा माध्य कहते हैं।

माध्य का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Average) -

माध्य के अर्थ को समझाने के लिए विद्वानों ने इसकी निम्नलिखित परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं-

(1) **क्राक्सटन और काउडेन** के अनुसार, ''माध्य समांकों के विस्तार के अन्तर्गत स्थित एक ऐसा मूल्य है जिसका प्रयोग समंकमाला के सभी मूल्यों का प्रतिनधित्व करने के लिए किया जाता है।''

(2) **एलहान्स की परिभाषा,** ''यह स्पष्ट है कि एक ऐसी संख्या जिसका प्रयोग सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है, वह श्रेणी न तो न्यूनतम मूल्य रखती है और न ही उच्चतम मूल्य, बल्कि वह मूल्य तो इन दोनों सीमाओं के बीच का एक मूल्य होता है जहाँ श्रेणियों की अधिकाँश इकाइयाँ एकत्र हो जाती हैं । ऐसे अंक (मूल्य) केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप अथवा माध्य कहलाते हैं।''

(3) **पी.वी.यंग** के अनुसार ''विशाल अंकों को संक्षिप्त करने के लिए आवृत्ति करने के लिए आवृत्ति वितरण अत्यधिक उपयोगी है, लेकिन संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया सम्पूर्ण श्रेणी की विशेषताओं को एक अथवा अधिक-से-अधिक कुछ महत्वपूर्ण अंकों में संकुचित करने के द्वारा बहुत अधिक आगे बढ़ाई जा सकती है । ये अंक माध्य के रूप में जाने जाते हैं तथा वे एक चरण के विशिष्ट मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।''

(4) **सिम्पसन और काफ** की परिभाषा, ''केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप एक ऐसा प्रतिरूपी मूल्य है जिसकी और अन्यसंखाए केन्द्रित मूल्य को व्यक्त करती है । यह विशाल तथ्यों, आँकड़ों अथवा संख्याओं के संक्षिप्तीकरण के रूप में केन्द्रीय मूल्य को स्पष्ट करने वाला अंक या मूल्य होता है ।

NOTES

माध्यों की उपयोगिता तथा उद्देश्य (Utility and Objectives of Averages)

सामाजिक अनुसन्धान, सामाजिक सर्वेक्षण तथा विभिन्न प्रकार के अध्ययनों में सामग्री का विश्लेषण तथा व्याख्या करनी होती है । माध्य इस कार्य को सम्पन्न करवाने में निम्न रूप से विशेष उपयोगी, उद्देश्यमूलक तथा महत्वपूर्ण हैं-

(1) **संक्षिप्तीकरण में सहायक** - सांख्यिकी माध्य का मुख्य उद्देश्य विशाल तथ्यों के संक्षिप्तीकरण में सहायता करना है। तथ्यों को वर्गीकरण तथा सारणीयन के बाद भी परिणामों को याद रखना एक कठिन कार्य है । अगर उनमें प्रदर्शित तथ्यों की प्रवृत्ति को माध्य के द्वारा एक अंक में आकलन कर दिया जाए तो उसे याद रखना सरल हो जाता है । जैसे-किसी विद्यार्थी द्वारा परीक्षा में प्राप्त सभी विषयों के अंक याद रखना कठिन है लेकिन उन अंकों का माध्य मापकर याद रखना सरल है ।

(2) **तुलना में सहायक**- माध्य के द्वारा अनेक अंकों को एक अंक का रूप प्रदान कर दिया जाता है । इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों या समूहों के तथ्यों को क्रम से अलग-अलग माध्यों की सहायता से एक अंक के रूप में संक्षिप्त करके परस्पर तुलना कर सकते हैं । जैसे-प्रत्येक छात्र के विभिन्न विषयों के औसत या माध्य अंक ज्ञात हैं । उनके द्वारा छात्रों के परीक्षा में प्राप्त अंकों का तुलनात्मक अध्ययन सरल हो जाता है । उन्हें श्रेणीबद्ध करके यह पता लगाया जा सकता है कि कितने छात्र प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणियों में उत्तीर्ण हुए हैं । इस प्रकार माध्य तथ्यों की तुलना करने में सहायता करता है ।

(3) **विश्लेषण में सहायक**- माध्यों द्वारा विभिन्न समूहों तथा वर्गों के प्रभाव, परिणाम या मूल्य संक्षिप्त रूप से हमारे सामने आ जाते हैं । उनकी परस्पर तुलना करना सरल हो जाता है । इसी तुलना के आधार पर अनुसंन्धानकर्त्ता प्राप्त तथ्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण करने की स्थिति में आ जाता है । वह विभिन्न माध्यों के मूल्यों का विश्लेषण करता है तथा व्याख्या करके सामान्यीकरण प्रस्तुत कर सकता है । इस प्रकार माध्य विशाल तथ्यों का विश्लेषण करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है । घोष तथा चौधरी के अनुसार, ''विशाल समूह का एक संक्षिप्त रूप प्रकट करके विश्लेषण और व्याख्या के कार्य को सरल बनाना माध्य का उल्लेखनीय कार्य है।''

(4) **अनुपात निर्धारण** - माध्य के द्वारा, तथ्यों के दो समूहों के परस्पर अनुपात को ज्ञात किया जा सकता है । राष्ट्रपति के चुनाव में एक राजनैतिक दल के उम्मीदवार को 65 प्रतिशत मत मिले तथा दूसरे राजनैतिक के उम्मीदवार को 35 प्रतिशत मत मिले । इसमें विजयी उम्मीदवार को हारने वाले उम्मीदवार से लगभग दुगने से कुछ कम मत मिले ।

(5) **सरलीकरण करना**- विशाल आँकड़ों को माध्य उनके केन्द्रीय मूल्य को ज्ञात करके सरल छोटे रूप में प्रस्तुत कर देता है । बड़ी-बड़ी तालिकाओं, बिखरे हुए बहुगुणीय तथ्यों आदि को साल रूप में प्रस्तुत करने का कार्य माध्य सरलतापूर्वक करके उन्हें बोधगम्य, स्पष्ट तथा सरल बना देता है । सामग्री को सरल रूप प्रदान करना माध्य का प्रमुख उद्देश्य है । पूरी तालिका को देखे बिना कुछ अंकों को पढ़कर ही सारांश ज्ञात किया जा सकता है ।

(6) समग्र का प्रतिनिधत्व करना – किसी विशाल तथ्यों के समूह, वर्ग अथवा समग्र के आँकड़ों को माध्य के द्वारा समझा, परखा तथा जाना जा सकता है । माध्य एक अंक के रूप में ऐसा निष्कर्ष होता है जो सम्पूर्ण तथ्यों का प्रतिनधित्व करता है क्योंकि अन्य सभी मूल्य उसके आसपास वितरित होते हैं । वह पूर्ण समूह का निष्कर्ष होता है ।

(7) मार्गदर्शन करना – माध्य के द्वारा किसी समाज अथवा देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, जनसांख्यिकी आदि स्थितियों की वस्तुस्थिति को समझा जा सकता है तथा उसके आधार पर सम्बन्धित समाज अथवा देश के विकास कार्यक्रमों की योजना तैयार की जा सकती है। माध्य इस प्रकार से भविष्य की योजनाओं के लिए मार्गदर्शक का कार्य करता है। किसी देश की, जैसे–राजस्थान की भारत के सन्दर्भ में औसत आय, साक्षरता, आयु आदि कम हैं तो विकास कार्यक्रमों की योजनाओं में ये माध्य योजनाकारों का मार्गदर्शन करेंगे।

माध्य की उपर्युक्त उपयोगिताओं तथा उद्देश्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि माध्य वैज्ञानिकों जनसाधारणों, योजनाकारों आदि को कम समय में अध्ययन–क्षेत्र के तथ्यों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की सूचनाएँ प्रदान करता है, जो समग्र को समझाने, निष्कर्षो को निकालने, उनकी परस्पर तुलना करने, विश्लेषण तथा मार्गदर्शन करने में बहुत सहायक है ।

एक आदर्श माध्य के आवश्यक तत्व (Essentials of an Ideal Averge)

यूल और केण्डाल ने एक प्रतिनिधि तथा आदर्श माध्य की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं- (1) स्थिर परिभाषा, (2) सभी मूल्यों पर आधारित, (3) सरल और बोधगम्य, (4) शीघ्र गणनीय, (5) बीजगणितीय विवेचन के योग्य और (6) निदर्शन परिवर्तनों से न्यून प्रभावित ।

मुख्य रूप से माध्य तीन प्रकार के होते हैं । उनके अनेक उप–प्रकार हैं । उनके गुण–दोष भी उसी प्रकार से भिन्न–भिन्न होते हैं फिर भी एक आदर्श माध्य में अग्रलिखित गुण होने चाहिए–

(1) सुनिश्चित तथा स्पष्ट परिभाषा – माध्य इतने सुनिश्चित और स्पष्ट होने चाहिए कि इनको देखने, समझने, व्याख्या करने में कई कठिनाई नहीं आए तथा अनुमान नहीं लगाना पड़े । सभी के द्वारा माध्य का समान अर्थ लगाया जाए ।

(2) सुगम आकलन – यदि माध्य का गणितीय आकलन सरल तथा सुगम है तथा उस में विशेष जटिलता तथा बुद्धि–प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है तो ऐसा माध्य एक आदर्श माध्य कहलाता । उनकी गणना की विधि भी सरल होनी चाहिए । जैसा कि यूल और केण्डाल ने भी कहा है कि वह शीघ्र गणनीय हो ।

(3) समंकमाला का प्रतिनिधित्व – क्राक्सटन तथा काउडेन का कहना है कि माध्य समंकमाला के सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए। एलहान्स ने भी माध्य को सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाला बताया है। आदर्श माध्य में इस गुण का होना आवश्यक है। तभी वह श्रेणियों, विशेषताओं, गुणों, प्रकृति, स्वभाव, प्रभाव आदि का चित्र प्रस्तुत कर सकता है जो कि इसका मुख्य उद्देश्य है।

(4) बीजगणितीय विवेचन सम्भव - एक आदर्श माध्य में बीजगणितीय विवेचन सम्भव होना चाहिए। तथ्यों की तुलना करने में दो समूहों के माध्यों को बीजगणितीय विधि से पुनः विश्लेषित करके दोनों समूहों का माध्य ज्ञात किया जाता है तथा उनके परस्पर सम्बन्धों से निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इसलिये वह माध्य आदर्श होता है जिसका बीजगणितीय विवेचन करना आगे सम्भव हो।

(5) निरपेक्षता- माध्य ऐसा होना चाहिए जो स्थिर रहे । किसी संख्या के थोड़ा-सा घटने अथवा बढ़ने घटता-बढ़ता है तो वह आदर्श माध्य नहीं कहलाएगा ।

(6) निदर्शन से अप्रभावित- आदर्श माध्य निदर्शन में परिवर्तन करने पर प्रभावित नहीं होता है । एक ही अध्ययन के क्षेत्र से विभिन्न निदर्शन लेकर अध्ययन करने पर माध्य मूल्य समान आता है तो वह आदर्श माध्य कहलाता है ।

माध्यों की सीमाएं या दोष
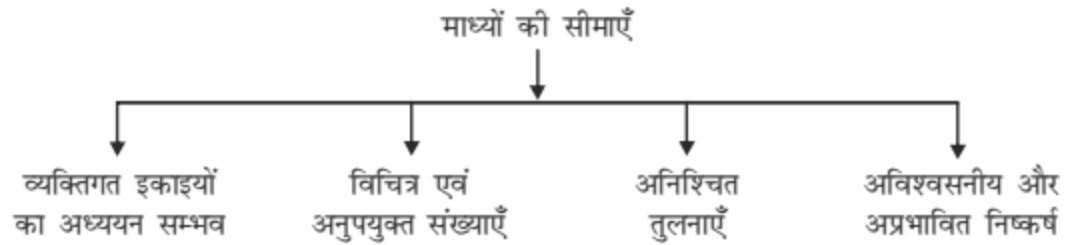
(1) व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन असम्भव- माध्य का सबसे बड़ा दोष यही है कि इसके द्वारा इकाइयों के योग का अध्ययन होता है तथा इसमें व्यक्तिगत इकाई का कोई महत्व नहीं होता । यह इकाइयों का अलग-अलग वर्णन और व्याख्या नहीं करता है । माध्य तो सम्पूर्ण समूह की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है । पृथक-पृथक इकाइयों का माध्य में कोई अस्तित्व तथा महत्व नहीं होता है ।

(2) विचित्र एवं अनुपयुक्त संख्याएँ - कुछ माध्यों के प्रकार ऐसे हैं जिनके अन्तर्गत का आकलन करने के परिणाम विचित्र तथा अनुपयुक्त संख्याओं के रूप में सामने आते हैं । ऐसा विशेष रूप से इकाइयों के अध्ययन में होता है जो सतत् नहीं होती है, जैसे-एक पुरुष, दो पुरुषों के स्थान पर डेढ़ या साढ़े तीन पुरुष आदि ।

(3) अनिश्चित तुलनाएँ- जब दो तुलनात्मक समूहों का माध्य के द्वारा अध्ययन किया जाता है तब कई बार ऐसा होता है कि समूहों में परिवर्तन होने पर माध्य के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इससे माध्य के प्रति अविश्वास पैदा हो जाता है तथा निर्भरता अवैज्ञानिक हो जाती है।

(4) अविश्वसनीय और अप्रमाणित निष्कर्ष - जब समूह की इकाइयों के मूल्य बहुत अधिक बिखरे हुए तथा अधिक विभिन्नता वाले होते हैं तो उसमें माध्य द्वारा निष्कर्ष सही नहीं निकलते तथा वो अध्ययन को अविश्वसनीय तथा अप्रामाणिक बना देते हैं, जैसे- संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या कुछ में तो बहुत कम हो तथा कुछ से बहुत अधिक तो उसमें माध्य त्रुटिपूर्ण आएगा।

उच्च स्तरीय सांख्यिकीय प्रयोग में उपयुक्त सीमाएँ माध्य के प्रयोग को सीमित कर देती है, लेकिन जहाँ तक केन्द्रीय प्रकृति को ज्ञात करने की बात है, वहाँ माध्य एक सरल, उपयुक्त और वैज्ञानिक विधि है जो विश्वसनीय निष्कर्ष निकालने में सहायक है ।

NOTES

माध्यों के प्रकार (Types of Averages)

वैज्ञानिकों ने तथ्यों तथा सामग्री के लक्षण प्रकृति, आकार एवं अनुसन्धान के लक्ष्य और परिप्रेक्ष्य के परस्पर गुण सम्बन्धों के आकार पर माध्यों के विभिन्न प्रकारों का विकास किया है जो निम्न हैं-

1. स्थिति माध्य

1.1 बहुलक या भूयिष्ठक

1.2 मध्यांक

2. गणितीय माध्य

2.1 समान्तर माध्य

2.2 ज्यामितीय या गुणोत्तर माध्य

2.3 हरात्मक माध्य

2.4 द्विघातीय माध्य

3. व्यापारिक माध्य

3.1 चल माध्य

3.2 प्रगतिशील माध्य

3.3 संग्रथिक माध्य

सामाजिक अनुसन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में तथ्यों के विश्लेषण तथा व्याख्याओं में बहुलक, माध्यिका और समान्तर माध्यों का ही प्रयोग होता है। अत: यहाँ केवल इन्हीं तीनों प्रकारों का वर्णन किया जाएगा।

समान्तर माध्य (Arithmetic Average or Mean)

समान्तर माध्य के लिए 'औसत' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। इस माध्य में अधिकांशत: एक आदर्श माध्य की विशेषताएँ पाई जाती हैं। यह माध्य सामाजिक विश्लेषण में जितनी भी इकाइयाँ है। उनकी प्रत्येक इकाई के मूल्यों का योग करके कुल इकाइयों की संख्या से भाग देने से जो परिणाम (भागफल) प्राप्त होता है उसे समान्तर माध्य (औसत) कहते हैं।

समान्तर माध्य की परिभाषा : दी हुई समंकमाला का समान्तर माध्य उनका वो मूल्य है जो उस श्रेणी के सभी मूल्यों के योग को उनकी संख्या से भाग देने से प्राप्त होता है । जैसे- एक छात्र ने तीन

NOTES

वैकल्पिक विषयों में 65,59,56 अंक प्राप्त किए हैं । इनके योग 180 में 3 का भाग देने से 60 आता है । यह 60 उस छात्र के प्राप्तांकों का समान्तर माध्य किया जा सकता है।''

समान्तर-माध्य की विशेषताएँ: ये निम्नांकित हैं-

(1) समान्तर माध्य केन्द्रीय प्रवृत्ति के आकलन की एक सरलतम प्रणाली है। मदों की कुल संख्या का मदों के मूल्यों के कुल योग भाग में भाग देने से माध्य ज्ञात हो जाता है।

(2) इसमें प्रत्येक व्यक्तिगत इकाई के मूल्यों को समान रूप से महत्व दिया जाता है।

(3) इसमें मदों के मूल्यों को विशेष महत्व दिया जाता है।

(4) समान्तर माध्य के आकलन में प्रत्येक मद की तथा उसके मूल्य की गणना केवल एक बार की जाती है।

(5) कुल मदों की संख्या का समान्तर माध्य से गुणा करने पर मदों के मूल्यों के योग का आकलन किया जा सकता है।

समान्तर माध्य की गणना (Calculation of Arithmetic Mean)

समान्तर माध्य की गणना व्यक्तिगत श्रेणी, खण्डित श्रेणी और सतत् श्रेणी से प्रत्यक्ष और लघु विधि से की जाती है।

(1) व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना

1.1 प्रत्यक्ष विधि   1.2 लघु विधि

(2) खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना

2.1 प्रत्यक्ष विधि   2.2 लघु विधि

(3) सतत् श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना

3.1 प्रत्यक्ष विधि   3.2 लघु विधि

3.3 पद विवेचन विधि

अब समान्तर माध्य की उपर्युक्त श्रेणियों की विधियों की उदाहरण सहित व्याख्या की जायेगी ।

1. **व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना (Calculation of Mean in the Individual Series)** - व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य निम्न दो प्रकार की विधियों द्वारा प्राप्त किया जाता है–

1.1 प्रत्यक्ष विधि   1.2 लघु विधि

1.1 **प्रत्यक्ष विधि**– प्रत्येक्ष विधि में समंकमाला के सभी मदों के मूल्यों का योग ज्ञात करके मदों की कुल संख्या का उसमें भाग देने से जो मूल्य प्राप्त होता है वह समान्तर माध्य कहलाता है ।

परिकलन - इसका निम्न सूत्र से परिकलन किया जाता है-

NOTES

सूत्र - $\overline{X} = \frac{\sum x}{N}$

संकेताक्षर- $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

Σ = योग

X = मदों का मूल्य (व्यक्तिगत इकाइयों का मूल्य)

N = मदों की कुल संख्या

Σx = समस्त मदों के मूल्यों का योग

उदाहरण 10 : छात्रों की लम्बाई के समान्तर माध्य की गणना कीजिए ।

छात्र :	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J
लम्बाई: (सेन्टीमीटर) :	151	154	160	162	152	155	161	159	151	160

संख्या	लम्बाई (सेन्टीमीटर में) x
1. A	151
2. B	154
3. C	160
4. D	162
5. E	152
6. F	155
7. G	161
8. H	159
9. I	151
10. J	160
N = 10	$\Sigma x = 1565$

सूत्र- $\overline{X} = A + \frac{\sum dx}{N}$

संकेताक्षर- $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

N = मदों की संख्या

d = विचलन (कल्पित माध्य से मद मूल्य का विचलन)

x = मद मल्य

NOTES

Σds = विचलन से प्राप्त मद मूल्यों का योग

उदाहरण-

संख्या N	लम्बाई (से. मी. में) x	A = 160 (x – A)	dx
1	151	(151 – 160)	– 9
2	168	(168 – 160)	+ 8
3	160	(160 – 160)	0
4	161	(161 – 160)	+ 1
5	163	(163 – 160)	+ 3
6	165	(165 – 160)	+ 5
7	166	(166 – 160)	+ 6
8	164	(164 – 160)	+ 4
9	158	(158 – 160)	– 2
10	169	(169 – 160)	+ 9
योग = 10 N = 10			– 11 + 27 Σdx = + 16

सूत्र-

$$\overline{X} = A + \frac{\sum dx}{N}$$

$$= 160$$

$$= 160 + \frac{16}{10}$$

$$= 160 + 1.6$$

= 161.6 से.मी.

$\overline{X}$ = 161.6 से.मी.

समान्तर माध्य = 161.6 से.मी.

अत: 10 छात्रों की लम्बाई का समान्तर माध्य 161.6 सेन्टीमीटर है ।

टिप्पणी- समान्तर माध्य की गणना चाहे प्रत्यक्ष विधि से की जाये अथवा लघु विधि से की जाए दोनों विधियों से माध्य सदैव समान आना चाहिए ।

NOTES

2. **खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना**-खण्डित श्रेणियों में समान्तर माध्य की गणना उग्र दो विधियों से जाती है-

2.1 प्रत्यक्ष विधि

2.2 लघु विधि

2.1 प्रत्यक्ष विधि

1. सर्वप्रथम प्रत्येक मद मूल्यों को उनकी आवृत्ति से गुणा करके fx ज्ञात करें ।
2. सभी मदों के गुणनफल का योग ज्ञात करें ।
3. गुणनफल के योग के मदों की आवृत्तियों के योग से भाग दें ।
4. प्राप्त भागफल की समान्तर माध्य है ।

आकलन- इसका निम्न सूत्र से परिकलन किया जाता है-

सूत्र - $\overline{X} = \frac{\sum fx}{N}$

संकेताक्षर- $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

N = मदों की संख्या

f = मदों की आवृत्ति

Σfx = मदों के मूल्यों और आवृत्ति के गुणनफलों का योग

उदाहरण-

छात्र :	5	6	8	4	2	7	4	3	5	9
प्राप्त अंक :	28	20	21	18	16	15	14	11	29	24

प्राप्तांक X	छात्रों की संख्या F	मूल्यों की आवृत्ति का गुणनफल (प्राप्तांक × छात्र संख्या) $f \times x$
11	3	33
14	4	56
15	7	105

NOTES

16	2	32
18	4	72
20	6	120
21	8	168
24	9	216
28	5	140
29	5	145
योग	N = 48	Σ fx = 1087

सूत्र- $\overline{X} = \frac{\sum fx}{N}$

$$= \frac{1087}{48}$$

$$\overline{X} = 22.622$$

अत: 48 छात्रों के प्राप्तांकों का समान्तर 26.622 अंक है ।

2.2 लघु विधि- खण्डित श्रेणियों का लघु विधि से समान्तर माध्य निम्न प्रक्रिया तथा सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है-

(1) मद मूल्यों में से किसी एक मद मूल्य को कल्पित माध्य (A) मान लिया जाता है।

(2) कल्पित माध्य से प्रत्येक मद के मूल्यों का विचलन या अन्तर (Z-A) ज्ञात किया जाता है।

(3) प्रत्येक विचलन का सम्बन्धित आवृत्ति आवृत्ति से गुणा करके उस मद का कुल विचलन मूल्य (fdx) ज्ञात किया जाता है।

(4) गुणनफल (Σfdx) का कुल योग ज्ञात किया जाता है।

परिकलन- इसका परिकलन निम्न सूत्र से किया जाता है-

सूत्र - $\overline{X} = A \frac{\sum dx}{N}$

संकेताक्षर : $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

N = मदों की संख्या

f = मदों की आवृत्ति

dx = विचलन

x = मद मूल्य

Σfdx = आवृत्ति और विचलित मूल्यों के गुणनफलों का योग

NOTES

उदाहरण-

प्राप्तांक :	23	24	21	20	28	15	10	25	30	22
छात्र:	3	5	9	2	6	6	7	4	2	4

प्राप्तांक X	छात्र संख्या f	A = 20 से विचलन dx	विचलित मूल्य और आवृत्ति का गुणनफल f× dx
23	5	+ 3	+ 15
24	5	+ 4	+ 20
21	9	+ 1	+ 9
20	2	0	0
28	6	+ 8	+ 48
15	6	– 5	– 30
10	7	– 10	– 70
25	4	+ 5	+ 20
30	2	+ 10	+ 20
22	4	+ 2	+ 8
योग	**N = 50**		**+ 140 – 100 Σ fdx = 40**

सूत्र-

$$\overline{X} = A \frac{\sum fdx}{N}$$

$$= 20 + \frac{40}{50}$$

$$= 20 + 0.8$$

$$\overline{X} = 20.8$$

अत: 50 छात्रों के प्राप्तांकों का समान्तर माध्य 20.8 अंक है ।

3. सतत् श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना- सतत् श्रेणियों में समान्तर माध्य की गणना निम्नलिखित तीन विधियों से की जाती है-

3.1 प्रत्यक्ष विधि

3.2 लघु विधि

3.3 पद-विचलन विधि

3.1 प्रत्यक्ष विधि- सतत् श्रेणियों का प्रत्यक्ष विधि से समान्तर माध्य निम्नलिखित प्रक्रिया तथा सूत्रों द्वारा ज्ञात किया जाता है-

(1) सर्वप्रथम सतत् श्रेणियों या वर्गान्तरों का मध्यमान अथवा मध्य मूल्य या मध्य बिन्दु ज्ञात करके उसे खण्डित श्रेणी में परिवर्तित किया जाता है-

(2) मध्य मूल्यों का उनकी सम्बन्धित आवृत्तियों से गुणा करते हैं । (fx)

(3) सभी मध्य-मूल्य और आवृत्तियों के गुणनफलों का कुल योग ज्ञात करते है ।

(4) इस गुणनफल के कुल योग में आवृत्तियों के कुल योग का भाग देते हैं ।

(5) प्राप्त भागफल समान्तर माध्य ही है ।

परिकलन-इसका परिकलन निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है ।

सूत्र- $\overline{X} = \frac{\sum fx}{N}$

संकेताक्षर $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

N = आवृत्तियों का योग

Σfx = मद के मध्य मूल्यों तथा आवृत्तियों के गुणनफलों का कुल योग

उदाहरण-

मजदूरी (रुपये में)	श्रमिकों की संख्या
1-3	3
4-6	5
7-9	4
10-12	6
13-15	7
16-18	4
19-21	3
22-24	2

NOTES

दैनिक मजदूरी	श्रमिकों की संख्या	मध्य मूल्य	मध्य मूल्य × आवृत्ति $f \times dx$
1-3	3	2	6
4-6	5	5	25
7-9	4	8	32
10-12	6	11	66
13-15	7	14	98
16-18	4	17	68
19-21	3	20	60
22-24	2	23	46
योग	**N = 34**		**Σfx = 401**

सूत्र- $$X = \frac{\sum fx}{N}$$

$$= \frac{401}{34}$$

$$= 11.79$$

अत: 34 श्रमिकों की मजदूरी का समान्तर माध्य रु. 11.79 है ।

3.2 लघु विधि- सतत् श्रेणियों या वर्गान्तरों का लघु विधि से समान्तर माध्य निम्नलिखित प्रक्रिया तथा सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है-

(1) सर्वप्रथम वर्गान्तरों का मध्य-मूल्य-बिन्दु ज्ञात करते हैं तथा इस प्रकार वर्गान्तरों को खण्डित श्रेणी में परिवर्तित करते हैं ।

(2) इन मध्य-मूल्यों में से किसी एक मध्य-मूल्य को कल्पित माध्य मान लेते है । (A)

(3) कल्पित माध्य से मध्य मूल्य का विचलन ज्ञात करते हैं । (dx)

(4) प्रत्येक विचलन को मदों की आवृत्ति से गुणा करके गुणनफलों को ज्ञात करते हैं। (fdx)

परिकलन- सतत् श्रेणियों का लघु विधि से परिकलन निम्न प्रक्रिया एवं सूत्र द्वारा किया जाता है-

सूत्र- $$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

संकेताक्षर - $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

N = आवृत्तियों का योग

Σfdx = मद विचलनों और आवृत्तियों के गुणनफलों का कुल योग

NOTES

उदाहरण -

मजदूरी : (रुपये में)	1-3	4-6	7-9	10-12	13-15	16-18	19-21	22-24
श्रमिकों की संख्या :	3	5	4	6	7	4	3	2

सूत्र-

दैनिक मजदूरी	**श्रमिकों की संख्या f**	**मध्य मूल्य x**	**विचलन (A = 16) dx**	**विचलन मूल्य × आवृत्ति fdx**
1-3	3	2	– 14	– 42
4-6	5	5	– 11	– 55
7-9	4	8	– 8	– 32
10-12	6	11	– 5	– 30
13-15	7	14	– 2	– 14
16-18	4	17	+1	+ 4
19-21	3	20	+ 4	+12
22-24	2	23	+ 7	+14
योग	**N = 34**			**fdx = – 173 + 30 = – 143**

सूत्र- $\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N}$

$= 16 + \frac{.143}{34}$

$= 16 - 4.21$

$\overline{X} = 11.79$

अत: श्रमिकों की मजदूरी का समान्तर माध्य रु. 11.79 है ।

3.3 पद-विचलन विधि - सतत् श्रेणियों का पद-विचलन विधि से समान्तर माध्य निम्नलिखित प्रक्रिया तथा सूत्रों द्वारा ज्ञात किया जाता है-

(1) सर्वप्रथम सतत् श्रेणियों या वर्गान्तरों का मध्य मूल्य ज्ञात करते हैं ।

(2) मध्य मूल्यों में से किसी एक मध्य मूल्य को कल्पित माध्य मान लिया जाता है ।

(3) कल्पित माध्य से मध्य मूल्यों का विचलन ज्ञात करते हैं ।

(4) विचलनों को मद की आवृत्तियों से गुणा करते हैं ।

(5) पद-विचलन का पता लगाने के लिए वर्गान्तर का विचलित मूल्यों में भाग देते हैं । इस प्रकार पद-विचलन (dx) की गणना करते हैं ।

(6) भाग देने के बाद प्राप्त विचलित मूल्यों को सम्बन्धित आवृत्ति से गुणा करके गुणनफल ज्ञात करते हैं । इसे (fdx) से प्रदर्शित करते है ।

NOTES

परिकलन- सतत् श्रेणियों का पद-विचलन विधि से परिकलन निम्न प्रक्रिया तथा सूत्र द्वारा किया जाता है-

सूत्र- $$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N} \times i$$

संकेताक्षर -

$\overline{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

N = आवृत्तियों का योग

i = एक वर्ग की निम्न व उच्च सीमा का अन्तर

Σfdx = विचलित मूल्यों और आवृत्तियों के गुणनफल का योग

उदाहरण -

मजदूरी : (रुपये में)	1-3	4-6	7-9	10-12	13-15	16-18	19-21	22-24
श्रमिकों की संख्या :	3	5	4	6	7	4	3	2

मजदूरी (रुपयों में)	श्रमिकों की संख्या (आवृत्ति)	मध्य मूल्य	विचलन (A = 16) (x – A)	पद विचलन $\frac{d'}{i}$	पद-विचलन व आवृत्ति का गुणनफल
	f	X	d'	d'x	f × d'x
1-3	3	2	14	(14 ÷ 2) = 7	– 21
4-6	5	5	– 11	(11 ÷ 2) = –5.5	– 27.5
7-9	4	8	– 8	(8 ÷ 2) = – 4	– 16
10-12	6	11	– 5	(5 ÷ 2) = – 2.5	– 15
13-15	7	14	– 2	(2 ÷ 2) = – 1	– 7
16-18	4	17	+ 1	(+1 ÷2) = – 1	+ 2
19-21	3	20	+ 4	(+1 ÷2) = + 0.5	+ 6

NOTES

22-24	2	23	+ 7	(+ 4 ÷ 2) = + 2	+ 7
	N = 34			(+ 7 ÷ 2) = 3.5	Σfd'x = – 86.5 + 15 = – 71.5

सूत्र- $= 16 + \frac{-71-5}{34} \times i$

$= 16 - 2.10 \times 2$

$= 16 - 4.2$

$\overline{X} = 11.8$

अत: श्रमिकों की मजदूरी का समान्तर माध्य रु. 11.8 है । समान्तर माध्य किसी भी विधि से ज्ञात किया जाए परिणाम समान आएगा । कभी–कभी दशमलव के बाद दशमलव एक या दशमलव शून्य एक तक का अन्तर आ सकता है जैसेकि उपर्युक्त उदाहरण में 11.79 और 11.8 आया है। यह 11.8 भी हो सकता है –

समान्तर माध्य के गुण– समान्तर माध्य के वैज्ञानिक अध्ययनों तथा अनुसन्धानों में निम्नलिखित लाभ हैं–

(1) **सरलता**– सांख्यिकीय माध्यों में समान्तर माध्य का परिकलन या गणन करना बहुत सरल है। इसे साधारण व्यक्ति भी सरलतापूर्वक समझ सकता है ।

(2) **सभी मूल्यों पर आधारित**– समान्तर माध्य सभी मदों के मूल्यों पर आधारित होता है। इसमें किसी मद को कम या अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। सभी मदों का महत्व समान होता है इसलिये यह अध्ययन की इकाइयों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है । मध्यका और बहुलक में ये गुण नहीं होता है।

(3) **निश्चितता**– समान्तर माध्य सुनिश्चित तथा स्थिर होता है। इसकी परिभाषा स्पष्ट तथा सीमित होती है। इसका निर्धारण करने में अनुमान का प्रयोग नहीं किया जाता है । मध्यका तथा बहुलक में इस गुण का अभाव होता है।

(4) **बीजगणितीय विवेचन सम्भव** – समान्तर माध्य में अनेक बीजगणितीय गुण होते हैं जिसके फलस्वरूप उसका उच्च स्तरीय सांख्यिकीय परिकलनों तथा विश्लेषणों में अत्यधिक प्रयोग किया जाता है।

(5) **स्थिरता**– समान्तर माध्य पर निदर्शन के परिवर्तनों का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। विभिन्न निदर्शन विधियों द्वारा चयन किए गए सूचनादाता का माध्य इस विधि द्वारा लगभग समान आता है । यह गुण अन्य माध्य में नहीं होता है ।

(6) **क्रमबद्धता अनावश्यक**– समान्तर माध्य में मदों को आरोही अथवा अवरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित करना आवश्यक नहीं होता है जैसाकि अन्य माध्य में आवश्यक है ।

(7) **जाँच सम्भव** – समान्तर माध्य में परिणामों की जाँच विभिन्न प्रणालियों तथा तरीकों से कर सकते हैं। प्रत्येक अवस्था में इसके परिणाम समान आते हैं।

(8) **तुलनात्मकता**– विभिन्न चरों तथा मूल्यों की तुलना करने के लिए समान्तर माध्य का प्रयोग अधिक किया जाता है।

समान्तर माध्य के दोष (Demerits of Arithmetic Mean) - समान्तर माध्य में वे अनेक गुण होते हैं जो एक आदर्श माध्य में होने चाहिए फिर भी इस माध्य की भी अपने कुछ दोष हैं जिनके कारण उसकी उपयोगिता कुछ कम हो जाती है । ये दोष निम्नलिखित हैं–

(1) **चरम मूल्यों का प्रभाव** – समान्तर माध्य सभी मदों के मूल्यों पर आधारित होता है। इसलिए जब कुछ इकाइयों के असाधारण मूल्य बहुत अधिक या बहुत कम होते हैं तो समान्तर माध्य के मूल्य समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करते। जैसे सभी छात्रों के अंक 40 से 50 के बीच में हैं तथा कुछ के 90 के आसपास। उनसे समान्तर माध्य का मूल्य प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है तथा निष्कर्ष गुमराह करने वाले होते हैं।

(2) **अप्रतिनिधित्व** – समान्तर माध्य का मूल्य अध्ययन के अन्तर्गत मदों के बाहर का होता है। वह श्रेणी के मूल्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। जैसे 5,15 और 100 का समान्तर माध्य 40 है जो इनमें से किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

(3) **अवास्तविक**– जब कोई संख्या बहुत बड़ी अथवा बहुत छोटी होती है तो समान्तर माध्य अवास्तविक होता है जैसे कि उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है।

(4) **भ्रामक निष्कर्ष** – समान्तर माध्य भ्रमपूर्ण, अवास्तविक, हास्यास्पद तथा त्रुटिपूर्ण उत्तर प्रस्तुत करता है। ऐसा खण्डित श्रेणियों के साथ प्राय: होता है। व्यक्ति एक, दो, तीन, चार आदि होते हैं।......... आदि रूप में व्यक्तियों की संख्या नहीं हो सकती। परिवारों के औसत आकार में संख्या ऐसी ही आती है।

(5) **गणना** – समंकमाला में एक भी पद के मूल्य के अभाव में समान्तर माध्य की गणना नहीं की जा सकती है।

(6) **सिंहावलोकन**– मूल्यों का सिंहावलोकन मात्र से समान्तर माध्य को ज्ञात नहीं किया जा सकता है। इसमें परिकलन या गणना आवश्यक है।

इन दोषों के होते हुए भी समान्तर माध्य को सांख्यिकी में आदर्श माध्य का स्थान प्राप्त है। इसका उपयोग जनसाधारण के जीवन से लेकर उच्चस्तरीय अध्ययनों में पर्याप्त रूप से किया जाता है। औसत आय औसत मूल्य, औसत लागत, औसत परीक्षा परिणाम, औसत आयात– निर्यात आदि में इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है।

बहुलक या भूयिष्ठक (Mode)

बहुलक सांख्यिकीय माध्य का एक प्रकार है जिसकी अपनी विशेषता, उपयोगिता तथा अनुसन्धान में तथ्यों के विश्लेषण करने में उपयोग है। इसका अध्ययन करना आवश्यक है। सर्वप्रथम हम इसके अर्थ और परिभाषा का अध्ययन करेंगे।

बहुलक का अर्थ परिभाषा- बहुलक का शाब्दिक अर्थ महत्वपूर्ण है। यह अंग्रेजी के शब्द 'Mode' का हिन्दी रूपान्तर है, जो फ्रैंच भाषा के 'La Mode' से व्युत्पन्न हुआ है और जिसका अर्थ है 'फैशन', 'रिवाज', 'प्रचलन' आदि। बहुलक या भूयिष्ठक का अर्थ सांख्यिकी में श्रेणी के उस मूल्य से लगाते हैं जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है।

(1) क्राक्सटन तथा काउडेन ने बहुलक की परिभाषा देते हुए लिखा है, ''बहुलक एक समंकमाला का वह मूल्य है जिसके आसपास श्रेणी के अधिक-से अधिक पद-मूल्य केन्द्रित होते हैं।''

(2) गिल्फोर्ड के अनुसार, ''बहुलक माप के पैमाने पर वह बिन्दु है जहाँ कि किसी वितरण में सर्वाधिक आवृत्ति होती है।''

(3) किन्ने तथा कीपिंग के शब्दों में, ''बहुलक उस मूल्य को कहते है। जो समंकमाला में सबसे अधिक बार आता हो अर्थात् जिसकी सबसे अधिक आवृत्ति हो।''

उपयुक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बहुलक (भूयिष्ठक) समंकमाला में, सर्वाधिक विद्यमान होने वाला मूल्य है। इसके मूल्य के आसपास श्रेणी के अधिक मूल्य केन्द्रित होते हैं। बहुलक को हम इसकी विशेषताओं के अध्ययन से और स्पष्ट रूप में समझ सकेंगे।

बहुलक की विशेषताएँ (Characteristics of Mode)

(1) **सर्वाधिक आवृत्ति** - बहुलक समंकमाला में सबसे अधिक बार आने वाला मूल्य होता है । इसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है ।

(2) **एकाकधिक माध्य**- कभी-कभी एक समंकमाला में कई मूल्यों की समान आवृत्ति होती है। तब माध्य के रूप में एक से अधिक पद-मूल्यों को बहुलक चुना जाता है। ऐसी स्थिति में एक से अधिक बहुलक विद्यमान होते हैं।

(3) **आवृत्ति पर निर्भर**- बहुलक पद-मूल्यों पर आधारित नहीं होता है। जिन मूल्यों में सर्वाधिक आवृत्ति होती है उन्हें बहुलक के रूप में चुना जाता है। बहुलक का पता पदों के मूल्यों के स्थान पर आवृत्ति के आधार पर लगाया जाता है।

(4) **परिकलन विधि सरल**- बहुलक की गणना अथवा परिकलन सरल तथा एक नजर में भी ज्ञात किया जाने वाला होता है।

(5) **बहुलक** में अधिक मूल्यों या न्यून मूल्य का कोई महत्व नहीं होता है। वह मूल्य महत्वपूर्ण हो जाता है जिसकी आवृत्ति चाहे न्यून हो।

बहुलक की गणना (Calculation of Mode)

बहुलक की अधिकतम आवृत्ति का मूल्य होने के कारण उसे निरीक्षण द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। बहुलक के गणना की विधि आवृत्ति के बंटनों पर निर्भर करती है जो निम्नलिखित है -

1. **व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण**- व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण निम्नलिखित तीन प्रणालियों के द्वारा किया जा सकता है ।

1.1 निरीक्षण द्वारा

1.2 खण्डित श्रेणी में परिवर्तित करके

1.3 माध्यिका एवं समान्तर माध्य के आधार पर

1.1 **निरीक्षण द्वारा बहुलक का निर्धारण**– व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक ज्ञात करने के लिए पद की आवृत्ति का निरीक्षण किया जाता है। जिस पद की आवृत्ति सर्वाधिक होती है वही बहुलक होता है। अगर पद–मूल्य क्रय से नहीं होते हैं तो पहिले मूल्यों को क्रम से व्यवस्थित किया जाता है उससे निरीक्षण क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित हो जाता है।

उदाहरण– एक कक्षा के 20 छात्रों की प्राप्तांक निम्न है, बहुलक ज्ञात कीजिए–

4, 6, 3, 3, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 6, 7, 2, 3, 8, 4, 7, 4, 2, 5, 4, 6, 3

बहुलक का निर्धारण करने के लिए पद–मूल्यों को एक क्रम में निम्न प्रकार से पुन: व्यवस्थित करना होगा–

2, 2, 3, 3, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 5, 5, 5, 6, 6, 6, 7, 7, 8, 8

पद मूल्यों को क्रम से व्यवस्थित करने पर स्पष्ट होता है कि अंक 4 की आवृत्ति सर्वाधिक है। यह छ: बार आया है। अत: कक्षा में 20 छात्रों के प्राप्तांक का बहुलक अंक 4 होगा।

1.2 **खण्डित श्रेणी में परिवर्तित करके बहुलक का निर्धारण**– जब व्यक्तिगत श्रेणी के अनेक मूल्य दो से अधिक बार पाए जाते हैं तो उन्हें आरोही क्रम के अनुसार व्यवस्थित करके उनके सामने उनकी आवृत्ति लिख दी जाती है। इसके बाद निरीक्षण करके ज्ञात किया जाता है कि किस मूल्य की आवृत्ति सर्वाधिक है। सर्वाधिक आवृत्ति का मूल्य ही बहुलक होगा।

उदाहरण– 20 छात्रों की आयु का बहुलक ज्ञात कीजिए–

17, 18, 20, 15, 20, 16, 18, 21, 15, 19, 13, 15, 14, 18, 15, 22, 20, 15, 16, 15

इन आयु श्रेणियों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर–

पद–मूल्य (छात्रों की आयु) वर्षों में	आवृत्ति
13	1
14	1
15	6
16	2
17	1
18	3
19	1

NOTES

20	3
21	1
22	1

उपर्युक्त पद–मूल्यों की आवृत्ति के निरीक्षण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक आवृत्ति 6 बार पद–मूल्य 15 वर्ष की है, अत: छात्रों की आयु का बहुलक 15 वर्ष होगा ।

1.3 **माध्यिका तथा समान्तर माध्य के आधार पर बहुलक का निर्धारण** – व्यक्तिगत श्रेणियों का बहुलक माध्यिका तथा समान्तर माध्य के द्वारा भी सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं–

सूत्र- $Z = 3M - 2\overline{X}$

संकेताक्षर- Z = बहुलक

M = माध्यिका

$\overline{X}$ = समान्तर माध्य

2. **खण्डित श्रेणी में बहुलक का निर्धारण** – खण्डित श्रेणी का बहुलक निम्न तीन विधियों द्वारा निर्धारित किया जा सकता–

2.1 निरीक्षण प्रणाली 2.2 समूहन प्रणाली 2.3 तीन आवृत्तियों के जोड़ की प्रणाली

2.1 **निरीक्षण प्रणाली द्वारा बहुलक का निर्धारण**– इस प्रणाली में आवृत्तियों का अवलोकन किया जाता है तथा पता लगाया जाता है कि सर्वाधिक आवृत्ति कौन–सी है तथा उसका मूल्य कितना है। सर्वाधिक आवृत्ति का मूल्य बहुलक होता है।

उदाहरण –

मदों का मान :	6	8	12	16	6	10	18	14
आवृत्ति :	1	69	11	5	2	8	5	7

उपर्युक्त तथ्यों के निरीक्षण से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक आवृत्ति 11 है जिसका पद–मूल्य 12 है । यह 12 बहुलक होगा ।

2.2 **समूहन प्रणाली**– जब आवृत्तियों का क्रम नियमित नहीं होता है तथा अधिकतम आवृत्ति को ज्ञात करना कठिन होता है तो समूहन प्रणाली द्वारा बहुलक की गणना की जाती है।

अनियमित आवृत्ति के लक्षण – (1) आवृत्ति अनियमित प्रकार से घटे या बढ़े (2) अधिकतम आवृत्तियाँ दो या इससे अधिक स्थानों पर ही पाई जाएँ (3) अधिकतम आवृत्तियाँ बिल्कुल प्रारम्भ अथवा अन्त में हों, (4) अधिकतम आवृत्तियों के दोनों ओर की आवृत्तियाँ बहुत अन्तर वाली हों ।

परिकलन के चरण– साधारणतया समूहन करने के लिए छ: खानों वाली सारणी तैयारी की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर अधिक खानों की सारणी भी बनाई जाती है जब समूहन में पदों की संख्या तीन–तीन या चार–चार हों। सामान्यतया दो–दो तीन–तीन के समूहन ही पर्याप्त होते हैं। इसमें निम्न प्रकार से बहुलक प्राप्त किया जाता है–

NOTES

(1) प्रारम्भ के स्तम्भ में पद-मूल्यों को आरोही क्रम में लिखते हैं। इसके आगे वाले स्तम्भ, जो प्रथम स्तम्भ कहलाता है, में सम्बन्धित आवृत्तियाँ लिखते हैं।

(2) दूसरे स्तम्भ में दो-दों आवृत्तियों का योग लिखते हैं।

(3) तीसरे स्तम्भ में प्रथम आवृत्ति को छोड़कर पुन: दो-दो आवृत्तियों का योग लिखते हैं।

(4) चौथे स्तम्भ में प्रारम्भ में तीन-तीन आवृत्तियों को लेकर उनका योग लिखते हैं।

(5) पाँचवे स्तम्भ में प्रथम आवृत्ति को छोड़कर उसके बाद में तीन-तीन आवृत्तियों को लेकर उनका योग लिखते है।

(6) छठे स्तम्भ में प्रथम दो आवृत्तियों को छोड़कर तीन-तीन आवृत्तियों को लेकर उनका योग लिखते हैं। अन्त में दो-दो अथवा तीन-तीन का समूह नहीं बनता है तो बची आवृत्तियों को छोड़ देते हैं।

उपर्युक्त प्रक्रिया के आधार पर समूहन सारणी तैयार करने के उपरोक्त प्रत्येक स्तम्भ का निरीक्षण करके अधिकतम आवृत्ति -समूह को रेखांकित कर दिया जाता है। अधिकतम आवृत्तियों के मूल्य पर चिन्ह लगाकर उनकी गणना कर ली जाती है। जिस मूल्य के सम्मुख अधिकतम चिन्ह लगे होते हैं। वहीं मूल्य बहुलक होता है।

उदाहरण - निम्न तथ्यों की बहुलक ज्ञात कीजिए-

अंक	10	15	20	25	30	35	40	45	50	55
छात्रों की संख्या	3	5	9	14	18	12	10	3	2	2

आकलन-

समूहन द्वारा बहुलक-निर्धारण

(समूहन सारणी)

<table>
<tr><th rowspan="2">अंक</th><th colspan="6">छात्रों की आवृत्ति का समूहन</th><th colspan="2" rowspan="2">अधिकतम आवृत्ति की संख्या</th></tr>
<tr><th>(1)</th><th>(2)</th><th>(3)</th><th>(4)</th><th>(5)</th><th>(6)</th></tr>
<tr><td>10
15
20
25
30
35
40
45
50
55</td><td>3
5
9
14
18
12
10
3
2
2</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
</table>

NOTES

स्तम्भ संख्या	पद मूल्य									
	10	15	20	25	30	35	40	45	50	55
1					|					
2					|	|			
3				|	|					
4				|	|	|			
5					|	|	|		
6			|	|	|					
आवृत्ति			1	3	6	3	1			

उपर्युक्त विश्लेषण सारणी में स्पष्ट हो जाता है कि प्राप्तांक 30 सबसे अधिक बार अर्थात् 6 बार आया है इसलिए बहुलक प्राप्तांक 30 है ।

2.3 तीन आवृत्तियों की जोड़ प्रणाली – उस प्रणाली का प्रयोग तब किया जाता है जब दो पद–मूल्यों की आवृत्ति एक–सी अर्थात् एकसमान होती है। तीन आवृत्तियों की जोड़ प्रणाली द्वारा जब बहुलक का निर्धारण किया जाता है तब अधिकतम आवृत्ति के आगे आने वाली तथा पीछे आने वाली आवृत्तियों का योग लिखा जाता है। तीनों आवृत्तियों का योगफल लेकर उनकी तुलना करके सर्वाधिक योगफल से सम्बन्धित मूल्य को बहुलक निर्धारित किया जाता है।

उदाहरण– निम्न अंकों में बहुलक की गणना कीजिए–

पदों का मूल्य :	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
आवृत्ति :	2	4	3	5	10	6	4	10	5	2

आकलन– तीन आवृत्तियों के जोड़ की प्रणाली के द्वारा बहुलक का निर्धारण अधिकतम आवृत्ति 10 दो बार है ।

अत: सम्भावित बहुलक का मूल्य है–	5	और	8
सम्भावित बहुलक मूल्य पिछली आवृत्ति	5		4
सम्भावित बहुलक मूल्य की आवृत्ति		10	
सम्भावित बहुलक मूल्य की अगली आवृत्ति	6		5
	21		19

दोनों के योगफलों में मूल्य 5 का योगफल 21 है वह 19 से अधिक है । इसलिए अंकों का बहुलक 5 है।

NOTES

3. **अविच्छिक या सतत् श्रेणी में बहुलक का निर्धारण**– अविच्छिक श्रेणी में निम्न दो विधियों द्वारा बहुलक निर्धारित किया जाता है–

(1) निरीक्षण विधि (2) समूहन विधि

3.1 **निरीक्षण विधि**– इस विधि में आवृत्तियों का अवलोकन किया जाता है तथा ज्ञात किया जाता है कि सर्वाधिक आवृत्ति कौन–सी है तथा उसका वर्ग कौन–सा है वही बहुलक वर्ग कहलाता है । अगर सबसे अधिक आवृत्ति वाले वर्ग एक से अधिक होते हैं तो निरीक्षण विधि के स्थान पर समूहन विधि को काम में लेकर बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है तथा निम्न सूत्र से परिकलन किया जाता है–

सूत्र– $Z = L_i + \frac{f_1 . f_0}{2f_1 . f_0 . f_2} \propto i$

सकेताक्षर– Z = बहुलक या भूयिष्ठक

L_1 = बहुलक वर्ग की निम्न सीमा

f_1 = बहुलक वर्ग की आवृत्ति

f_0 = बहुलक वर्ग से पहिले वाले वर्ग की आवृत्ति

f_2 = बहुलक वर्ग से बाद वाले वर्ग की आवृत्ति

i = बहुलक वर्ग की निम्नतम तथा उच्चतम सीमाओं का अन्तर (वर्गान्तर)

उदाहरण– निम्नलिखित समंकों से बहुलक मजदूरी की गणना कीजिए–

मजूदरी : (रुपये में)	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70
श्रमिकों की संख्या :	4	7	11	15	11	6	4

मजदूरी (रुपयों में) x	श्रमिकों की संख्या f
0-10	4
10-20	7
20-30	11
30-40	15
40-50	11
50-60	6
60-70	1

उपर्युक्त सारणी का निरीक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है कि सबसे अधिक आवृत्ति 15 इसलिए बहुलक वर्ग 30–40 है।

सूत्र- $$Z = L_1 + \frac{f_1 \,.\, f_0}{2f_1 \,.\, f_0 \,.\, f_2} \propto i$$

NOTES

$$Z = 30 + \frac{15 \,.\, 11}{2 \propto 15 \,.\, 11 \,.\, 11} \propto 10$$

$$= 30 \,,\, \frac{4}{8} \propto 10$$

$$= 30 \,,\, \frac{40}{8}$$

$$= 30 + 5$$

$$Z = 35$$

अत: बहुलक मजदूरी 35 रुपये है ।

3.2 समूहन प्रणाली द्वारा बहुलक की गणना- सबसे पहले खण्डित श्रेणी की तरह इसमें भी समूहन एवं विश्लेषण तालिका के द्वारा बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है । इसके बाद निम्नलिखित सूत्र के द्वारा बहुलक की गणना की जाती है ।

सूत्र-$$X = L_i + \frac{f_1 \,.\, f_0}{2f_1 \,.\, f_0 \,.\, f_2} \propto i$$

मजदूरी	(रुपये में) x	श्रमिकों की संख्या						अधिकतम आवृत्तियों की संख्या	योग
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)		
0-10		3							
10-20		5							
20-30		9							
30-40		14							
40-50		13							
50-60		9							
60-70		6							

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतम आवृत्ति 4 है जिसका वर्ग 30-40 बहुलक वर्ग है।

सूत्र- $$Z = L_1 + \frac{f_1 \,.\, f_0}{2f_1 \,.\, f_0 \,.\, f_2} \propto i$$

NOTES

$$Z = 30 + \frac{14\ .\ 9}{2 \propto 14\ .\ 9\ .\ 13} \propto 10$$

$$= 30\ ,\ \frac{5}{6} \propto 10$$

$$= 30\ ,\ \frac{50}{6}$$

$$= 30 + 8.33$$

$$Z = 38.33$$

अत: उपर्युक्त गणना से बहुलक मजदूरी 38.33 रुपए है ।

बहुलक या भूयिष्ठक के गुण (Merits of Mode)

बहुलक माध्य के निम्नलिखित गुण है–

बहुलक या भूयिष्ठक के गुण
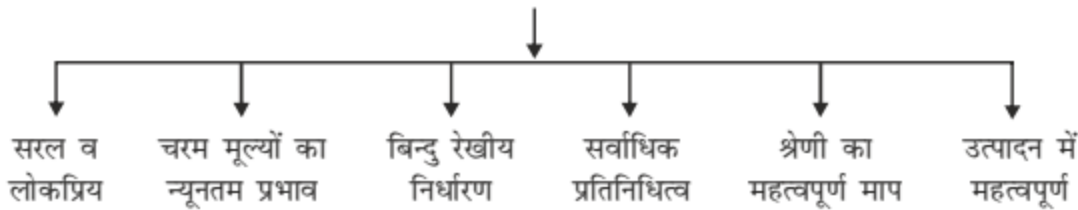
(1) **सरल व लोकप्रिय**– बहुलक माध्य का सबसे प्रमुख गुण है कि इसको समझना बहुत सरल है। इसे ज्ञात करना भी अत्यन्त सरल है । लोग इसका अपने दैनिक जीवन में पर्याप्त प्रयोग करते है, जैसे– दुकान में कौन–सा सामान ज्यादा मँगाना चाहिए अथवा सिले–सिलाए वस्त्र अधिकतर किसी औसत आकार के ज्यादा बिकते हैं आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। बहुलक का निर्धारण सामान्यता निरीक्षण से ही किया जा सकता है।

(2) **चरम मूल्यों का न्यूनतम प्रभाव**– बहुलक की गणना आवृत्तियों के आधार पर की जाती है। इसकी गणना में श्रेणी के चरम मूल्यों या सीमान्त इकाइयों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसमें सभी आवृत्तियों की जानकारी का होना आवश्यक नहीं है।

(3) **बिन्दु रेखीय निर्धारण** – बहुलक का निर्धारण आवृत्तियों के मूल्यों के आधार पर रेखीय चित्र या ग्राफ बनाकर निरीक्षण द्वारा किया जा सकता है ।

(4) **सर्वाधिक प्रतिनिधित्व** – बहुलक श्रेणी का वह मूल्य होता है जो सबसे अधिक बार पाया जाता है। यह सर्वाधिक आवृत्ति पर आधारित होता है इसलिए जिन अध्ययनों में केन्द्रीय प्रवृत्ति का निर्धारण करना होता है इसमें बहुलक सर्वाधिक उपयोगी माध्य है। बहुलक का परिकलन या गणना अधिकतम आवृत्ति पर निर्भर होने के कारण यह केन्द्रीय आवृत्ति का सर्वाधिक

प्रतिनिधित्व करने वाला माध्य है। किंग ने भी इस लाभ को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है, ''बहुलक की प्रकृति इस प्रकार की है कि इसे आँकड़ों का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व माना जा सकता है।''

NOTES

(5) **श्रेणी का महत्वपूर्ण माप** – समंकमाला में अनेक श्रेणियाँ तथा उनका मूल्य होता हैं। बहुलक उसमें सबसे महत्वपूर्ण श्रेणी होता है तथा उसकी आवृत्ति तथा मूल्य सम्पूर्ण समंकमाला में विशेष ध्यान देने तथा अध्ययन करने योग्य होता है।

(6) **उत्पादन में महत्वपूर्ण** – उत्पादन प्रतिष्ठानों में किस आकार, नाप–तोल आदि वाली वस्तु का उत्पादन कितना होना चाहिए इसे बहुलक माध्य के द्वारा निश्चित करना सरल तथा सुगम होता है।

बहुलक (भूयिष्ठक) के दोष (Demerits of Mode) -

बहुलक के अनेक लाभ तथा गुणों के होते हुए भी इसके कुछ दोष हैं जो निम्न प्रकार से हैं–

बहुलक या (भूयिष्ठक) के दोष
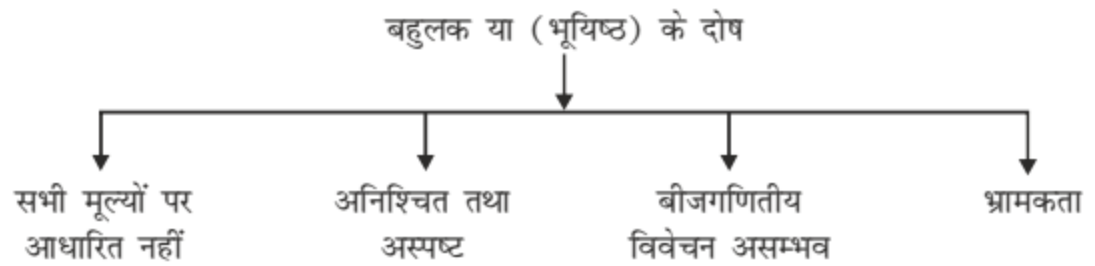
(1) **सभी मूल्यों पर आधारित नहीं** – बहुलक का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें जो पद चरम सीमा पर स्थिर होते है, उनको कोई महत्व नहीं दिया जाता है । जहाँ सीमान्त पदों को भी गणना में सम्मिलित करना हो वहाँ यह पूर्ण रूप से अनुपयुक्त रहता है । बहुलक केवल अधिकतम आवृत्ति वाले पद– मूल्यों पर आधारित होता है ।

(2) **अनिश्चित तथा अस्पष्ट** – बहुलक एक ऐसा माध्य है जो सबसे अधिक अनिश्चित और अस्पष्ट है । जब कुछ पदों की आवृत्तियाँ लगभग समान होती हैं तब माध्य निश्चित करना कठिन तथा अनिश्चित हो जाता है । कभी–कभी एक समूह में दो अथवा दो से अधिक बहुलक आ जाते हैं तब इसे निश्चित करना कठिन हो जाता है ।

(3) **बीजगणितीय विवेचन असम्भव** – बहुलक सभी पदों पर आधारित नहीं होने के कारण इसका आगे की प्रणालियों में बहुत कम उपयोग होता है, जैसे इसका बीजगणितीय उपयोग इसी कारण सम्भव नहीं है ।

(4) **भ्रामकता** – कभी–कभी बहुलक समंक श्रेणी का प्रतिनिधित्व नहीं करता है । मान लीजिए 500 व्यक्तियों में 6 की मासिक आय 45 रु. है तथा 494 की 45 से अधिक है तो बहुलक आय 45 रु. होगी । इस प्रकार बहुलक त्रटिपूर्ण सूचना देता है ।

एफ. सी. मिल्स के अनुसार ''अनुमानित बहुलक का निर्धारण कर देना जितना सरल है, वास्तविक बहुलक का निर्धारण करना वास्तव में उतना ही कठिन कार्य है ।''

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बहुलक की उपर्युक्त कमियाँ होते हुए भी इसका व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, मौसम विभाग, तापमान, वर्षा, वायुगति, उत्पादन के आकार तथा अनेक क्षेत्रों में बहुत उपयोग होता है । तैयार वस्तुओं के माप तथा उत्पादन की मात्रा में इसका प्रयोग बहुत होता है। बहुलक एक ऐसा माध्य है जो विज्ञान तथा जनसाधारण दोनों ही क्षेत्रों में विशेष स्थान रखता है।

माध्यिका (Median)

माध्यिका एक ऐसा माध्य है जो स्थिति सम्बन्धी है । जब किसी समंक-श्रेणी को आरोही (मात्रा बढ़ते हुए) या अवरोही (घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित कर लेते है। उसके बीच में जो मूल्य आता है वही माध्यिका (Median) कहलाता है। इसे मध्य या मध्यका भी कहते हैं । कोनर ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा, ''माध्यिका समंक-श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में इस प्रकार बाँटना है कि एक भाग में सार मूल्य माध्यिका से अधिक और दूसरे भाग में सारे मूल्य उससे कम हों।''

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि माध्यिका वह केन्द्रीय मूल्य है जो क्रमबद्ध और व्यवस्थित समंकमाला को दो बराबर भागों में बाँटती या विभाजित करती है। उदाहरणार्थ यदि 5 विद्यार्थियों के अंक 10,14,24,28 और 32 हों तो उनका माध्यिका मूल्य 24 होगा जो कि तीसरे क्रम का अंक है और यह बिल्कुल मध्य में स्थित है। इससे पहिले के दो अंक (10,14) कम और बाद के दो अंक (28,32) इससे अधिक हैं।

माध्यिका (Characteristics of Median)

(1) माध्यिका का निर्धारण करने के लिए पदों को आरोही (बढ़ते हुए) या अवरोही (घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।

(2) माध्यिका समंकमाला के केन्द्र में स्थित पद का मूल्य होता है।

(3) माध्यिका सम्पूर्ण समंक-श्रेणी को दो बराबर-बराबर भागों में बाँटती है तथा विभाजित करती है।

(4) माध्यिका को पद-मूल्यों की क्रमिक वृद्धि पर आधारित किया जाता है। इसके एक ओर मूल्य कम तथा दूसरी और अधिक मूल्य होते हैं।

माध्यिका का परिकलन- विभिन्न प्रकार की समंकमालाओं के लिए उनके अनुसार निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जाता है-

1. **व्यक्तिगत श्रेणी में माध्यिका का परिकलन**- व्यक्तिगत समंकमाला में माध्यिका ज्ञात करने के लिए निम्न चरणों का प्रयोग किया जाता है-

   1.1 सर्वप्रथम दिए हुए मूल्यों को आरोही या अवरोही क्रम में क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित किया जाता है। दोनों क्रमों (आरोही अथवा अवरोही) के अनुसार केन्द्र-बिन्दु समान होता है। मूल्यों की संख्याएँ भी सम्बन्धित पदों के सामने साथ-साथ लिख देनी चाहिए।

1.2 श्रेणी को क्रमबद्ध करने के बाद निम्न सूत्र का प्रयोग करना चाहिए ।

$$\text{सूत्र} - M = \text{Size of}\left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{item}$$

$$\text{संकेताक्षर}- M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{वें पद का मान}$$

M = माध्यिका मूल्य (Median) के लिए प्रयोग होता है।

N = पदों की संख्या के लिए प्रयोग किया जाता है ।

उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा केन्द्रीय पद की क्रम-संख्या या माध्यिका संख्या का पता चल जाता है । उस क्रम-संख्या के मूल्य को माध्यिका कहते हैं ।

1.3 अगर व्यक्तिगत इकाइयों की संख्या सम हो अर्थात् उनमें दो का पूरा-पूरा चला जाता है, जैसे- 10,12,14 आदि तो सूत्र द्वारा ज्ञात केन्द्रीय क्रम-संख्या पूर्ण अंक नहीं आएगा बल्कि 4.5 या 8.5 आदि होगा। ऐसी संख्याओं का मूल्य निश्चित करने के लिए उसके दोनों ओर की दो पूर्ण क्रम-संख्याओं के मूल्यों का योग लेकर उनमें 2 का भाग दिया जाएगा। यह भागफल माध्यिका मूल्य होगा। इसे निम्न सूत्र से ज्ञात करते हैं -

$$\textbf{सूत्र} - \text{Size of } 6.5^{th} \text{ item} = \frac{\text{Size of 6th item},\ \text{Size of 7th item}}{2}$$

$$\text{या } 6.5 \text{ वें पद का मान} = \frac{6\text{वें पद का मान} + 7\text{वें पद का मान}}{2}$$

उदाहरण-निम्न 7 श्रमिकों की माध्यिका मजदूरी ज्ञात कीजिए-

मजदूरी रुपयों में : 45, 20, 34, 25, 30, 38, 36

हल- सर्वप्रथम दिए हुए मूल्यों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करेंगे ।

इन आयु श्रेणियों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर -

क्रम संख्या	पद मूल्य
1	20
2	25
3	30
4	34
5	36
6	38
7	45
N = 7	

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वें पद का मान}$$

$$= \frac{7+1}{2} = 4\text{वें पद का मान}$$

NOTES

माध्यिका चौथे पद का मूल्य है ।

अत: श्रमिकों की मजदूरी का माध्यिका रु. 34.00 है ।

उदाहरण- निम्न सम संख्या से माध्यिका की गणना कीजिए ।

अनुक्रमांक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्राप्त अंक :	25	40	10	35	15	41	14	19	30	15

आकलन (Calculation)

क्रम संख्या :	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्राप्तांक :	10	14	15	15	19	25	30	35	40	41

सूत्र- $M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वाँ पद का मान

$$= \frac{10,\ 1}{2} \text{ वा पद का मान}$$

= 5.5 वें पद का मान

$$5.5 \text{ वें पद का मान} = \frac{5 \text{ वें पद का मान} + 6 \text{ वें पद का मान}}{2}$$

$$= \frac{19+25}{2}$$

$$= \frac{44}{2}$$

अत: माध्यिका अंक 22 है।

2. खण्डित श्रेणी में माध्यिका की गणना

खण्डित मालाओं में माध्यिका की गणना निम्न प्रक्रिया तथा सूत्रों द्वारा की जाती है-

(1) सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि खण्डित मालाएँ व्यवस्थित क्रम में हैं अथवा नहीं । अगर व्यवस्थित क्रम में नहीं हैं तो उन्हें व्यवस्थित किया जाए ।

(2) श्रेणी की आवृत्तियों की संचयी आवृत्ति ज्ञात करते हैं ।

(3) माध्यिका की गणना निम्न सूत्र से ज्ञात करते हैं-

NOTES

सूत्र - $M = \text{Size of} \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}$ item

या $M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वे पद का मान

इसके द्वारा जो पद आता है और वह जिस संचयी आवृत्ति में स्थित होता है, उस संचयी आवृत्ति का पद-मूल्य माध्यिका होगा ।

उदाहरण - निम्न तथ्यों की माध्यिका ज्ञात कीजिए ।

ऊँचाई (इंचों में) :	60	62	61	64	63	66	65
प्राप्त अंक :	46	50	70	40	71	39	27

हल-

पद का आकार	**आवृत्ति**	**संचयी आवृत्ति**
60	46	46
61	70	116
62	50	166
63	71	237
64	40	277
65	27	304
66	39	343

सूत्र- $M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वा पद का आकार

$= \frac{343+1}{2}$

= 172 वें पद का आकार,

172वाँ पद 237 संख्यी आवृत्ति में स्थित है, जिसकी ऊँचाई 63 इंच जै । इसलिए माध्यिका 63 इंच हुई ।

3. **सतत् श्रेणी में माध्यिका का निर्धारण** - सतत् या अविछिन्न समंकमाला में माध्यिका की गणना करने के लिए अग्र प्रक्रिया और सूत्र प्रयुक्त किए जाते हैं-

(1) सर्वप्रथम सतत् श्रेणी में पदों की आवृत्तियों की संचयी आवृत्तियाँ ज्ञात की जाती हैं ।

(2) निम्नलिखित सूत्र द्वारा माध्यिका वर्ग ज्ञात किया जाता है ।

माध्यिका = $\left(\frac{N}{2}\right)$ वाँ पद का आकार

(3) केन्द्रीय पद ज्ञात करने के बाद निम्न सूत्र से माध्यिका का परिकलन किया जाता है ।

सूत्र- $M = L_1 + \frac{L_2 . L_1}{f} (M - c)$

M = माध्यिका

f = माध्यिका वर्ग की आवृत्ति

L_1 = माध्यिका वर्ग की निम्नतम सीमा

L_2 = माध्यिका वर्ग की उच्चतम सीमा

$m = \left(\frac{N}{2}\right)$ से निकाला गया पद

c = माध्यिका वर्ग से पहिले वाले वर्ग की संचयी आवृत्ति

$i = (L_2 - L_1)$ से निकाला गया वर्गान्तर

उदाहरण- निम्न समंकों से माध्यक ज्ञात कीजिए-

मजदूरी : (रुपये में)	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
श्रमिकों की संख्या :	6	12	14	15	7

हल-

माध्यिका का आकलन

मजदूरी	श्रमिकों की संख्या	संचयी आवृत्ति
0-10	6	6
10-20	12	18 (6 + 12)
20-30	14	32 (18 + 14)
30-40	15	47 (32 + 15)
40-50	7	54 (47 + 7)
	N = 54	

$m = \left(\frac{N}{2}\right)$ वाँ पद का आकार

$= \frac{54}{2}$

= 27 वाँ पद का आकार

27वाँ पद की संचयी आवृत्ति 21 स्थित है जिसका वर्गान्तर 20–30 है । यही 20–30 माध्यिका वर्गान्तर है ।

NOTES

सूत्र- $M = L_1 \frac{L_2 - L_1}{f} (m-c)$

$= 20 + \frac{30-20}{14}(27-18)$

$= 20 + \frac{10}{14}(9)$

$= 20 + \frac{90}{14}$

$= 20 + 6.42$

$= 26.42$ रुपये है ।

अत: श्रमिकों की आय का माध्यिका 26.42 रुपए है ।

माध्यिका का प्रयोग– माध्यिका का उपयोग तब किया जाता है जब पदों की प्रत्यक्ष संख्याओं की गणना करना कठिन होता है । समंक जब केवल गुण के आधार पर ही क्रमबद्ध किए जा सकते हैं तथा माध्यिका को ज्ञात किया जाता है उन सामाजिक सर्वेक्षणों तथा अनुसन्धानों में जिनमें ईमानदारी, स्वास्थ्य, बुद्धिमानी जैसे– गुणात्मक विषयों का अध्ययन किया जाता है तब माध्यिका का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है ।

माध्यिका के गुण (Merits of Median)

(1) **सरलता**– माध्यिका का सबसे प्रमुख गुण यह है कि इसको समझना तथा गणना करना बहुत सरल है । यह व्यवस्थित श्रेणी में बिल्कुल बीच में स्थित होता है ।

(2) **चरम मूल्यों का न्यूनतम प्रभाव**– माध्यिका में मध्यका का पद चुना जाता है । इसलिए इसकी गणना में चरम मूल्यों या सीमान्त के मूल्यों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

(3) **बिन्दु रेखीय निर्धारण**– माध्यिका का निर्धारण रेखाचित्र, बिन्दु रेखा या ग्राफ के द्वारा भी किया जा सकता है ।

(4) **स्पष्टता**– माध्यिका का मूल्य केवल पदों की कुल संख्या के द्वारा स्पष्ट रूप से ज्ञात किया जा सकता है ।

(5) **उचित प्रतिनधित्व**– माध्यिका की गणना प्रत्येक पद के आधार पर की जाती है इसलिए यह माध्य इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है ।

(6) **गुणात्मक तथ्यों का अध्ययन**– माध्यिका चतुराई, ईमानदारी, बुद्धिमानी, स्वस्थ्य आदि के माध्य निर्धारण में प्रयुक्त किया जाता है ।

माध्यिका के दोष (Demerits of Median)-

माध्यिका के अनेक गुणों के साथ–साथ इसके कुछ दोष भी हैं, ये निम्न हैं–

(1) **क्रमबद्धता आवश्यक**– माध्यिका की गणना के लिए समंकों को मूल्यों के आधार पर आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित करना आवश्यक है। इसके अभाव में माध्यिका ज्ञात करना असम्भव है।

(2) **उचित प्रतिनिधित्व का अभाव**– माध्यिका श्रेणी के मध्य पर आधारित होता है । यह सभी पदों पर आधारित नहीं होता है इसलिए इसे पूर्ण रूप से उचित प्रतिनधित्व कहना वैज्ञानिक नहीं होगा।

(3) **बीजगणितीय विश्लेषण असम्भव**– माध्यिका का आगे की बीजगणितीय विवेचन, विश्लेषण तथा व्याख्या में उपयोग नहीं हो सकता है क्योंकि यह तो मध्य पद से निर्धारित किया जाता है। विभिन्न पदों के मूल्य के आधार पर उसे ज्ञात नहीं किया जा सकता।

(4) **अवास्तविक**– माध्यिका मूल्य श्रेणी के मध्य पद के द्वारा निर्धारित किया जाता है। कभी-कभी श्रेणी के अन्य मूल्य उससे विल्कुल भिन्न होते के कारण माध्यिका से मेल नहीं खाते हैं तथा यह माध्य अस्वाभाविक तथा अवास्तविक प्रतीत होता है ।

बहुलक, माध्यिका और समान्तर माध्य की तुलनात्मक उपयोगिता (Comparative Utility of Mode, Median and Arithmetic Mean)

1. **तीनों माध्यों**– बहुलक, माध्यिका और माध्य-की अपनी-अपनी विशेषताएँ, लक्षण, सीमा तथा गणना की प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न हैं उनके अनुसार इनका उपयोग भी भिन्न-भिन्न है। किस अध्ययन में कौन-सा माध्य का प्रकार उपयुक्त होगा यह अध्ययन के तथ्यों, सामग्री, आँकड़ों, उनकी प्रकृति तथा वर्गीकरण आदि पर निर्भर करता है। सामाजिक अनुसन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में तीनों ही माध्यों का अपना विशेष महत्व है। तथ्यों का औसत निकालकर तीनों ही निष्कर्षो का सार रूप प्रस्तुत करने में बहुत उपयोगी है।

2. **तीनों माध्यों का उपयोग**– किन्हीं तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करने के लिए के लिए विशेष रूप से चयन किया जाता है फिर भी अगर कभी ऐसी स्थिति आ जाए कि तीनों में से सबसे उपयुक्त कौन-सा माध्य है उसका निर्णय करना कठिन हो जाए तो समान्तर माध्य का ही चयन करना चाहिए । यह सबसे अच्छा माध्य इस रूप में है कि इसमें प्रत्येक पद के मूल्यों को समान रूप से प्रतिनिधित्व दिया जाता है ।

3. जब आवृत्ति का वितरण असीमित हो तथा श्रेणी में मूल्यों तथा आवृत्ति में क्रमबद्ध वितरण न हो; कुछ में बहुत अधिक तथा कुछ में बहुत कम हो तो माध्यिका का उपयोग करना चाहिए। पूँजीपति और पिछड़े देशों में आय का वितरण बहुत असीमित होता है। वहाँ आय की केन्द्रीय प्रवृत्ति का निर्धारण करने के लिए माध्यिका सबसे उपयोगी माध्य है।

4. कई बार अध्ययन में एक से अधिक समंकों का मिश्रण हो जाता है ऐसे तथ्यों क माध्य निर्धारण के लिए बहुलक का उपयोग सर्वश्रेष्ठ रहता है। इस प्रकार के समग्र में समान्तर माध्य अथवा माध्यिका केन्द्रीय प्रवृत्ति का निर्धारण उपयुक्त नहीं कर पाते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि दो समष्टियों के मिश्रण में बहुलक भी दो मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में बहुलक की गणना करना समान्तर माध्य तथा माध्यिका की तुलना में अधिक उपयुक्त रहता है।

निष्कर्षत: यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि किस अध्ययन में कौन-सा माध्य अधिक उपयोगी होगा यह अनुसन्धानकर्ता तथ्यों तथा आँकड़ों की प्रकृति, सांख्यिकी के उपयोग का स्तर, तथ्यों चर, वर्गीकरण के आधार, अध्ययन के उद्देश्यों आदि के आधार पर स्वयं निर्णय लेकर चयन करें ।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. माध्य से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए ।
2. माध्यों के प्रकारों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए ।
3. बहुलक से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी गणना को स्पष्ट कीजिए ।
4. माध्यिका का अर्थ स्पष्ट करते हुए, माध्यिका के परिकलन को समझाइए ।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. एक आदर्श माध्य के आवश्यक तत्व बताइए ।
2. समान्तर माध्य से आप क्या समझते है ?
3. समान्तर माध्य के दोषों का उल्लेख कीजिए ।
4. बहुलक की विशेषताएँ बताइए ।
5. बहुलक के गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए ।
6. माध्यिका का गुण एवं दोषों का उल्लेख कीजिए ।
7. माध्यिका तथा समान्तर माध्य की तुलनात्मक उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. प्रमुख रुप से माध्य के प्रकार होते हैं–

   (अ) तीन (ब) चार

   (स) छः (द) दो ।

2. माध्यों के प्रकार हैं–

   (अ) स्थिति माध्य (ब) गणितीय माध्य

   (स) व्यापारिक माध्य (द) ये सभी

3. बहुलक अंग्रेजी भाषा के शब्द की हिन्दी रुपान्तर है–

   (अ) Made (ब) Median

   (स) Mode (द) Morden

4. बहुलक की विशेषताएँ हैं–

   (अ) एकाधिक माध्य (ब) सर्वाधिक आवृत्ति

   (स) व्यापारिक (द) ये सभी ।

5. समान्तर माध्य, माध्य है–

   (अ) स्थिति (ब) गणितीय

   (स) व्यापारिक (द) इनमें से कोई नहीं

उत्तर– (1) अ (2) द (3) स (4) द (5) ब

13 प्राथमिक तथा द्वितीयक तथ्य

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

- उद्देश्य ।
- प्राक्कथन ।
- तथ्यों के प्रकार।
- तथ्य संकलन के स्त्रोत ।
- प्राथमिक स्त्रोतों के गुण ।
- प्राथमिक स्त्रोतों के दोष
- द्वितीयक तथ्यों के स्त्रोत ।
- भारत में सरकारी आँकड़ों के स्त्रोत ।
- तथ्यों के संकलन का महत्व ।
- परीक्षोपयोगी प्रश्न ।

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- तथ्यों के प्रकार।
- तथ्य संकलन के स्त्रोत ।
- प्राथमिक स्त्रोतों के गुण ।
- प्राथमिक स्त्रोतों के दोष
- द्वितीयक तथ्यों के स्त्रोत ।
- भारत में सरकारी आँकड़ों के स्त्रोत ।
- तथ्यों के संकलन का महत्व ।

प्राक्कथन

तथ्यों अथवा आँकड़ों के संकलन को वैज्ञानिक पद्धति के एक प्रमुख चरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। अनुसन्धानकर्ता द्वारा संकलित किये गये आँकड़े अथवा दत्त जितने अधिक विश्वसनीय होते हैं, अध्ययन के द्वारा उतने ही अधिक वैज्ञानिक और उपयोगी निष्कर्ष देना सम्भव हो जाता है। इस दृष्टिकोण से प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता अनेक प्रविधियों और उपकरणों की सहायता से विभिन प्रकार के तथ्य एकत्रित करने के साथ ही उन स्रोत्रों को भी जानने की प्रयास करता है जिनके द्वारा प्राथमिक और द्वितीयक तथ्यों को एकत्रित किया जा सके। इन तथ्यों को एकत्रित करने के स्रोत एक-दूसरे से भिन्न होते हैं लेकिन सभी के द्वारा उपयोगी तथ्य प्राप्त करना अध्ययनकर्ता का प्रमुख उद्देश्य होता है। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि प्रस्तुत विवेचन में हम तथ्य-संकलन के अर्थ, उपयोगिता एवं विभिन्न प्रकार के तथ्यों को संकलित करने के प्रमुख स्रोत्रों का वर्णन करेगें।

तथ्य-संकलन का अर्थ (Meaning of Data Collection)

सामाजिक अनुसन्धान के सन्दर्भ में तथ्य-संकलन का अभिप्राय किसी विषय से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त करने मात्रा से नहीं होता। गाल्टंग अभिप्राय ''सामाजिक अध्ययनों में तथ्य-संकलन का तात्पर्य केवल उन्हीं तथ्यों को एकत्रित करने से है जिन्हें अवलोकन के द्वारा प्राप्त किया जा सके, ये तथ्य चाहे दृश्य हो अथवा निहित'' इसका अभिप्राय यह है कि सामाजिक विज्ञानों में अन्य सभी विज्ञानों के समान, आँकड़े अथवा तथ्य हमारी अवलोकन करने की चेतना पर निर्भर होते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह धारण बहुत भ्रमपूर्ण है। यह सच है कि उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त सूचनाएँ तथ्य-संकलन का वास्तविक आधार है। यह आधार बहुत भ्रमपूर्ण है। यह सच है कि उत्तरदाताओं से प्राप्त सूचनाएँ तथ्य-संकलन के अन्तर्गत अवश्य आती हैं लेकिन ऐसी सभी सूचनाओं का समावेश किया जा सकता है जो अवलोकन के योग्य हो तथा जिनका आलेखन करना सम्भव हो। दूसरी ओर, अनुसन्धानकर्ता जिन तथ्यों अथवा घटनाओं को स्वयं देखकर उन्हें अध्ययन के लिए उपयोगी समझता है, वे भी तथ्य-संकलन का महत्वपूर्ण आधार हो सकता हैं। अनेक तथ्य द्वितीयक स्रोतों, जैसे- संग्रहालय, पुस्तकों, डायरियों अथवा अभिलेखों द्वारा प्राप्त हो सकता हैं लेकिन यदि वे तथ्य भी तार्किक रूप से अवलोकन योग्य हैं तो उनका संग्रह करना तथ्य-संकलन में आता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि **तथ्य-संकलन का तात्पर्य अध्ययन-विषय से सम्बन्धित ऐसी सभी सूचनाओं, तथ्य तथा आँकड़ों को एकत्रित करने से है जो क्षेत्र कार्य (Field Work) तथा द्वितीयक स्त्रोतों के द्वारा संकलित किए जाते हैं तथा जिनका सम्बन्ध किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति, बोध तथा प्रलेखों** से होता है। इसका तात्पर्य यह है कि तथ्य-संकलन के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता तथा उत्तरदाताओं द्वारा दी गयी सूचनाओं का ही समावेश नहीं होता बल्कि इसके अन्तर्गत अध्ययनकर्ता के वस्तुनिष्ठ अनुभवों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है । इन सभी तथ्यों के व्यवस्थित संग्रह का नाम ही तथ्य-संकलन है।

तथ्यों के प्रकार (Types of Data)

अध्ययनकर्ता विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए अध्ययन-क्षेत्र में जाकर और उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करके महत्वपूर्ण तथ्य एकत्रित कर सकता है। कभी-कभी वह उत्तरदाताओं के पास डाक प्रश्नों की सूची भेजकर सूचनाएँ प्राप्त करना अधिक उपयुक्त समझता है तो कभी अध्ययन-क्षेत्र में जाकर विभिन्न तथ्यों का अवलोकन कर लेने से ही महत्वपूर्ण तथ्य

संकलित किये जा सकते हैं। अनेक तथ्य इस प्रकार के होते है। जिन्हें अध्ययन-क्षेत्र से बाहर के लोगों से मिलाकर प्राप्त किया जा सकता है अथवा केवल सरकारी अभिलेखों और पहले किये जा चुके अध्ययनों के आधार पर उन्हें एकत्रित किया जा सकता है। इनमें से बहुत-से तथ्य गुणात्मक होते हैं, जबकि कुछ तथ्य परिमाणात्मक होते हैं। इस स्थिति में अध्ययन की सरलता के लिए सभी प्रकार के तथ्यों को दो प्रमुख भागों में विभाजित करके इनकी प्रकृति को समझा जा सकता है। हम इसे प्राथमिक तथ्य तथा द्वितीयक तथ्य कहते हैं।

(1) प्राथमिक तथ्य (Primary Data)

पी.वी.यंग के अनुसार ''प्राथमिक तथ्यों का अभिप्राय उन सभी मौलिक सूचनाओं अथवा आँकड़ों से है जिन्हें स्वयं अनुसन्धानकर्ता स्त्रोतों द्वारा प्राप्त करता है।'' यही कारण है कि प्राथमिक तथ्यों को हम आधार तथ्य प्रथम-स्तरीय तथ्य तथा क्षेत्रीय तथ्य आदि नामों से भी सम्बोधित करते है । प्राथमिक तथ्य किसी भी सर्वेक्षणकर्ता द्वारा स्वयं एकत्रित किये गए तथ्य होते हैं। इसका संकलन अध्ययनकर्ता या तो स्वयं विभिन्न दशाओं का अवलोकन करके करता है अथवा वह विषय सम्बन्धित व्यक्तियों से वार्तालाप के द्वारा या प्रश्नावली के माध्यम में प्राप्त किये गये उत्तरों द्वारा करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जो तथ्य पूर्णतया नए होते हैं और किसी भी विधि के द्वारा इनका संकलन स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा किया जाता है, उन्हें हम प्राथमिक तथ्य कहते हैं। जैसे यदि एक अध्ययनकर्ता बाल-अपराध के कारणों का अध्ययन करने के लिए कुछ चुने हुए बाल-अपराधियों से सम्पर्क स्थापित करके तथ्यों का संकलन करे, स्वयं भी उनकी दशाओं का अवलोकन करे तो इस प्रकार से संकलित सभी तथ्यों को हम प्राथमिक तथ्य कहेंगे। ऐसे तथ्यों को संकलित करने के अनेक स्रोत हो सकते हैं जिनकी विस्तृत विवेचना हम आगे करेंगे।

(2) द्वितीयक तथ्य (Secondary Data)

द्वितीयक तथ्यों का अभिप्राय उन सभी सूचनाओं अथवा आँकड़ों से होता है जिन्हें एक अध्ययनकर्ता स्वयं एकत्रित नहीं करता बल्कि वह उसे प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेखों, अभिलेखों, पत्रों, डायरियों, आत्म-कथाओं तथा सरकारी रिपोर्टों आदि से स्वत: प्राप्त हो जाते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि द्वितीयक तथ्य किसी विशेष स्थान अथवा विभाग में पहले से ही सुरक्षित होते हैं। अध्ययनकर्ता का कार्य केवल समुचित स्त्रोतों को ज्ञात करके उनका आवश्यकतानुसार संकलन और उपयोग करना होता है । यह सच है कि द्वितीयक तथ्यों के आधार पर ही किसी अनुसन्धान-कार्य को पूर्ण नहीं किया जा सकता लेकिन कुछ विशेष प्रकार के तथ्यों की प्रामाणिकता को जानने अथवा एक विशेष अध्ययन के विभिन्न पक्षों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसे तथ्यों को उपयोग में लाया जा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उनका कभी भी पुन: उपयोग कर सकता है। इस कारण द्वितीयक तथ्यों को अधिक मितव्ययी समझा जाता है । इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि द्वितीयक तथ्य को उपयोग में लाना बहुत बड़ी सीमा तक अध्ययनकर्ता की व्यक्तिगत सूझ-बूझ और कुशलता पर निर्भर होता है। द्वितीयक तथ्य बहुत बड़े क्षेत्र में फैले होने के साथ ही अपनी प्रकृति से बहुत विविधतापूर्ण होते हैं। इसमें से अपने अध्ययन के अनुरूप तथ्यों अथवा प्रमाणों को संकलित करने के लिए कठिन परिश्रम करना आवश्यक है।

तथ्य-संकलन के स्रोत्र (Sources of Collection of Data)

अध्ययन-विषय से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करने के लिए उन स्रोत्रों को जानना भी आवश्यक है जहाँ से विभिन्न प्रकार के तथ्य अथवा आँकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं। वास्तव में, तथ्यों के संकलन में बहुत-से स्रोतों का उपयोग किया जाता है। यह अध्ययन-विषय की प्रकृति तथा अध्ययनकर्ता की कुशलता पर निर्भर करता है कि वह किन-किन स्रोत्रों से तथ्यों का संकलन करता है? तथ्यों को संकलित करने के स्रोत जितने अधिक विश्वसनीय और सुलभ होते हैं, संकलित तथ्य भी उतने ही अधिक प्रामाणिक बन जाते हैं। **पी.वी.यंग** ने तथ्य-संकलन के सभी स्रोतों को दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है-

1. **प्राथमिक अथवा क्षेत्रीय स्त्रोत**-तथ्य-संकलन का यह वह स्रोत है जिसमें अध्ययनकर्ता स्वयं ही अध्ययन-क्षेत्र में जाकर सामग्री का संग्रह करता है। इस आधार पर इस स्रोत को भी दो उप-भागों में विभाजित किया जा सकता है-**प्रत्यक्ष स्रोत्र** तथा **अप्रत्यक्ष स्रोत**। प्रत्येक्ष स्रोत्र का अभिप्राय यह है कि अध्ययनकर्ता घटनाओं का स्वयं अवलोकन करके उनका संग्रह करे अथवा अनुसूची के आधार पर उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करके विभिन्न प्रकार के तथ्यों को एकत्रित करे। अप्रत्यक्ष स्रोत का अर्थ है कि अध्ययनकर्ता विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से स्वयं न मिले लेकिन डाक द्वारा भेजी गयी प्रश्नावली, मत-पत्र अथवा किसी प्रकार की अपील के द्वारा तथ्यों का संग्रह करने का प्रयास करे। ये सभी प्रविधियाँ तथ्य प्राप्त करने का स्रोत हैं, अत: इन्हें प्राथमिक स्रोत कहा जाता है।

2. **द्वितीयक अथवा प्रलेखीय स्रोत**- इसके अन्तर्गत वे सभी स्रोत आते हैं जिनसे पहले से ही एकत्रित तथ्यों की जानकारी की जा सकती है। द्वितीयक स्रोत्र भी दो प्रकार के होते हैं-**व्यक्तिगत प्रलेख** तथा सार्वजनिक प्रलेख सभी प्रकार के जीवन-इतिहास, संस्मरण, पत्र और डायरियाँ आदि व्यक्तिगत प्रलेखों के उदाहरण हैं। **सार्वजनिक प्रलेख** प्रकाशित भी हो सकते हैं और अप्रकाशित भी। इस रूप में सभी अभिलेख, अनुसन्धान-प्रतिवेदन, गजेटियर, पुस्तकें, पाण्डुलिपियाँ, संग्रहालयों में उपलब्ध प्रमाण तथा पत्र-पत्रिकाएँ सार्वजनिक प्रलेख के रूप में द्वितीयक स्रोत्र के उदाहरण हैं। विभिन्न प्रकार के शिलालेख और खुदाइयों से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ भी इसी स्रोत के अन्तर्गत आती हैं।

   जार्ज लुण्डबर्ग ने प्राथमिक और द्वितीयक स्त्रोतों के अतिरिक्त तथ्य-संकलन के क्षेत्रीय स्रोत तथा **ऐतिहासिक स्त्रोत** को भी महत्वपूर्ण माना है । क्षेत्रीय स्त्रोत के अन्तर्गत जीवित व्यक्तियों द्वारा एकत्रित तथ्य तथा अध्ययनकर्ता द्वारा स्वयं किये गये अवलोकन को सम्मिलित किया जाता है । ऐतिहासिक स्त्रोत का अभिप्राय उन सभी ऐतिहासिक प्रमाणों से है जिनका अध्ययन में आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है । इस प्रकार लुण्डबर्ग ने भी अप्रत्यक्ष रूप से तथ्य-संकलन के स्रोतों में प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों की विशेषताओं का ही उल्लेख किया है । प्रस्तुत विवेचन में हम तथ्य-संकलन के इन्हीं दोनों स्रोतों पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

प्राथमिक तथ्यों का स्त्रोत? (Sources of Primary Data)

अनुसन्धानकर्ता सम्बन्धित समस्या के विषय में प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के लिए जिन स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है, उन्हें तथ्य-संकलन का 'प्राथमिक' अथवा 'क्षेत्रीय' स्त्रोत कहा जाता है। प्राथमिक स्त्रोत के अर्थ को स्पष्ट करते हुए पीटर मान ने कहा है कि ''प्राथमिक स्त्रोत वे

स्रोत हैं जो प्राथमिक स्तर पर हमें विभिन्न प्रकार के आधार-तथ्य प्रदान करते हैं। इसका अभिप्राय है कि यह तथ्यों को संकलित करने वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत किये गये तथ्यों का मौलिक स्वरूप होता है।'' **पी.वी.यंग** ''प्राथमिक स्त्रोत वे स्रोत है जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों के संकलन में सहायक होते है।'' इन सम्बन्धित कथनों से स्पष्ट होता है कि कोई भी वह स्त्रोत जो अध्ययनकर्ता तथा अध्ययन-विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों की प्रत्यक्ष अन्तक्रिया के आधार तथ्यों के संकलन में सहायक होता है, उसे हम तथ्य-संकलन का प्राथमिक स्त्रोत कहते हैं। पी.वी.यंग ने तथ्य-संकलन के प्राथमिक स्त्रोतों को दो मुख्य भागों में विभाजित करके स्पष्ट किया है- (1) प्रत्यक्ष स्त्रोत तथा (2) अप्रत्यक्ष स्त्रोत इन दोनों स्त्रोतों की प्रकृति को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राथमिक स्त्रोतों द्वारा तथ्यों का संकलन किस प्रकार किया जा सकता है?

NOTES

(1) प्राथमिक तथ्यों के प्रत्यक्ष स्त्रोत

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, तथ्य-संकलन के प्रत्यक्ष स्त्रोत वे होते हैं जिनके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता या तो स्वयं अध्ययन-क्षेत्र में जाकर अवलोकन के द्वारा तथ्यों को एकत्रित करता है अथवा सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके उपयोगी सूचनाओं का संग्रह करता है। इस कार्य के लिए एक अध्ययनकर्ता जिन अनेक प्रविधियों के उपयोग द्वारा तथ्यों का संकलन करता है, उन्हें हम तथ्य-संकलन का प्रत्यक्ष स्त्रोत कहते हैं। इनमें से प्रमुख स्त्रोतों तथा उनकी प्रकृति को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है-

(क) अवलोकन- अवलोकन वह प्रविधि है जिसमें अध्ययनकर्ता विषय से सम्बन्धित क्षेत्र में जाकर स्वयं ही विभिन्न घटनाओं को पक्षपातरहित रूप से देखता है और इस प्रकार महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन करता है । यह प्रविधि उसी दशा में अधिक उपयोगी होती है जब अध्ययन का क्षेत्र सीमित हो तथा अध्ययन किया जाने वाला विषय लोगों की मनोवृत्तियों से सम्बन्धित न हो । जैसे एक समूह में व्यक्तियों के रहन-सहन, रीति-रिवाजों, सांस्कृतिक समारोहों तथा समस्याओं से सम्बन्धित तथ्य एकत्रित करने के लिए अवलोकन एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। इस स्त्रोत के द्वारा उपयोगी तथ्य केवल तभी एकत्रित किये जा सकते हैं जब अध्ययनकर्ता का दृष्टिकोण पूरी तरह से तटस्थ और निष्पक्ष हो। तथ्य-संकलन के प्रत्यक्ष स्त्रोत के रूप में अवलोकन की प्रक्रिया भी तीन मुख्य भागों में विभाजित है जिनमें से अध्ययन-विषय की प्रकृति के अनुसार किसी भी तरीके को उपयोग में लाया जा सकता है। इन्हें हम सहभागी अवलोकन, अर्द्ध-सहभागी अवलोकन तथा असहभागी अवलोकन कहते हैं- **(i) सहभागी अवलोकन** के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता जब अध्ययन किये जाने वाले समूह में रहता है और उसकी विभिन्न गतिविधियों में स्वयं भी भाग लेता है तो वह समूह की सभी गुप्त और महत्वपूर्ण विशेषताओं से परिचित हो जाता है । **(ii) अर्द्ध-सहभागी अवलोकन** अनुसन्धानकर्ता एक लम्बी अवधि के लिए अध्ययन किये जाने वाले समूह के सदस्य के रूप में नहीं रहता बल्कि कुछ विशेष अवसरों पर तथ्यों का संकलन करने के लिए वह समूह के निकट सम्पर्क में आता है और घटनाओं का अवलोकन करने के बाद पुन: अपने को उस समूह से पृथक् कर लेता है । **(iii) असहभागी अवलोकन** के लिए अनुसन्धानकर्ता किसी भी स्तर पर न तो अध्ययन-समुदाय के जीवन में सम्मिलित होता है और न ही समुदाय के लोगों के निकट सम्पर्क में आता है । वह बाहर से आये एक अज्ञात दर्शक के रूप में

घटनाओं का अवलोकन करके तथ्यों का संकलन करता है । वास्तविकता यह है कि अवलोकन चाहे किसी भी विधि के द्वारा किया जाये लेकिन यह तथ्यों के संकलन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है ।

NOTES

(ख) **अनुसूची**- अनुसूची अध्ययन विषय से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों की एक ऐसी सूची है जिसमें अध्ययनकर्ता स्वयं उत्तरदाताओं से मिलता है और प्रत्येक प्रश्न का उत्तर स्वयं ही उस सूची में अंकित कर लेता है । वास्तव में, अनुसूची अध्ययनकर्ता और उत्तरदाता के प्रत्यक्ष सम्पर्क का एक महत्वपूर्ण माध्यक है। इसी आधार पर अनुसूची को प्राथमिक तथ्य के संकलन का एक महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष स्त्रोत माना जाता है। इस स्त्रोत की मुख्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के साथ ही अध्ययनकर्ता द्वारा घटनाओं का स्वयं भी अवलोकन करना सम्भव हो जाता है।

(ग) **साक्षात्कार**- प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने में साक्षात्कार एक प्रत्यक्ष स्रोत है। इसमें अनुसन्धानकर्ता अध्ययन-विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलकर अध्ययन के विभिन्न पक्षों पर उनसे स्पष्ट वार्तालाप करता है। यही वार्तालाप तथ्य-संकलन का स्रोत होता है। अनेक सामाजिक घटनाएँ इतनी जटिल होती हैं कि केवल अनुसूची से सम्बन्धित प्रश्नों की सहायता से ही उन्हें ज्ञात नहीं किया जा सकता। इन्हें समुचित रूप से समझने के लिए सम्बन्धित व्यक्तियों से विस्तार से बातचीत करना आवश्यक होता है। साक्षात्कार में प्रश्नों अथवा वार्तालाप के विभिन्न पक्षों का कोई निश्चित क्रम होना आवश्यक नहीं होता । इसके फलस्वरूप उत्तरदाताओं के कथन की बीच-बीच में इस प्रकार परीक्षा भी होती है कि संकलित तथ्यों का सत्यापन किया जा सके।

(2) प्राथमिक तथ्यों के अप्रत्यक्ष स्त्रोत

प्राथमिक तथ्यों का संकलन करने के लिए कभी-कभी अध्ययनकर्ता ऐसे स्रोतों का भी उपयोग करता है जिनकी सहायता से अध्ययन-क्षेत्र में जाये बिना अथवा उत्तराओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क के बिना ही तथ्यों का संकलन किया जा सके। ऐसे स्त्रोतों को हम प्राथमिक तथ्य एकत्रित करने के अप्रत्यक्ष स्रोत कहते है। पार्टेन (Parten) ने ऐसे स्त्रोतों के अन्तर्गत रेडियों अपील टेलीफोन द्वारा साक्षात्कार तथा प्रतिनिधि प्रविधियों को विशेष महत्व प्रदान किया है। वास्तव में, तथ्य संकलित करने के अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्त्रोतों में चार स्त्रोत प्रमुख है जिन्हें संक्षेप में निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है-

(क) **प्रश्नावली**- प्रश्नावली अनेक प्रश्नों की वह सूची है जिसे उत्तरदाताओं के पास डाक द्वारा इस आशय से भेजा जाता है कि वे सभी प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर उसे अध्ययनकर्ता तथा उत्तरदाताओं के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं हो पाता लेकिन फिर भी इसके द्वारा प्राथमिक तथ्यों का संग्रह करना सम्भव हो जाता है। यह स्त्रोत केवल तभी उपयोगी होता है जब अध्ययन-क्षेत्र इतना विस्तृत हो कि अध्ययनकर्ता सभी उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क करने की स्थिति में न हो तथा साथ ही उत्तरदाता भी इतने शिक्षित हों कि वे विभिन्न प्रश्नों को समझकर उनका समुचित ढंग से उत्तर दे सकें। इस स्त्रोत को सबसे बड़ा दोष यह है कि उत्तरदाता द्वारा यदि गलत उत्तर दे दिये जायें तो उनका सत्यापन करना अथवा वास्तविकता को समझ सकना बहुत कठिन हो जाता है।

NOTES

(ख) रेडियो अथवा टेलीविजन अपील–विकसित और विकासशील देशों में रेडियों और टेलीविजन भी प्राथमिक तथ्यों के संकलन का महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। इनके द्वारा नियमित रूप से अथवा किन्हीं विशेष अवसरों पर विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण करके श्रोताओं से यह अपील की जाती है कि वे उससे सम्बन्धित अपने विचारों अथवा प्रतिक्रियाओं को अमुक पते पर भेज दें। इस प्रविधि के द्वारा बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों को भी एक विशेष विषय के प्रति बहुत कम समय में जानकारी दी जा सकती है और विषय को इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि उससे सम्बन्धित विचारों को अधिक-से अधिक मात्रा में एकत्रित किया जा सके। रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा की गयी अपील को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अक्सर सर्वोत्तम उत्तरों के लिए कुछ पुरस्कारों की घोषणा भी की जाती है। इसके परिणाम स्वरुप एक निश्चित अवधि के अन्दर विषय से सम्बन्धित बहुत अधिक उत्तर प्राप्त हो जाते हैं। विगत वर्षों में परिवार नियोजन, सहकारिता तथा विलम्ब विवाह आदि से सम्बन्धित मनोवृत्तियों का अध्ययन करने में यह विधि बहुत सफल सिद्ध हुई है। इस विधि की एक अन्य उपयोगिता बहुत कम समय और कम व्यय में ही अध्ययन-कार्य को पूर्ण कर लेना है।

(ग) टेलीफोन साक्षात्कार–तथ्य-संकलन का यह स्त्रोत भी वर्तमान समय में बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ है। विशेषकर महानगरों में, जहाँ अनुसन्धानकर्ता सरलता से उत्तरदाताओं के पास नहीं जा सकता, टेलीफोन के द्वारा चुने हुए व्यक्तियों से सम्पर्क करके एक विशेष विषय से सम्बन्धित उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। उत्तरदाता और अध्ययनकर्ता के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने के कारण इस स्त्रोत को भी तथ्य-संकलन का अप्रत्यक्ष स्त्रोत माना जाता है। इस स्त्रोत के द्वारा भी तुलनात्मक रूप से कम समय में बहुत अधिक व्यक्तियों से सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं लेकिन इन सूचनाओं की प्रामाणिकता अक्सर सन्देहपूर्ण होती है। अनुसन्धानकर्ता भी टेलीफोन द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर जिन निष्कर्षो को प्रस्तुत करता है, उनका सत्यापन सम्भव नहीं होता क्योंकि यह सूचनाएँ लिखित रूप में नहीं होतीं।

(घ) प्रतिनिधि प्रविधियाँ– वर्तमान समय में तथ्यों का संकलन करने के लिए प्रतिनिधि प्रविधि को भी एक प्रमुख स्त्रोत के रूप में मान्यता दी जाती है। व्यावसासिक रूप से पिछड़े और सरल समाजों में रेड़ियो टेलीविजन तथा टेलीफोन की सुविधा इतनी कम होती है कि इनकी सहायता से कोई विशेष अध्ययन कर सकना बहुत कठिन होता है । इसके बाद भी यदि अध्ययन का क्षेत्र बहुत बड़ा हो तो प्रतिनिधि प्रविधि के द्वारा तथ्यों का संग्रह सरलतापूर्वक किया जा सकता है । यह वह प्रविधि है जिसमें एक बड़े समूह में से कुछ विशेष व्यक्तियों अथवा सूचना देने वाले दलों का चयन करें उनके द्वारा दी गयी जानकारी को ही सम्पूर्ण समाज की प्रतिनिधि जानकारी के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है । सूचना देने वाले यह व्यक्ति अथवा दल वे होते है जो या तो अपने समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा उन्हें अपने समूह के लोगों की मनोवृत्तियों, विचारों और रुचियों का काफी ज्ञान होता है । ऐसा लोगों को अक्सर एक-एक डायरी दे दी जाती है जिससे वे अध्ययन-विषय से सम्बन्धित विचारों को ज्ञात करके उन्हें नोट करते रहें और बाद में यह डायरी अध्ययनकर्ता को सौंप दें। इसके परिणामस्वरूप अध्ययनकर्ता को कम समय में ही एक व्यापक क्षेत्र से बहुत अधिक सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। परिवर्तनशील दशाओं से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करने के लिए यह स्त्रोत बहुत

प्रामाणिक और महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इसके बाद भी इस प्रविधि अथवा स्त्रोत का सबसे बड़ा दोष यह है कि यदि प्रतिनिधि व्यक्तियों अथवा दलों का चयन त्रुटिपूर्ण हो जाता है तो अक्सर उपयोगी तथ्यों का संकलन नहीं हो पाता।

NOTES

स्पष्ट है कि तथ्य-संकलन के अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्त्रोत केवल उन्हीं समाजों में अधिक उपयोगी हो सकते हैं जो भौतिक क्षेत्र में बहुत विकसित है। भारत जैसे देश में आज भी प्राथमिक तथ्यों के संकलन के लिए प्रत्यक्ष स्त्रोत ही अधिक उपयुक्त हैं। वास्तव में, तथ्य-संकलन के प्रत्यक्ष स्त्रोत केवल उपयोगी तथ्य ही प्रदान नहीं करते बल्कि अध्ययनकर्ता की पक्षपातपूर्ण तथ्यों को संकलित करने के लिए अप्रत्यक्ष स्त्रोतों की अपेक्षा प्रत्यक्ष स्त्रोतों को ही अधिक उपयोगी समझता जाता है।

प्राथमिक स्त्रोतों के गुण

तथ्य-संकलन के प्राथमिक स्त्रोत चाहे प्रत्यक्ष हों अथवा अप्रत्यक्ष, सामाजिक अनुसन्धानों में यह बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। इन स्त्रोतों के प्रमुख लाभों अथवा गुणों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है-

(1) **विस्तृत जानकारी**- प्राथमिक स्त्रोतों में तथ्यों का संकलन करने से अध्ययनकर्ता को सम्पूर्ण अध्ययन-क्षेत्र के विषय में इतनी अधिक जानकारी प्राप्त हो जाती है कि वह पूरी तरह सूचनादाताओं के उत्तरों पर ही निर्भर नहीं रहता बल्कि स्वयं भी घटनाओं का अवलोकन करके प्रामाणिक निष्कर्ष दे सकता है ।

(2) **अध्ययन में लोच का गुण**- एक अनुसन्धानकर्ता प्राथमिक स्त्रोतों के द्वारा जब स्वयं तथ्यों का संकलन करता है तो ऐसे तथ्य में लोच का गुण उत्पन्न हो जाता है । किन्हीं विशेष परिस्थितियों में यदि अध्ययन में परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव है अथवा किस विशेष पक्ष से सम्बन्धित तथ्य उपयुक्त प्रतीत नहीं होते तो अध्ययनकर्ता अपने अध्ययन में इस प्रकार परिवर्तन अथवा संशोधन कर सकता है जिससे निष्कर्ष अधिक प्रामाणिक बन सकें। यह स्रोत परिस्थिति में अनुरूप प्रश्नों में भी परिवर्तन करने का अवसर प्रदान करते हैं ।

(3) **विश्वसनीयता**- प्राथमिक स्त्रोतों से प्राप्त की गयी सूचनाएँ अथवा तथ्य अधिक यथार्थ और विश्वसनीय होते हैं । इसका कारण यह है कि अनुसन्धानकर्ता की उपस्थिति के कारण उत्तरदाता साधारणता गलत सूचनाएँ नहीं दे पाते।

(4) **उत्तरदाताओं पर नियन्त्रण**- प्राथमिक तथ्यों का संकलन करने के लिए अध्ययनकर्ता जो अनेक प्राथमिक स्त्रोतों, जैसे-अनुसूची, प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार आदि का उपयोग करता तो केवल उसी के व्यवहारों पर नियन्त्रण नहीं रहता बल्कि उत्तरदाताओं पर भी नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। उत्तरदाता इधर-उधर बहकने के स्थान पर अध्ययन-विषय तक ही समित रहता है । इसके परिणामस्वरूप बहुत -सा समय नष्ट होने से बच जाता है।

(5) **विस्तृत क्षेत्र के लिए उपयुक्त**- प्राथमिक स्त्रोत इस दृष्टिकोण से भी उपयोगी हैं कि इनकी सहायता से कितने भी व्यापक क्षेत्र में फैले हुए उत्तरदाताओं से बहुत कम समय में आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं । प्रश्नावली विधि के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता और उत्तरदाता के बीच कोई प्रत्येक सम्बन्ध न होने के कारण उन प्रदेशों के सभी सही उत्तर प्राप्त हो जाते हैं जिन्हें किसी व्यक्ति की उपस्थिति में प्राप्त कर सकना बहुत कठिन समझा जाता है।

(6) **गुप्त तथ्यों का अध्ययन**– प्राथमिक स्त्रोतों के अन्तर्गत अवलोकन का महत्वपूर्ण स्थान है । यह सच है कि अध्ययनकर्ता अवलोकन के द्वारा अनेक गुप्त और अमूर्त घटनाओं का अध्ययन कर सकता है लेकिन सहभागी अवलोकन ऐसी विधि है जिसके द्वारा उन सभी तथ्यों का संकलन किया जा सकता है जो द्वितीयक स्त्रोतों के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकते ।

(7) **सरलता और मितव्ययिता**– प्राथमिक स्त्रोतों के द्वारा तथ्य एकत्र कर संकलन करना तुलनात्मक रूप से सरल और मितव्ययी होता है । अध्ययनकर्ता और उत्तरदाता के बीच अन्तर्क्रिया होने के कारण यह विधि सरल होने के साथ ही इस दृष्टिकोण से कम खर्चीली भी है कि इसके द्वारा एक समय पर अनेक प्रकार के तथ्यों का संकलन किया जा सकता है ।

प्राथमिक स्त्रोतों के दोष–

प्राथमिक स्त्रोत सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध होने के पश्चात् भी दोषरहित नहीं हैं– (1) सर्वप्रथम, प्राथमिक स्त्रोतों के उपयोग में सदैव ही वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना बनी रहती है । इसका कारण यह है कि ऐसे स्त्रोतों के उपयोग में अनुसन्धानकर्ता की भूमिका सर्वप्रमुख होती है । यदि अनुसन्धानकर्ता अपने निजी विचारों और पूर्वाग्रह को नहीं छोड पाता तो वह प्रत्येक तथ्य को अपनी भावनाओं के अनुसार तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इसके परिणामस्वरुप सम्पूर्ण अध्ययन पक्षपातपूर्ण हो जाता है। (2) प्राथमिक स्त्रोतों के उपयोग में अध्ययनकर्ता को इतनी स्वतन्त्रता मिल जाती है कि वह अक्सर अपनी सुविधा के अनुसार तथ्य में परिवर्तन कर लेता है। इसके परिणाम स्वरुप भी अध्ययन में वस्तुनिष्ठता का अभाव हो जाता है। (3) प्राथमिक स्त्रोत अध्ययनकर्ता को केवल वर्तमान तथ्यों और घटनाओं की ही जानकारी प्राप्त प्रदान करते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि अध्ययनकर्ता अतीत की घटनाओं से अधिक लाभ नहीं उठा पाता विशेषकर यदि किसी समस्या का विश्लेषण ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा किया जा रहा हो तो प्राथमिक स्त्रोत बहुत कम उपयोगी रह जाते हैं । (4) प्राथमिक स्त्रोतों के उपयोग के लिए इतनी अधिक मानव शक्ति की आवश्यकता होती है कि कभी-कभी इन स्त्रोत का धैर्यपूर्वक उपयोग नहीं किया जा सकता। अध्ययन यदि किसी एक व्यक्ति द्वारा किया जा रहा हो तो प्राथमिक स्त्रोतों का उपयोग करना और भी कठिन हो जाता है। (5) तथ्यों का संकलन करके प्राथमिक स्त्रोतों का सफलतापूर्वक उपयोग केवल तभी किया जा सकता है जब अध्ययनकर्ता समुचित रूप से प्रशिक्षित हो और अध्ययन कार्य के लिए पूरी तरह से कुशल हो। इसके विपरीत अधिकाश अध्ययनकर्ताओं में प्रशिक्षण का अभाव होता है जिसके परिणामस्वरूप उपयोग सीमित रूप से ही किया जा सकता है।

(II) द्वितीयक अथवा प्रलेखीय तथ्यों के स्त्रोत (Sources of Secondary or Documentary Data)

द्वितीय तथ्यों को जिन स्त्रोतों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, उन्हें हम तथ्य-संकलन के द्वितीयक स्त्रोत' कहते हैं । किसी भी सामाजिक अनुसन्धान में द्वितीयक स्त्रोतों का उतना ही महत्व होता है जितना कि तथ्यों के संकलन में प्राथमिक स्त्रोतों का द्वितीयक स्त्रोतों के द्वारा ही एक अनुसन्धानकर्ता उन महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन करता है जो प्राथमिक तथ्यों की परीक्षा करने और अध्ययन की दिशा का निर्माण करने में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। तथ्य-संकलन के द्वितीयक स्त्रोतों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है-व्यक्तिगत प्रलेख तथा सार्वजनिक प्रलेख। इन दोनों तरह के प्रलेखों से सम्बन्धित स्त्रोतों को समझने से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि एक अनुसन्धानकर्ता किस-किस स्त्रोत में द्वितीयक तथ्यों का संकलन करके अपने अध्ययन में उनका उपयोग कर सकता है ?

NOTES

(1) व्यक्तिगत प्रलेख

व्यक्तिगत प्रलेखों में सभी तरह की उस लिखित सामग्री को सम्मिलित किया जाता है जो किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने विषय में अथवा सामाजिक घटनाओं को एक विशेष दृष्टिकोण से देखकर प्रस्तुत की जाती है। ऐसे लिखित तथ्य का सदैव प्रकाशित होना आवश्यक नहीं होता बल्कि यह पाण्डुलिपियों, पत्रों अथवा डायरियों के रूप में अप्रकाशित भी हो सकती है । अनेक परिस्थितियों में व्यक्तिगत प्रलेखों में एक व्यक्ति के निजी विचारों, आदर्शों, मूल्यों तथा भावनाओं का भी समावेश हो सकता है । इसके पश्चात् भी व्यक्तिगत प्रलेख में निजी विचारों, आदर्शों, मूल्य तथा भावनाओं का भी समावेश हो सकता है। इसके बाद भी व्यक्तिगत प्रलेख इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होते हैं कि इनके द्वारा एक विशेष अवधि में व्यक्तियों के रहन-सहन, चिन्तन, व्यवहार-प्रतिमानों तथा सामाजिक मानदण्डों को समझना सम्भव हो जाता है । परिभाषा रूप से व्यक्तिगत प्रलेख की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए जॉन मैज ने लिखा है कि ''व्यक्तिगत प्रलेख किसी व्यक्ति द्वारा अपने निजी कार्यों, अनुभवों तथा विश्वासों के बारे में स्वयं लिखा गया एक वर्णन है । लगभग इसी आधार पर जहोदा तथा अन्य का कथन है कि ''द्वितीयक स्त्रोतों के अन्तर्गत उन सभी प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जो साधारणतया सूचनादाताओं के व्यक्तिगत जीवन के आधार पर स्वयं उन्हीं के द्वारा लिखे गये होते हैं तथा जिनमें उनके निजी अनुभवों का समावेश होता है।'' इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर लिखे गये प्रलेख सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत होते हैं। इन प्रलेखों को भी निम्नांकित चार प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) जीवन-इतिहास (Life-Histories) - जीवन इतिहास एक ऐसा व्यक्तिगत प्रलेख है जिसे तथ्य-संकलन के द्वितीयक स्त्रोत के रूप में बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है। इसकी प्रकृति को स्पष्ट करते हुए जॉन मैज ने लिखा है कि ''वास्तविक अर्थ में 'जीवन-इतिहास' शब्द का अभिप्राय किसी व्यापक आत्मकथा से होता है परन्तु सामान्य अर्थों में इसका प्रयोग किसी भी जीवन सम्बन्धी तथ्य के लिए किया जा सकता है।'' इससे स्पष्ट होता है कि जीवन-इतिहास चाहे किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखा गया हो अथवा एक व्यक्ति के जीवन की घटनाओं की व्याख्या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा की गयी हो, यह तथ्य-संकलन का एक प्रमुख द्वितीयक स्त्रोत है । जीवन-इतिहास के अन्तर्गत कुछ प्रमुख व्यक्तियों अथवा महापुरुषों के जीवन की विशिष्ट घटनाओं का संकलन मात्र नहीं होता बल्कि इसके द्वारा एक विशेष समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक घटनाओं को समझना भी सम्भव हो जाता है। जीवन-इतिहास प्रमुख रूप से तीन प्रकार के होते है-स्वाभाविक आत्मकथाएँ, किसी व्यक्ति अथवा सरकार द्वारा प्रेरित आत्मा-अभिलेख तथा संकलित जीवन-इतिहास। वास्तव में जीवन-इतिहास घटनाओं का एक रोचक और उपदेशपूर्ण वर्णन ही नहीं होता बल्कि सामाजिक अध्ययनों के दृष्टिकोण से भी ये बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। जीवन इतिहास की सहायता से एक समय विशेष की सामाजिक घटनाओं और समस्याओं को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है । यह सर्वविदित है कि भारत में अनेक समाज-सुधारकों के जीवन-इतिहास से ही सामाजिक अध्ययनकताओं को हिन्दू समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों का व्यापक अध्ययन करने की प्रेरणा मिल सके। जीवन-इतिहास के इस महत्व के बाद भी सामाजिक अध्ययनों में इनके उपयोग की कुछ सीमाएँ भी हैं। जीवन-इतिहास में एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने के लिए अक्सर घटनाओं को अतिशयोक्ति के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाता है। जीवन-इतिहास यदि किसी राजनीतिक नेता से सम्बन्धित होता है

NOTES

तो उसमें प्रशंसा और कभी-कभी चाटुकारिता का तत्व बहुत प्रबल हो जाने के कारण ऐसा वर्णन वस्तुनिष्ठ नहीं रह जाता। अधिकांश आत्म-कथाओं के प्रकाशन की सम्भावना होने के कारण लेखक अपने जीवन से सम्बन्धित कमजोर तथ्यों को अक्सर छिपाने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त, जीवन-इतिहास इस दृष्टिकोण से भी एक दुर्बल स्त्रोत है कि इसमें सामाजिक तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच नहीं की जा सकती ।

(ख) डायरियाँ- डायरी एक ऐसा व्यक्तिगत प्रलेख है जिसमें एक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन की घटनाओं का आलेखन और विश्लेषण करता है। डायरी यदि निष्पक्ष रूप से लिखी गई हो तो इसमें व्यक्ति के सभी अनुकूल और कटु अनुभवों एवं व्यवहारों का स्पष्टीकरण होता है। डायरी में लिखा गया वितरण गोपनीय होता है, अत: व्यक्ति अपने जीवन के नितान्त गोपनीय और महत्वपूर्ण तथ्यों को भी इसमें लिपिबद्ध करने में संकोच नहीं करता। यही कारण है कि अनेक गोपनीय और आन्तरिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत डायरियों को एक महत्वपूर्ण द्वैतीयक स्त्रोत के रूप में देखा जाता है। इस बारे में जॉन मैज ने लिखा है कि ''डायरियाँ सबसे अधिक रहस्योद्‌घाटन करने वाली होती हैं क्योंकि एक ओर व्यक्ति को इनके जन-साधारण के सामने प्रदर्शित हो जाने का डर नहीं होता तथा दूसरी ओर इनमें घटनाओं और क्रियाओं के घटित होने के समय ही उनका बहुत स्पष्टता के साथ आलेखन कर लिया जाता।'' द्वितीयक तथ्यों के संकलन में डायरी का महत्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि गोपनीय तथ्यों को प्राप्त करने में यह स्त्रोत सबसे अधिक उपयोगी है। डायरी में लिखित तथ्य तुलनात्मक रूप से अधिक विश्वसनीय होते है क्योंकि लेखक में इनके प्रदर्शन की कोई भावना नहीं होती। इन लाभों के पश्चात् भी तथ्य-संकलन के एक स्त्रोत के रूप में डायरियों का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनमें लिखित घटनाएँ बिल्कुल भी क्रमबद्ध नहीं होती। व्यक्ति तनाव और संघर्ष की स्थिति को डायरी में बहुत विस्तार के साथ नोट कर लेता है जबकि बिल्कुल ही छोड़ देता है। ऐसी स्थिति में डायरी से प्राप्त विवरण के आधार पर किसी व्यवस्थित तथ्य की खोज कर सकना अध्ययनकर्ता के लिए बहुत कठिन हो जाता है।

(ग) वैयक्तिक पत्र- व्यक्तिगत पत्रों का लिखा जाना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की एक बहुत सामान्य-सी घटना है, लेकिन कभी-कभी इन पत्रों के द्वारा इतने महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हो जाते है कि उनके आधार पर बहुत उपयोगी निष्कर्ष देना सम्भव हो जाता है। व्यक्तिगत पत्रों की प्रकृति गोपनीय होती है। इसके परिणामस्वरूप हम जिन व्यक्तियों को अपने अधिक निकट समझते हैं उनके सामने पत्रों द्वारा अपनी भावनाओं, जीवन की विशेष घटनाओं, प्रेम, संघर्ष, अनुभव और योजनाओं को स्पष्ट करने में कोई संकोच नहीं करते । यह सर्वविदित है कि भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय देश के बड़े-बड़े नेताओं के बीच जो पत्राचार हुआ था उसके आधार पर आज अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं को समझ सकना सम्भव हो सका है । अनेक सामाजिक विषय ऐसे होते हैं जिनकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति पत्रों में ही होती है । जैसे परिवारिक तनाव, वैवाहिक सम्बन्ध, यौनिक मनोवृत्तियाँ, विवाह-विच्छेद, पृथक्करण, अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध आदि इस तरह के विषय है जिनसे सम्बन्धित तथ्यों और मनोवृत्तियों को व्यक्तिगत पत्रों की सहायता से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है । वैयक्तिक पत्रों में तुलनात्मक रूप से काफी विश्वसनीयता होती है क्योंकि पत्र लिखने वाला व्यक्ति उसे कभी भी यह समझकर नहीं लिखता कि किसी विशेष अध्ययन के लिए उसके पत्रों का उपयोग किया जा सकता है । इसके बाद भी सामाजिक अध्ययनों में पत्रों की उपयोगिता बहुत सीमित

होती है । इसका कारण यह है कि एक ओर व्यक्तिगत पत्रों को प्राप्त कर सकना बहुत कठिन होता है तो दूसरी ओर यह समझ पाना भी बहुत कठिन होता है कि किसी पत्र में लिखे गये विवरण का सन्दर्भ क्या है ?

(घ) स्मरण- अनेक व्यक्ति अपनी यात्राओं, जीवन के रोमाचक अनुभवों और महत्वपूर्ण घटनाओं के विषय में संस्मरण प्रकाशित करते हैं अथवा समय-समय पर इन्हें दूसरे लोगों को सुनाते रहते हैं। वास्तव में इनमें से अनेक संस्मरण सामाजिक अनुसन्धान के लिए तथ्यों के सकलन का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत होते हैं। इस कथन की प्रामाणिकता इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि अतीत में कोलम्बस, फाह्यान, ह्वेनसांग तथा मैगस्थनीज जैसे व्यक्तियों द्वारा लिखित संस्मरणों के आधार पर बहुत उपयोगी सूचनाओं को प्राप्त किया जा सका। ब्रिटिश काल में अनेक अधिकारियों द्वारा लिखे जाने वाले 'जनपद संस्मरण' ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर लिखे जाने के बाद भी आज तथ्य-संकलन का महत्वपूर्ण स्रोत माने जाते हैं। इन संस्मरणों में एक समय विशेष की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दशाओं का समावेश होता है। अक्सर लोगों के रीति-रिवाजों, सांस्कृतिक विशेषताओं, भाषा तथा रहन-सहन को समझने में भी यह संस्मरण बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। यह सच है कि संस्मरणों में भी क्रमबद्धता का अभाव होने के साथ ही व्यक्तिगत अभिनति की सम्भावना रहती है लेकिन तथ्य-संकलन के एक द्वितीयक स्त्रोत के रूप में इनकी उपयोगिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

व्यक्तिगत प्रलेखों के उपर्युक्त सभी स्वरूपों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रलेखों का विशेष महत्व है। इनके द्वारा केवल सामाजिक घटनाओं के विषय में ही विस्तृत ज्ञान प्राप्त नहीं होता बल्कि अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों के दृष्टिकोण और मनोवृत्तियों को समझने में भी इनसे पर्याप्त सहायता मिलती है। मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान में ऐसे प्रलेख सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुए है। अगर यह व्यक्तिगत इरादे से न लिखा जाये तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। लेखक का उद्देश्य जब अपने द्वारा लिखित सामग्री का प्रकाशन करना नहीं होता तो ऐसी सामग्री कहीं अधिक विश्वसनीय और सत्यता के निकट हो जाती है। व्यक्तिगत प्रलेखों के महत्व को स्पष्ट करते हुए मेजर का कथन है कि ''व्यक्तिगत प्रलेख तब कहीं अधिक मूल्यवान होते हैं जब इन्हें सम्बन्धित व्यक्ति से अनुरोध करके प्राप्त न किया जाय। कुछ विशेष सामाजिक सर्वेक्षणों में प्रारम्भिक खोजों के स्तर पर यह परिकल्पना का निर्माण करने और अध्ययनकर्ता का मार्ग-निर्देशन करने में भी महत्वपूर्ण होते हैं। इस कथन से स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्व प्राथमिक सूचनाओं का सत्यापन करने से उतना सम्बन्धित नहीं है जितना कि किसी अध्ययन के लिए उपयोगी आधार खोजने से।

तथ्य संकलन के द्वितीयक स्त्रोत के रूप में प्रलेखों की अपनी कुछ सीमाएँ भी है- (1) सर्वप्रथम, किसी विशेष व्यक्तिगत प्रलेख को उपलब्ध कर सकना एक अत्यधिक कठिन कार्य है । इस सम्बन्ध में जॉन मैज ने लिखा है कि यह निर्धारित कर सकना बहुत कठिन कार्य है कि किसी विशेष प्रलेख को कहाँ से प्राप्त किया जाय, प्रलेख को प्राप्त करने की अनुमति कहाँ से प्राप्त हो सकती है तथा किसी विशेष प्रलेख का उपयोग किस सीमा तक किया जा सकता है। (2) यह समझ सकना भी बहुत कठिन है कि कोई व्यक्तिगत प्रलेख कहाँ तक विश्वसनीय है। (3) व्यक्तिगत प्रलेखों में प्राप्त सामग्री इतनी अव्यवस्थित होती है कि उनमें से उपयोगी तथ्यों को प्राप्त कर सकना कभी-कभी असम्भव हो जाता है। (4) अधिकांश वैयक्तिक प्रलेखों में व्यक्तिगत अभिनति का समावेश होता है। (5) वैयक्तिक प्रलेखों से प्राप्त

तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण भी नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में जहोदा का कथन है कि ''व्यक्तिगत प्रलेख सांख्यिकीय प्रविधियों द्वारा उपयोग में लाये जाने के लिए अधिक उपयुक्त नहीं होते हैं।'' एक अनुसन्धानकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह व्यक्तिगत प्रलेखों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उनका इस तरह उपयोग करे कि अध्ययन की वस्तुनिष्ठता बनी रहे।

(2) सार्वजनिक प्रलेख

सार्वजनिक प्रलेख तथ्यों के संकलन का एक प्रमुख द्वितीयक स्त्रोत हैं । सार्वजनिक प्रलेखों में ऐसी सभी प्रकाशित तथा अप्रकाशित सामग्री सम्मिलित की जाती है जिसका संकलन किसी सरकारी अथवा गैर-सरकारी संस्था द्वारा सार्वजनिक उपयोग के लिए किया जाता है । कभी-कभी कुछ सूचनाएँ यद्यपि वैयक्तिक रूप से संकलित की जाती हैं लेकिन इसका उद्देश्य यदि उन्हें सार्वजनिक उपयोग के लिए प्रस्तुत करना होता है तो उन्हें भी हम सार्वजनिक प्रलेखों को दो प्रमुख भागों में विभाजित करके स्पष्ट किया जा सकता है-प्रकाशित प्रलेख तथा अप्रकाशित प्रलेख ।

(क) प्रकाशित प्रलेख- इसमें वे सभी प्रलेख जाते हैं जो सार्वजनिक उपयोग के लिए प्रकाशित कर दिये जाते हैं । अनेक सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठन जब प्राथमिक रूप से तथ्यों का संकलन करके उन्हें जनसामान्य के उपयोग के लिए प्रकाशित कर देते हैं तो दूसरे अध्ययनकर्ताओं के लिए ऐसे तथ्य प्रकाशित प्रलेखों के रूप में अध्ययन का द्वितीयक स्त्रोत बन जाते हैं । इन प्रकाशित प्रलेखों को अनेक स्त्रोतों से प्राप्त किया जा सकता- (i) समितियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन-इसके अन्तर्गत विभिन्न संगठनों द्वारा प्रस्तुत उन सभी प्रतिवेदनों को शामिल किया जाता है जिनमें दी गयी सूचनाओं का किसी भी अध्ययन के लिए उपयोग किया जा सकता है । जैसे- राष्ट्रीय नियोजन समिति, भारतीय योजना आयोग, लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग, मद्य निषेध जाँच समिति तथा अखिल भारतीय शिक्षा सुधार समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन इसमें आते हैं । (ii) व्यावसायिक संस्थाओं तथा परिषदों के प्रकाशन- 'राष्ट्रीय उत्पादन परिषद्' तथा 'बाल-कल्याण परिषद्' आदि इस श्रेणी में आने वाली संस्थाएँ हैं। (iii) अनुसन्धान संस्थाओं के प्रतिवेदन- वर्तमान समय में अनेक अनुसन्धान संस्थाएँ जैसे- 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण संस्थान 'राष्ट्रीय व्यावहारिक आर्थिक अनुसन्धान परिषद्', 'टाटा समाज विज्ञान संस्थान' तथा 'समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद्' आदि अनेक महत्वपूर्ण अध्ययनों के प्रतिवेदन सार्वजनिक उपयोग के लिए प्रस्तुत करते हैं । (iv) व्यक्तिगत अनुसन्धानकर्ताओं के प्रकाशन- विश्वविद्यालय तथा प्रौद्योगिक शिक्षा के स्तर पर संकलन का एक प्रमुख स्रोत होते हैं। (v) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रकाशन— अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संगठनों द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदन भी तथ्यों के संकलन का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत होते हैं । उदाहरण के लिए, 'अन्तर्राष्ट्रीय बाल सहायता कोष', 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' (I.L.O) 'संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य संगठन' आदि द्वारा प्रकाशित सूचनाएँ इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती है। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा प्रकाशित विभिन्न जिलों के गजेटियर्स तथा सांख्यिकीय बुलेटिन आदि भी सूचनाएँ प्राप्त करने के प्रमुख द्वितीयक स्रोत हैं। ये सभी प्रकाशित सार्वजनिक प्रलेख सामाजिक अनुसन्धान के लिए न केवल मार्ग-निर्देशन का कार्य करते हैं बल्कि इनसे प्राप्त तथ्यों के आधार पर प्राथमिक तथ्यों का विश्लेषण करना भी सम्भव हो जाता है।

(ख) अप्रकाशित प्रलेख — इसमें ऐसे सभी प्रलेख आते हैं जो सार्वजनिक होते हुए भी किसी विवशता, आर्थिक कठिनाइयों अथवा वैयक्तिक कारण से प्रकाशित नहीं हो पाते । ऐसे प्रलेखों को प्राप्त करके उनका उपयोग कर पाना तुलनात्मक रूप से कुछ कठिन होता है लेकिन सामाजिक अनुसन्धान में इनकी उपयोगिता बहुत अधिक होती है । अप्रकाशित प्रलेखों के रूप में कुछ प्रमुख द्वितीयक स्त्रोत इस प्रकार है- (i) विभिन्न अभिलेख-अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा अपनी प्रशासकीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण तथ्य और सूचनाएँ संकलित करके रखी जाती है। ऐसी सूचनाओं को हम 'अभिलेख' कहते हैं। इन अभिलेखों में एक विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं, दस्तावेजों समितियों और आयोगों की रिपोर्टों, समय-समय पर नियुक्त की जाने वाली समितियों की कार्यवाहियों तथा कुछ विशेष व्यक्तियों से सम्बन्धित वैयक्तिक सूचनाओं का समावेश होता है। ऐसे अभिलेख किसी भी सामाजिक अनुसन्धान के लिए महत्वपूर्ण तथ्य प्रदान करते हैं। ऐसे अभिलेख तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक विश्वसनीय होते हैं, यद्यपि गोपनीयता के कारण उन्हें प्राप्त कर सकना कभी-कभी बहुत कठिन होता है। (ii) दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ-अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ तथ्य-संकलन का एक महत्वपूर्ण द्वितीयक स्त्रोत है। कभी-कभी अनेक स्थानीय समाज-सुधारक, नेता तथा प्रतिभाशाली नेता किन्हीं विशेष कारणों से उनका प्रकाशन नहीं हो पाता। बाद में जब ऐसे संग्रहालयों में सुरक्षित रख दिया जाता है। स्थानीय घटनाओं सांस्कृतिक विशेषताओं तथा किसी विशेष घटना से सम्बन्धित अनेक पाण्डुलिपियाँ कुछ व्यक्तियों के पास भी सुरक्षित होती है। दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ अक्सर इतनी जीर्ण-शीर्ण स्थिति में होती है कि उनके प्रयोग की अनुमति प्राप्त करना तो कठिन होता है। (iii) अनुसन्धानकर्ताओं के प्रतिवेदन— सामाजिक अनुसन्धान के द्वितीयक स्त्रोत के रूप में अनुसन्धान विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन अथवा अनुसन्धान प्रबन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। अनुसन्धानकर्ता द्वारा प्रस्तुत अनुसन्धान प्रबन्ध में यद्यपि किसी विषय में सम्बन्धित पक्षों का अत्यधिक गहन अध्ययन करके महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में लाये जाते हैं लेकिन इनमें से अधिकांश अनुसन्धान प्रबन्ध प्रकाशित नहीं हो पाते। इसके बाद भी किसी विशेष सामाजिक अनुसन्धान की दिशा में निर्धारण करने तथा प्राप्त सूचनाओं का सत्यापन करने के लिए अनुसन्धान प्रतिवेदन बहत महत्वपूर्ण होते हैं। (iv) अन्य प्रकाशित तथ्य-इसके अन्तर्गत ऐसी सभी सामग्री की समावेश किया जाता है जो अनेक लोक-गीतों, लोक संस्कृति तथा अप्रकाशित लेखों के रूप में उपलब्ध होती है। अनेक शिलालेख, पर्यटन केन्द्रों पर प्राप्त होने वाली सूचनाएँ ऐतिहासिक केन्द्रों पर गाइडों द्वारा दिये गये वृत्तान्त आदि कभी-कभी तथ्य-संकलन का एक प्रमुख द्वितीयक स्त्रोत सिद्ध होते हैं।

तथ्य-संकलन के द्वितीयक स्त्रोत चाहे व्यक्तिगत हों अथवा सार्वजनिक, प्रकाशित हो अथवा अप्रकाशित, सामाजिक अनुसन्धान में इनका प्रयोग बहुत सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। वास्तव में अन्य व्यक्तियों अथवा संगठनों द्वारा दिये गये परिणामों के आधार पर ही किसी अनुसन्धान-कार्य को पूरा करने का प्रयत्न कभी-कभी बहुत हानिकारक सिद्ध हो सकता है । अध्ययनकर्ता जब तक उपलब्ध ज्ञान का उपयोग स्वयं अपनी अर्न्तदृष्टि विवेक तथा प्राथमिक सूचनाओं के सन्दर्भ में नहीं करता तब तक द्वितीयक तथ्यों के उपयोगी होने की सम्भावना नहीं की जा सकती । इन सन्दर्भ में डॉ. बॉउले का कथन है कि ''प्रकाशित सांख्यिकी को उसके अर्थ और सीमाओं को समझे बिना ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना एक जोखिम-भरा कार्य है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि ऐसी सांख्यिकी पर आधारित तर्को की

सावधानीपूर्वक समालोचना कर ली जाय।'' वास्तविकता यह है कि तथ्यों के द्वितीयक स्त्रोत कभी-कभी इतने काल्पनिक और अशुद्ध होते हैं कि उन पर आधारित सम्पूर्ण विश्लेषण दोषपूर्ण हो जाता है । जैसे- विभिन्न सरकारी विभागों के द्वारा समय-समय पर जो सूचनाएँ प्रकाशित होती है, वे अक्सर लक्ष्य पर आधारित होती है । इन सूचनाओं को अक्सर इतना बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है कि किसी अनुसन्धान को वस्तुनिष्ठ रूप देने में उनका कोई उपयोग नहीं होता। यही कारण है कि सामाजिक अनुसन्धान में द्वितीयक तथ्यों का उपयोग केवल एक पूरक तथ्य के रूप में किया जाना चाहिए आधारण तथ्य के रूप में नहीं ।

NOTES

भारत में सरकारी आँकड़ों के स्त्रोत (Sources of Offical Data in India)

द्वितीयक तथ्यों में सरकार द्वारा प्रकाशित उन आँकड़ों का विशेष महत्व होता है जिन्हें सरकार द्वारा विभिन्न विभागों की सहायता से एकत्रित करके जनसाधारण को उनकी सूचना दी जाती है। वर्तमान काल नियोजन का काल है । आज जैसे-जैसे आर्थिक और सामाजिक जीवन विकास का काम सरकार के नियन्त्रण में आता जा रहा है, समाजशास्त्रीय अध्ययनों में भी सरकारी आँकड़ों का महत्व बढ़ता जा रहा है । वर्तमान काल में जनसंख्या, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज-कल्याण श्रम-कल्याण,पिछड़े वर्गों का विकास, ग्रामीण विकास, नगर नियोजन, रोजगार तथा कृषि आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनके बारे में सरकार द्वारा महत्वपूर्ण सूचनाएँ एकत्रित करके समाज में नियोजित से परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है। सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में से सम्बन्धित एकत्रित किये जाने वाले सभी तथ्य द्वितीयक तथ्यों के उदाहरण हैं। यह तथ्य जिन विभागों के द्वारा एकत्रित किये जाते हैं, उन्हें हम सरकारी आँकड़ों के विभिन्न स्त्रोतों के नाम से जानते हैं।

भारत में ब्रिटिश काल से ही सरकारी स्तर पर सूचनाओं के संकलन की प्रक्रिया आरम्भ कर दी गयी थी लेकिन स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित तथ्यों के संकलन को विशेष महत्व देना आरम्भ किया गया। आज हमारे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिणिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन से सम्बन्धित कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसके बारे में सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचना एकत्रित न की जाती हो । यह सच है कि सरकारी आँकड़ों का मुख्य स्त्रोत केन्द्र सरकार से सम्बन्धित विभिन्न मन्त्रालय एवं विभाग है लेकिन सभी राज्य सरकारें भी सूचना विभाग तथा सांख्यिकीय ब्यूरो के द्वारा अपने क्षेत्र में आने वाली विभिन्न विभागों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामग्री एकत्रित कर लेती हैं। तथ्य-संकलन के द्वितीयक स्त्रोत के रूप में सरकारी स्तर पर तथ्यों को एकत्रित करने वाली कुल प्रमुख एजेन्सियों अथवा स्त्रोतों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है-

1. **कृषि तथा ग्रामीण विकास मन्त्रालय—** इस मन्त्रालय के अधीन 'आर्थिक एवं सांख्यिकीय' वह सबसे महत्वपूर्ण संगठन है जो कृषि, उपज की कीमत, कृषि मजदूरी तथा सभी विकास कार्यों के बारे अधिकृत सूचनाओं का संकलन करता है । इसी के द्वारा ग्रामीण रोजगार तथा विकास योजनाओं की प्रगति के बारे में भी सांख्यिकी एकत्रित की जाती है।

2. **वित्त मंत्रालय—** इस मन्त्रालय के अधीन रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण सर्वेक्षण करके आँकड़ों का संकलन किया जाता है। देश में प्रति व्यक्ति आय, रहन-सहन के स्तर, मुद्रा-स्फीति, आर्थिक नीतियों का प्रभाव तथा अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों को जानने के लिए इस मन्त्रालय को द्वितीयक तथ्यों का एक प्रमुख स्त्रोत माना जाता है।

3. **मानव संसाधन विकास मन्त्रालय—**वर्तमान में यह मन्त्रालय द्वितीयक तथ्यों का एक प्रमुख स्त्रोत है । इस मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित सूचनाओं के आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है

कि देश में साक्षरता, शैक्षिक विकास, शिक्षा सम्बन्धी नीतियों, सामाजिक नियोजन, पिछड़े वर्गों के कल्याण तथा मानवीय स्त्रोत के उपयोग की दशा क्या है । सामाजिक अध्ययनों में इस मन्त्रालय के प्रतिवेदनों को विशेष रूप से उपयोगी और प्रामाणिक माना जाता है ।

4. **श्रम मन्त्रालय—** इस मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'भारत श्रम बजट' वह महत्वपूर्ण स्त्रोत है जिसके द्वारा श्रमिकों से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त होती है। सामाजिक अध्ययनों में आज श्रम अधिनियमों, श्रम-कल्याण तथा श्रम-सुरक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है क्योंकि श्रम-कल्याण समाज-कल्याण का एक प्रमुख अंग है।

5. **गृह मन्त्रालय—** देश की आन्तरिक दशाओं से सम्बन्धित सामग्री को जानने के लिए गृह-मन्त्रालय के प्रतिवेदन बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। विभिन्न सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित सांख्यिकी इसी मन्त्रालय के द्वारा प्रकाशित की जाती है। गृह मन्त्रालय के द्वारा ही प्रत्येक दस वर्ष के बाद देश में जनगणना सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं जो द्वितीयक तथ्यों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझे जाते है।

6. **नियोजन मन्त्रालय—**वर्तमान दशाओं में देश के सम्पूर्ण सामाजिक और आर्थिक नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमों को तैयार करने तथा उन्हें लागू करने का काम नियोजन मन्त्रालय का है। स्वभाविक है कि जो अध्ययन विकास कार्यक्रमों तथा भावी योजनाओं से सम्बन्धित होते है, उनकी समुचित विवेचना इस मन्त्रालय द्वारा दी जाने वाली सूचनाओं के बिना नहीं हो सकती। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं से सम्बन्धित नीतियों तथा उपलब्धियों से सम्बन्धित तथ्य इसी मन्त्रालय के द्वारा प्राप्त होते हैं । अत: नियोजन मन्त्रालय सरकारी आँकड़ों को प्राप्त करने का एक प्रमुख द्वितीयक स्त्रोत है ।

7. **सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय—** विभिन्न मन्त्रालयों द्वारा एकत्रित किये जाने वाले आँकड़ों को व्यवस्थित करने तथा उनका प्रकाशन करने में इस मन्त्रालय की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । इस मन्त्रालय द्वारा अंग्रेजी में 'इण्डिया' तथा हिन्दी में 'भारत' नाम से एक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। यह अकेली ऐसी पुस्तक है जिसमें सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित सूचनाएँ और वार्षिक प्रगति का विवरण प्राप्त होता है। भारत की जनसंख्या सम्बन्धित सूचनाएँ और वार्षिक प्रगति का विवरण प्राप्त होता है। भारत की जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताओं, सांस्कृतिक गतिविधियों, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज-कल्याण, जनसंचार, ग्रामीण पुर्ननिर्माण, पिछड़े वर्गों का कल्याण, श्रम, नागरिक आपूर्ति, प्रतिरक्षा, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, परिवार कल्याण आदि वे महत्वपूर्ण विषय हैं जिनसे सम्बन्धित नवीनतम सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए इस मन्त्रालय द्वारा दी जाने वाली सूचनाओं को द्वितीयक तथ्यों का सबसे प्रमुख स्त्रोत माना जाता है।

8. **शहरी कार्य तथा रोजगार मन्त्रालय—** नगर विकास तथा नगर नियोजन सामाजिक अध्ययनों से सम्बन्धित प्रमुख विषय है । इस मन्त्रालय द्वारा वे सभी सूचनाएँ प्रदान की जाती हैं जिनका सम्बन्ध नगरीकरण की प्रक्रिया नगर नियोजन, नागरिक सुविधाओं तथा नगरीय रोजगार से है। स्वाभाविक है कि यह मन्त्रालय भी सरकारी आँकड़ों का एक प्रमुख द्वितीयक स्त्रोत है।

उपर्युक्त मन्त्रालयों के अतिरिक्त पर्यटन मन्त्रालय, वाणिज्य तथा उद्योग मन्त्रालय, कल्याण मन्त्रालय तथा विधि और न्याय मन्त्रालय भी जनसाधारण को अनेक उपयोगी सूचनाएँ प्रदान करते हैं। भारत में 'केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन' सरकारी आँकड़ों को एकत्रित करने तथा उन्हें जनसाधारण को उपलब्ध कराने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। विभिन्न राज्यों में यह कार्य

'सांख्यिकीय विभाग' द्वारा किया जाता है। भारत में अब एक 'राष्ट्रीय निदर्शन सर्वेक्षण की भी स्थापना की गयी है। इसके द्वारा समय-समय पर महत्वपूर्ण विषयों पर सर्वेक्षण करके प्राप्त सूचनाओं को जनसाधारण के लिए उपलब्ध कराया जाता है।

NOTES

सरकारी तथ्यों के गुण-दोष

सरकारी तथ्यों तथा इनके स्त्रोतों के विवेचन से एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि सामाजिक अनुसन्धान में सरकारी तथ्यों का महत्व अथवा उपयोगिता क्या है? वास्तविकता यह है कि द्वितीयक तथ्यों में सरकारी तथ्यों को सबसे अधिक प्रामाणिक समझकर इनका अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयत्न किया जाता है । जन-साधारण का भी यह विश्वास होता है कि यदि किसी सूचना का स्त्रोत सरकारी अथवा अर्द्ध-सरकारी है तो व्यक्तिगत आधार पर एकत्रित की जाने वाली सूचनाओं की तुलना में वह कहीं अधिक प्रामाणिक होगी । सरकारी तथ्य इसलिए भी महत्वपूर्ण होते हैं कि एक अनुसन्धानकर्ता इन तथ्यों को सरलता से प्राप्त करके उनका उपयोग कर सकता है । अनुसन्धान-विषय जिस क्षेत्र में इन तथ्यों को सरलता से प्राप्त करके उनका उपयोग कर सकता है । अनुसन्धान-विषय जिस क्षेत्र से सम्बन्धित होता है, उससे सम्बद्ध मन्त्रालय अथवा विभाग की रिपोर्टों से अध्ययनकर्ता को सरलता से बहुत-सी सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं । ये तथ्य किसी अनुसन्धान की योजना का निर्धारण करने तथा परिकल्पना का निर्माण करने में भी सहायक होते है सरकारी तथ्यों का एक प्रमुख महत्व यह है कि ये तथ्य आकस्मिक रूप से एकत्रित नहीं किये जा सकते, बल्कि इनके संकलन में एक निरन्तरता होती है । इसके परिणामस्वरुप इन तथ्यों की सहायता से किसी विषय से सम्बन्धित प्रवृत्ति को समझने के साथ ही तुलनात्मक अध्ययन करना भी सम्भव हो जाता है। सरकारी तथ्य बहुत व्यापक प्रकृति के होते हैं। यह किसी विशेष क्षेत्र अथवा कुछ व्यक्तियों और वर्गों की विशेषताओं को ही स्पष्ट नहीं करते बल्कि इनकी सहायता से देश के किसी भी भाग की विशेषताओं को सरलता से समझा जा सकता है। इन तथ्यों का संकलन एक बड़े संगठन और प्रशिक्षित वयक्तियों द्वारा होने के कारण भी यह अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय होते हैं।

उपर्युक्त लाभों के अलावा भी सरकारी तथ्यों में अनेक ऐसे दोष निहित होते हैं कि उनका ध्यान रखते हुए ही इन तथ्यों का उपयोग किया जाना चाहिए । सर्वप्रथम, सरकारी तथ्य साधारणत: उन्हीं तथ्यों को स्पष्ट करते है जो सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों की उपयोगिता को सिद्ध करने वाले होते हैं। यदि किन्हीं तथ्यों से सरकारी कार्यक्रमों की असफलता सिद्ध होती है तो प्राय: विभिन्न प्रतिवेदनों में उन्हें नहीं दर्शाया जाता है । सरकारी तथ्य बहुत बड़ी सीमा तक लक्ष्य-प्रधान होते हैं । विभिन्न विभागों द्वारा तथ्यों को इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है जिससे एक विशेष विभाग की सफलता और मनमाना हो जाता है कि प्राय: उसमें वस्तुतनिष्ठता नहीं रह जाती । सरकारी तन्त्र में जिन कार्यकर्ताओं द्वारा सूचनाओं का संग्रह किया जाता है, उनका सदैव ईमानदार होना आवश्यक नहीं होता । अध्ययन में व्यक्तिगत रुचि के अभाव तथा लापरवाही के कारण भी सरकारी तथ्यों की प्रामाणिकता सन्देहपूर्ण ही रहती है । इसके बाद भी यह सच है कि अन्य स्त्रोतों की तुलना में सरकारी तथ्यों के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

तथ्यों के संकलन का महत्व (Importance of Collection of Data)

तथ्यों का संकलन सामाजिक अनुसन्धान की प्रक्रिया का सबसे प्रमुख स्रोत है। इसी के आधार पर विभिन्न घटनाओं के सह-सम्बन्ध को समझना सम्भव होता है । इस दृष्टिकोण से तथ्यों का संकलन जितने निष्पक्ष और व्यवस्थित रूप से किया जाता है, अनुसन्धान द्वारा प्राप्त परिणाम भी उतने ही अधिक शुद्ध और व्यावहारिक बन जाते हैं। वास्तव में, तथ्य ही वह कच्चा माल है जिसकी सहायता

से अध्ययन को एक विशेष स्वरूप प्राप्त हो सकता है । सामाजिक अनुसन्धान में तथ्यों के संकलन के महत्व को संक्षेप में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता—

1. **अनुसन्धान का महत्वपूर्ण आधार—**किसी भी सामाजिक अनुसन्धान का वास्तविक कार्य तथ्यों के संकलन से ही आरम्भ होता है । संकलित तथ्यों का वर्गीकरण और व्याख्या करने से ही महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं । जब कभी भी किन्हीं निष्कर्षो की परीक्षा अथवा पुनर्परीक्षा करने की आवश्यकता अनुभव की जाती है तो पुन: नए तथ्यों को संकलित करना आवश्यक हो जाता है । इसका अभिप्राय है कि अनुसन्धान प्रारम्भ करने से लेकर अन्ततक प्रत्येक स्तर पर किसी-न-किसी रूप में तथ्यों के संकलन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और इसी तथ्य के द्वारा विषय से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को ज्ञात किया जाता है ।

2. **कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज—** सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत तथ्य-संकलन की एक महत्वपूर्ण उपयोगिता यह है कि संकलित तथ्य के द्वारा ही किसी समस्या अथवा घटना के कारणों और परिणामों को ज्ञात किया जा सकता है। यह एक निश्चित तथ्य है कि प्रत्येक समस्या अथवा घटना का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। जिसे अनुसन्धानकर्ता एकत्रित तथ्यों की सहायता से ही समझ सकता है । इस प्रकार संकलित तथ्य किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए एक ठोस आधार प्रदान करते हैं।

3. **जीवन की वास्तविकता का ज्ञान—**तथ्यों का संकलन काल्पनिक रूप से अथवा शून्य नहीं किया जा सकता । इसके लिए अध्ययनकर्ता को अपने विषय से सम्बन्धित एक विशेष समूह अथवा समुदाय के जीवन में प्रवेश करना आवश्यक होता है। अध्ययनकर्ता जब किसी समूह को निकट से देखकर वास्तविक तथ्य एकत्रित करता है तो स्वाभाविक रूप से उसे समूह के जीवन की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। ग्रामों में निर्धनता की सीमा रेखा से नीचे रहने वाले किसानों की समस्या का अध्ययन करने के लिए जब अनुसन्धानकर्ता ग्रामीण समुदाय में प्रवेश करता है तो उसे ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित वास्तविक दशाओं का आसानी से बोध हो जाता है । जीवन की वास्तविकता का यह ज्ञान ही अध्ययनकर्ता को एक ऐसी सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करता है जिससे वह घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध को सरलतापूर्वक समझ सके ।

4. **समस्या के समाधान में सहायक-** संकलित तथ्य केवल विभिन्न घटनाओं के बीच कार्य-कारण के सम्बन्ध को स्पष्ट करने में ही सहायक नहीं होते बल्कि इनके आधार पर समस्याओं का समाधान करना भी सम्भव हो जाता है । जैसे- तथ्यों के संकलन द्वारा यदि यह ज्ञात हो जाये कि छात्र असन्तोष का मुख्य कारण दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली और शिक्षा के प्रति नियोजनकर्ताओं की उदासीनता है तो सरलता से तरीकों को ढूँढा जा सकता है जिनके द्वारा इस समस्या का समाधान हो सकता है ।

5. **परिवर्तन के मूल्यांकन में सहायक—** सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली परिवर्तन की प्रक्रियाओं तथा परिवर्तन की दिशा को ज्ञात करने में तथ्यों के संकलन का अत्यधिक महत्व है। अभिलेखों द्वारा एकत्रित द्वितीयक तथ्य हमें अतीत की स्थिति से अवगत कराती है, जबकि क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्य वर्तमान को स्पष्ट करते हैं । इनकी सहायता से यह सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है कि वर्तमान में परिवर्तन की दर क्या है तथा विभिन्न प्रकार के परिवर्तन सामाजिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं। जैसे-भारत में प्रति दस वर्ष बाद होने वाले जनगणना सर्वेक्षण से जो तथ्य एकत्रित किये जाते हैं, उसकी सहायता से यह सरलतापूर्वक ज्ञात हो जाता है कि देश में जनसंख्या किस गति से

बढ़ रही है ? जन्म-दर और मृत्यु-दर में क्या परिवर्तन हुआ है ? साक्षरता में क्या प्रगति हुई है तथा लोगों की प्रति व्यक्ति आय में किस प्रकार परिवर्तन हो रहा है ? यह सभी तथ्य परिवर्तन की दिशा तथा सीमा को सुनियोजित करने में बहुत सहायक होते हैं।

NOTES

6. **नियोजन का आधार**- जिन योजित परिवर्तन के वर्तमान काल में तथ्यों के संकलन के द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि वर्तमान में हमारे साधन तथा समस्याएँ क्या हैं और भविष्य में विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किन क्षेत्रों में परिवर्तन लाना आवश्यक है । तथ्यों के संकलन द्वारा यह भी ज्ञात हो जाता है कि विभिन्न विकास योजनाओं ने समाज के विभिन्न व्यावहारिक नहीं हो सकी है तो इसके लिए कौन-से कारक उत्तरदायी हैं ? इसी उद्देश्य से योजना मन्त्रालय में अब एक नये 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' (P.E.O) की स्थापना की गयी है जिससे महत्वपूर्ण तथ्यों का संग्रह करके योजनाओं को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उपयोगी सुझाव प्राप्त किये जा सकें ।

7. **प्रशासनिक महत्व**—अनुसन्धान द्वारा प्राप्त तथ्यों से सरकार को विभिन्न क्षेत्रों से यथार्थ सूचनाएँ प्राप्त होती है जिसकी सहायता से प्रशासन को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है । कोई भी सरकार देश में व्याप्त विभिन्न समस्याओं तथा शक्तियों की आकांक्षाओं को स्वयं ही समझकर प्रशासनिक तन्त्र के द्वारा उनका समाधान नहीं कर सकती । विभिन्न सर्वेक्षणों एवं अनुसन्धान कार्यो द्वारा संकलित तथ्यों की सहायता से ही उन्हें जानना सम्भव हो पाता है । इसके लिए सरकार एक ओर विभिन्न आयोगों और समितियों की स्थापना करती है तथा दूसरी ओर व्यक्तिगत आधार पर किये गये अध्ययनों की सहायता से विभिन्न समस्याओं के कारणों और निराकरण के सुझावों को जानने का प्रयत्न करती है। इस दृष्टिकोण से तथ्यों का संकलन प्रशासनिक सुधार तथा नीतियों में परिवर्तन करने के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है।

8. **तुलनात्मक अध्ययनों में सहायक**- तथ्यों का संकलन ही वह महत्वपूर्ण आधार है जिसकी सहायता से विभिन्न घटनाओं तथा परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है । यह तुलना अतीत और वर्तमान के तथ्यों को आधार पर की जाती है । जैसे- जनसंख्या सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह सरलतापूर्वक समझा जा सकता है कि सन् 1951 से लेकर सन् 2011 तक जनसंख्या बृद्धि की दर क्या रही है। अनुसूचित जातियों को दिये गये आरक्षण की व्यवस्था कितनी प्रभावपूर्ण हो सकी तथा ग्रामीण और नगरीय समुदाय में साक्षरता की वृद्धि का प्रतिशत क्या रहा ? इसी प्रकार भारत में स्वतन्त्रता पहले और स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न दशाओं में किस प्रकार परिवर्तन हुए, इन्हें भी तथ्य व सहायता से ही ज्ञात किया जा सकता है । एक ही समूह अथवा समुदाय की विभिन्न सामाजिक विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने में भी तथ्यों के संकलन का महत्वपूर्ण योगदान होता है ।

9. **अध्ययन प्रविधियों में सुधार**- अध्ययनकर्ता केवल अवलोकन के द्वारा ही तथ्यों का संकलन नहीं कर सकता है बल्कि इस कार्य के लिए उसे अनेक प्रविधियों और उपकरणों का प्रयोग करना पड़ता है। तथ्यों के संकलन के दौरान अध्ययनकर्ता को समय-समय पर ऐसे अनेक अनुभव होते हैं जिनसे वह पुरानी प्रविधियों के दोष और सीमाओं को समझने लगता है। ऐसी स्थिति में अनुसन्धानकर्ता विभिन्न प्रविधियों में इस प्रकार सुधार करने का प्रयत्न करता है जिससे वह अधिक कुशलता के साथ नए तथ्यों का संकलन कर सके। वास्तव में, अनेक नयी प्रविधियों तथा नवाचारों का विकास इसी प्रकार के अनुभवों का परिणाम रहा है।

अत: सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों का संकलन एक महत्वपूर्ण कार्य है। तथ्य-संकलन की सैद्धान्तिक उपयोगिता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि नये ज्ञान का सृजन और सिद्धान्तों का निर्माण तथ्य के संकलन के बिना नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर, नियोजित परिवर्तन, प्रशासनिक सुधार सामाजिक नियन्त्रण और जन-कल्याण से सम्बन्धित प्रयत्नों के क्षेत्र में तथ्यों का संकलन इसकी व्यवहारिक उपयोगिता को स्पष्ट करता है । इसके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि तथ्य का संकलन केवल तभी उपयोगी होता है तब एकत्रित तथ्य विश्वसनीय हो।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. तथ्य-संकलन से आप क्या समझते हैं? सामाजिक अनुसन्धान में तथ्य-संकलन के महत्व की विवेचना कीजिए ।
2. सामाजिक अनुसन्धान में प्रयुक्त किये जाने वाले तथ्यों के प्रमुख प्रकारों को समझाइये ।
3. तथ्य-संकलन के प्राथमिक स्त्रोत क्या हैं? इन स्त्रोतों की सीमाओं को समझाइए ।
4. सामाजिक अनुसन्धान में सूचनाओं के प्रमुख स्त्रोतों की विवेचना कीजिए ।
5. तथ्यों को संकलित करने के द्वितीयक स्त्रोत क्या हैं? सार्वजनिक प्रलेख किस प्रकार सामाजिक अनुसन्धान में सहायक होते हैं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. तथ्य-संग्रह में द्वितीयक स्त्रोतों के गुण-दोष क्या हैं ? इनका उपयोग करने में किन सावधानियों को ध्यान में रखना आवश्यक है ?
2. तथ्यों के संकलन में प्राथमिक तथा द्वितीयक स्त्रोतों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए ।
3. भारत में सरकारी आँकड़ों के विभिन्न स्त्रोत क्या हैं ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. तथ्य प्रकार के होते हैं–

   (अ) दो   (ब) चार

   (स) सात ।   (द) पाँच

2. ''प्राथमिक स्त्रोत वे स्त्रोत हैं जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों के संकलन में सहायक होते है ।'' यह कथन किसका है ।

   (अ) लुण्डबर्ग   (ब) स्पेन्सर

   (स) पी.वी.यंग   (द) कार्ल मार्क्स ।

3. प्रथामिक तथ्यों के प्रत्यक्ष स्त्रोत हैं–

   (अ) अवलोकन   (ब) अनुसूची

   (स) साक्षात्कार   (द) ये सभी ।

उत्तर- (1) अ (2) स (3) द

14 सारणीयन

NOTES

अध्याय में सम्मिलित हैं :

अध्ययन के उद्देश्य :

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

- सारणीयन की परिभाषाएँ।
- सारणीयन के उद्देश्य।
- सारणीयन के लाभ।
- सारणीयन की सीमाएँ।
- उत्तम सारणी के लक्षण।
- सारणी का ढाँचा।
- सारणियों के प्रकार।

प्राक्कथन

सामाजिक अनुसन्धान में अध्ययन से सम्बन्धित तथ्यों का विधिवत् संकलन करने के बाद उन्हें व्यवस्थित तरीके से एक तालिका के रूप में प्रदर्शित किया जाता है, जिससे संग्रहित तथ्य सरलता से स्पष्ट हो सकें, उनकी तुलना आसानी से की जा सके एवं उनके द्वारा निष्कर्ष भी सरलता से निकाले जा सकें। इस प्रकार संकलित तथ्यों को वैज्ञानिक ढंग से एक सारिणी में प्रदर्शित करना ही सारणीयन है। सारणीयन के द्वारा अंकों से प्राप्त होने वाली सूचनाएँ स्पष्ट होती है। समस्या की व्याख्या स्पष्ट रूप से होती है तथा आँकड़ों से यथाचित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। यहाँ तक कि इसके द्वारा गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों ही प्रकार के तथ्यों को संख्यात्मक रूप में प्रकट किया जा सकता है। सारणीयन विस्तृत तथ्यों को कुछ शीर्षकों में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की एक प्रणाली है। यह संकलित तथ्यों को बोधगम्य व व्यवस्थित बनाती है।

सारणीयन की परिभाषा (Definition of Tabulation)

विद्वानों ने सारणीयन को निम्न रूपों में परिभाषित किया है-

(1) **एल्हँस** का कहना है, ''विस्तृत अर्थ में, सारणीयन तथ्यों की स्तम्भों तथा पंक्तियों में क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित व्यवस्था है।''

(2) **स्पर के अनुसार,** ''एक सांख्यिकीय सारणी से सम्बन्धित तथ्यों का उदग्र खानों तथा समतल पंक्तियों में किया गया वर्गीकरण है।''

(3) **कौन के अनुसार,** ''सारणीयन किसी विचारधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया गया जाने वाला सांख्यिकीय तथ्यों का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण है।''

(4) **नीस्वेंगर** ने अपनी पुस्तक ''ऐलीमेण्ट्री स्टेटिस्टिकल मैथड'' में कहा है, ''सांख्यिकीय सारणी स्तम्भों तथा कतारों में आँकड़ों का क्रमबद्ध संगठन है।''

(5) **सेक्राइस्ट** के अनुसार ''सारणी वह साधन है जिससे वर्गीकरण द्वारा की हुई विवेचना को निश्चित रूपरेखा प्रदान की जाती है, तथा समान और तुलना योग्य इकाइयों को उचित स्थान पर रखा जाता है।'' सेक्राइस्ट ने यह परिभाषा सारणी की दी है। इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वर्गीकृत आँकड़ों के संक्षिप्तीकरण के लिए उनको सारणी के रूप में प्रस्तुत करना ही सारणीयन है। यह इस प्रकार से सामग्री-संकलन एवं उसके द्वारा निकाले गए परिणामों के बीच की प्रक्रिया है। पी.वी.यंग ने इसे अति संक्षिप्त रूप में स्पष्ट किया है। उन्होंने सांख्यिकीय सारणियों को सांख्यिकीय संकेत लिपि कहा है। निष्कर्ष रूप से यह एक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसमें कॉलमों एवं कतारों में तथ्यों को स्पष्ट किया जाता है।

सारणीयन के उद्देश्य (Objectives of Tabulation) -

सारणीयन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

(1) **सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण (Systematic Presentation)** - सारणीयन का मुख्य उद्देश्य अनुसन्धान द्वारा प्राप्त सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना है, जिससे सामग्री एक स्थान पर रखी जा सके, और वह बोधगम्य हो सके।

(2) **बोधगम्य सूचनाएँ**- सारणीयन का यह उद्देश्य है कि वर्गीकृत तथ्यों को संक्षिप्त, सुविधाजनक एवं समझने योग्य स्थिति में रखा जाए जिससे वे बोधगम्य हो सकें।

(3) **तथ्यों का स्पष्टीकरण**- संकलित सामग्री को स्पष्ट करने के लिए उन्हें सारिणयों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे सभी सूचना एक साथ मिल जाती है इससे निष्कर्ष निकालने में सुविधा रहती है, और समस्या का स्पष्टीकरण सरलता से हो जाता है।

(4) **सुविधाजनक** - सारणीयन द्वारा विभिन्न तथ्य अलग-अलग शीर्षकों में वर्गीकृत किए जाते हैं, इससे परस्पर उनकी तुलना करना, निष्कर्ष निकालना एवं व्याख्या करना सरल हो जाता है।

(5) **संक्षिप्तता** - सारणीयन का उद्देश्य तथ्यों को छोटे रूप में प्रदर्शित करना है, जिससे विस्तृत सूचना एक ही दृष्टि में मिल सके। इसी विशेषता के कारण पी.वी.यंग ने इसे 'सांख्यिकीय सारिणयों को संकेत-लिपि' कहा है।

सारणीयन के लाभ (Advantages of Tabilation) -

सारणीयन के लाभ अथवा गुण निम्नलिखित हैं-

(1) **सरलता** - अनुसन्धान में प्राप्त तथ्य अनेक सांख्यिकीय क्रियाओं से गुजरते हैं, जैसे-माध्य, विचल, सहसम्बन्ध आदि इन सबके द्वारा आवश्यक सूचना आसनी से समझी जा सकती है। साथ ही सारणी के कारण अंकों की गणना आदि करने में भी सरलता रहती है और अशुद्धियों का पता भी शीघ्रता से चल जाता है।

(2) **सुविधाजनक तुलना** - सारणीयन में तुलनीय अंकों को निकटवर्ती खानों में रखा जाता है, इससे उनका तुलनात्मक अध्ययन करने में आसानी रहती है। साथ ही प्रतिशत अनुपात आदि के प्रयोग के कारण भी तुलना सुविधाजनक रूप से होती है।

(3) **समय व स्थान की बचत**- सारणीयन का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें अधिक-से अधिक सूचना कम-से-कम स्थान में प्रस्तुत की जाती है इससे स्थान की तो बचत होती ही है, साथ ही पाठक भी सभी सूचनाओं को एक निगाह में जान लेता है इससे उसके समय की भी बचत होती है।

(4) **तथ्यों का व्यवस्थित क्रम**- सारणीयन द्वारा तथ्यों को शीर्षकों, उपशीर्षकों, के अन्तर्गत रखा जाता है जिसके कारण उन्हें पद्धति पूर्ण ढंग से व्यवस्थित किया जा सकता है और उन्हें दोहराना नहीं पड़ता। परिणामस्वरूप सामग्री को ढूँढने में सुविधा रहती है और देखने में भी अच्छा लगता है।

(5) **स्मरण करने में आसान**- सारणीयन में जटिल अंकों को भी उचित शीर्षकों आदि में विभाजित करने से, उसे सुगमता से समझा जा सकता है, इससे उन्हें स्मरण करना आसान होता है।

(6) **सूचनाओं का स्पष्ट चित्र**- सारणीयन में सूचनाएँ एक क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, इस कारण वे समझने में सुगम हो जाती हैं विभिन्न तथ्यों के सम्बन्धों का भी एक स्पष्ट चित्रण हो जाता है और एक निश्चित व आकर्षक रूप में उनका प्रदर्शन भी किया जा सकता है।

सारणीयन की सीमाएँ (Limitations of Tabulation) -

सारणीयन से जहाँ अनेक लाभ हैं, वहीं इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं जिनके गुण यह पूर्णतया दोषों से मुक्त नहीं है। इसकी सीमाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) **केवल संख्यात्मक सूचनाएँ**- सारणीय के द्वारा केवल संख्यात्मक सूचनाओं को ही स्पष्ट किया जा सकता है, गुणात्मक सूचनाएँ इस विधि से प्राप्त नहीं हो पातीं। लेकिन सामाजिक अनुसन्धानों में अधिकांश सूचनाएँ गुणात्मक प्रकृति की होने के कारण सारिणयों से उन्हें व्यक्त करना कठिन होता है। यह इस विधि की सीमा है।

(2) विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता – सारणियाँ गणितीय ज्ञान पर आधारित होती हैं और गणितीय ज्ञान सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन होता है, इन्हें तो विशेष शिक्षित व्यक्ति ही समझ सकता है। अत: सारणीय के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है- इसकी यह सीमा कही जा सकती है।

(3) पूर्ण परिशुद्धता का अभाव – सारणीय में प्रदर्शित सूचनाएँ पूर्णरूपेण स्वतन्त्र नहीं होती हैं क्योकि उन्हें सापेक्षिक रूप से विभिन्न पदों में दिखाया जाता है। ऐसा करने में कभी-कभी वे गलत अथवा असम्बद्ध रूप में भी प्रदर्शित की जाती हैं अथवा कभी-कभी महत्वपूर्ण सूचनाओं को भी सही स्थान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप वे पूर्णतया विशुद्ध नहीं हो पाती हैं।

(4) नीरस एवं रुचिहीन – सारणीयन के आँकड़े प्राय: नीरस होते हैं उनमें केवल संख्याएँ होती हैं जिन्हें समझना अरुचिकर प्रतीत होता है उन्हें समझने के लिए अधिक बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है- इसलिए सारणियाँ अनाकर्षक, अरुचिकर और नीरस दिखाई देती हैं।

एक उत्तर सारणी के लक्षण (अनिवार्यताएँ)

सारणी तथ्यों को सरलता, बोधगम्यता और आकर्षण प्रदान करती है अत: सारणी का उत्तम प्रकृति का होना आवश्यक है अत: एक श्रेष्ठ सारणी का निर्माण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है-

(1) आकर्षकता-एक उत्तम सारणी को इस प्रकार का होना चाहिए कि वह हमें अपनी ओर पूरी तरह आकृष्ट कर ले। इसके लिए उसकी बनावट, विभिन्न खानों का अनुपात, संख्याओं को लिखने का तरीका, स्वच्छता व सुदरता आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। सारणी बनाना एक कलात्मक कार्य है। यह सब सारणी बनाने वाले की योग्यता पर निर्भर करता है।

(2) समुचित आकार-सारणी समुचित आकार की होनी चाहिए अर्थात् आकार न बहुत बड़ा हो, न बहुत छोटा हो। बड़े आकार की सारणी सुन्दर प्रतीत नहीं होती, साथ ही तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान करना जो सारणी का मूल उद्देश्य है, उसकी भी पूर्ति नहीं हो पाती अत: बहुत बड़ा आकार होना ठीक नहीं, उसी भाँति बहुत छोटा आकार होने से सम्पूर्ण तथ्यों का उसमें समावेश न हो सकेगा।

(3) तुलना की सुविधा- एक उत्तम प्रकृति की सारणी में तथ्यों को इस प्रकार व्यवस्थित क्रम से प्रस्तुत किया जाता है कि विभिन्न तथ्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करने में सरलता हो। सारणी का एक प्रमुख गुण आँकड़ों की तुलना करना होता है, इस गुण को ध्यान में रखकर ही सारणी को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

(4) स्पष्टता व सरलता- एक श्रेष्ठ सारणी की यह भी विशेषता हैं कि वह स्पष्ट व सरल होनी चाहिए जिससे साधारण व्यक्ति को भी तथ्यों की विशेषताएँ स्पष्ट ज्ञात हो सकें तथा वांछित सूचनाओं को भी सरलता से ढूँढा जा सके।

(5) उद्देश्यानुकूल- सारणी का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि इसके द्वारा अध्ययन के उस उद्देश्य की पूर्ति हो सके, जिस उद्देश्य को लेकर सारणी का निर्माण किया गया है। इसमें अनावश्यक तथ्यों का प्रवेश न हो और आवश्यक तथ्य छूट न जाएँ।

(6) वैज्ञानिकता- सारणी का निर्माण वैज्ञानिक ढंग से किया जाना आवश्यक है। आँकड़ों का प्रस्तुतीकरण सम्बद्ध और क्रम से किया जाना चाहिए, जिससे तथ्यों की विशेषताएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती रहें जिनसे उनका तुलनात्मक अध्ययन करने में सहायता मिले। अत: सारणी का निर्माण पर्याप्त सोच-विचार के पश्चात् किया जाना चाहिए।

सारणी का ढाँचा

सारणी की रचना करना एक कलात्मक कार्य है। सारणी केवल पंक्तियों व खानों का निर्माण मात्र नहीं है, बल्कि यह पूर्णतया वैज्ञानिकता पर आधारित होती है इसलिए इसके निर्माण में अनुभव, ज्ञान, प्रशिक्षण, एवं कुशलता की आवश्यकता होती है। एक सारणी के प्रमुख भाग निम्नलिखित हैं-

(1) **सारणी का शीर्षक**- सर्वप्रथम सारणी का शीर्षक लिखा जाता है जिसमें अंकों की प्रकृति, क्षेत्र, समय एवं वर्गीकरण का आधार आदि की सूचना एक दृष्टि से हो जाती है। इसे मोटे अक्षरों में लिखना चाहिए जो पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सकें

(2) **उपशीर्षक**- सारणी में दो प्रकार की खानें होते हैं- (1) उदग्र (Vertical) खाने तथा क्षैतिज खाने। दोनों प्रकार के खानों पर उपर्शीषक दिया जाना चाहिए। उदग्र या खड़े खानों के स्तम्भों के शीर्षकों को केप्सन् (Caption) तथा क्षैतिज या आड़े खाने के शीर्षकों को स्टब (Stub) कहा जाता है। ये उपशीर्षक संक्षिप्त होने चाहिए।

(3) **रेखाएँ खींचना व रिक्त स्थान छोड़ना** - विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ अलग-अलग खानों में दिखाने के लिए उन्हें रेखाओं द्वारा अलग-अलग किया जाता है। अत: खाने इस प्रकार के हों कि उनमें उचित रेखाएँ खींची जायें जिससे सारणी आकर्षक लगे साथ ही उनमें उपयुक्त स्थान छोड़ा जाना चाहिए।

(4) **पद-व्यवस्था**- सारणी-निर्माण के समय खानों व पंक्तियों को इस ढंग से क्रमबद्ध करके उसमें अंकों को लिखा जाना चाहिए कि तुलना योग्य अंक निकटवर्ती खानों में रख जायें। इस प्रकार दो पदों की व्यवस्था आवश्यकता के अनुरूप आकार, महत्व, समय अथवा भौगोलिक आधार आदि पर की जाती है।

(5) **टिप्पणियाँ** - सारणी में कभी-कभी विशेष स्पष्टीकरण देने के लिए शब्दों की व्याख्या करने के लिए अथवा कोई विशेष सन्दर्भ देने के लिए सारणी के नीचे टिप्पणी दी जानी चाहिए। ये टिप्पणियाँ तथ्यों व निष्कर्षो को समझने में महत्वपूर्ण होती हैं।

(6) **योग (Total)** - सारणी के अन्त में योग तथा कुल योग दिखाया जाना चाहिए जिससे अंकों की जाँच भलीभाँति की जा सके।

(7) **सामग्री संग्रह के स्रोत**- सारिणयों में प्रदर्शित सूचनाएँ कहाँ से संकलित की गई हैं, इसका उल्लेख भी किया जाना आवश्यक है। अत: प्रत्येक सारणी के अन्त में सूचनाओं के स्रोत दिये जाने चाहिए।

(8) **संकेताक्षर**- कभी-कभी कोई आवश्यक तथ्य संकेत के रूप में दिया जाता है-ऐसी स्थिति में जब संकेताक्षर देना आवश्यक हो तो टिप्पणियों अथवा पाद-चिह्न में उन्हें स्पष्ट किया जाना चाहिए।

इस प्रकार सारणी-निर्माण में उपर्युक्त बातों के साथ-साथ यह भी ध्यान रखा जाए कि महत्वपूर्ण तथ्यों को अलग-अलग पदों में विभाजित किया जाए। पदों में क्रमबद्धता का ध्यान रखा जाए-महत्वपूर्ण पदों को रेखांकित भी किया जा सकता है। इस प्रकार सारणी का निर्माण करना एक तकनीकी कार्य है जिसे एक प्रशिक्षित व अनुभवी व्यक्ति ही निर्मित कर सकता है। हार्पर के अनुसार, ''सारणी की रचना करना एक कला ही है, केवल पंक्तियों तथा खानों को बना लेना पर्याप्त नहीं होता, बल्कि इसके लिए विशेष अनुभव, ज्ञान, प्रशिक्षण, योग्यता, विवेक और कुशलता की आवश्यकता होती है।

सारणी के प्रमुख अंगों को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

पंक्तियाँ (Rows)

पंक्ति शीर्षक	उप-शीर्षक	उप-शीर्षक	योग
अनुशीर्षक			
योग			**कुल योग**

टिप्पणी

स्रोत

सारणियों के प्रकार (Types of Tables) - सारणियों के उद्देश्य, मौलिकता एवं रचना के आधार पर उन्हें विभिन्न भागों में बाँटा गया है। उद्देश्य के आधार पर सारणियाँ दो प्रकार की होती हैं- (i) सामान्य, (ii) विशिष्ट। मौलिकता के आधार पर दो प्रकार की सारणी- (1) मौलिक एवं (2) व्युत्पन्न, दो प्रकार की हैं। रचना के आधार पर सारणियों के दो प्रकार- (1) सरल एवं (2) जटिल हैं, इनमें जटिल सारणी पुन: तीन प्रकार की हैं- (i) द्विगुण, (ii) त्रिगुण, एवं (iii) बहुगुण। इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) उद्देश्य का आधार- इस आधार पर सारणी दो प्रकार की हैं।

1. **सामान्य सारणी** - इस प्रकार की सारणियों का कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता है। इनमें एक साथ अनेक प्रकार की सूचनाओं को दर्शाया जा सकता है। ये सारणियाँ अत्यन्त विस्तृत होती हैं तथा रिपोर्टों के साथ संलग्न की जाती हैं, जैसे-जनगणना रिपोर्टों में इस प्रकार की सारणी प्रयुक्त की जाती हैं जिनका लाभ अनेक व्यक्तियों को होता है। क्राक्सटन एवं काउडेन का कथन है, ''सामान्य उद्देशीय सारणी का प्राथमिक तथा प्राय: एकमात्र उद्देश्य समंकों को ऐसे रूप में प्रस्तुत करना होता है कि व्यक्तिगत इकाइयाँ पाठक द्वारा तुरन्त खोजी जा सकें।'' इस प्रकार इनमें पूरी सूचना ज्यों-की-त्यों रखी जाती है।

2. **विशिष्ट सारणी-** इस प्रकार की सारणी किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए सामान्य उद्देश्य वाली सारणियों की सहायता से तैयार की जाती हैं। क्राक्सटन तथा काउडेन के अनुसार, ''संक्षिप्त या विशेष उद्देश्य वाली सारणी जो प्राय: आकार में अपेक्षाकृत छोटी होती है, किसी एक निष्कर्ष अथवा कुछ निकट सम्बन्ध वाले निष्कर्षों को अधिक-से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से रखने के लिए तैयार की जाती है।'' प्रधान सारणी से विशिष्ट सारणी तैयार करने की विधि इस प्रकार है-

   (i) जो समंक सारणी के उद्देश्य से सम्बन्धित नहीं होते उन्हें छोड़ दिया जाता है।

   (ii) विस्तृत रूप से लिखे गए समंकों को वर्गीकृत करके संक्षिप्त रूप दिया जाता है।

   (iii) प्रधान सारणी में लिखा हुआ क्रम बदल दिया जाता है, यदि वह संक्षिप्त सारणी के उद्देश्य की पूर्ति करता हो।

   (iv) एक से अधिक सारणियों का उपयोग किया जाता है।

   (v) माध्य, प्रतिशत व अनुपात आदि निकाल कर निरपेक्ष संख्याओं के स्थान पर रखा जा सकता है।

NOTES

(2) **मौलिकता**– इस आधार पर सारणियाँ दो प्रकार हैं–

1. **मौलिक या प्राथमिक सारणी**– इस प्रकार की सारणी में समंक उसी मौलिक रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं, जिस रूप में वे एकत्र किए गए हैं। इसे वर्गीकरण सारणी भी कहा जाता है।

2. **व्युत्पन्न सारणी**– इस प्रकार की सारणी में समंकों को प्रस्तुत नहीं किया जाता है।

(3) **प्रकृति का आधार**– रचना के आधार पर सारणियाँ दो प्रकार की हैं–

1. **सरल सारणी**– सरल सारणी में एक ही गुण की तुलना की जाती है। इसलिए सारणी में कुल दो ही खाने होते हैं। सरल सारणी का उदाहरण निम्नलिखित है–

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार विभिन्न राज्यों की जनसंख्या

राज्य	जनसंख्या
योग	

2. **जटिल सारणी**– यह एक से अधिक गुण का विवेचन करने वाले सारणी है। प्रदर्शित गुणों की संख्या के आधार पर जटिल सारणी तीन प्रकार की है।

(i) **द्विगुण सारणी** – द्विगुण सारणी में दो गुणों की तुलना की जाती है, जैसे- आयु लिंग व स्त्री–पुरुष आदि। उदाहरण के लिए–

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार विभिन्न राज्यों के पुरुष व स्त्रियों की जनसंख्या

राज्य	जनसंख्या		
	पुरुष	स्त्रियाँ	योग
योग			

(ii) **त्रिगुण सारणी**– इसमें तीन गुणों को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है, जैसे–आयु, लिंग व साक्षरता। राज्यों की जनगणना के अनुसार राज्यों की संख्या में स्त्री–पुरुषों की साक्षरता को उग्र तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

राज्य	पुरुष			स्त्रियाँ			योग
	साक्षर	निरक्षर	योग	साक्षर	निरक्षर	योग	
योग							

(iii) **बहुगुण सारणी**– इस प्रकार की सारणी में चार अथवा अधिक गुणों को प्रदर्शित किया जाता है एवं उनकी तुलना की जाती है।

उदाहरण के लिए-

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार विभिन्न राज्यों की जनसंख्या

राज्य	आयु	पुरुष			स्त्रियाँ			योग
		साक्षर	निरक्षर	योग	साक्षर	निरक्षर	योग	
राजस्थान	0-20							
	20-40							
	40-60							
	60-80							
	योग							
मध्यप्रदेश	0-20							
	20-40							
	40-60							
	60-80							
	योग							

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. सारणीयन से आप क्या समझते है ? इसके उद्देश्य बताइए।
2. सारणी के ढाँचे की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सारणीयन की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
2. सारणियो के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ''सांख्यिकी सारणी स्तम्भों तथा कतारों में आँकड़ों का क्रमबद्ध संगठन है।'' यह कथन किसका है।

   (क) नीस्वेंगर (ब) स्पर

   (स) सेक्राइट (द) इनमें से कोई नही।

2. सारणीयन के लाभ हैं–

   (अ) सूचनाओं का स्पष्ट चित्र (ब) सुविधाजनक तुलना

   (स) सरलता (द) ये सभी।

3. मौलिकता के आधार पर सारणियाँ प्रकार की होती है–

   (अ) चार (ब) तीन

   (स) दो (द) छः।

उत्तर– (1) अ (2) द (3) स